स्व० बाबू श्री बहादुरसिंहजी सिंघी

स्मृतिग्रन्थ

भारतीय विद्या

(संशोधनात्मक हिन्दी-गुजराती विविध निबन्ध संग्रह)

निबन्ध संग्रह.

संपादक

श्री जिन विजय मुनि

[प्रधान नियामक - भारतीय विद्या भवन]

*

प्रकाशक

प्रो० जयन्तकृष्ण ह० दवे, एम्. ए., एल्एल्. बी.

ऑनररी रजिष्ट्रार

भारतीय विद्या भवन - मुंबई

(श्री बहादुरसिंहजी सिंघी प्रथम स्वर्गमन वार्षिक दिनप्रकाशित)

[ता. ७-७-४५]

[मूल्य ५ रुपया]

प्रकाशक-ज. ह. दवे, ऑनररि रजिष्ट्रार, भारतीय विद्या भवन, हारवे रोड, मुंबई नं. ७

दानशील - साहित्यरसिक - संस्कृतिप्रिय
स्व० बाबू श्री बहादुर सिंहजी सिंघी

जन्म ता. २८।६।१८८५] अजीमगंज - कलकत्ता [मृत्यु ता. ७।७।१९४४

स्व० बाबू श्री बहादुरसिंहजी सिंघी

स्मृति ग्रन्थ

भारतीय विद्या

(संशोधनात्मक हिन्दी-गुजराती विविध निबन्ध संग्रह)

निबन्ध संग्रह.

संपादक

श्री जिन विजय मुनि

[प्रधान नियामक - भारतीय विद्या भवन]

*

प्रकाशक

प्रो० जयन्तकृष्ण, ह० दवे, एम. ए., एल्एल्. बी.

ऑनररी रजिस्ट्रार

भारतीय विद्या भवन - मुंबई

(श्री बहादुरसिंहजी सिंघी प्रथम स्वर्गमन वार्षिक दिनप्रकाशित)

[ता. ७-७-४५]

[मूल्य ५ रुपया]

मुद्रक - रामचंद्र येसू शेडगे, निर्णयसागर प्रेस, २६।२८ कोलभाट स्ट्रीट, मुंबई. २.

भारतीय विद्या – भाग ३ – विषयानुक्रम

*

अनुपूर्ति

अशुद्धि संशोधन

प्रस्तुत अङ्कमें, श्रीयुत पं. नाथूरामजी प्रेमी लिखित 'तत्त्वार्थ सूत्रकार उमास्वाति' विषयक जो लेख प्रकाशित हुआ है उसके पृष्ठ. १३४ पर प्रुफ संशोधनकी गलतीसे कुछ अशुद्धि छप गई हैं, पाठक उसका इस प्रकार संशोधन कर लें।

पंक्ति १८ में **'क्यों कि उन्होंने'** की जगह **'उनके गुरुने'**
,, २० ,, **'उनके गुरु वीरसेनाचार्यने तो'** ये शब्द निकाल दें।
,, २२ ,, **'अपनी जयधवला'** की जगह **'अपनी दूसरी कृति जयधवलामें'**

*
* *
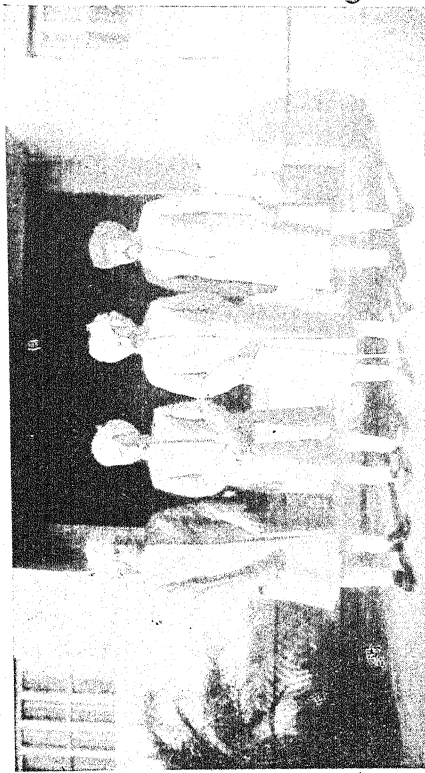
सिंघीजी – अपने तीनों पुत्रोंके साथ

[सिंघीजीकी बाईं ओर श्रीराजेन्द्र सिंहजी तथा दाहिनी ओर श्रीनरेन्द्र सिंहजी और श्रीवीरेन्द्र सिंहजी खडे हैं]

सिंघीजीके ज्येष्ठ पुत्र-श्रीराजेन्द्र सिंहजी सिंघी, बी. कॉम्.

कॉन्सल ऑफ पोलांड, सन् १९३६-१९३८.

प्रेसिडेन्ट ऑफ मारवाडी एसोसिएशन (सं. १९९८)

डायरेक्टर-झगराखण्ड कोलियारी लि०

,, कलकत्ता नेशनल बेंक लि०

,, हिन्दुस्थान कोटन मिल्स लि०

,, मोडर्न हाऊस एण्ड लेन्ड डेवलपमेन्ट कं. लि०

सिंघीजीके द्वितीय पुत्र-श्रीनरेन्द्रसिंह सिंघी, एम्. एस्सी., बी. एल्.

आनररि मेजीस्ट्रेट – लालबाग-मुर्शिदाबाद

" सेक्रेटरी – जियागंज हाईस्कूल

" " – सिंघीपार्क मेला (१९४३)

डायरेक्टर – झगराखण्ड कोलियारी लि०

" नवयुवक लि० (कलकत्ता)

सिंघीजीके लघु पुत्र – श्रीवीरेन्द्रसिंहजी सिंघी

[कलकत्ता युनिवर्सिटीमें इन्टर साइन्स पास करके इन्जीनियरिंग कालेजमें पढाई की. स्वास्थ्य ठीक न रहनेसे परीक्षा पास न कर सके]

सिंघीजीके पौत्र और श्री राजेन्द्रसिंहजीके ज्येष्ठ पुत्र
श्री राजकुमारसिंह सिंघी
(अभी कालेजमें बी. ए. का अध्ययन कर रहे हैं)
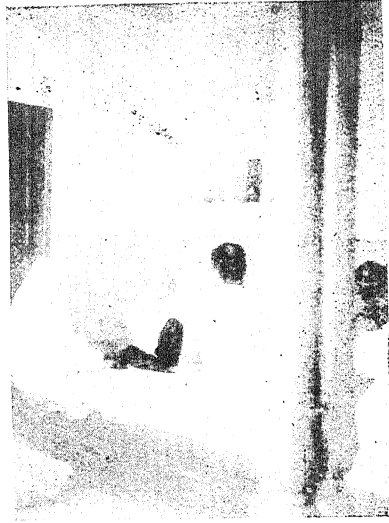
सिंघीजीकी वृद्ध माता

(अपने पौत्र श्री राजेन्द्र सिंहजीके साथ वार्तालाप कर रही हैं)

सिंघीजी बंगालके वर्तमान गवर्नरकी पत्नी लेडी केसीका अपने पार्कमें स्वागत कर रहे हैं

(यह उनका अन्तिम चित्र है)

सिंघी पार्क में—सिंघी सदन
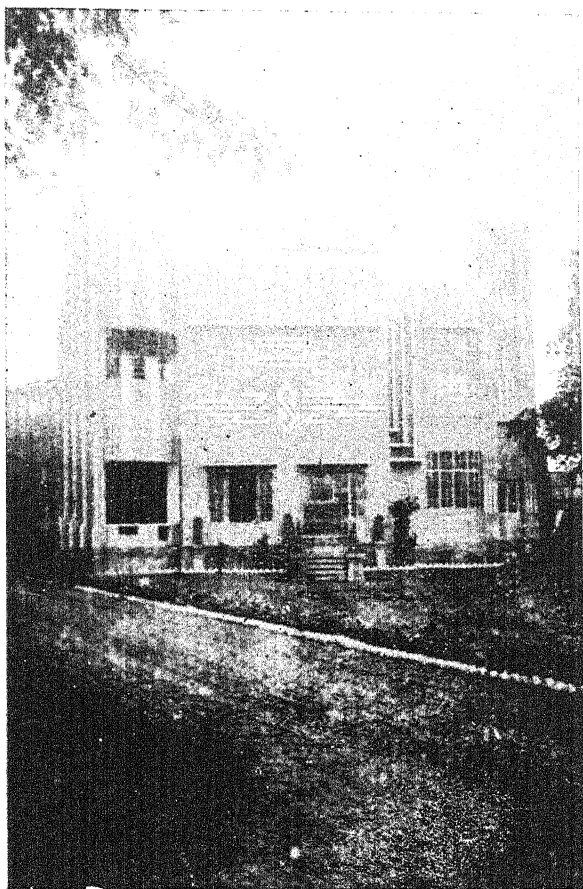
[जिसकी डीझाइन सिंघीजीने अपने हातसे बनाकर पुराने मकानको आधुनिक रूप दिया]

सिंघीपार्कमें मकरानेके मार्बलका सुन्दर फव्वारा

[सिंघीजीने अपने हाथसे प्लान बनाकर निजकी देख भालमें बनवाया]

सिंघीजी—सुप्रसिद्ध जैनसाहित्यज्ञ जर्मन विद्वान्
डॉ० हर्मन याकोबीके साथ
(सिंघीजीके हाथमें छडी है, सन् १९१३-१४)
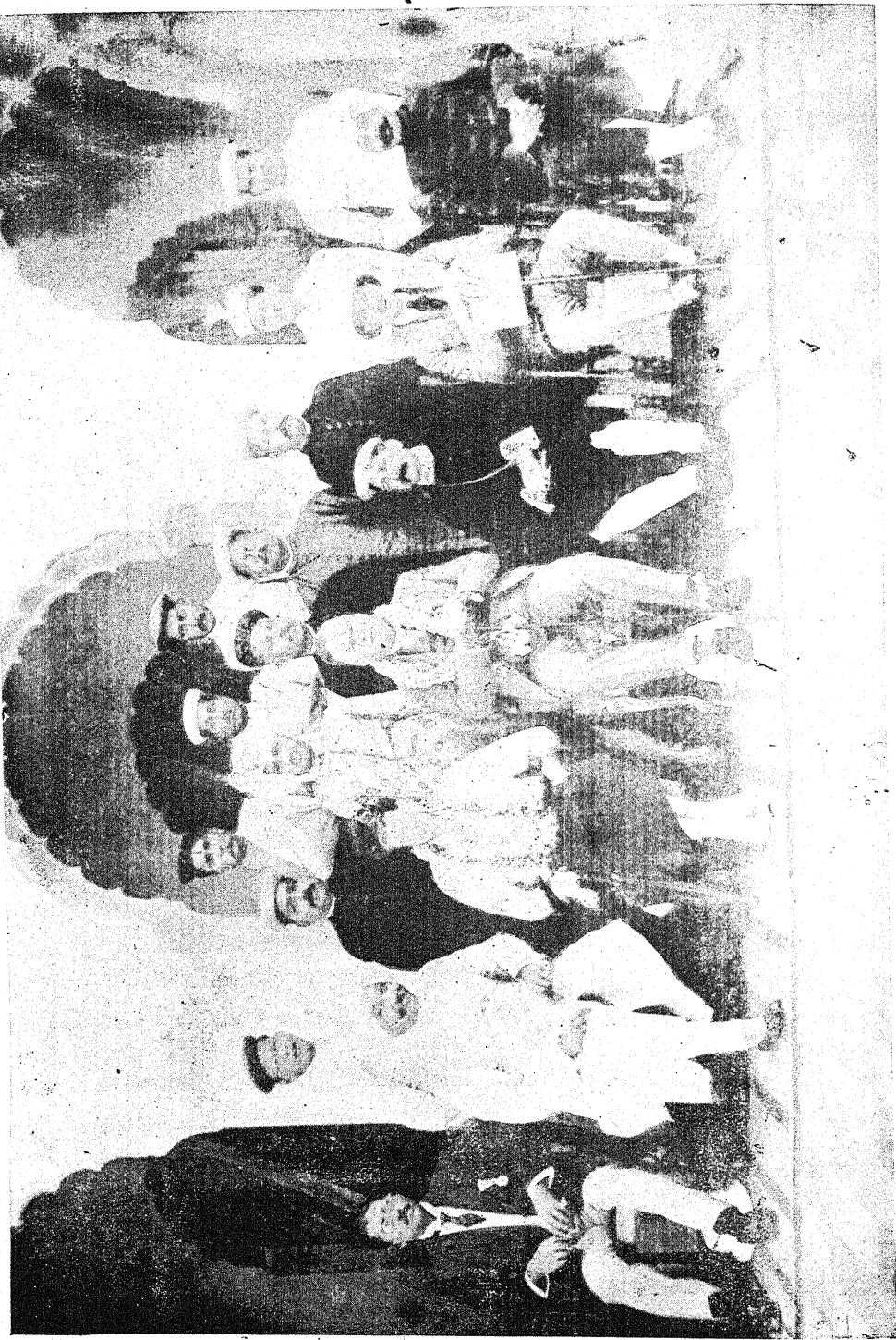
सिंघीजी – बिहारके भूतपूर्व गवर्नर व्हीलर और लेडी व्हीलरसे जैन तीर्थ पावापुरीमें मिलनेवाले जैन डेप्युटेशनके साथ

[दाहिनी ओर अंतमें बैठे हैं]

ॐ

1.2.43.

श्रद्धेय श्री मुनिजी कि सेवामे
सविनय प्रणाम, आपका कृपापत्र ता० २०-१-४३ का जैसलमेर से लिखा आया पत्र विशेष उत्साहजनक और मनोरंजक है इसका उत्तर तो अवसर मिलनेपर लिखेंगे वर्तमान मे तो आपने रुपये मंगवाया उसके पहुंचने मे बिलम्ब न हो, इस बिचार से यह छोटासा नोट लिखकर भेजरहाहुं सो सो के नोट वहां जैसे स्थान मे भुंजानेमे कष्ट न हो इस बिचारसे दस दस के दीजो भाई शंभू को = १५००) आपके लिखे अनुसार आज भेज दिया है।
पूज्य भाजी कि तबियत वैसी ही है, उनका तथा और सबों का प्रणाम। यहां सब मजेमे है आप अपने कुशल समाचार से अनुगृहीत करते रहें। इसदफे आपको अपने मनोवांछित कार्य तो मिल गया है मगर उसके आवेश मे आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान न भुलाते उसीपर सब निर्भर है, बिशेष फिर।
श्री मुंशिजी से पत्र व्यवहार चालू रहाहै।
सं० १९९९ माघ ब = ११

सिंघीजीके सुन्दर देवनागरी हस्ताक्षर
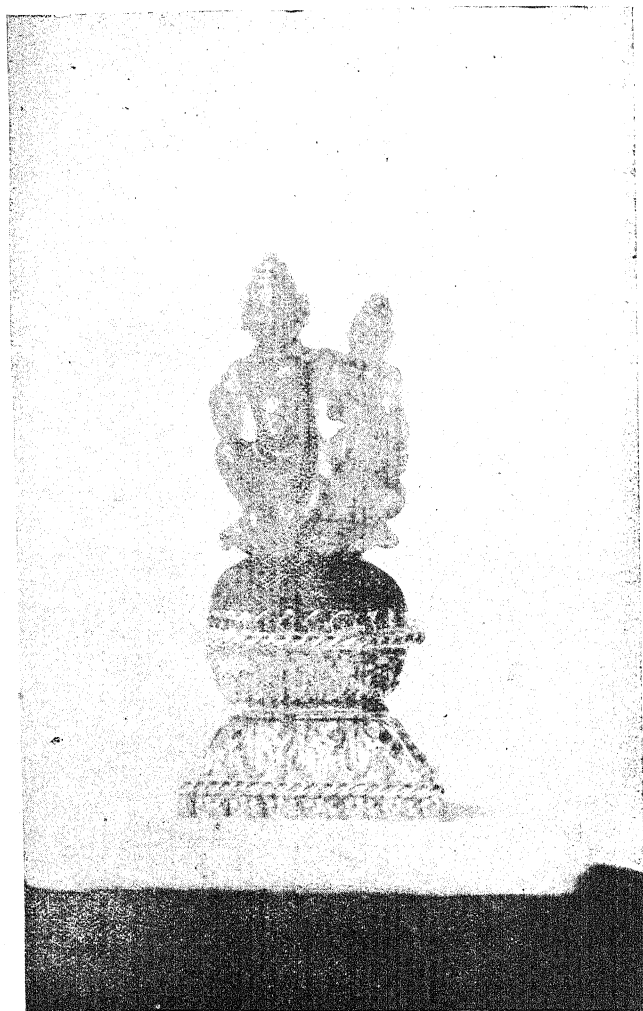
सिंघीजीके संग्रहमें शिव-पार्वतीकी बहुमूल्य रत्नकी मूर्ति

[जिसकी पूजा छत्रपति शिवाजी महाराज करते थे]
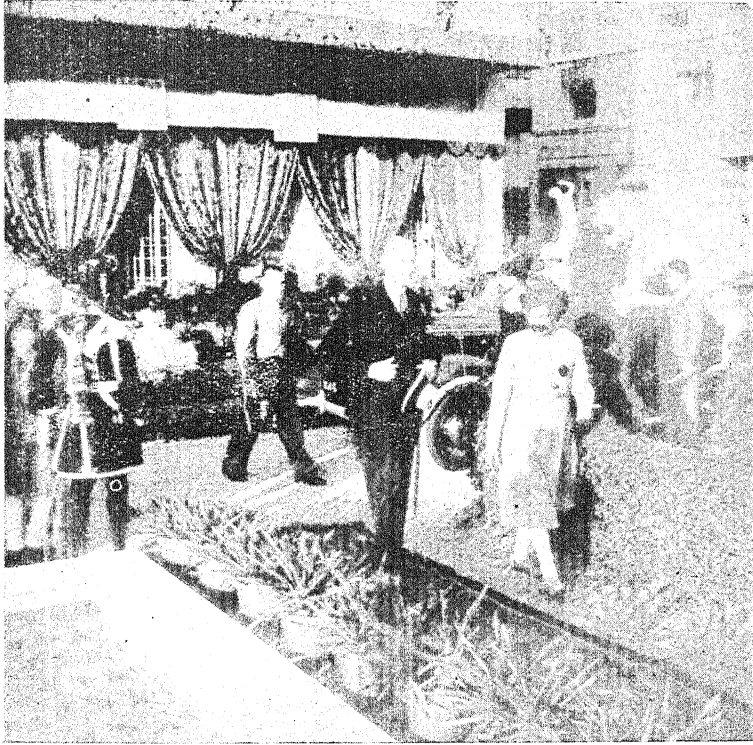
सिंघीजी—बंगालके भूतपूर्व गवर्नर सर् हर्बर्टको अपने पार्कमें ले जा रहे हैं.

[जब कि उन्होंने रेड क्रॉस फंडकी सहायताके लिये अपने पार्कमें सन १९४२ के डीसेंबरमें सिंघीपार्क मेलाका एक बहुत बडा आयोजन किया था जिसमें उस समयके कमान्डर-इन्-चीफ (वर्तमान वायसराय) लॉर्ड वावेल भी उपस्थित हुए थे]

सिंघीजी - बंगालके भूतपूर्व गवर्नर और लेडी हर्बर्टके साथ

[बाईं ओर सिंघीजीके ज्येष्ठ पुत्र श्री राजेन्द्र सिंहजी तथा दाहिनी ओर ज्येष्ठ पौत्र चि. राजकुमार सिंह खडे हैं]
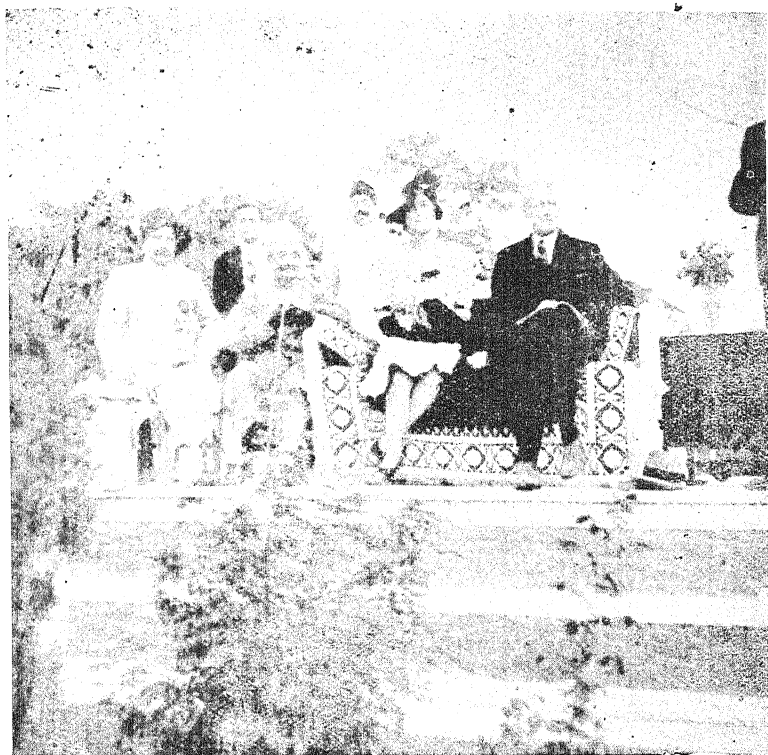
सिंघीजी – मुर्शिदाबादके नवाब और बंगालके भू. पू. गवर्नर
तथा लेडी हर्बर्टके साथ

सिंघीजीकी ओरसे दुष्कालपीडितोंको प्रतिदिन भोजन देनेके समय एकत्रित हुए बुभुक्षित मनुष्योंका एक दृश्य
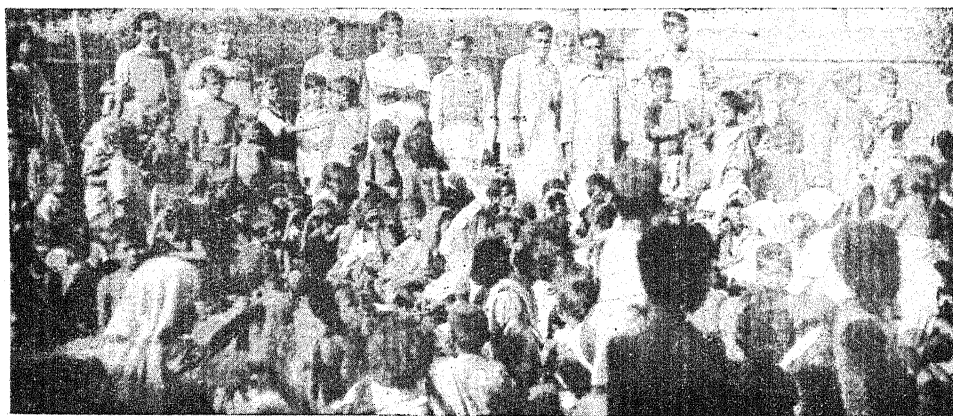
सिंघीजीके स्वयंसेवक–क्षुधार्तोंको भोजन देनेके लिये उत्सुक हो रहे हैं उसका एक दृश्य

स्वर्गवासी

बाबू श्रीबहादुर सिंहजी सिंघी

के

सम्बन्धके पुण्य स्मरण

*

लेखक

आचार्य श्री जिनविजयजी मुनि

तथा

पण्डित श्री सुखलालजी संघवी

*

[सिंघीजीकी प्रथम स्वर्गमन श्राद्धतिथि निमित्त प्रकाशित]

भारतीय विद्या – तृतीय भाग

'सिंघी स्मृति ग्रन्थ' मेंसे उद्धृत

प्रकाशक

प्रो० जयन्तकृष्ण ह० दवे, एम्. ए., एल्एल्. बी.

ऑनररी रजिस्ट्रार

भारतीय विद्या भवन

वि. सं. २००१]	मुंबई	[ई. स. १९४५

मुद्रक–रामचंद्र येसू शेडगे, निर्णयसागर प्रेस, २६।२८ कोलभाट स्ट्रीट, मुंबई. २.

अनुक्रम

*

पण्डितवर्य श्रीसुखलालजी लिखित संस्मरणोंका अनुक्रम

स्व० बाबू श्रीबहादुर सिंहजी सिंघीके साथके मेरे पुण्य स्मरण

*

'भारतीय विद्या' का प्रस्तुत ३ रा भाग, जिसमें हिन्दी और गुजराती भाषाके छोटे-बडे अनेक मौलिक और विचारपूर्ण निबन्धोंका एकत्र संग्रह किया गया है, योगानुयोगसे स्वर्गवासी श्रीमान् बाबू बहादुर सिंहजी सिंघीकी प्रथम वार्षिक मरण-तिथिके अवसर पर प्रकट हो रहा है, इसलिये हमने इसको **'श्रीबहादुर सिंहजी सिंघी स्मृति ग्रन्थांक'** के रूपमें प्रकाशित करना निश्चित किया है।

सिंघीजीकी पहली श्राद्धतिथि

विगत जुलाईकी (सन् १९४४ के) ७ वीं तारीखको 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'के संस्थापक, 'भारतीय विद्या भवन'के एक परम हितैषी एवं स्थापक-सदस्य और मेरे अनन्य आत्मीय सहृदय सुहृद्वर श्रीमान् बाबू बहादुर सिंहजी सिंघीका, ५९ वर्षकी वयमें, कलकत्तामें, उनके अपने 'सिंघीपार्क' नामक निवासस्थानमें, दुःखद अवसान हो गया। सिंघीजीके स्वर्गवाससे मुझे अपने व्यक्तिगत संबन्धकी दृष्टिसे जो उद्वेग और अवसाद हुआ है वह कभी नहीं मिटनेवाला और अप्रतिकार्य है। प्रायः पिछले पंद्रह वर्षोंमें जो कुछ भी यत्किंचित् साहित्योपना मैं कर सका हूं और अब भी कर रहा हूं, वह सर्वथा उन्हींके उत्साह, आश्रय, आदर और औदार्यका फल है। सिंघीजीके साथ मेरा वह सौहार्दसम्बन्ध न बन्धता और मैं शान्तिनिकेतनमें जा कर 'सिंघी जैन ज्ञानपीठ' का अधिष्ठाता न बनता, तो शायद मेरा कार्यक्षेत्र आज और कोई दूसरा ही होता। इसलिये इस प्रसंग पर, सिंघीजीके स्वर्गगमनकी इस पहली श्राद्धतिथिके उपलक्ष्यमें, मैं अपने पिछले १५ वर्षोंके वे कुछ पुण्य स्मरण यहां पर शब्दांकित करना चाहता हूं जो मैंने समय समय पर प्राप्त होनेवाले उनके साथके सहवासमें संगृहीत किये हैं। यों तो ये स्मरण बहुत विस्तृत हैं। उन सबको यदि व्यवस्थित रूपसे लिखना चाहूं तो एक बडीसी पुस्तक ही हो जाय – और यदि कभी मौका मिला तो उन सबको लिखनेकी मेरी आकांक्षा भी है – पर प्रस्तुतमें मैं कुछ उन्हीं स्मरणोंको यहां पर आलेखित करना चाहता हूं जो विशेषकर साहित्यविषयक कार्यके साथ संबन्ध रखते हैं। किस तरह उन्होंने मेरी साहित्यिक प्रवृत्तिको अनन्य आश्रय दिया और किस तरह इस प्रवृत्तिके निमित्त अत्यन्त उत्सुकताके साथ उदार अर्थव्यय किया – इसीको लक्ष्य कर ये स्मरण लिखे जा रहे हैं। इन स्मरणोंके पठनसे पाठकोंको बाबू बहादुर-सिंहजीके उदार व्यक्तित्व और उदात्त संस्कारप्रेमका परिचय प्राप्त होगा।

सिंघीजीके साथ मेरा जो स्नेहसम्बन्ध और कार्यव्यवहार चालू हुआ उसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे बहुत कुछ निमित्तभूत, मेरे जीवनके चिर सहकारी एवं सहचारी तथा जो मेरे और सिंघीजीके समान सखा और श्रद्धेय व्यक्ति है, पं० श्रीसुखलालजी है। सिंघीजीके साथ पण्डितजीका परिचय बहुत वर्षोंसे था। कलकत्ता या अन्य किसी

स्थान पर, जैन ज्ञानप्रकाशक कोई संस्थाकी स्थापना करनेमें सिंघीजीको पण्डितजीकी ओरसे भी बहुत कुछ प्रेरणा मिली थी। पण्डितजीके प्रौढ पाण्डित्य और विशिष्ट व्यवहार कौशल पर सिंघीजीकी बडी श्रद्धा थी। सिंघीजीके संकल्पित कार्यका भार अपने हाथमें लेनेका जो मैंने स्वीकार किया उसमें भी पण्डितजीकी इच्छा ही बहुत कुछ प्रेरक बनी थी। मेरे निवेदन करने पर, पण्डितजी भी सिंघीजीके साथके अपने कुछ विशिष्ट स्मरण लिखनेको प्रवृत्त हुए हैं जो इसके साथ ही पाठकोंको पढने मिलेंगे।

*

विदेशयात्रासे मेरा प्रत्यागमन

सन् १९२९ के डीसेंबर महिनेमें, मैं जर्मनीकी यात्रा कर वापस लौटा और लाहोरकी कॉंग्रेसमें द्रष्टाके रूपमें उपस्थित हुआ। यद्यपि जर्मनी जानेमें मेरा मुख्य लक्ष्य तो था साहित्यिक कार्यके करनेमें कुछ विशिष्ट और अधिक क्षमता प्राप्त करनेका। लेकिन इस विषयमें तो मुझे वहां कोई अनपेक्षित और अज्ञात वस्तु प्राप्त करने जैसी दिखाई न दी। पर उस समयके वहांके समाजवादी, साम्यवादी और अराजक-वादी आदि वातावरणने मेरा वह मूल लक्ष्य ही शिथिल बना दिया और मैं समाजवादी, साम्यवादी आदि विचारों और आन्दोलनोंका उत्सुक अभ्यासी बन गया। भिन्न भिन्न देशोंके, विविध प्रकारके विचारवाले अनेकानेक विद्वान् मनुष्योंके, परिचयमें आनेका मुझे वहां अत्यधिक प्रसंग मिलता रहा और इससे मेरे विचारोंमें वहां बहुत कुछ क्रान्ति होती गई। जीवनके बहते आते हुए प्रवाहमें बडे बडे भंवर पडने लगे। साहित्यिक संशोधन और संपादनके कार्यमें उपरतिसी होने लगी। निष्क्रिय आध्यात्मिकता और अर्थहीन धार्मिकता पर उद्वेग होने लगा। जीवनको अब किसी दूसरी ही ओर प्रवृत्त करनेके तरंग मनमें उछलने लगे। इसी क्षुब्ध अन्तरंगके साथ, मैं जर्मनीसे यहां लौटा था और शुष्क साहित्योपासनाकी अपेक्षा किसी सजीव सामाजिक या राष्ट्रीय जागृतिकी प्रवृत्तिमें अपने भावी जीवनको संलग्न करनेकी मनमें ठान रहा था। कॉंग्रेससे वापस लौट कर अहमदाबाद आया और मनके नये तरंगोंके अनुसार, तदनुकूल कार्यक्षेत्रकी विचारणा करने लगा। कुछ विचार फिरसे विदेशमें जानेका भी मनमें रखा हुआ था और वहीं कोई कार्यकेन्द्र – जिसका बीज मैं बर्लिनमें डाल भी आया था – स्थापित करनेका मनोरथ कर रहा था।

लाहोर कॉंग्रेसके प्रस्तावके मुताबिक देशमें स्वराज्यकी सिद्धिके लिये कोई जोरदार आन्दोलन खडे करनेकी तजवीज महात्माजी सोच रहे थे और देशकी हवा उससे काफी उष्मा लिये हुई थी। एक दिन यों ही महात्माजीसे मैंने अपना पुनः विदेशमें जानेका भाव प्रकट किया, तो उन्होंने कहा–'अब तो हमें देशकी स्वतंत्रताके लिये कोई जोरदार आन्दोलन शुरु करना होगा; और उसमें तुम्हारे जैसे विद्यापीठके प्रधान सेवकोंको अगुवानी लेनी होगी। ऐसे समयमें तो देश ही अपना कर्मक्षेत्र होना चाहिये, न कि परदेश' इत्यादि। महात्माजीके विचार सुन कर मैं चुप हो रहा और परदेशमें पुनः जानेके विचारको तो उसी समयसे मनसे हटाने लगा।

*

सिंघीजीका पहला आमंत्रण

मार्च महिनेमें, पटनेसे कुछ जैन सज्जनोंके आग्रहपूर्ण आमंत्रण पत्र आये। वहां पर, पावापुरी तीर्थके विषयमें, कोर्टमें केस चल रहा था, जिसमें श्वेताम्बर और दिगम्बर पार्टियां लड रही थीं। श्वेताम्बरोंकी ओरसे, स्व० विद्यावारिधि काशी प्रसादजी जायस्वाल बेरिस्टर, कॉन्सल थे। श्वेताम्बर – दिगम्बर संप्रदायके मतभेद विषयके कुछ ऐतिहासिक प्रश्नोंकी चर्चा उन्हें मुझसे करनी थी, और इतिहासके ऐसे प्रश्नोंमें कुछ मेरी सम्मति आधारभूत समझी जाती है इसलिये उन्होंने एक 'एक्सपर्ट' गवाहके रूपमें मेरी जबानी भी कोर्टमें लिवानी थी। सो उन्होंने अपनी पार्टीके प्रमुख व्यक्तियोंको कह कर मुझे वहां बुलानेका अत्याग्रहपूर्ण आमंत्रण भिजवाया। श्री बहादुर सिंहजी सिंघी भी उन्हीं प्रमुख व्यक्तियोंमेंसे एक थे।

श्री सिंघीजी, बहुत समयसे अपने स्वर्गवासी पुण्यश्लोक पिता श्रीडालचन्दजी सिंघीकी स्मृतिके निमित्त कोई ज्ञानप्रसारक अच्छा कार्यकेन्द्र स्थापित करनेकी बात सोच रहे थे; पर उसके लिये उन्हें कोई उपयुक्त नियामक अथवा योजककी सहायता हस्तगत हो नहीं रही थी। पण्डितवर्य श्री सुखलालजी द्वारा, सिंघीजीको मेरी अहमदाबादवाले पुरातत्त्व मन्दिरगत कार्यप्रवृत्ति और तदनन्तर परदेशगमन आदिकी सारी बातें ज्ञात होती रहती थीं। मेरा विदेशसे वापस आना सुन कर और पण्डितजीकी प्रेरणा पा कर, सिंघीजीकी मनोभावना हुई कि मैं कलकत्ता अथवा उधर ही कहीं अन्य जगह जा कर बैठूं और उनके संकलिपत कार्यका संचालन अपने हाथमें लूं। इस बारेमें कुछ प्रत्यक्ष विचार-विनिमय करनेका अवसर भी पटनेमें मिल जायगा, ऐसा सोच कर मैं पटना चला गया। पर मेरे पटना पहुंचनेके पहले ही किसी अत्यावश्यक कार्यवश सिंघीजीको कलकत्ता चला जाना पडा, इससे वहां हमारी मुलाकात नहीं हो पाई।

पटनेमें कोर्टमें साक्षी वगैरहका काम कई दिन तक चलनेवाला था और वहां पर मेरे परममित्र श्री का० प्र० जायस्वालके साथ रहनेका मुझे अकलिपत लाभ प्राप्त हो रहा था इसलिये मैंने वहां कुछ अधिक समय तक ठहरनेका कार्यक्रम सोचा। जब कोर्टमें काम नहीं होता था तो जायस्वालजीके साथ पटनेके आसपासके पुराने स्थानोंको देखनेके लिये फिरा करते थे। ५–७ दिन हम दोनोंने, खण्डगिरिवाले खारवेलके शिलालेखका जो पूरा कास्ट पटना म्युजियममें रखा हुआ है, उस परसे लेखके सन्दिग्ध और विवादास्पद शब्दों और अक्षरोंका पाठ पढनेमें व्यतीत किये। मेरे सामाजिक और राष्ट्रीय प्रवृत्तिविषयक विभिन्न विचारोंको सुन कर जायस्वालजी बडे चमकते थे और मुझसे सदा आग्रहपूर्वक बारंवार कहा करते थे कि – 'आपको तो अपने परमप्रिय इतिहास और साहित्य संपादनके पवित्र कार्यके सिवा अन्य किसी प्रवृत्तिमें न पडना चाहिये।' जायस्वालजी नरम प्रकृतिके विद्वान् थे। सामाजिक या राष्ट्रीय उग्र वातावरणसे वे सदा दूर ही रहते थे। राजकीय अर्थात् राष्ट्रीय प्रवृत्तिमें उन्हें सचाईकी अपेक्षा कुटिलता ही अधिक दिखाई देती थी। अतः इस प्रवृत्तिसे उन्हें बिल्कुल प्रेम नहीं था। सामाजिक जागृतिके बारेमें वे चलती-आईको चलने देनेवाले विचारोंके थे, इससे इस विषयमें वे उदासीन रहते थे। इसलिये मुझसे उन्होंने

बहुत ही आग्रहपूर्वक कहा कि–'साहित्योपासनासे बढ कर कोई पुण्यकार्य और देशहितकार्य नहीं है; और फिर, जो कार्य आप कर रहे हैं वह तो लाखोंमेंसे किसी एक ही से शक्य है। इसलिये आपको तो इस महत् कार्यको छोड कर अन्य किसी कार्यांतरमें संलग्न नहीं होना चाहिये' इत्यादि।

मैं यों जब पटनेमें था तब एक दिन कलकत्तेसे सिंघीजीका टेलीग्राम मिला जिसमें उन्होंने कमसेकम एक दिनके लिये भी कलकत्ता आनेका मुझसे अनुरोध किया। मेरी भी इच्छा उनसे मिलनेकी थी ही–सो मैंने कलकत्ते जानेका निश्चय किया।

*

शान्तिनिकेतनका प्रथम दर्शन

पटनासे साहिबगंज लूप लाईनसे हो कर कलकत्ते जाते समय रास्तेमें शान्तिनिकेतन आता था। विश्वभारतीके नामसे संसारके संस्कृतिप्रिय जनपदोंमें सुप्रसिद्ध और भारतके सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक कवीन्द्र गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरके वासस्थानसे पुनीत इस तीर्थस्थानके दर्शनोंकी अभिलाषा तो बहुत वर्षोंसे हो रही थी, पर उसे सफल करनेका अभी तक कोई प्रसंग नहीं मिला था। सो कलकत्ते जाते समय इस वार इस स्थानकी यात्रा भी करनेका सुअवसर मिल गया। मैं एक दिनके लिये बोलपुर स्टेशन पर उतर कर शान्तिनिकेतन हो आया। मेरे चिरपरिचित सहृदय सन्मित्र आचार्य श्रीक्षितिमोहन सेन वहीं पर थे। गुरुदेव कहीं बहार गये हुए थे सो उनके दर्शनका सौभाग्य तो नहीं प्राप्त हुआ, पर आश्रमका बाह्य और कुछ आन्तरिक अवलोकन कर लिया। गुरुदेवकी गीतांजलिके काव्योंका मनन और पठन तो जीवनमें बहुत वर्षोंसे हो रहा था पर जिस पुण्यभूमिमें बैठ कर गुरुदेवने वाग्देवताकी वैसी लोकोत्तर विभूति प्राप्त की, उस भूतिमती भूमिका चिराकांक्षित दर्शन जीवनमें प्रथम वार ही कर उस दिनको अपने आयुष्यका एक सबसे अधिक सुखद और सुधन्य माना। शान्तिनिकेतनके प्रशान्त, प्रस्फुटित और प्रमुदित तपोवनको देख कर मेरा हृदय बहुत प्रहर्षित हुआ। वहांके उस अनवद्य, अनाडंबर और अनाकुल वातावरणकी अनुभूति कर अंतरात्मा आनन्दसे उच्छ्वसित हुआ। मनमें अकल्पित रीतिसे भाव उठा कि यदि कभी अवसर मिल जाय तो कमसेकम ४–६ महिने तो जरूर इस तपोवनमें आ कर वसना चाहिये और गुरुदेवकी ज्ञानगरिमापरिपूर्ण अप्रतिम प्रतिभाकी प्रत्यक्ष उपासना कर, जीवनसमृद्धिमें एक मूल्यवान् स्मृतिरत्नकी वृद्धि करनी चाहिये।

दूसरे दिन मैं वहांसे कलकत्ते गया। सिंघीजीने तो तारमें लिखा था कि कलकत्ते आनेकी और गाडीकी सूचना तारसे दें; लेकिन मैं तो यों ही घोडागाडी कर उनका मकान खोजता हुआ अनपेक्षित भावसे उनके वहां चला गया। नीचे दरवान खडा था उसने नाम-ठाम पूछा और ऊपर जा कर बाबूजीको खबर दी तो वे स्वयं ऊपरसे उतर कर नीचे आये और मुझे ऊपर सीधे अपने बैठनेके कमरेमें ले गये। बोले 'मैं तो २ दिनसे टेलीग्रामकी प्रतिक्षामें था–आप तो यों ही विना खबर किये चले आये। खबर मिलती तो स्टेशन पर मोटर चली आती'–इत्यादि।

*

सिंघीजीसे पहली भेट

सिंघीजीसे, मेरी यह एक तरहसे पहली ही भेट थी। यद्यपि इससे कोई १० वर्ष पहले (सन् १९२१ में) कलकत्ते ही में, जब उनके स्वर्गस्थ पिता श्रीडालचन्दजीसे कोई आधे घंटेके लिये मेरा मिलना हुआ था, तब वे भी उस समय वहां उपस्थित थे, परंतु उस समय उनसे सीधी बातचीत करनेका कोई प्रसंग नहीं आया था। उस प्रसंगके अगले दिन, कलकत्तेकी एक जैन सभाके सामने मेरा व्याख्यान हुआ था, जिसमें मैंने अपने कुछ राष्ट्रीय विचार प्रकट किये थे और उस समय देशमें महात्माजीने असहकारका जो अभिनव कार्यक्रम आन्दोलित किया था उसमें जैन समाजको भी किस तरह सम्मीलित होना आवश्यक है, वह समझाया था। श्रीबहादुर सिंह बाबू उस सभामें उपस्थित थे, और उनके साथ, बडोदाके स्वर्गस्थ लालभाई कल्याणभाई झवेरी, जो मेरे एक निकट परिचित सज्जनोंमेंसे प्रमुख व्यक्ति थे, वे भी वहां हाजर थे। व्याख्यान समाप्तिके बाद सेठ लालभाईने मुझे बाबू डालचन्दजीसे मिलानेके लिये ले जाना चाहा। उन दिनों, पूनामें नूतन स्थापित भाण्डारकर रीसर्च इन्स्टीट्यूटको जैन समाजकी ओरसे ५०००० का दान दिलानेका मैंने वचन दिया था और उस कार्यमें सेठ लालभाई तथा कलकत्तेके सुप्रसिद्ध जौंहरी बाबू श्रीबद्रीदासजीके सुपुत्र स्व० बाबू श्रीराजकुमार सिंहजीने मुझे सर्वाधिक सहायता दी थी। लालभाई सेठ सिंघीजीके पिता और उनके निजके साथ भी घनिष्ठ मित्रताका संबंध रखते थे। इसलिये उनकी इच्छा हुई, कि मैं बाबू डालचन्दजीसे भी मिलूं और उनको भाण्डारकर रीसर्च इन्स्टीट्यूटका परिचय दूं एवं उसमें जो जैन साहित्यका संग्रह है तथा उसके द्वारा जैन साहित्यके प्रकाशनका जो काम होना सोचा गया है, उसका दिग्दर्शन कराऊं। दूसरे दिन रातको आठ बजे लालभाई सेठ मुझे श्रीडालचन्दजी सिंघीके पास ले गये। कोई आध घंटे तक उनसे वार्तालाप होता रहा। मैंने उक्त इन्स्टीट्यूटका यथोचित परिचय कराया और जैन साहित्यके प्रकाशन आदिका भी कुछ विचार सुनाया। साथ ही में, अहमदाबादमें अभिनव स्थापित गुजरात विद्यापीठ और तदन्तर्गत पुरातत्त्वमन्दिरका भी कुछ परिचय कराया। बाबू डालचन्दजी सिंघी बडे ज्ञानप्रेमी और विद्यानुरागी थे ही। ज्ञानप्रकाशनके कार्यमें वे हमेशां ही अपनी उदारता प्रकट किया करते थे। मेरे आगमनके उपलक्ष्यमें, उन्होंने भाण्डारकर इन्स्टीट्यूटके फण्डमें, उसी समय १००० (एक हजार) रूपया देना स्वीकार कर, लालभाई सेठको उसके ले जानेकी सूचना की। उस समय स्वप्नमें भी किसीको कोई कल्पना नहीं हो सकती थी, कि १० वर्ष बाद, इन बाबू डालचन्दजी सिंघीकी पुण्यस्मृति ही, मेरे अपने शेष जीवनकी समग्र साहित्योपासनाका मूलाधार निमित्त बनेगी और इनके सुपुत्र बाबू बहादुर सिंहजी ही मेरी वाङ्मयतपस्याके अनन्य साधक–सहायक बनेंगे। सिंघीजीसे जब इस वार पहले पहल मिलना हुआ, तो उन्होंने सबसे पहले उपर्युक्त प्रसंगका स्मरण दिलाया। यों उस समय थोडीसी औपचारिक बातें हुईं और फिर स्नान-भोजनादिसे निवृत्त हो कर, कुछ आरामके बाद, दोपहरके कोई ३-३॥ बजे हम दोनों उद्दिष्ट कार्यके विषयमें विचार-विनिमय करने बैठे। बडे अच्छे ढंगसे और बहुत विनयके साथ, उन्होंने अपने स्वर्गवासी साधुचरित पिताकी

पुण्यस्मृतिके उपलक्ष्यमें, ज्ञान-प्रसारका अथवा साहित्य-प्रकाशनका जो कोई एक सुन्दर और स्थिर कार्य करनेका मनोरथ वे वर्षोंसे कर रहे थे उसके विषयमें दिल खोल कर बातें कीं। इतः पूर्व अप्रत्यक्षरूपमें, इस विषयमें बन्धुवर पं० श्रीसुखलालजीके माध्यमसे, उनकी इस इच्छाका बहुत कुछ ज्ञान मुझे था ही तथा उनको भी मेरे कार्य और जीवनका कितनाक परिचय मिल ही चुका था, इसलिये इस विषयको समझने-समझानेमें हम दोनोंको कोई विशेष समय न लगा। वार्तालापका सारांश यह था कि– मैं उनके नजदिक कहीं आ कर बैठूं और इस कार्यके संचालनका भार अपने ऊपर लूं; और उसके निमित्त जितना भी जरूरत हो उतना आर्थिक भार उठानेकी उन्होंने अपनी उत्सुकता प्रकट की। इस विषयमें जो बहुतसी चर्चा पण्डितजीके साथ पहले हो चुकी थी उसका भी सारा बयान उन्होंने सुनाया। उनके साथ होनेवाले इस प्राथमिक वार्तालापमें ही उनके और मेरे बीचमें एक प्रकारका मुक्त और अनौपचारिक– आत्मीय स्वजनके जैसा–सौहार्द भाव स्थापित हो गया।

कोई ४ घंटे तक उस दिन हमारा वह पहला वार्तालाप होता रहा। 'जैन साहित्य संशोधक' और 'पुरातत्त्व' आदि पत्रोंमें मेरे और पण्डितजीके जो संशोधनात्मक लेख आदि प्रकाशित हुए थे, उनका उनको परिचय था और जैन इतिहासकी बहुतसी गुत्थियोंका भी उनको अच्छा ज्ञान था। बीचबीचमें इन सब बातोंकी भी चर्चा होती रही। इससे पहले ऐसे किसी जैन गृहस्थको मैंने नहीं देखा था जो उनके जैसी मर्मकी और रहस्यकी बातोंकी गहरी जानकारी रखता हो।

उनके साथ ३-४ घंटोंकी उस पहली ही मुलाकातमें मुझे मालूम हो गया कि– सिंघीजी बडे संस्कारप्रिय और कलाविज्ञ पुरुष हैं। यद्यपि युनिवर्सिटीका अभ्यासक्रम उन्होंने कभी नहीं पढा था पर उनका अनेक विषयोंका ज्ञान बडे बडे पदवीधारियोंसे भी बहुत कुछ बढ-चढ कर था। भारतवर्षकी स्थापत्यकला और चित्रकलाके वे बडे मर्मज्ञ थे। निष्क-विद्या (प्राचीन मुद्राशास्त्र) के तो पूरे निष्णात थे। प्रसंगवश इस विषयका जब वार्तालाप चला तो उन्होंने अपने संग्रह किये हुए चित्र और सिक्कोंका वह खजाना भी थोडासा खोल कर बताया जो सारे भारतवर्षमें प्रथम कोटिके संग्रहोंमेंसे एक समझा जा सकता है। इस विषयमें उनकी जानकारी और जिज्ञासा इतनी उत्कट थी कि उसे प्रदर्शित करते वे थकते ही नहीं। उस दिन सायंकालका भोजन आदि करके फिर हम बातें करने बैठे। उसमें वे इतने तल्लीन बने रहे कि बातें करते और चीजें दिखाते कोई रातके तीन बज गये। उन सब चीजोंको देख कर मैं तो आश्चर्यमुग्धसा हो रहा। मैंने कहा–'बाबूजी! आपके पास जो यह अमूल्य और अपूर्व संग्रह है उसकी कम-से-कम कोई छोटी-बडी सूचि तो तैयार कर आप छपवा दीजिये जिससे इस विषयके जिज्ञासुओं और अभ्यासकोंको इतना तो पता लगे कि अमुक चीज अमुक संग्रहमें है। आपके पास कई चीजें ऐसी हैं जो शायद दुनियामें कहीं नहीं हों।' इसके उत्तरमें बाबूजीने हंस कर कहा–'इसी लिये तो हमने आपको बुलाया है। संग्रह करनेका काम हमने किया है, इसे प्रकाशमें लानेका काम अब आप कीजिये।' उनके सच्चे दिलसे निकले हुए इन शब्दोंको सुन कर मैं अवाक् रहा। वे शब्द आज

भी मेरे कानोंमें उसी तरह गुनगुना रहे हैं। उसके बाद भी कई दफह उन्होंने अपना वह मनोभाव उसी तरह प्रकट किया था।

मैं तीन बजे बाद जा कर अपने बिछाने पर सो गया, पर मुझे ठीक तरह नींद नहीं आई। मैं उनके विचारों और भावोंका अपने मनमें पृथक्करण करता रहा। क्यों कि दूसरे दिन मुझे कुछ निश्चित विचार करना था और तदनुकूल सिंघीजीको उत्तर देना था।

मेरा मनोमन्थन और कार्य निर्णय

इसके पहले, जैसा कि मैंने ऊपर सूचित किया है, मेरा मन साहित्यिक कार्यक्षेत्रसे हठ कर किसी अन्य कार्यक्षेत्रकी ओर खींचता जा रहा था। देशकी राजकीय परिस्थितिके अनावश्यक फंदेमें पड जानेसे अहमदाबादके पुरातत्त्वमन्दिरकी स्थिति अनिश्चित हो गई थी। जिस उत्साह, जिस ध्येय और जिस कार्यको लक्ष्य कर, मैंने उसके आचार्य पदकी सेवा स्वीकृत की थी, उसमें अब बहुत परिवर्तन हो गया था। वहां बैठ कर इच्छित कार्य करनेकी कोई गुंजाइश नहीं थी। अपने अभीष्ट कार्यका कोई श्रद्धास्पद सम्यक् परीक्षक या प्रोत्साहक जहां न हो, वहां मेरे जैसे स्वाभिमानी और स्वयंनिर्मापकके लिये अन्य कोई वस्तु आकर्षक नहीं बन सकती। जैन समाजके एक बहुत बडे महन्त और उद्दंड आचार्यदेव बननेकी विशिष्टतर शक्तिका अपनेमें काफी भान और उपादान रखते हुए भी, जिस साहित्योपासनाकी आकांक्षाने मेरा वेषपरिवर्तन और जीवनपरिवर्तन करवाया और जिसीकी एकमात्र साधनाकी अभिलाषाने अपने ऐकान्तिक जीवनका समूचा प्रवाह बदलवाया, उसीकी उपेक्षा या अनुपयोगिताका भाव जहां मुझे दिखाई देता मालूम दे, वह स्थान किसी भी तरह मुझे अभीष्ट नहीं लग सकता। उस समय तक यद्यपि मैंने उस स्थानसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर लिया था पर उसके बारेमें मनमें रस नहीं रहा था।

इधर यह भी बात कभी कभी मनमें आ जाती थी कि—जिस विशाल साहित्यिक सामग्रीको प्रकाशमें लानेकी दृष्टिसे मैंने जीवनके पिछले २० वर्ष सतत परिश्रम किया और जिसको व्यवस्थित कर संपादित करनेके लिये योग्य अवसरके उपस्थित होनेकी आशा बान्धे बैठा हुआ था, उसकी उपेक्षा कर यदि इस प्रकार कार्यांतरके क्षेत्रमें प्रवेश किया गया तो फिर वह सब सामग्री और वह सब परिश्रम व्यर्थ ही रह जायगा। ऐसे साहित्यके संपादन और प्रकाशनके कार्यमें बहुत कुछ द्रव्यकी अपेक्षा रहती है, जिसको प्राप्त करनेके लिये धनिकोंको प्रसन्न करना चाहिये। धनिकोंको प्रसन्न करनेके निमित्त उनकी इच्छाओंका अनुसरण और उनके आदेशोंका अभिवादन करना चाहिये। मुझमें इस कलाका सर्वथा अभाव होनेसे, स्वयं किसी धनिकके पाससे यथेष्ट आर्थिक सहायता प्राप्त करनेके कार्यमें मैं अपने आपको सर्वथा अयोग्य समझता रहा हूं। ऐसी स्थितिमें सिंघीजी जैसे साहित्यानुरागी और समर्थ धनिक, जब स्वयं चला कर मुझसे अनुरोध करते हैं और अपने चिरोपासित जीवनकार्यको फलान्वित करनेका आदरपूर्ण आग्रह करते हैं, तब फिर मुझे क्यों किसी अन्य नये कार्यक्षेत्रकी ओर मुडना चाहिये?।

पर इसके साथ ही मनमें यह भी विचार उठा कि – किसी सार्वजनिक संस्थाके तंत्रके साथ सम्बद्ध हो कर कार्य करना और वस्तु है और किसी धनिक या बडी गिनी जानेवाली व्यक्तिविशेषके साथ सम्बद्ध रह कर कार्य करना और ही वस्तु है। संस्थाके तंत्रमें तो एकाधिक व्यक्तियोंका सम्बन्ध और सहकार रहता है और उसमें समान-भावका प्राधान्य रहता है, इसलिये कहीं कार्यमें मतभेद होनेके अवसर पर भी, किसी व्यक्तिविशेषका हस्तक्षेप उतना कार्यविक्षेपक नहीं हो सकता जितना केवल किसी अकेले व्यक्तिके विचार पर किसी कार्यके होने-न-होनेकी परिस्थितिमें हो सकता है। सिंघीजी यद्यपि आज स्वयं कार्य करनेका अनुरोध कर रहे हैं, पर यदि किसी कारणवश उनके साथ मतभेद उपस्थित हो गया, तो फिर उस कार्यकी क्या स्थिति हो सकती है और अपने व्यक्तित्वका क्या स्थान हो सकता है। जैन समाजके अच्छे अच्छे धनिकोंका मुझे प्रत्यक्ष या परोक्षरूपमें इस विषयका बहुत कुछ अनुभव हो चुका था। इसके पूर्व ही मैंने, पूनामें एक बडी जैन संस्थाका निर्माण किया था जिसके बनानेमें बहुत परिश्रम भी उठाया था और धन भी जुटाया था। परन्तु अन्धश्रद्धावाले अज्ञान वणिकोंके साथ अपने विचारस्वातंत्र्यका और ध्येयका मेल मिलता न देख कर, एक अनाथ बालककी तरह उस संस्थाको निराधार छोड कर, मुझे उससे उपरत हो जाना पडा था। ऐसी ही कोई अनिच्छनीय परिस्थिति यदि सिंघीजीकी इस संकल्पित संस्थाके बारेमें उपस्थित हो जाय तो, अपने मनकी उस समय क्या प्रतिक्रिया होगी? उसके भी कुछ उडते विचार आंखोंके सामनेसे गुजर गये। इस तरह, वह अवशेष रात यों ही तरह तरहके विचारोंकी तन्द्रामें व्यतीत हुई।

सिंघीजीके कुटुम्बका धार्मिक भाव

मैंने देखा कि सिंघीजीका कौटुम्बिक वातावरण पुराने खयालोंकी दृष्टिसे बहुत कुछ धर्मनिष्ठ है। उनकी माताजी मानों साक्षात् धर्मकी मूर्ति ही है। तप, जप, नियम, स्वाध्याय आदि उनके घरमें अच्छे ढंगसे चल रहे हैं। यद्यपि मूढ रूढिप्रियताका कोई विशेष चिन्ह नहीं दिखाई दिया, तब भी पुराने रीति-रिवाजोंका ठीक ठीक आदर और व्यवहार दृष्टिगोचर हुआ। बडी तिथि – अष्टमी चतुर्दशी जैसे दिन घरमें हरी तरकारी नहीं बनती है। आलू वगैरह जैसे कंदमूलमें गिने जानेवाले शाक-पानका व्यवहार कभी नहीं होता है। घरमें छोटेसे ले कर बडे तक कोई भी इन चीजोंका उपयोग नहीं करते। पांवरोटी और मक्खन तो कभी मकानमें घुसने भी नहीं पाते हैं। परिवारमें चहा – कॉफीका रिवाज भी प्रायः नहीं है। अलबत्त, महेमानोंके लिये उसका बन्दोबस्त जरूर रहता है। इस तरह मैंने देखा कि सिंघीजीके घरमें रूढिकी दृष्टिसे धार्मिक गिने जानेवाले आचार-विचारका अच्छी तादादमें परिपालन होता रहता है।

यद्यपि मैंने सुन रखा था कि सिंघीजी स्वयं बहुत कुछ उदार विचारके और सुधारप्रिय व्यक्ति हैं। पर उनके घरमें उसके चिन्ह मुझे बहुत कम दिखाई दिये। इससे मेरे मनमें एक यह भी विचार उपस्थित हुआ कि – सिंघीजी अपने पिताकी स्मृतिके उपलक्ष्यमें जो कार्य करना चाहते हैं वह एक प्रकारका सांप्रदायिक कार्य है – जैन संप्रदायका ही उस कार्यके साथ मुख्य संबंध है। सिंघीजी स्वयं जैन समाजके एक

प्रमुख व्यक्ति गिने जाते हैं और उनके घरमें भी बहुत कुछ परंपरागत श्रद्धाका वातावरण बना हुआ है। ऐसी स्थितिमें मेरा सम्बन्ध इनके उद्दिष्ट कार्यमें कहां तक सुघटित हो सकेगा। मेरा आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान इत्यादि बहुत कुछ असांप्रदायिक है। संप्रदायरूढ मेरा कोई व्यवहार नहीं है। न किसी संप्रदाय विशेष पर मेरी अनन्य श्रद्धा है। जैन धर्मके सिद्धान्तोंके प्रति मेरी जो कोई भक्ति और श्रद्धा है, तो वह अपने स्वतंत्र विचार और मननके परिणामसे जैसी बन सकती है, वैसी है। संप्रदायगत परंपराकी वह अनुगामिनी नहीं है। मेरी आंतरिक मनोवृत्ति समाजवादी विचारों और आचारोंकी ओर झुकनेवाली है। सिंघीजीको मेरी ऐसी विचारधारा और जीवनचर्याका ठीक पता है या नहीं—इसकी मुझे कोई कल्पना नहीं थी। सो मैंने उनसे अपने इस स्वगत विचारका भी यथायोग्य मनोभाव प्रदर्शित कर देना चाहा और उनके विचारोंका आभास ले लेना चाहा।

सिंघीजीके व्यक्तित्वका मेरे मन पर प्रभाव

दूसरे दिन भोजन किये बाद हम दोनों फिर उसी तरह वार्तालाप करने बैठे। प्रसंगवश मैंने उनसे उपर्युक्त सभी विचार प्रदर्शित कर दिये जिनको उन्होंने बडी गंभीरता एवं एकतानताके साथ सुना। उत्तरमें उन्होंने अपने भी विचार बहुत कुछ विस्तारके साथ कह सुनाए जिससे मुझे विश्वास हुआ कि सिंघीजी धार्मिक अन्धश्रद्धाके बिल्कुल अनुगामी नहीं है। समाज और देशकी प्रगतिके वे बडे इच्छुक हैं। लोगोंकी धार्मिक और सामाजिक मूढताका उन्हें बडा दुःख है और इसीलिये अन्यान्य रूढिप्रिय धनिकोंकी तरह उन्होंने अपने जीवनमें गतानुगतिकताके पोषणके लिये कभी किसीको द्रव्य आदिकी कोई सहायता नहीं की। समाजकी गति और स्थितिसे वे अच्छी तरह परिचित हैं। व्यक्तिविशेषके आचार-विचारके प्रति उनकी सम दृष्टि है। वे अपना निजका जो आचार-विचार रखते हैं वह उनकी निजकी परिस्थितिके कारण है। उनमें उनका अभिनिवेश नहीं है और नाही दूसरेके भिन्न प्रकारके आचार-विचारके प्रति उनका अनुदारभाव है। उनमें गहरी विचारक शक्ति है और हर प्रकारके विचारोंका पृथक्करण वे स्वयं अच्छी तरहसे कर सकते हैं। किसी दूसरेके विचारका अन्ध अनुकरण या अनुसरण करना उनकी प्रकृतिमें बिल्कुल नहीं है। न वे किसी साधु या आचार्यके बहकानेसे बहकनेवाले हैं और न किसी धर्मात्मा मानने-मनानेवाले भाईयोंसे प्रभावित होनेवाले हैं। उनको अपने कार्यका और लक्ष्यका स्पष्ट दिग्दर्शन है और उसे कैसे सिद्ध किया जाय इसके उपाय और योजनाके समझनेका यथेष्ट ज्ञान है।

इस प्रकार दो दिन तक मैंने उनके साथ दिन और रात बैठ कर खूब बातें कीं। भिन्न भिन्न प्रकारके अपने विचार प्रदर्शित किये और उनके विचार सुने। मनुष्यके सामान्य वार्तालापसे ही उसके प्रकृति आदिका योग्य परिज्ञान प्राप्त कर लेनेकी मैं अपनेमें यथेष्ट परख शक्ति रखता हूं—ऐसा मुझमें कुछ विश्वास है। इस विश्वासके अनुसार मैंने सिंघीजीको एक आदर्श विचारवान् व्यक्ति और विश्वस्त भावनाशील सज्जनके रूपमें अपने मनमें स्थान दिया। उनके निरभिमान व्यवहार, तीव्र बुद्धि-प्रभाव, गहरी समझशक्ति, इतिहास-साहित्य-स्थापत्य-चित्रकला आदि विषयोंकी कडी परख, सांप्रदायिक मूढ विचार और रूढिवादसे निरपेक्षभाव, व्यक्ति विशेषके

विभिन्न आचार-विचारोंके प्रति उदार दृष्टि, अपने विचारोंका स्पष्ट दर्शन और उन पर दृढ रहनेकी मनोवृत्ति, बहुत बडे धनिक होने पर भी सब प्रकारके दुर्व्यसनोंसे संपूर्ण विमुखता, विद्या और कलाके प्रति उत्कृष्ट अनुराग, उत्तमकोटिकी संस्कारिता, आदर्श धार्मिक सहिष्णुता, समुचित सुधारप्रियता, मनःपूत कार्यमें उन्मुक्त उदारता, स्वीकृत कार्यको सर्वांगपूर्ण बनानेकी तत्परता – इत्यादि प्रकारके अनेक उच्च गुणोंका उनमें समन्वय देख कर, मेरे दिल पर उनके व्यक्तित्वका बहुत ही गहरा प्रभाव पडा ।

मेरा कार्य स्वीकार और स्थान निर्णय

यों तो मेरा स्वभाव बहुत ही संकोचशील तथा जनसंसर्गसे दूर रहनेकी आदतवाला है । उसमें भी धनिकों तथा बडे गिनेजानेवालोंसे संपर्क करनेकी अभिलाषा तो मुझे प्रायः ही नहीं होती । अपने आप चलकर किसीके पास जानेकी या किसीसे संबन्ध बांधनेकी कला या वृत्तिका मुझमें प्रायः अभाव ही है । जिनके साथ स्वभावका निर्व्याज सुमेल नहीं हो सकता अथवा जिनके साथ समान-शील-व्यसनवाला सख्य नहीं हो सकता उनके साथ होनेवाला मिलनप्रसंग क्वचित् ही मुझे रुचिकर होता है । बाबू श्री बहादुर सिंहजीसे मिलनेके पूर्व, साधारण धनिकोंके या बडे लोगोंके प्रति जो मेरा स्वभावगत अभिप्राय बना हुआ है उसी अभिप्रायके साथ, मैं बडे संकोच भावसे, उनसे मिलने गया था । परन्तु उनसे प्रत्यक्ष मिले बाद और दो दिन उक्त रीतिसे उनके साथ खूब दिल खोल कर बातें-चीतें करने बाद, मेरा मन उनके प्रति उन्मुक्तसा हो गया और उनके उक्त गुणान्वित व्यक्तित्वसे आकृष्ट हो कर मैंने उनके अभिलषित पितृस्मारकके पवित्र कार्यमें अपनी सेवा समर्पित करनेकी सहज इच्छा व्यक्त की ।

इस कार्यका प्रारंभ कहां और किस तरहसे किया जाय इसका जब विचार होने लगा तो सिंघीजीकी कुछ इच्छा कलकत्तेमें उसके शुरू करनेकी थी कि जहांपर वे स्वयं भी कुछ सक्रिय भाग ले सकें । परंतु मेरी इच्छा स्वाभाविक ही शान्तिनिकेतनमें रह कर कार्यका प्रारंभ करनेकी रही जिसको उन्होंने मुक्तभावसे स्वीकार लिया । काम कैसे और क्या क्या किया जाय उसकी संक्षिप्त रूपरेखा भी बना ली गई और खर्चका अन्दाजा भी कर लिया गया । प्रारंभमें ३ वर्षके लिये, शान्तिनिकेतनमें "सिंघी जैन चेयर"की स्थापनाका कार्यक्रम निर्णीत किया गया और उसके लिये वार्षिक ६–७ हजार रुपयेका बजट बनाया गया । आनेवाले जुलाईके प्रारंभसे कार्यका प्रारंभ करना और मेरा शान्तिनिकेतन जा कर रहना प्रायः निश्चितसा हुआ ।

सिंघीजीमें कार्यविषयक निर्णायक-शक्ति बडी तीव्र थी । जो बात उनकी समझमें आ गई और उनको जंच गई, उसका तत्काल ही वे निर्णय कर डालते और अपना मत स्थिर कर लेते । दिनों तक किसी बातको सोचते रहना और उसके विषय में करना-न-करनाके फेरमें फंसे रहनेवाली दीर्घसूत्री मनोवृत्ति उनकी बिल्कुल नहीं थी । स्पष्टवादिता भी उनमें ऊंची कोटिकी थी । किसी भी विषयमें वे अपना मतामत बडी स्पष्टताके साथ व्यक्त कर देते थे । बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि कोई भी व्यक्ति उन्हें भ्रममें नहीं डाल सकता था । जो कोई व्यक्ति अपनी चतुरता बतलानेके

लिये उनके आगे सन्दिग्ध भावसे या द्विअर्थी शब्दोंसे बातचीत करना चाहता, तो उसका वास्तविक मनोभाव क्या है, इसको वे झट पकड लेते और उसको उसका स्पष्ट उत्तर दे देते। तर्क और दलीलमें वे बड़े बड़े वकील और बेरिस्टरोंको मात कर देते थे। उनके साथ स्नेह-सम्बन्ध स्थापित होनेमें न केवल उनकी उदारता ही मुख्य कारण बनी थी, परंतु उससे कहीं अधिक उनकी सुरुचि, संस्कारप्रियता और बुद्धिकी तेजस्विता उसमें कारणभूत बनी थी।

कलकत्तेसे मेरा प्रत्यागमन और जेलनिवास

इस तरह शान्तिनिकेतनमें 'सिंघी जैन ज्ञानपीठ' की स्थापनाका कार्यक्रम बना कर मैं वहांसे फिर पटना गया। वहांका कार्य समाप्त होने पर फिर अहमदाबाद अपने निवास स्थान पर पहुंचा।

उसी बीचमें, महात्माजीने देशके सामने अपना वह ऐतिहासिक नमक सत्याग्रह का कार्यक्रम उपस्थित किया और मार्च महिनेकी ता. १२ को, अपने चिर स्थापित सत्याग्रह आश्रमका त्याग कर, उन्होंने "दांडी कूच" की। इससे सारे गुजरातमें बडी हलचल मच गई। सैंकडों ही सत्याग्रही नमक सत्याग्रहमें भाग लेनेके लिये गुजरातके गांवोंगांवसे तैयार होने लगे। सरकार भी उन सत्याग्रहियोंको शिक्षा देनेके लिये पूरी तरह कटिबद्ध हो गई। 'धारासणा'का नमकका सरकारी अड्डा सत्याग्रहियोंकी मुख्य आक्रमणभूमि बनी। गुजरातके प्रायः सब ही उत्साही और मुख्य मुख्य सेवक इस सत्याग्रहमें सम्मीलित हुए। महात्माजीके एक छोटेसे अनुगामीके रूपमें, मैंने भी अहमदाबादकी केन्द्रीय कार्यसमितिके आदेशानुसार, चुने हुए ७५ स्वयंसेवकोंके एक बडे दलके साथ, धारासणाके सत्याग्रही दुर्गको सर करनेके लिये विजयी प्रस्थान किया। अहमदाबादकी जनताने बडे भारी समारोहके साथ हम सत्याग्रहियोंका प्रस्थान मंगल किया। कोई ५० हजारसे भी अधिक जनता हमें अहमदाबादके स्टेशनपर पहुंचाने आई। अहमदाबादसे रातको ९ बजे गुजरात मेलसे हम रवाना हुए। गाडीके चलने पर, १५-२० ही मिनीट बाद, एक छोटेसे स्टेशन पर मेलट्रेनको खडा किया गया और एक पुलीसकी बडी भारी पार्टी, जो हमारे डिब्बेके पीछे एक स्पेशल डिब्बा जुडवाकर हमारे साथ आ रही थी, उतर आई और उसने हम सबको गिरफ्तार कर वहीं जंगलमें गाडीसे नीचे उतार दिया। फिर उसी छोटेसे स्टेशन पर, सारी रात बडे चोकी पहरेके नीचे हमको बिठाया गया। दूसरे दिन १ बजे वहीं पासहीमें, एक मामूलीसे किसीके बंगलेमें, कोर्ट बैठी, और मेजिस्ट्रेटने–जो हमारे किसी समय शिष्य भी रह चुके थे–हमारे स्टेटमेंट ले कर, आधेघंटेमें हमको ६ महिनेकी कडी सजा सुना दी। मेरा कुछ व्यक्तित्व खयाल कर मेजीस्ट्रेटने मुझे 'ए' क्लास दे दिया। उस रातको, फिर उसी गुजरातमेलसे, उसी स्टेशन पर गाडीमें बिठा कर, पुलीसके पक्के बंदोबस्तके साथ हमें बंबईकी 'वरली चॉक' की कामचलाउ जेलमें रखनेके लिये रवाना किया।

कुछ दिन बाद मेरी बदली वहांसे नासिक-सेंट्रल जेलमें की गई। इस जगह मुझको 'ए क्लास' के वॉर्डमें रखा गया जहां पर, स्वर्गस्थ श्री जमनालालजी बजाज, तथा कर्मवीर श्री नरीमान, डॉ. चोकशी, श्री रणछोडभाई सेठ, श्री मुकुंद मालवीय आदि हम ७–८ व्यक्ति एक साथ रहा करते थे। जेलमें मैंने अपना जर्मन भाषाका

अभ्यास चालू रखा और हिन्दीमें एक जर्मन प्राइमर लिखनेका उपक्रम किया। वीर नरीमान तथा डॉ. चोकशीने मुझसे हिन्दी भाषा और उसका साहित्य पढना शुरू किया। सेठ जमनालालजी बजाज अपना गुजराती भाषाका विशेष ज्ञान बढानेकी इच्छासे रोज मेरे पास दो घंटे नियमित गुजराती साहित्य पढा करते थे। सुबह स्यामकी प्रार्थना भी हम दोनों नियमित साथ बैठ कर करते और मीरा तथा कबीरके कुछ भजन सुनानेका मुझसे वे सदा अनुरोध करते। पीछेसे कवीन्द्र रवीन्द्र नाथकी गीतांजलीके गीतों पर भी उन्हें बहुत अनुराग हो गया और फिर उनमेंसे भी दो चार गीत रोज सुनानेका वे आग्रह करते। इस तरह नासिक जेलका निवास मेरे लिये तो एक प्रकारसे विद्या-मन्दिरका ही निवाससा बन गया।

सिंघीजीका पत्र और मनोभाव

सिंघीजीको इस बातका तब तक कोई पता नहीं चला। ना ही मैंने अपने बारेमें उन्हें कुछ सूचना दी। यद्यपि मैंने उनके साथ परामर्श कर, शान्तिनिकेतनमें "सिंघी जैन ज्ञानपीठ"की स्थापनाका कार्यक्रम मनमें बहुत कुछ स्थिर कर लिया था, पर मनमें रह रह कर किसी सामाजिक या सार्वजनिक कार्यमें प्रवृत्त होनेकी धुन भी अभी तक उठा ही करती थी। इतनेमें उक्त सत्याग्रहका अनिवार्य प्रसंग आ उपस्थित हुआ। महात्माजीके चलाए हुए इस राष्ट्रीय आन्दोलनसे मैं किसी तरह अलिप्त रह नहीं सकता था। सिंघीजी बडे चतुर और देशकी परिस्थितिके सतर्क निरीक्षक थे। गुजरातमें जब यह आन्दोलन खूब जोरशोरसे शुरू हुआ, तो उनके मनमें सहज शंका हुई, कि कहीं मैं इस आन्दोलनमें संमीलित न हो जाऊं और उसके कारण जो उन्होंने अपने चिराभिलषित कार्यके प्रारंभ करनेका उपक्रम निश्चित किया है, वह गडबड न हो जाय। इस विषयमें उन्होंने एक पत्र जो उनदिनों (ता. १५-५-३०) पण्डितजीको लिखा उसमें उन्होंने अपने ये विचार इस तरह स्पष्ट लिखे थे–

"श्रीजिनविजयजी पटनामें पावापुरीजीके केसमें गवाही दे कर अहमदाबाद चले गये हैं। ...अब वे कहां है मालूम नहीं। हमको सबसे बडा डर यह है कि वे कहीं महात्माजीके छेडे हुए राष्ट्रीय युद्धमें न फंस जाय और अपना ठहराया हुआ प्रोग्राम सब उलट पलट न हो जाय। राष्ट्रीय स्वाधीनताकी लड़ाई भी बडे महत्त्वकी है। मगर वह राष्ट्रीय होनेके कारण भारतकी सर्व जनता उसमें भाग ले सकती है और अपना काम धार्मिक और सामाजिक होनेके कारण फक्त जैनी ही इसको कर सकते हैं। इसलिये जैनियोंके वास्ते यह भी कम महत्त्वका नहीं है। इस कारणसे जैनियोंको खास करके इस तरफ भी दृष्टि रखना चाहिए। सांप्रदायिकताका भाव इसमें जरूर आ जाता है और राष्ट्रकी दृष्टिसे इसमें संकुचितता भी कुछ आ जाती होगी, मगर सांप्रदायिक उन्नतिके वगैर राष्ट्रीय उन्नति भी अपूर्ण रह जाती है। और शायद स्थायी भी नहीं होती है। जड कमजोर रह जाती है। इसलिये जैनियोंको जिस जगह अपने धर्मके तत्त्वोंका प्रचार और सामाजिक उन्नतिके लिये कुछ कार्य करनेका मौका हो तो उसकी उपेक्षा करके दूसरे कार्यमें हाथ देना जरूरी हो यह हमारी समझमें नहीं आता है। इस विषयमें उनके क्या खयालात है, कभी बात होनेका अवसर नहीं आया। अभी आपको पत्र लिखना आरंभ करते ही यह बात ध्यानमें आ गई सो यों ही लिख डाली है।"

इसी पत्रमें, उन्होंने पण्डिजीको, हम दोनोंने बैठ कर जो शान्तिनिकेतनमें 'जैन चेयर'की स्थापनाका कार्य निश्चित किया था उसकी रूपरेखाका भी संक्षिप्त सूचन करते हुए लिखा था कि—

"शान्तिनिकेतनकी 'जैन चेयर'के लिये जो विचार हुआ है उसमें अभी ये तीन काम होंगे—

(१) जैन चेयर — अभी तीन वर्षके लिये — पूज्यश्री पिताजीके स्मारकमें।

(२) जैन लायब्रेरीके लिये सालाना एक हजार रूपया। याने तीन सालमें तीन हजार रूपयेके खर्चेसे जैन पुस्तकोंका संग्रह अलग आलमारियोंमें हमारी स्वर्गीया छोटी बहन केसरकुमारीके स्मारकमें।

(३) जो अध्यापक वहां रहेंगे उनकी लिखी हुई या संपादित पुस्तकें सालाना ढाई हजारके खर्चसे प्रकाशित करना — पूज्यश्री पिताजीके स्मारकमें।

स्कॉलर्शिपके लिये बातचीत चली थी परन्तु कुछ निश्चय नहीं हुआ — पीछे जो कुछ निश्चय होगा सो किया जायगा।"

इस पत्रकी लिखावटसे सिंघीजीके राष्ट्रीय और सामाजिक कार्य करनेके बारेमें कैसे विचार थे उनका भी कुछ दिग्दर्शन हो जाता है।

पण्डितजीको जब यह पत्र बंबईमें मिला, उस समय मैं अहमदाबादमें उक्त सत्याग्रही संग्राममें सम्मीलित होनेका निश्चय कर चुका था और उसके कुछ ही दिन बाद मैं जेलमें पहुंच गया था। इस प्रकार उस समय तो सिंघीजीकी उक्त पत्रमें लिखी हुई आशंका सच ही हो चुकी थी और आगामी जुलाईसे शान्तिनिकेतनमें 'सिंघी जैन चेयर' की स्थापनाका प्रोग्राम सचमुच ही 'उलट-पुलट' हो गया था।

नासिक जेलके अनुभव

नासिक सेंट्रल जेलमें ही मेरी सबसे पहली मुलाकात मित्रवर श्रीमुंशीजीसे हुई। मैं तो वहां उक्त प्रकारसे पहले ही से गया हुआ था। श्रीमुंशीजी पीछेसे यरवडा जेलसे वहां पर लाये गये थे। हम दोनों उस एक ही बेरेकमें और पासपासके कमरेमें इकट्ठे हो गये। उस पहले ही दिन हम दोनोंके बीच "समान-शील-व्यसनेषु सख्यं" वाली उक्तिका बीजारोपण हो गया और हम एक-दूसरेके बहुत निकटसे मित्र हो गये। मुंशीजी उन दिनों "गुजरात एन्ड इट्स् लिटरेचर" वाली अपनी प्रसिद्ध पुस्तकका मशाला इकट्ठा कर रहे थे। हम दोनों रोज घंटों साथ बैठ कर गुजरातके प्राचीन इतिहास और साहित्यके अनेक पहलुओं पर विचार-विनिमय किया करते और अपना अपूर्व आनन्द लूटा करते। सिंघीजीके समान मुंशीजीके साथ भी, मेरा वैसा ही उन्मुक्त सौहार्दभाव तत्क्षण स्थापित हो गया, जो पिछले १५ वर्षोंमें शुक्लपक्षके चन्द्रकी कलाओंकी तरह, उत्तरोत्तर विकसित ही होता रहा। मेरे विचारमें, मनुष्यके जीवनमें ऐसा सौहार्द भाव ही सबसे अधिक मूल्यवान् संपत्ति है और सबसे अधिक आनन्ददायक स्मृति है।

नासिक जेलके स्मरण बडे आल्हादक और जीवनतोषक हैं पर उनका विस्तृत वर्णन यहां शक्य नहीं। प्रस्तुतमें जितना प्रासंगिक है उसका कुछ आलेखन मैंने 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'के प्रथम ग्रन्थ – 'प्रबन्धचिन्तामणि'की अपनी प्रस्तावनामें किया है जो सन् १९३३ में प्रकाशित हुई थी। यहां पर उसीको उद्धृत करना अधिक उपयुक्त मालूम देगा। मैंने उसमें लिखा है कि –

"सचमुच ही नासिकके सेंट्रल जेलखानेमें जो चित्तकी शान्ति और समाधि अनुभूत की वह जीवनमें अपूर्व और अलभ्य वस्तु थी। वह जेलखाना, हमारे लिये तो एक परम शान्त और शुचि विद्या-विहार बन गया था। उसकी स्मृति जीवनमें सबसे बडी सम्पत्ति मालूम देती है। स्वनामधन्य (अब स्वर्गस्थ) सेठ जमनालालजी बजाज, कर्मवीर श्रीनरीमान, देशप्रेमी सेठ श्रीरणछोडभाई, साहित्यिक धुरीण श्रीकन्हैयालाल मुंशी आदि जैसे परम सज्जनोंका घनिष्ठ संबन्ध रहनेसे और सबके साथ कुछ-न-कुछ विद्या-विषयक चर्चा ही सदैव चलती रहनेसे, हमारे मनमें वे ही पुराने साहित्यिक संकल्प, वहां फिर सजीव होने लगे। सहवासी मित्रगण भी हमारी रुचि और शक्तिका परिचय प्राप्त कर, हमको उसी संकल्पित कार्यमें विशेष भावसे लगे रहनेकी सलाह देने लगे। मित्रवर श्रीमुंशीजी, जो गुजराती अस्मिताके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं और जो गुजरातके पुरातन गौरवको आबाल-गोपाल तक हृदयङ्गम करा देनेकी महती कला-विभूतिसे भूषित हैं, उनका तो दृढ आग्रह ही हुआ कि और सब तरंग छोड कर वही कार्य करने ही से हम अपना कर्तव्य पूरा कर सकते हैं†। अन्यान्य घनिष्ठ मित्रोंका भी यही उपदेश हमें वहां बैठे बैठे वारंवार मिलने लगा और जेलखानेसे मुक्त होते ही हमें वही अपने पुराने बहीखाते टटोलनेकी आज्ञा मिलने लगी।

संवत् १९८६ के विजयादशमीके दिन, मित्रवर श्रीमुंशीजीके साथ ही हमें जेलसे मुक्ति मिली। हम बंबई हो कर अहमदाबाद पहुंचे। यद्यपि जेलखानेके उक्त वातावरणने मनको इस कार्यकी तरफ बहुत कुछ उत्तेजित कर दिया था, तो भी देशकी परिस्थितिका चालू क्षोभ, रह रह कर मनको अस्थिर बनाए रखता था। आखिरमें श्रीसिंघीजीका, शान्तिनिकेतन आ कर, जैन साहित्यके अध्ययन-अध्यापनकी (वह जो पहले सोची और निश्चित की गई थी) व्यवस्था हाथमें लेनेका आग्रहपूर्ण निमंत्रण मिलनेसे, और हमारे सदैवके सहचारी परमबन्धु पण्डित प्रवर श्रीसुखलालजीकी भी तद्विषयक वैसी ही बलवती इच्छा होनेसे (सन् १९३० के डीसेंबर मासके मध्यमें) अपने साथके कई विद्यार्थी एवं सहवासी गणके साथ हम शान्तिनिकेतन आ पहुंचे। यहां पर विश्वभारतीके ज्ञानमय वातावरणने हमारे मनको एकदम उसी ज्ञानोपास-

---

† शायद भविष्यके ही किसी संकेतने मुंशीजीसे यह मुझे कहलवाया था। नहीं तो जिसकी कोई कल्पना भी न की जाय ऐसा योग उसके ८-९ वर्ष बाद कैसे उपस्थित हो गया तथा कैसे हम दोनों एक जगह मिल कर इस 'भारतीय विद्या भवन' के हाथ पांव बन गये एवं कैसे इस भवनकी गति-स्थितिके एक विधायकके स्थानमें बिठा कर, इन्होंने अपने उस जेलखानेवाले भविष्य कथनका पालन करानेके लिये मुझे अकल्पित रूपसे बाध्य बना दिया।

नासें फिर स्थिर कर दिया और हमारी जो वह चिरसंकल्पित भावना थी उसको यथेष्ट समुत्तेजित कर दिया। साथ ही में, उस संकल्पको कार्यमें परिणत होनेके लिये, जिस प्रकारकी मनःपूत साधन सामग्रीकी अपेक्षा हमारे मनमें गूढ भावसे रहा करती थी, उससे कहीं अधिक ही विशिष्ट सामग्री, सच्चरित्र, दानशील, विद्यानुरागी श्रीमान् बहादुर सिंहजी सिंघीके उत्साह, औदार्य, सौजन्य और सौहार्द द्वारा प्राप्त होती देख-कर, हमने बडे आनन्दसे इस "**सिंघीजैन ज्ञानपीठ**" के संचालनका भार उठाना स्वीकार किया।

यद्यपि प्रारंभमें हमने इस स्थानका, जैन वाङ्मयके अध्ययन-अध्यापन करानेकी दृष्टिसे ही स्वीकार किया था; लेकिन हमारे मनस्तलमें तो वही पुराना संकल्प रहा हुआ होनेसे, यहांपर स्थिर होते ही वह संकल्प फिर सहसा मूर्तिमान् हो कर हमारे हृदयांगणमें नाचने लगा। और वही पुरानी ऐतिहासिक सामग्री जिसको हमने आज तक मुंजीकी पुंजीकी तरह बडे यत्नसे संचित रख कर, बन्दी बना रखी है, हमारे मानस-चक्षुके आगे खडी हो कर, कटाक्षपूर्ण टकटकी लगा कर ताकने लगी। हमारा व्यसनी मन फिर इस कामके लिये पूर्ववत् ही लालायित और उत्सुक हो उठा।

प्रसङ्ग पा कर हमने अपने ये सब विचार ज्ञानपीठके संस्थापक श्रीमान् बहादुरसिंह बाबूसे कह सुनाए और "**ज्ञानपीठ**" के साथ एक "**ग्रन्थमाला**" भी स्थापित कर जैन साहित्यके रत्नतुल्य विशिष्ट ग्रन्थोंको, आदर्श रूपसे तैयार करवा कर प्रसिद्धिमें लानेका प्रयत्न होना चाहिये - इस बारेमें सहज भावसे प्रेरणा की गई। इन बातोंको सुनते ही सिंघीजीने उसी क्षण, बडे औदार्यके साथ, अपनी सम्पूर्ण सम्मति हमें प्रदान की और ऐसी '**ग्रन्थमाला**'के प्रारंभ करनेका और उसके लिये यथोचित द्रव्यव्यय कर-नेका यथेष्ट उत्साह प्रकट किया। इसके परिणाममें, सिंघीजीके स्वर्गीय पिता साधु-चरित श्रीमान् डालचन्दजी सिंघीकी पुण्यस्मृति निमित्त '**सिंघी जैन ग्रन्थमाला**' का प्रादुर्भाव हुआ।" (देखो, प्रबन्धचिन्तामणि, प्रस्तावना, पृ. ३-४)

शान्तिनिकेतनमें जैन छात्रावास

शान्तिनिकेतनमें मेरे पहुंचने पर कलकत्ते आदिसे कुछ जैन विद्यार्थियोंके पत्र आने लगे जिनमें शान्तिनिकेतनमें रह कर विद्याभ्यास करनेकी सुविधाके निमित्त कोई छोटासा जैन छात्रावास स्थापित करने-करानेकी मुझसे अभ्यर्थना की जाने लगी। सिंघीजीके नजदिकके कुछ कुटुंबी जन भी चाहने लगे कि उनके बच्चे शान्तिनिकेतनमें और मेरे सहवासमें रह कर विद्याभ्यास कर सकें तो बहुत उत्तम हो। प्रसङ्ग पा कर मैंने सिंघीजीसे इस विषयमें परामर्श किया तो उन्होंने बडी उत्सुकताके साथ, यदि शान्तिनिकेतनके संचालक गण जगहकी सुविधा कर दें, तो अगामी जुलाई (सन् १९३१)से शान्तिनिकेतनमें एक जैन छात्रावास खोल देनेकी स्वीकृति दे दी। शान्ति-निकेतनमें उन दिनों जगह की बडी तंगी थी। तो भी आश्रमके संचालकोंने तथा स्वयं गुरुदेवने इस विषयमें मुझे अपना बडा उत्साह दिखलाया और स्थान वगैरेह देनेमें बहुत उदारता बतलाई। बागान बाडीकी दो पूरी कतारें जिनमें २०-२५ विद्यार्थी रह सकते थे मेरे स्वाधीन कर दी। इस तरह जगह वगैरहका मैंने प्रबन्ध कर सिंघी-

जीसे लिखा, तो वे स्वयं एक दिन वहां आये और जगह वगैरह सब देख कर उसके बारेमें गुरुदेवसे उसकी ऑफिसियल स्वीकृति आदि मांग लेनेका निर्णय किया और छात्रालयके सामान आदिकी तैयारीकी बात वे सोचने लगे।

सिंघी जैन ग्रन्थमालाका प्रारंभ

उस ग्रीष्मकालके अवकाशमें मैं अहमदाबाद आया और पण्डितजी वगैरहको साथ ले कर पाटणके भण्डारोंमेंसे साहित्यिक सामग्री इकट्ठी करने तथा ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियां आदि करने-करानेके निमित्त दो-एक महिने वहां ठहरा। मेरे परमपूज्य गुरुस्थानीय प्रवर्तकजी श्रीकान्तिविजयजी महाराज तथा उनके साहित्योद्धारकार्यनिरत सुचतुर शिष्य प्रवर मुनिवर श्रीचतुरविजयजी महाराजकी मेरे प्रति अप्रतिम वत्सलता एवं ममताके कारण, मेरे अपने कार्यमें उनसे संपूर्ण सहायता मिलती रही और उसके कारण भण्डारोंका निरीक्षण करनेमें मुझे यथेष्ट सफलता प्राप्त हुई। पाटणके भण्डारोंकी सुव्यवस्था और सुरक्षा आदि करनेमें जितना परिश्रम और जितना उद्यम मुनिवर्य श्रीचतुरविजयजीने किया, वैसा आज तक किसी साधुने, किसी ज्ञानभण्डारके निमित्त किया हो ऐसा मुझे ज्ञात नहीं है। वे बडे कर्तव्यनिष्ठ और साहित्य-संरक्षक साधुपुरुष थे। मैंने पहले पहल अपने ग्रन्थ संपादनका "ॐनमः सिद्धम्"का पाठ उन्हींसे पढा था। पाटणमें संघवीके पाडेमें जो ताडपत्रका मुख्य भण्डार है उसके ग्रन्थोंकी प्रशस्तियां आदि लेनेमें स्वयं इन शिष्यवत्सल मुनिवरने मुझे बहुत सहायता की। सैंकडो ही प्रशस्तियां उन्होंने अपने हाथसे लिख लिख कर मुझे दीं। उस उग्र ग्रीष्मकालके भर मध्याह्नमें वे सागरगच्छके उपाश्रयसे चल कर संघवीके पाडेमें पहुंचते और भंडारके पिटारोंमें रखे हुए सैंकडों ही पुस्तकोंके बस्तोंको अपने हाथसे उठा उठा कर इधर उधर रखते और अभीष्ट पोथीको खोज कर नीकालते। भण्डारकी पोथियोंको रखनेके लिये कुछ आलमारियां नहीं थी सो उनके बनवानेकी इच्छा श्रीचतुरविजयजी महाराज कर रहे थे। मैंने यह सब हाल सिंघीजीको लिख भेजा और सूचित किया कि यदि उनकी इच्छा हो तो इस भण्डारके रक्षणकार्यमें कुछ मदद देने योग्य है। इसके उत्तरमें उन्होंने ५००रू० के नोट भेजे जो मैंने श्रीचतुरविजयजी महाराजको, ज्ञानोद्धार कार्यमें समर्पण कर दिये।

यहींसे 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' के संपादनका कार्यारंभ हुआ। मैंने बंबई जा कर निर्णयसागर प्रेसके साथ छपाई वगैरहका प्रबन्ध किया और सबसे पहला ग्रन्थ 'प्रबन्धचिन्तामणि' छपनेको दिया।

जैन छात्रालयका कार्यारंभ

जुलाईके प्रारंभमें मैं फिर शान्तिनिकेतन पहुंचा। वहां पहुंचते ही 'सिंघी जैन छात्रालय' की व्यवस्थाका काम शुरू किया और उस विषयमें सिंघीजीको विस्तृत पत्र लिखा। उत्तरमें सिंघीजीने ता. ७. ७. ३१ को पत्र लिखा—

... आपका पत्र ता. ५–६ जुलाईका अभी मिला। आप शान्तिनिकेतन पहुंच गये मालूम हुआ। हम तो उम्मीद कर रहे थे कि आप इधरसे होते हुए जायंगे। बोर्डिंगके लिये जो दोनों मकान आपने पसंद किये थे वे हमने कविवर टागोरजीसे पत्र लिख कर मांग लिये हैं और उन्होंने हमारी मांगको स्वीकार कर लिया है। विद्यार्थी और सुपरिन्टेन्डेंटके रहनेकी जगह तो उसीमें हो जायगी। रसोई और भोजन करनेके लिये एक अलग

स्वर्गवासी साधुचरित श्रीमान् डालचन्दजी सिंघी
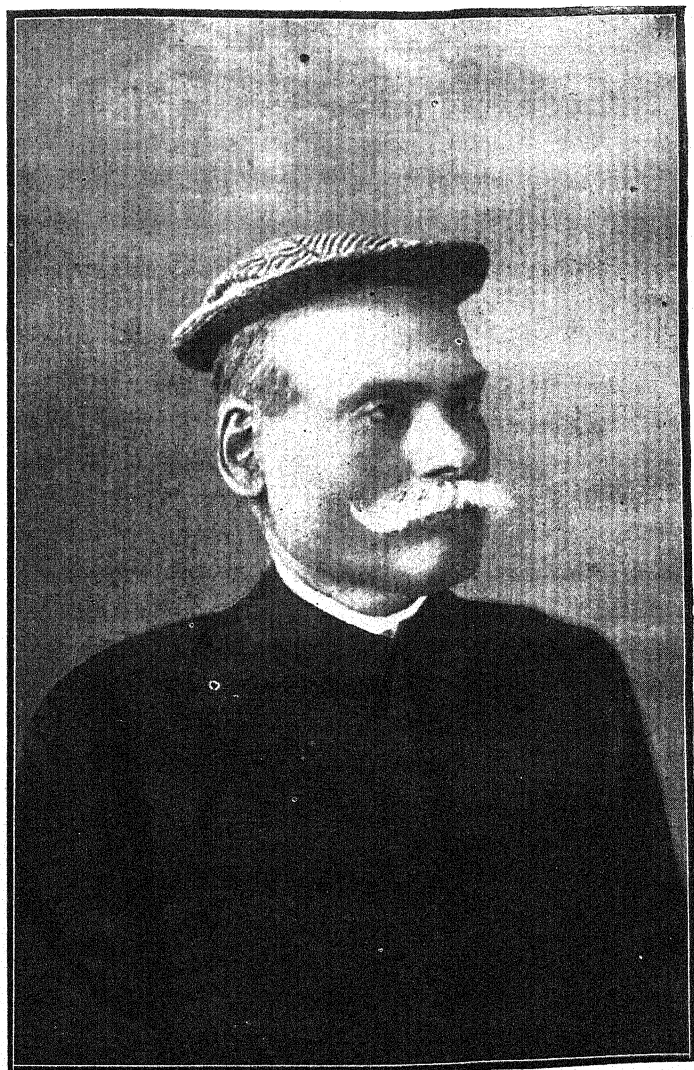
बाबू श्रीबहादुर सिंहजी सिंघीके पुण्यश्लोक पिता

जन्म-वि. सं. १९२१, मार्ग. वदि ६ 卐 **स्वर्गवास** वि. सं. १९८४, पोष सुदि ६
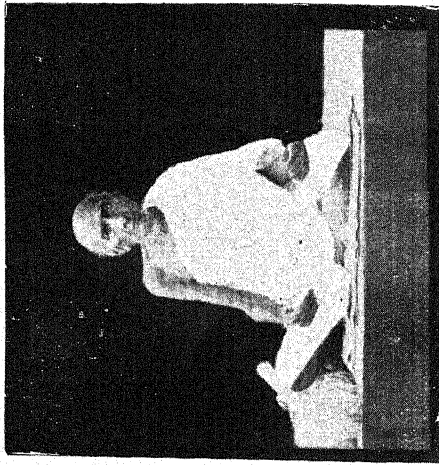
प्रवर्तक श्रीमत्कान्तिविजयजी महाराज

मुनिप्रवरश्रीचतुरविजयजी महाराज

[पाटणके जैन ज्ञानभाण्डारोंके उद्धारकर्ता, ज्ञानोपासक गुरु-शिष्य]

मकानकी जरूरत होगी जो उसीके नजदीक होना चाहिए। शायद वैसा कोई मकान वे नहीं दे सकेंगे। वह अपने ही को तैयार (कम खर्चेमें) कर लेना होगा। आप इन बातोंकी और इसके सिवाय और और जो जरूरत हो उन बातोंकी निगाह करके, एक दफह इधर आ जावें तो रूबरूमें सब बातें हो जानेसे जल्दी सब तय हो जाय। पत्रमें विलंब हो जाता है। 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' के छपाईके बाबतमें भी कुछ बातें आपसे करनी हैं।"

सिंघीजीका यह पत्र मिलने पर यथावकाश मैं कलकत्ते गया और जिन जिन बातोंका विचार करना आवश्यक था किया गया। 'जैन छात्रालय' के लिये सामान तैयार करने की यादी की गई। भोजनालयके लिये कोई योग्य स्थान हमको वहां मिल नहीं रहा था इसलिये एक नया ही मकान अपने खर्चेसे बनानेका विचार तय हुआ और वह मकान कैसा और कितना लंबा–चौडा आदि होना चाहिये इसका रफ प्लान भी हम दोनोंने बैठ कर अंकित कर लिया। सिंघीजीको मकान आदि बनानेका बडा शौक था और प्लान वगैरह अपने आप सोच कर अंकित करते–करवाते थे। मुझे भी इस विषयमें कुछ रस रहा है और अनेकों प्लान मैंने यों ही अपने शौकको पूरा करनेके लिये बनाये–बिगाडे हैं। शान्तिनिकेतनमें उस समय तो मकान प्रायः कच्चे ही थे। मिट्टीकी दिवारें और ऊपर घासके छप्पर यही वहांके मकानोंकी रचना थी। हमने भी उसी ढंगका प्लान बनाया पर दरवाजे और खिडकियां आदिके लिये कुछ टिकाउ लकडीका उपयोग करना तय किया और वह सब कलकत्ते ही से बनवा कर भेजा जाना सोचा गया। इस एक छोटेसे झोंपडेका प्लान बनानेके लिये हम दोनोंने पूरा एक दिन खर्च किया। मैं तो खैर निकम्मा ही था इसलिये मुझे तो उसमें उतना समय देनेमें कोई विशेष नहीं लगता था। पर सिंघीजी तो बडे व्यवसायी थे, उनका इस प्रकार ऐसी मामूली लगनेवाली बातमें इस तरह समय खर्च करना, दूसरोंकी दृष्टिमें कैसासा लग सकता है। पर उनकी यही तो विशेषता थी। चाहे कोई बात छोटी हो या बडी हो, परन्तु उस पर पूरी सावधानीके साथ विचार करनेकी उनकी प्रकृति थी। जो काम करना उसको अच्छी तरह करना यह उनका सिद्धान्त था। पैसा खर्च करना दिल खोल कर करना, पर उसका कहीं दुरुपयोग न हो इसकी पहले यथेष्ट जांच कर लेनेका उनका पूरा लक्ष्य रहता था।

विद्यार्थियोंके उपयोगके लिये डेस्क, बुकसेल्फ, सोनेके पट्टे आदि सब चीजोंका माप और डिझाइन आदि अपने हाथसे बना कर फिर कारीगरको बुलाया गया और उसको उन चीजोंके बनानेका ऑर्डर दिया गया।

इस तरह ३-४ दिन उनके साथ रह कर मैं पुनः शान्तिनिकेतन चला गया और वहां अपना कार्य करने लगा। थोडे ही दिनमें कलकत्तेसे सामान तैयार हो कर शान्तिनिकेतन पहुंचने लगा। विद्यार्थी भी कुछ वहां पहुंच गये थे और उनको स्कूल वगैरहमें भर्ती करानेका कार्य आरंभ हो गया था। खान-पान आदिकी चीजोंकी भी ज्यों ज्यों जरूरत उपस्थित होती जाती थी त्यों त्यों वे कलकत्ते से ही पहुंचाई जाती थीं। शान्तिनिकेतनमें इन चीजोंके मिलनेकी कोई अच्छी सुविधा नहीं थी। सिंघीजी इस विषयमें बडे निपुण थे और स्वयं बडी दिलचस्पीसे सब बातोंका खयाल कर कर उनको वहां

पहुंचानेका प्रबन्ध कर रहे थे। इस विषयमें, समय समय पर उनके जो पत्र मेरे पास आये थे उनमेंसे एक-दोका कुछ अंश यहां दिया जाता है जिससे उनकी कार्यप्रवण-ताका और रसवृत्तिका खयाल आ सकेगा। ता. १०. ८. ३१ के पत्रमें वे लिखते हैं–

...प्रणाम। आपका पत्र ता. ४. ८. ३१ का मिला। बरतन टंकी वगैरह जो कुछ बाकी था आज रवाने कर दिया गया है। तख्तपोश १२ और बन गये हैं। जल बरस रहा है इसलिये रंग होनेमें देर हो रही है। तीन चार रोजमें रवाने हो जायंगें। डेस्क तो डजन भी उसीके साथ आ जायगा। सामानके लिये सेल्फ बनाने दे दिये हैं। बाकी फरनीचर (टेबिल, खुरशी आदि) तैयार ही खरीद लेंगे। रसोई घरके लिये दरवाजे और जंगले तैयार हो कर रंग हो चुका है। जो रसोई घर अभी अपनेको मिला है वह अगर छोडना न पडे और उसीमें अपना गुजारा हो जाय तो इन दरवाजे जंगलोंसे कोई दूसरा मकान छात्रोंके लिये या और किसी कामके लिये बन सकता है। अगर रसोई घर बनाना पडे तो उसके लिये तो ये बनवाये ही गये हैं। दाल, आटा वगैरह कल-परसों तक रवाना किया जायगा। चावल दो बोरी और सरसोंका तैल–दस सेरका एक टीन–अजीमगंजसे भेजनेको लिख दिया है। ये दो चीजें हमारे यहां भी वहींसे आती हैं। रेलका किराया भी वहांसे आनेमें कम लगेगा।

बोर्डिंग हाऊसका नाम "सिंघी जैन छात्रालय" आपने सोचा सो ठीक ही दिखता है। बरतनोंमें हमने J. B. (जैन बोर्डिंग) खुदवाया है उसमें कुछ हर्जा नहीं होगा। ठाकुर (रसोया) जो पहले सोच रखा था उसका दूसरा पत्र आया है। वह अजमेरमें नौकरी लगा हुआ है सो छोड कर आना नहीं चाहता है। दूसरा एक आदमी यहां मिला है। उमर तो ज्यादा नहीं हैं २५–३० के बीचमें होगा। मगर आदमी जाना हुआ है–अच्छा है। मीठाई वगैरह खानेकी चीजें सब बनाना जानता है। लेकिन उसकी जनानाको साथ लिये बगैर वह नहीं जायगा। अपनेको एक आदमीके खानेका खर्च बढेगा मगर एवजमें वह कुछ काम भी दे सकेगी। कमसे कम अगर कभी ठाकुर बीमार हो गया तो वह काम चला लेगी। इतना सुभीता भी है। हमने तो उसको रखना पसंद किया है। आपके या शान्तिनिकेतन Othorities को कोई आपत्ति न हो तो, आपका जवाब मिलने पर उन लोगोंको भेज देंगे। सीधा सामानकी फेहरीस्तमें आपने ½ टीन तिलका तैल मंगवाया है वह हम नहीं भेजते हैं। मुर्शिदाबाद और कलकत्तेके लडके लोग तरकारी भाजी या और किसी चीजमें तिलका तैल खानेके आदी नहीं हैं, और खा भी नहीं सकेंगे। हमारी रायमें तरकारी दो या तीन हों, उसमेंसे एक सरसोंके तैलकी हो और बाकी घीकी हों। हम लोगोंके यहां ऐसा ही होता है। इसलिये सरसोंका तैल दस सेरका एक टीन और घी दो टीन भिजवाया है।

आपका दूसरा पत्र ता. ८ का अभी मिला। 'केसरकुमारी जैन पुस्तकसंग्रह' के लिये पुस्तक वगैरह खरीद हुआ जिसकी किमतका चेक शंभुलाल और मगनलालको कल भेजेंगे और आपको सूचित करेंगे।

इस पुस्तकसंग्रहके पुस्तकोंमें लगानेके लिये आपने लेबलका लिखा मगर हमने तो फक्त एक रब्बर स्टेम्पके लिये ही सोचा था जिसमें देवनागरी लिपि या देवनागरी व अंगरेजी

दोनों लिपियोंमें 'श्रीकेसरकुमारी जैन ग्रंथ(पुस्तक)संग्रह – शान्तिनिकेतन' इतना लिखा हो। आपकी रायमें यह ठीक नहीं जंचता हो और लेबल ही होना चाहिए, तो वो कैसा होगा इस बातका रूबरूमें ठीक विचार हो सकेगा। तख्तपोश दूसरे एक डज़न भी बन चुके हैं। इससे अब लंबाई बढ नहीं सकती। ६ फूट याने ४॥ हाथ लंबा है साधारण आदमियोंकी लंबाई ३॥ हाथ होती है विस्तरके लिये क्या एक हाथ जगह काफी नहीं है?

पालीताणा गुरुकुलकी वार्षिक रीपोर्ट १ आपके पास इसलिये भेजते हैं कि अपने छात्रालयका हिसाब–किताब कैसे रखा जाना चाहिए इसका कोई idea इससे लेना हो तो लिया जा सकता है।"

इस तरह 'सिंघी जैन छात्रालय' का सब सामान स्वयं तैयार करवा कर सिंघीजीने कलकत्ते आदिसे शान्तिनिकेतन पहुंचाया और जब विद्यार्थी वहां पर व्यवस्थित हो गये तब उनके खान-पान आदिका भी कैसा प्रबन्ध रहना चाहिये और वह किस तरह दिया जाना चाहिये इस बारेमें भी उन्होंने एक पत्रमें विस्तारसे हमको लिख भेजा जो उनकी सब तरहकी सतर्कताका सूचक हो कर कर्तव्यनिष्ठाका द्योतक है। इस पत्रका वह अंश इस प्रकार है –

..."लडके लोगोंके कार्यक्रमका रुटीन (Routine) तैयार हो गया होगा। शान्तिनिकेतनके स्कूलमें attend करनेके सिवाय जैन धार्मिक पाठ, खान-पान वगैरह सब कामोंका टाईम निरूपण कर दिया होगा। एक कापी हमें भेज दीजियेगा, और वे लोग उसी माफीक नियमसे सब काम करते रहें इस बातका निगाह रखियेगा। हां, उन लोगोंके खुराकके बारेमें जो लीस्ट यहां आपकी उपस्थितिमें पहले तैयार किया गया था वो तो शायद कुछ ठाकुरकी वजहसे और कुछ अन्य कारणोंसे अभी निर्दिष्टरूपसे काममें नहीं आता होगा और जब तक एक अच्छा ठाकुर और एक योग्य सुपरिन्टेन्डेंट न आ जाय तब तक – हम जहां तक देखते हैं – काममें आ भी नहीं सकता। वर्तमान स्थितिमें जो कुछ खुराक उनके लिये बन सकता है उसे सोच कर हम एक लीस्ट तैयार करके भेजते हैं। आप इसे देख कर इसी सूरत उन सब लोगोंको खुराक दी जाय इसकी सबको ताकीद कर दीजियेगा। पूजाकी छुट्टियों तक तो यही चलेगा, बाद उसके जो इन्तजाम होगा सोच लिया जायगा।

सुबह पढने जानेके पहले –

दो दो नमकीन खाखरे, डेढपाव पक्का दूध। चाय किसी हालतमें इस वख्त न दी जाय और दूध डेढपावसे कम न हो।

रसोईके वख्त –

आटेका फुलका या टिकडा जिसको जितना रुचि हो, भात रुचि माफिक, दाल जितना रुचि हो। तरकारी सब्जीकी कमसे-कम दो होनी चाहिये। उसमें एक घीमें और एक तैलमें। अगर किसी कारणसे किसी रोज एक ही तरकारी हो तो घीमें हो। हफ्तामें दो रोज बोलपुरमें हाट लगता है उसमें तरकारी काफी तादादमें मिल सकती है, सो हाटसे मंगा लेनेसे तीन रोज चल सकेगा।

आधपाव दहीमें आधा पाव जल और थोडा नमक मिला कर मट्ठेके माफिक करके या आधपाव दहीमें चीनी मिला कर भात उसमें डाल कर दही भात।

टीफीनके वख्त–

मूडीके साथ चाय जिसमें आधा पाव दूध जरूर रहे।

शामके वख्त–

आटेका टिकडा जितना जिसको भूख हो। दो तरकारी–उसमें एक घीकी और एक तैलकी–जितनी जरूरत हो। हलवा या दूसरी कोई मीठेकी चीज। शामके वख्त भातकी जरूरत नहीं। आटेकी पुरी, टिकडा कुछ होना चाहिये लेकिन पुरी अभी संभव नहीं है इसलिये हमेशां टिकडा हो।

सुबहको किसी दिन भी दूधके बदले चाय नहीं होना चाहिये, दूध ही हो।

आपको इस व्यवस्थामें कोई परिवर्तन करना जरूरत न मालूम पडे तो तुरन्त इसे काममें लानेका इन्तजाम कर दीजियेगा। परिवर्तनकी जरूरत हो तो हमें सूचित करियेगा, दूधका इन्तजाम पूरा कर लीजियेगा।''

इस पत्रकी बातोंसे पाठकोंको ज्ञात हो जायगा कि–लडकोंके स्वास्थ्य, खान-पान, रहन-सहन आदि सभी बातोंकी कितनी बारीकीके साथ सिंघीजीने विचारणा की थी और किस तरह मुझे शान्तिनिकेतनमें रहने और अपने कार्यमें प्रगति करनेके निमित्त उनका उत्साह काम करता था।

इस पहले ही वर्षमें 'सिंघी जैन छात्रालय'में कोई १५–१७ विद्यार्थी दाखल हो गये। जो सम्पन्न घरोंके लडके थे वे अपना बन्धा हुआ खर्चा देते थे। बाकीके कुछ विद्यार्थी छात्रालयके खर्चसे ही रहते थे। इन स्कूलके विद्यार्थियोंके अतिरिक्त कुछ, उच्च अभ्यासार्थी विद्यार्थी भी मेरे पास अध्ययनकी दृष्टिसे वहां पहुंचे जो यथानियम विश्वभारतीके विद्याभवनमें प्रविष्ट हुए और यथानियत उच्च प्रकारका विद्याध्ययन करने लगे।

शान्तिनिकेतनमें स्वतंत्र स्थान बनानेका विचार

उस पहले वर्षका वातावरण बहुत कुछ उत्साहवर्द्धक रहा। जो मकान हम लोगोंको मिले थे वे आरोग्यकी दृष्टिसे उपयुक्त नहीं थे। दूसरे मकान वहां उपलब्ध हो सके वैसी परिस्थिति नहीं थी और हम सबको मकानका कष्ट अनुभूत होने लगा। सिंघीजीसे इस विषयमें बातचीत होती रही तो फिर उन्होंने सोचा कि यदि ऐसा है तो क्यों नहीं फिर हम ही अपना स्वतंत्र एक अच्छासा मकान बना लें जिसमें 'सिंघी जैन ज्ञानपीठ' और 'सिंघी जैन छात्रालय' का समावेश हो जाय। इसके लिये कोई १०–१२ हजार रूपयेका खर्चा अंदाजा गया था। यदि शान्तिनिकेतनवाले इसके लिये कोई उपयुक्त अच्छी जमीन देना स्वीकार करें तो इस मकानको बनानेका सिंघीजीका संकल्प हो गया था। मैंने आश्रमके कार्यकर्ताओंसे इस विषयमें परामर्श किया और फिर स्वयं गुरुदेवसे चर्चा की। उन्होंने बहुत ही उत्साहके साथ मुझे कहा कि आश्रमके जिस भागमें जो खाली जमीन आपको पसन्द हो, आप उसे ले सकते हैं और वहां मकान बना सकते हैं। आश्रम सब प्रकारकी अपेक्षित सहायता करनेमें तत्पर रहेगा। तदनुसार एक अच्छा लंबा-चौडा जमीनका टुकडा मैंने पसन्द किया और उस पर पक्का मकान बनानेकी तैयारी की जाने लगी।

सबसे पहले एक छोटा स्वतंत्र मकान अलग बनाना सोचा जिसमें मैं रह सकूं और फिर बादमें दूसरे वर्ष छात्रालयका बडा मकान बनाया जाय। इसके लिये, पूजाकी छुट्टियोंके पहले ही एक छोटासा समारंभ किये जानेकी तरतीब्र सोची गई और उसीमें गुरुदेव रवीन्द्रनाथके हाथोंसे उस मकानका खातमुहूर्त कराये जानेकी भी योजना की गई। सिंघीजीको यह कार्यक्रम बहुत पसन्द आया और उसके लिये अपेक्षित सब सामग्रीकी उन्होंने तैयारी करवाई। निश्चित दिन पर वे वहां पहुंचे और स्वयं गुरुदेवके हाथोंसे वह खातमुहूर्त का काम सानन्द संपन्न हुआ। सिंघीजीकी ओरसे शान्तिनिकेतननिवासी सभी जनोंको चहापान आदि कराया गया।

इस तरह 'सिंघी जैन छात्रालय'का बडे उत्साहके साथ प्रारंभ हुआ और पूजाकी छुट्टियोंके बाद, सुप्रिन्टेन्डेन्ट वगैरहकी भी ठीक व्यवस्था कर ली गई। विद्यार्थियोंमेंसे बहुतसे सिंघीजीके निकटके कुटुम्बियोंमेंसे थे इसलिये कहीं उनके अभिभावक किसी प्रकारकी कोई त्रुटि आदिका बहाना न खोज सके और तदर्थ छात्रालयका कोई दोष न निकाल सके इसलिये खान-पान आदिकी बहुत ही उत्तम व्यवस्था रखने-रखानेकी ओर उनका बहुत खयाल रहता था और उसके लिये यथेष्ट खर्च करनेकी उन्होंने स्वीकृति दे दी थी। यद्यपि मेरा इस विषयमें कुछ विरोध भी था। क्यों कि शान्तिनिकेतन जैसे स्थानमें, जहां अन्य सेंकडों विद्यार्थी आश्रमके सर्वसाधारण भोजनालयमें बहुत ही सादा और सस्ता भोजन करते हैं वहां हमारे जैन विद्यार्थी इस प्रकारके रोज गरिष्ठ पकान्न और माल-मलीदा उडाते रहें यह असमंजससा लगता है। पर सिंघीजीको अपने समाजके लोगोंकी क्षुद्र और दोषदर्शी मनोभावनाका बहुत अनुभव था। इस-लिये उनका कहना था कि—एक तो यों ही ये लडके आज तक कभी घरसे बाहर नहीं निकले और न किसी अच्छे संस्कारी वातावरणमें कभी हिले-मिले, इसलिये इनकी आदतें बहुत ही हल्के प्रकारकी और तुच्छ भावसे भरी होती हैं। छोटी छोटी बातोंमें ये अपना मन बिगाडते रहेंगे और मां-बापोंसे अनेक प्रकारकी शिकायतें करते रहेंगे। और दूसरी बात, मां-बापोंकी मनोवृत्ति भी ऐसी ही ईर्ष्यादग्ध और दोष देखने-वाली है जो किसी न किसी तरह हमारी त्रुटिको खोज निकालनेमें तत्पर रहती है और हमारे अच्छे कामको भी, यदि बन सके तो बदनाम करनेमें मौज मानना चाहते हैं। सिंघीजीकी यह भविष्यद्दर्शिता बिल्कुल ठीक थी और इसका मुझे भी थोडे बहुत अंशमें, कामके आगे बढने पर, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपमें कुछ अनुभव मिला था।

वह शीतकाल तो अच्छी तरहसे व्यतीत हुआ और परीक्षायें वगैरह दे कर, ग्रीष्मकी छुट्टियोंमें विद्यार्थी अपने अपने स्थान पर चले गये। मैं भी ग्रन्थमालाके कार्यके निमित्त गुजरातमें चला आया।

छात्रालयकी निष्फलता

मुझे एक वर्षके अनुभवसे ज्ञात हुआ की छात्रालयका जैसा चाहिए वैसा उपयोग नहीं हो रहा है और खर्च इसके पीछे बहुत अधिक उठाया जा रहा है। जो विद्यार्थी प्रविष्ट हुए हैं वे बहुत ही सामान्य कोटिके हैं और उनमेंसे आगे बढनेकी शायद ही कोई योग्यता रखता हो। इस विषयमें मैं कुछ विशिष्ट विचार कर ही रहा

था और अपना अभिप्राय सिंघीजीसे यथावसर विदित करना चाहता ही था, कि दूसरे वर्षके प्रारंभमें स्वयं छात्रालयके विद्यार्थियोंमें मन्दताका वातावरण दिखाई दिया। कुछ विद्यार्थियोंको तो शान्तिनिकेतनके जलवायु ठीक अनुकूल नहीं मालूम दिये और कुछको वहांका पठनक्रम एवं समूचा रहन-सहन ही माफक नहीं मालूम दिया। अतः आधेसे ज्यादह विद्यार्थी उपस्थित ही नहीं हुए।

छात्रालयके स्थापन करने–करानेमें मेरा मुख्य उद्देश था कि कुछ बुद्धिशाली और होनहार जैन विद्यार्थी शान्तिनिकेतनके विविध संस्कारपूर्ण वातावरणमें पलकर, उच्च शिक्षा संस्कार और जीवनोपयोगी ज्ञानसे परिचित बनें और समाजमें कुछ क्रियाशील व्यक्तिके रूपमें आगे आवें।

परन्तु जो विद्यार्थी वहां पर उपस्थित हुए उनके संस्कार और व्यवहार मेरी भावनाके प्रायः विपरीतसे निकले। न उनके माता-पिताओंके शिक्षाविषयक कोई अच्छे विचार थे, न उनके बच्चे कोई विशिष्ट संस्कारसंपन्न व्यक्ति बने ऐसी उनकी कोई भावना थी। उनका तो केवल यही खयाल था कि लडके शान्तिनिकेतनमें रह कर चाहे जिस तरह स्कूलके स्टांडर्ड जल्दी जल्दी पास कर लें। पर शान्तिनिकेतनका पठनक्रम इस भावनाके अनुकूल न था। केवल पुस्तकें रटानेकी अपेक्षा विद्यार्थियोंके संस्कार और आदर्शका उन्नयन करानेकी तरफ वहांके अध्यापकोंकी रुचि अधिक थी और इसी दृष्टिसे वहांका सारा पठनक्रम चलता था। साहित्य, संगीत, नृत्य और चित्रकलाके विशिष्ट अध्ययनका आकर्षण ही शान्तिनिकेतनकी विशेषता थी। पर, केवल द्रव्योपासक और अर्थपूजक वणिक्प्रकृतिके जैनियोंको इस प्रकारके सांस्कृतिक शिक्षणमें यत्किंचित् भी अनुराग होनेकी मुझे संभावना नहीं दिखाई दी। इसलिये मैंने सोचा कि 'जैन छात्रालय' के निमित्त वहां पर अधिक श्रम और अर्थव्यय करना–कराना कोई विशेष लाभदायक वस्तु नहीं होगी और इस विचारसे उसके निमित्त विशेष प्रवृत्ति करना–कराना स्थगित किया गया।

ग्रन्थमालाका पहला ग्रन्थ प्रकाशित हुआ

छात्रालयके उक्त प्रकारके स्कूलके विद्यार्थियोंके अतिरिक्त "सिंघी जैन ज्ञानपीठ" के उच्चकक्षाके अभ्यासी विद्यार्थी भी कुछ मेरे पास आ गये थे जो शास्त्रीय विषयोंका अध्ययन करते थे। इधर ग्रन्थमालाका कार्य चालू हो गया था और ४–५ ग्रन्थ एक साथ प्रेसमें छपने दे दिये गये थे। इनमें सबसे पहला ग्रन्थ 'प्रबन्धचिन्तामणि' मूल संस्कृत १९३३ के मई–जूनमें छप कर तैयार हुआ। ग्रन्थमालाका टाइटल पृष्ठ आदि कैसा बनाना और उसका बाइन्डींग आदि किस प्रकार करवाना, इस विषयमें सिंघीजी बडी दिलचस्पी रखते थे; अतः उसको अन्तिम स्वरूप देनेके पहले कई दफह उनसे मैंने परामर्श किया था। ग्रन्थमालाके मुखपृष्ठ पर जो सिंघीजीके पिता श्रीडालचन्दजीका रेखाचित्र अंकित रहता है उसकी डिझाइन भी सिंघीजीने स्वयं अपने पास अच्छे आर्टिस्टको बिठा कर तैयार करवाई थी। पहले उन्होंने एक दूसरे आर्टिस्टको अपनी कल्पना दे कर ब्लाक बनवाया जो उनको पसन्द नहीं आया और उसके विषयमें मुझे लिखा कि–

"पूज्य पिताजीका लाइन ब्लाक हमें पसन्द नहीं आया। काम बहुत भद्दा हुआ है। मगर देर बहुत हो गई है इसलिये इस दफे तो इसीसे काम चला लेना होगा। मगर हम दूसरा फिरसे बनवावेंगे सो उससे लिख दीजियेगा वो चित्र हमें वापस दे जाय।"

'प्रबन्धचिन्तामणि' की पुस्तक तैयार होते ही प्रेसमेंसे कुछ नकलें उनके अवलोकनके लिये भेजी गईं जिसको देख कर वे बडे प्रसन्न हुए। ता. २९.७.३३ के पत्रमें उन्होंने इसकी सामान्य पहुंच लिखते हुए मुझे लिखा कि—

... "सविनय प्रणाम. आपके तीन पत्र मिले। आखिरी पत्र ता. ८, जूनका मिला। उत्तरमें विलंबके लिये क्षमा करें। 'प्रबन्धचिन्तामणि' की चार पुस्तकें दो पार्सलोंमें आई। प्रतियोंकी बाइंडींग व get up सबको पसन्द आई। एक दो बातें सूचित करनेकी हैं वे मुलाकातमें कहेंगें। विक्रयके लिये जितनी पुस्तकें भाई शंभूके यहां रखनी हों वे वहां रख कर बाकी सब यहीं भिजवा दें। आपके यहां आने पर मुफ्तमें भेजनेकी पुस्तकोंका लीस्ट तैयार करके यहींसे भेज दी जायगीं। बंबईमें या और किसी जगह बेचनेके लिये रखवाना हो सो वहीं रखवा दें। प्रेसका बिल देख कर वापस भेजते हैं। मैनेजर निर्णय-सागर प्रेसके नामका चेक १ रु० १००० का भेजते हैं आप उन्हें दे दीजिए। दूसरे चालू ग्रंथोंके फरमे हमारे फाईलके लिये हों तो आप साथ लेते आइये। ... आपका शरीर अब पूर्णरूपसे स्वस्थ हो गया होगा। कृपया अब शीघ्र ही इधर आनेकी व्यवस्था करें। यहां भी दो रोजके लिये ठहरनेकी आवश्यकता है। सो या तो यहां हो कर शान्तिनिकेतन जांय या सीधा वहां पहुंच कर पीछे यहां आ जांय। जैसा आपको सुविधा हो वैसा कीजियेगा।"

सिंघी जैन ग्रन्थमालाका पहला ग्रन्थ प्रकाशित हुआ वह 'विश्वभारती-शान्तिनिकेतन' के नामसे अंकित हो कर प्रकट हुआ। इस ग्रन्थकी १ प्रति जब मैंने गुरुदेवको भेंट की तो उसे देख कर वे बहुत प्रसन्न हुए और ग्रन्थमालाके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें पूछने लगे। इसके बाद जब कभी उनसे साक्षात्कार करनेका प्रसंग आता, तो सबसे पहले वे ग्रन्थमालाके कार्यके विषयमें ही प्रश्न करते। जैन साहित्य, भारतीय संस्कृतिके प्राचीन इतिहासका एक बहुत बडा साधन-भण्डार है और प्राकृत, अपभ्रंश तथा राजस्थानी आदि भाषासाहित्यका वह एक अद्वितीय खजाना है इस बातका जब जब मैं उनके आगे वर्णन करता तब तब वे बडी उत्सुकताके साथ मुझसे कहते कि— 'आप बहादुरसिंहजी सिंघी जैसे कोई और दो-चार धनिक जैन व्यापारियोंको प्रेरणा कीजिए, और मुझसे कहें तो मैं भी उन्हें लिखूं कि वे दो-चार लाख रूपये इकट्ठे करें और इस प्रकारके जैन साहित्यके उद्धारका कार्य बडे वेगसे प्रारम्भ करें, इत्यादि।

मेरे स्वास्थ्यकी शिथिलता

यद्यपि इस तरह 'सिंघी जैन ज्ञानपीठ' और 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' का कार्य शान्तिनिकेतनमें सुचारुरूपसे चल रहा था, पर धीरे धीरे मेरा स्वास्थ्य वहां पर बिगडता जा रहा था। बंगालके मेलेरियापूर्ण जल-वायुने मेरी प्रकृतिको शिथिल बना दिया और मुझे वारवार अस्वस्थताका अनुभव होने लगा। इसलिये शान्तिनिकेतनके स्थायी निवासकी जो भावना प्रारंभमें बलवती थी वह मन्द होती चली। सिंघीजीकी

इच्छा भी मेरे स्वास्थ्यको देख कर शान्तिनिकेतनके लिये उत्साहपूर्ण नहीं रही। तो भी ३ वर्ष इस तरह वहां पूरे व्यतीत हुए।

शान्तिनिकेतनमें रहते भी मेरा मुख्य लक्ष्य तो "सिंघी जैन ग्रन्थमाला" की प्रगति तरफ ही अधिक रहा करता था और उसीके संपादन-प्रकाशनमें मैं दिन प्रति-दिन व्यस्त रहता था। उस कार्यके लिये मुझे गुजरात ही सबसे अधिक अनुकूल था, इसलिये धीरे धीरे शान्तिनिकेतनसे अपना कार्य केन्द्र हठा कर अहमदाबाद या बम्बईमें रखनेका मैं सोचने लगा और तदनुसार कुछ व्यवस्था भी सोची जाने लगी।

केशरियाजी तीर्थके सम्बन्धमें श्रीशान्तिविजयजी महाराजका अनशन

इन दिनों उदयपुर राज्यमें आये हुए केशरिया नामक तीर्थस्थानके विषयमें एक तरफ श्वेतांबर-दिगम्बरोंमें और दूसरी तरफ उदयपुर राज्यके साथ, जैनियोंका स्वत्वाधिकारके विषयमें आपसी झगडा चल रहा था। आबू पहाड पर रहनेवाले और योगीराजके नामसे प्रसिद्ध श्रीशान्तिविजयजी महाराजने इस झगडेका निवटारा आपसी मेलमुलाकात द्वारा कराना चाहा और उसके निमित्त उन्होंने अनशन व्रत कर लिया। इससे जैन समाजमें – खास करके श्रीशान्तिविजयजी महाराजके भक्तोंमें – बडी हलचल मच गई और उनमेंसे कई एक प्रमुख गिनेजाने वाले व्यक्ति उदयपुर पहुँचे। सिंघीजी भी श्रीशान्तिविजयजी महाराजके भक्तोंमेंसे एक विशिष्ट व्यक्ति थे। बुद्धि, समझदारी, साधनसंपन्नता आदि सभी तरहसे सिंघीजीका स्थान उन सब भक्तोंमें अग्रणीके जैसा था। इससे उनको भी उस समय उदयपुर पहुँचना पडा। वहाँकी सब परिस्थितिका निरीक्षण करते हुए उनको मालूम हुआ कि – केशरियाजी तीर्थका प्राचीन इतिहास अन्धकारके पडलमें दबा हुआ है। किसीको उसके स्वरूपकी ठीक जानकारी नहीं है। अर्द्धदग्ध और अनधिकारी लोगोंने उसके विषयमें परस्पर विरोधी अनेक बातें प्रचलित कर रखी हैं और उससे समस्या अधिक जटिल हो रही है। सिंघीजीकी इच्छा हुई कि इस विषयमें वे मुझसे कुछ परामर्श करें और कुछ तथ्य ज्ञात करें। इस विचारसे ता. २२-३-३४ के दिन उदयपुरसे सिंघीजीने नीचे दिया हुआ पत्र मुझे लिखा और कुछ दिन उदयपुर आनेके लिये सूचित किया।

... "सविनय प्रणाम. श्रीकेशरियाजी तीर्थ व श्रीशान्तिविजयजी महाराजके अनशनके प्रसंग पर हमारा यहां आना हुआ। इसी प्रसंग पर हमारा अहमदाबाद जानेका भी था – और इसीलिये आपको तार भी किया था – मगर Circumstances change होने पर अहमदाबाद जाना बन्ध रखा। अब जैसा यहांका बनाव दिखता है उसमें इस तीर्थ-संबन्धी कोई जांचकमिटी या Enquiry Commission मुकर्रर जरूर होगा और उसमें दोनों पार्टीको अपना अपना पुरावा दाखिल करना होगा। हमने सुना है कि श्रीकेश-रियाजीके मन्दिर व उसके इर्दगिर्दमें कई लेख श्वेताम्बरी वा दिगम्बरियोंके हैं। कहा जाता है कि दिगम्बरियोंका लेख सबसे प्राचीन है। हमको यह निश्चय करना है कि हकीकतमें वे प्राचीन हैं या नहीं। सन तारीखसे वे प्राचीन हों भी तो लिपि प्राचीन है या नहीं। उनमें लिखित सन, तारीख, मिति, वार आपसमें मिलते हुए हैं या नहीं – याने जिस सन तारीखमें जो वार लिखा हुआ है, हकीकतमें उस रोज वही वार था या नहीं? उसमें

उल्लेखित व्यक्ति उसी वख्त थे या नहीं?......आपने कभी इस विषयकी कोई चर्चा की हो, या इन लेखोंका कोई impression लिया हो, या इनको पढा हो तो इन सब बातोंको भी जाननेकी जरूरत है। मुख्तसर यह है कि इस सम्बन्धी जो कुछ सामग्री आपके पास हो या उपर लिखी हुई बातोंको जाननेके लिये जो कुछ जरूरत हो, उसे साथ ले कर आप अगर कृपा करके यहां पधारें तो बहुत अच्छा हो। शिलालेखोंका impression लेनेके लिये जो सामान जरूरत हो उसे भी साथ लेते आवें। यहां करीब ४-५ रोज आपको लग जायंगे। बाबू रायकुमारसिंहजी, सेठ नरोत्तम जेठा, बाबू ताजबहादुरसिंहजी वगैरह कई सज्जन यहां उपस्थित हैं। सब कोईका अत्यन्त आग्रह है कि आप एक दफह जरूर यहां आवें। आनेके पेस्तर हमको तार या चिट्ठीसे मालूम कर दें, ताकि स्टेशन पर आदमी चला आयगा। साथमें बिस्तर लेते आवें।

और शान्तिनिकेतन जैन चेयरके बारेमें भूरु बाबूका एक पत्र आया है उस संबन्धी भी विशेष आवश्यक विचार करनेकी जरूरत है।

और यहां कुशल हैं आपका कुशल चाहते हैं।

सं० १९९० मि० चैतसु० ७ गुरुवार। विनीत **बहादुरसिंह**

मेरा उदयपुर जाना

उस समय सिंघीजीके आमंत्रणानुसार मैं उदयपुर गया। श्रीशान्तिविजयजी महाराज उदयपुरसे १०-१२ मील पर एक छोटेसे गांवमें ठहरे हुए थे। सिंघीजी उसी दिन मुझे उनसे मिलानेके लिये वहां ले गये। यद्यपि एकाध दफह, बहुत वर्षों पहले, आबूरोडकी जैन धर्मशालामें उनके दर्शन करनेका मुझे मौका मिला था पर विशेष परिचय नहीं था। मेरे संपादित 'जैन साहित्य संशोधक' त्रैमासिक पत्रके वे ग्राहक थे और उसे बराबर मंगवाया करते थे। जैन इतिहास विषयक लिखी हुई मेरी दूसरी-दूसरी पुस्तकें भी उन्होंने पढ़ी थी और मेरे साहित्यिक कार्यसे वे यथेष्ट परिचित थे एवं उसके प्रशंसक भी थे। इस बार जब उनसे मिलना हुआ तो वे बहुत प्रसन्न हुए और अपने पास पडा हुआ एक आसन उठा कर मेरे बैठनेके लिये स्वयं बिछाया और अपने समान पार्श्वमें, बडे आदरसे मुझे बिठा कर सुखसाता आदि प्रश्नसे मेरा अत्यधिक स्वागत किया। फिर एकान्तमें बैठ कर केशरियाजी तीर्थके विषयमें बहुतसी बातें उन्होंने जाननी चाही और मैंने उनको अपनी जानकारीके मुताबिक कितनीक ज्ञातव्य बातें निवेदन की। फिर तो प्रायः रोज ही ३-४ घंटे उनके पास बैठनेका प्रसङ्ग बना रहा। कुछ दिन बाद वे उस गाँवसे उदयपुर शहरमें आये और हाथीपोलके बहार बनी हुई जैन धर्मशालामें ठहरे। भक्त लोगोंने उनका बडा स्वागत किया। शहरमें प्रवेश करते समय उनकी खास इच्छा रही कि मैं भी उनके साथ साथ चलूं। यद्यपि मुझे ऐसी भीडमें और धांधलीमें चलना पसन्द नहीं था पर उनके आग्रहके वश वैसा करना पडा। धर्मशालामें प्रवेश करने पर उन्होंने लोगोंको थोडासा मांगलिक प्रवचन सुनाया। कुछ भक्तोंने उनको बहुमूल्य कंबल ओढ़ाये जिनमेंसे पहला कंबल उन्होंने अपने हाथोंसे मेरे कंधेपर रख दिया। उनके आशी-

यादके रूपमें उस कंबलको मैंने अपने सरपर चढ़ाया और बडे आदरसे उसको अपने पास रखा। आज भी वह कंबल उसी तरह सुरक्षित है और उन साधुपुरुषकी वह स्नेहपूर्ण स्मृतिकी मुझे वारंवार याद दिलाता रहता है।

उदयपुरमें उस सिलसिलेमें मुझे कोई महिना-डेढ महिना रहना पडा। वहाँसे फिर मुझे केशरियाजी जाना पडा और वहाँके शिलालेख आदि जितने ऐतिहासिक प्रमाण थे उन सबका संग्रह करना पडा। सिंघीजी और श्रीशान्तिविजयजी महाराज इस विषयमें बहुत रस लेते थे और केशरियाजी तीर्थकी प्राचीनता आदिके विषयमें वास्तविक जानकारी करनेके लिये बडे उत्सुक रहते थे। जब जब शान्तिविजयजी महाराजके पास जाना होता तब तब वे मेरी इतनी अधिक प्रशंसा करते थे कि जिसको सुनकर मुझे एक प्रकारसे संकोच ही नहीं पर अभाव तक भी हो जाता था। सिंघीजीको वारंवार कहते कि 'देखो जिनविजयजीको किसी तरहका कोई कष्ट न होने पावे। इनके जाने-आनेका मोटर वगैरहका बराबर इन्तजाम रखा जावे' इत्यादि। केशरियाजीके शिलालेख वगैरह जब सब मैंने ले लिये और उनका सब वर्णन और अवलोकन आदि लिखकर एक रीपोर्टके रूपमें मैंने उसे तैयार किया तो उसकी एक नकल शान्तिविजयजी महाराजने लेकर अपने व्याख्यानके पूठेमें रख ली। केशरियाजी तीर्थके मामलेके बारेमें जो कोई खास व्यक्ति उनके पास आता और कुछ बातें कहता तो उसे सुन कर वे पहले मुझसे बातचीत करते और उसका कैसा जवाब आदि देना चाहिये इस बारेमें पूछ लेते। इतनी गाढ उनकी मेरे पर श्रद्धा हो गई थी। फिर तो और भी उनका प्रेम मुझपर बढ़ गया था और बहुतसी अपने अंतरंगकी बातें भी प्रसङ्गोपात्त मुझसे किया करते थे। उदयपुरमें रहते समय उनका स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया था और केशरियाजीका मामला भी सहजमें सुलझने जैसा दिखाई नहीं देता था इसलिये उन्होंने वहाँसे विहार कर देनेका विचार किया। उनकी इच्छा रही कि मैं कुछ दिन उनके साथ रहूँ पर मुझे शान्तिनिकेतन जानेकी और वहाँ पर "सिंघी जैन छात्रालय" आदिकी व्यवस्था करनेकी अनिवार्य आवश्यकता थी; इससे मैंने उस समय तो अपनी अशक्ति प्रदर्शित कर कुछ समय बाद उनकी सेवामें उपस्थित होनेकी इच्छा प्रदर्शित की और उनकी अनुमति लेकर मैं अहमदाबाद गया।

वहाँसे फिर यथासमय जूनके महिनेमें शान्तिनिकेतन जाना हुआ और वहाँके कार्यकी व्यवस्थामें जुट जाना पडा। 'जैन छात्रालय'के बन्ध कर देनेका निर्णय कर लिया गया था, सो तदनुसार उसके व्यवहारको समेटनेकी व्यवस्था की जाने लगी। ग्रन्थमालाका काम चल ही रहा था। इस वर्ष 'विविधतीर्थकल्प ग्रंथ' छपकर तैयार हुआ और 'प्रबन्धकोष' समाप्तप्राय था। और कई नये ग्रंथोंकी प्रेसकापियां तैयार हो रही थीं।

मेरा कुछ समय बंबईमें निवास

दीवालीके अवसर पर मैं फिर अहमदाबाद चला आया और फिर वहांसे दो-तीन महिने बंबई आ कर रहा। ग्रंथमालाकी छपाईका काम बंबईके निर्णयसागर प्रेसमें ही प्रधानतया चल रहा था और प्रुफ वगैरहके वहांसे आने जानेमें बहुत

समय लगता था इसलिये मुझे देखना था कि बंबईमें रह कर ग्रंथमालाका कार्य कुछ शीघ्रताके साथ किया जा सकता है या नहीं।

मैं इस तरह जब बंबईमें कुछ दिन ठहरा हुआ था, तब जैन श्वेतांबर कॉन्फरन्सके सेक्रेटरी वगैरह सज्जन मेरे पास आये और केशरियाजी तीर्थका जो मामला चल रहा था उसके बारे में, परामर्श करना चाहा। उदयपुर स्टेटने अब उस कामकी कानूनी कार्रवाई करनेके लिये एक कमिशनकी नियुक्ति कर दी थी और उसके सामने श्वेतांबर और दिगंबर दोनों संप्रदायवालों को अपने अपने प्रमाण उपस्थित करनेकी आज्ञा जारी की थी। सो इसके लिये दोनों पक्षवाले वकील-बेरिस्टरोंको तैयार करने लगे और अपने अपने केसका मसाला जुटाने लगे। श्वेतांबर पक्षकी ओरसे जैन कॉन्फरन्स और आणन्दजी कल्याणजीकी पेढी – इन दोनों ही संस्थाओंने संयुक्तभावसे इस केसमें सहयोग देनेका निर्णय किया था। पेढीने तो अपने प्रमुख प्रतिनिधि (स्वर्गस्थ) सेठ साराभाई डाह्याभाई तथा सेठ प्रतापसिंह मोहोलालको इस कामकी जिम्मेवारी सौंप दी थी और जैन श्वे० कॉन्फरन्सने, अपने एक भूतपूर्व अध्यक्ष श्रीबाबू बहादुर सिंहजी सिंघीकी प्रधानतामें इस कामको चलानेका निश्चय किया था। सिंघीजी पहले ही से इस काममें दिलचस्पी ले रहे थे और उनकी कार्य करनेकी कुशलता तथा बुद्धिमत्ताका परिचय सबको ठीक ठीक हो गया था, इसलिये उन्हींके जिम्मे यह काम सौंपा गया। मैं जब बंबईमें था तब उन्होंने जैन श्वेतांबर कॉन्फरन्सके सेक्रेटरीको सूचित किया कि वे इस कामके लिये मुझसे मिले और कुछ विचार-विनिमय करें। इसलिये वे सज्जन मेरे पास आये और केशरियाजीके मामलेके विषयमें परामर्श करने लगे। मेरे साथ की गई बातचीतसे उन सज्जनोंको प्रतीत हुआ कि – उदयपुरमें कमिशनके सामने जब कार्रवाई चालू हो तब मेरी उपस्थिति का वहां होना बहुत आवश्यक है। इससे उन्होंने सिंघीजीको लिखा कि – वे मुझसे उदयपुर आनेका अनुरोध करें इत्यादि। इस वृत्तांत को जान कर सिंघीजीने स्वयं बंबई आनेका निश्चय किया और इस विषयका ता. ४.२.३५ को कलकत्तेसे निम्न लिखित पत्र मुझको भेजा।

Registered

११६, लोअर सर्क्युलर रोड,
कलकत्ता, ४. २. ३५

श्रद्धेय श्रीजिनविजयजी,

सविनय प्रणाम. आपके दो पत्र मिले। पुस्तकें भी मिलीं। आपके लिखे माफिक चेक १ रु० १५०० का निर्णयसागर प्रेसके नामका भेजते हैं।

और चीनुभाई सोलिसिटरके पत्रसे मालूम हुआ कि उन लोगोंने ध्वजादंड केस संबंधी आपसे परामर्श किया था। उन लोगोंका मत है कि बंबईमें बैरिस्टरके साथ परामर्श करनेके समय व उदयपुरमें सुनवाईके समय आपकी उपस्थिति अत्यावश्यक है। उन्हींके पत्रसे मालूम हुआ कि आप अहमदाबाद चले गये हैं इसलिये यह पत्र अहमदाबादके पतेसे भेज रहे हैं। हम ता० १४ फरवरी सुबह ७ बजे बंबई पहुँचेंगे। चौपाटी नरोत्तमभाईके यहां

ठहरेंगे। चार रोज वहां रह कर ता. १७ रातकी गाडीसे रवाने हो कर ता. १८ रात उदयपुर पहुंचेंगे। ता. २० से सुनवाई आरंभ होगी। इसलिये हमारा अनुरोध है कि आप कृपया ता. १४ को बंबई पहुंच जांय व वहींसे हमारे साथ उदयपुर चलें। आपके रहनेसे लेख वगैरहके विषयमें हम लोगोंको विशेष सहायता मिलेगी और हमको बड़ी हिम्मत रहेगी। शेष मुलाकातमें। यहां सब कुशल आप सकुशल होंगे।

आपका विनीत
बहादुरसिंह

पु. नि. गये साल आप उदयपुर रहते हुए श्रीकेसरियाजीके मंदिरके लेखोंकी जो नकलें आपने ली थीं उनकी एक सेट नकल चीनुभाई सेठके मंगवाने पर हमने उनको बंबई भेज दिया है।"

सिंघीजीके साथ फिर उदयपुर जाना

सिंघीजीके इस पत्रकी सूचनानुसार यथासमय मैं बंबई पहुंचा। वहां वकील बेरिस्टरों आदिसे परामर्श कर और उनको साथ ले कर हम सब उदयपुर पहुँचे। चूं कि– उदयपुर स्टेटने इस केसकी सुनवाईके लिये एक विशिष्ट कमिशन बिठाया था और उसका प्रेसिडेन्ट एक अंग्रेज ऑफिसर मि. ट्रेंच था, इसलिये सेठ आणन्दजी कल्याण-जीके प्रतिनिधियोंने सोचा कि केसकी कार्रवाई चलानेके लिये कोई अच्छा प्रसिद्ध कॉन्सल होना चाहिये। इससे उन लोगोंने सर् चिमनलाल सेतलवड जैसे सबसे बड़े प्रतिष्ठित और नामी बेरिस्टरको इस कामके लिये नियुक्त किया। इसके मुका बिलेमें, दिगम्बर पार्टीको भी कोई ऐसा ही प्रसिद्ध बेरिस्टर अपनी ओरसे रखना आव-श्यक हुआ और इसलिये उसने मि. महम्मद अली जिन्नाको बुलाया। उदयपुर जैसे स्टेटमें ऐसे बडे बडे बेरिस्टरोंका आना और उनके द्वारा केशरियाजी तीर्थका मामला चलाया जाना—बडी हलचल पैदा करनेवाली बात थी। सूरजपोलके बहार आए हुए, फतेह मेमोरियल नामक सरकारी मुसाफर खानेमें, ऊपरके सब कमरे रोक लिये गये जिनमेंका आधा हिस्सा श्वेताम्बर पार्टीने और आधा हिस्सा दिगम्बर पार्टीने कब्जे किया। इधर श्वेताम्बर पार्टीने सर् सेतलवडको अपना केस तैयार करनेके लिये मददके रूपमें कुछ दो-तीन और वकील-बेरिस्टरोंको नियुक्त किया और उसी तरह दिगम्बर पार्टीने भी मि. जिन्नाको मदद करनेके लिये कुछ अन्य वकीलोंको नियुक्त किया। इस प्रकार बड़ी भारी तैयारीके साथ, उदयपुरके सरकारी बगीचेमें स्थित विक्टोरिया मेमोरियल हॉलमें केसकी कार्रवाई शुरू हुई। स्टेटकी ओरसे नियुक्त कमि-शनमें, मि. ट्रेंचके अतिरिक्त राजाधिराज बनेडा, मि. रतिलाल अंताणी और एक और सज्जन थे।

केसके स्वरूपका परिज्ञान

जब तक केसकी वास्तविक कार्रवाई शुरू नहीं हुई तब तक यह किसीको पता नहीं था कि केसका स्वरूप क्या है और उसमें किसको क्या साबित करना है? दोनों पक्षवालोंने सोचा था कि ज्यादहसे ज्यादह ५-६ दिन केस चलेगा और एक सप्ताहके

भीतर-भीतर सब कार्रवाई पूरी हो जायगी। इसी गिनतीसे दोनों पार्टियोंने सर् सेतलवड और मि. जिन्ना जैसे बडे कॉन्सलोंको, बडी भारी फीस पर, वहां बुलाया था। पर तीन-चार दिनकी कार्रवाईके बाद तो कुछ पता चला कि केसका स्वरूप क्या है और उसके लिये किस किस प्रकारके सबूत पेश किये जाने चाहिये और किस तरह उनका परीक्षण होना चाहिये। पहले सबकी यह कल्पना थी कि केशरियाजीमें जो पूजापद्धति, अधिकारव्यवस्था और आय-व्ययव्यवहारके संबंधमें परंपरागत रूढि प्रचलित है उसीके विषयमें विचार होगा और उस परसे किस पक्षका वहां पर कितना अधिकार साबित होता है यह निर्णय किया जायगा। पर केसकी सुनवाईके आरंभ होने पर सबसे पहले यह प्रश्न खड़ा हो गया कि वास्तवमें यह मन्दिर किसका बनाया हुआ है, कब बना है, इसमें जो मूर्ति प्रतिष्ठित है वह किस पक्षकी है? इस प्रश्नका जवाब तो एक प्रकारसे खूब गहरे ऐतिहासिक संशोधनका विषय था। उसके लिये वहाँके सब शिलालेखोंकी जांच होनी चाहिये, जितने पुराने कागजपत्र हैं उनकी जांच होनी चाहिये, जितने भी साहित्यगत उल्लेख उस तीर्थके बारेमें प्राप्त होते हैं उनकी आलोचना होनी चाहिये, मन्दिरकी स्थापत्य रचनाके विषयमें वास्तुशास्त्रोंका अवलोकन होना चाहिये, पूजा और प्रतिष्ठापद्धतिके लिये प्रतिष्ठाकल्पोंपरसे परीक्षण होना चाहिये, मन्दिरमें स्थापित अन्यान्य देव-देवियोंकी मूर्तियोंका स्वरूप जाननेके लिये रूपमण्डन आदि शास्त्रोंका विधान विचारना चाहिये–इत्यादि अनेक प्रकारके प्रश्न इस विषयमें उपस्थित हो गये और विना इन प्रश्नोंका उत्तर मिले केसका कोई स्वरूप निश्चित होना संभव नहीं था। यह समस्या देख कर सब कोई विलक्षितसे हो गये। न इसके लिये श्वेताम्बरोंकी कोई तैयारी थी न दिगम्बरोंकी। ५–७ दिनकी कार्रवाईके बाद फिर इसकी तैयारी होने लगी। इससे मालूम हुआ कि केस कम-से-कम ५-६ सप्ताह तक चलेगा और उसके लिये बहुत कुछ खर्चा करना पडेगा।

केसकी कार्रवाईका सारा भार सिंघीजी पर

केसने जो स्वरूप पकडा, वह एक प्रकारसे मेरा तो अभ्यस्त विषय था पर और सबके लिये घोर अन्धकारसा था। सिंघीजी इस विषयके निष्णात तो नहीं थे पर उनकी समझमें सारी बातें बडी आसानीसे आ जाती थीं। उस केसका सारा मसाला तैयार करनेका भार, एक तरहसे हम दोनोंके सर पर आ पडा था। और सिंघीजीको तो आर्थिक भार भी अपने सरपर वैसा ही बडा और उठाना पडा। खाने-पीने, रहने करनेका सब इन्तजाम उन्होंने अपनी जेबसे किया था। १५–२० आदमी रोज उनके रसोडेमें जीमते थे। चाय, दूध, मिठाई, मेवा और फल आदि सबके लिये सदा उपस्थित रहते थे। दो-दो चार-चार दिन केसकी सुनवाई हो कर फिर बीचमें कुछ दिन कार्रवाई बन्ध रहती थी और कॉन्सल वगैरह आते जाते रहते थे।

एक दिन सबके सब केशरियाजीका मन्दिर प्रत्यक्ष देखनेके लिये भी वहां पहुंचे। जिन्ना साहब भी उसमें शामिल थे। सर् सेतलवड मूल मन्दिरके गर्भागारमें गये और उन्होंने मूर्ति वगैरहको ध्यानसे देखा। मन्दिरके अन्दरके भागमें जो दो-एक शिलालेख थे और जिनके विषयमें आगे चल कर बहुत कुछ वाद-विवाद हुआ, उनको

भी उन्होंने देखा और मैंने उन्हें पढ़ कर, और साथमें उनका अर्थ भी करके सुनाया। बाहर निकल कर सर् सेतलवडने मि. जिन्नाको कहा कि अन्दर कुछ कामके शिलालेख हैं जिनको मैंने गौर करके देखा है। इस पर जनाब जिन्नाने कहा कि चूंकि मैं अन्दर नहीं जा सकता और उनको देख नहीं सकता, इसलिये मैं उनके बारेमें कुछ नोट नहीं लेना चाहता। ऐसी और भी बहुतसी बातें वहां देखी-सुनी गईं जिनके विषयमें जिन्ना साहबकी समझमें कुछ नहीं आया और वे विमनस्कसे हो गये। उसके दूसरे दिन हम सब लोग उदयपुर राज्यकी सबसे बड़ी झील जयसमुद्र-जो उदयपुरसे कोई ३०-४० मीलकी दूरी पर है-देखने गये। झीलमें इधर उधर घूम आनेके लिये एक छोटीसी नौका रखी हुई थी, जिसमें सर् सेतलवड, मि. जिन्ना तथा उनकी बहन, सिंघीजी, मैं और कुछ दो-एक और सज्जन सवार हुए। सिंघीजीने मुझसे धीरेसे कहा कि 'यह खूब मौका आया है जिसमें सर् सेतलवड और मि. जिन्ना जैसे दोनों परस्पर विरोधी राजकीय दलके नेता एक साथ एक नैयामें बैठे हुए हैं।' पर वे दोनों परस्पर चूप थे। कोई बातचीत करना पसन्द नहीं करते थे। मैंने यों ही मखौल करते हुए कहा कि 'जिन्ना साहब! यह क्या ही अच्छा हो, यदि आप और सर् सेतलवड दोनों इस एकान्त और प्रशान्त स्थानमें हिंदुस्थानकी राजकीय आजादीका कोई अच्छा रास्ता ढूंढ निकालनेका तरीका सोचें और देशकी राजकीय नैयाको दोनों परस्पर विरुद्ध दिशामें धकेलते रहनेकी कोशीशके बदले, अपनी इस नैयाको चला-नेवाले आगे और पीछेके दोनों मल्लाहोंकी तरह, एक ही दिशामें उसे चला कर किनारे पहुंचानेका सत् प्रयत्न करें।' मि. जिन्नाने हँसते हुए कहा-'उस नावमें हम अकेले दो ही तो नहीं है. बीचमें (मुझे लक्ष्य कर कहा) आपके जैसे खद्दरधारी भी तो बहुत बैठे हैं जिनको कहां जाना है इसका कोई पता ही नहीं है और मौका मिल जाय तो हम दोनोंको उठा कर झीलके बीचमें डूबो देना चाहते हैं। इसलिये किसी किनारे पहुंचनेकी अपेक्षा अभी तो हमको अपनी जान ही बचानेकी फिक्रमें मशगूल रहना पडता है। Is'nt true sir Chimanlal? (क्या यह सच नहीं है सर् चिमनलाल?) ऐसा कह कर उन्होंने सर् सेतलवडको सम्बोधित किया। मैं और सिंघीजी दोनों हंस पडे। इतने ही में नाव तालावके किनारे पहुंच गई और हम सब उसमेंसे उतर कर, अपनी अपनी मोटरोंमें बैठ, रास्ते पड़े।

कॉन्सलोंका बदलना

जैसा कि मैंने उपर सूचित किया केशरियाजीके केसकी सुनवाई बहुत दिनतक होती रही और उसमें अनेक तरहके ऐतिहासिक और सांप्रदायिक प्रश्न उपस्थित होते रहे। मि. जिन्नाने फिर आनेसे इन्कार कर दिया और इधर सर् सेतलवड भी उकता गये। इसलिये उन्होंने भी अपनी ब्रीफ अपने पुत्र श्रीमोतीलालजी सेतलवडको देनेका अपना अभिप्राय हम लोगोंसे प्रकट किया और यदि श्रीमोतीलाल न आ सकें तो फिर श्रीमुंशीजीको बुलानेका अभिप्राय दिया। हम लोगोंने अनुभव किया कि केसको चलानेमें सर् सेतलवडको बहुत कष्ट हो रहा है और जिस प्रकारके पुरावों और प्रमाणोंकी वहां उपस्थिति होती रहती हैं वे बहुत ही पारिभाषिक और सांप्रदायिक

अर्थवाले होनेसे उनका हार्द और भावार्थ समझने–समझाने में उनको बहुत त्रास होता है। इसलिये किसी अधिक उत्साही कॉन्सलको बुलाया जाय तो ठीक हो। सर् सेतलवडको सब प्रमाण समझानेका काम मेरे पर था। कोर्टमें उनके बराबरमें मेरी कुर्सी लगी रहती थी और बादमें हमारे पक्षके अन्य बेरिस्टर वगैरह की। सन्ध्याको भोजन वगैरह करके रातको ८ बजे हम सर् सेतलवडके डेरे पर जाते और उपस्थित प्रमाणोंके पक्ष-विपक्षमें अगले दिनके लिये प्रश्नावलि आदि तैयार करते। इस तरह रोज रातके बारह बजते। सर् सेतलवड बराबर सब प्रमाणोंको सुनते, उनके अर्थ वगैरह पूछते और फिर अपने लिये नोटस् आदि तैयार करते। उतनी वृद्ध उम्रमें भी, इस प्रकार उनका वैसा परिश्रम देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य होता था। भारतवर्षके एक लब्धप्रतिष्ठ और बहुत बडे बेरिस्टरके साथ बैठ कर इस प्रकार काम करनेका, अपने जीवनमें अकल्पित प्रसंग मिलनेसे मुझे तो एक प्रकारका कौतूहलसा होता था और कोर्टमें सुनवाईके समय बेरिष्टरों का परस्पर वाग्युद्ध होता देख मनमें कुछ आनन्दसा आता था।

सर् सेतलवडने जब आनेकी अनिच्छा प्रदर्शित की तो मेरी और सिंघीजीकी इच्छा हुई कि हमें अब श्रीमुंशीजीको बुलाना चाहिये। उनके आनेसे केसके कामकी गति बढ़ेगी और उसका जल्दी निकाल होगा। सिवाय ये स्वयं संस्कृत भाषा आदि अच्छी जानते हैं और ऐतिहासिक संशोधनका भी इनको उत्कृष्ट ज्ञान है इसलिये इनकी उपस्थितिसे विषयका गोलमालपन भी बहुतसा मिट जायगा और क्लियर आर्ग्युमेंटका रास्ता साफ हो जायगा। पर, आणन्दजी कल्याणजीके प्रमुख प्रतिनिधि स्व० सेठ साराभाई डाह्याभाईका–जिनका सम्बन्ध सर् सेतलवडके साथ और और कारणोंसे भी बहुत घनिष्ठ था–आग्रह था कि जब तक श्रीमोतीलाल सेतलवड उपलब्ध हों तब तक अन्य किसीको नहीं बुलाना चाहिये। पर सिंघीजीकी आग्रह पूर्ण इच्छा रही कि यदि श्रीमुंशीजी मिल जाय तो पहले उन्हींको निश्चित करना ठीक होगा और इसके लिये मुझसे उन्होंने अनुरोध किया कि मैं खुद बंबई जाऊं और श्रीमुंशीजीको उदयपुर ले आऊं। तदनुसार, आणन्दजी कल्याणजीके मैनेजरको साथ लेकर मैं बंबई आया और सर् सेतलवडकी ऑफिसमें बैठ कर उनसे परामर्श किया। उनकी इच्छा हुई कि पहले श्रीमोतीलालसे पूछ लिया जाय, क्यों कि उनसे इसबारेमें पहले कुछ बात चीत हो चुकी है। यदि वे न आ सकें तो फिर श्रीमुंशीजीको पूछना चाहिये। उन्होंने उसी समय श्रीमोतीलालको टेलीफोन किया और उनसे उदयपुर जानेके विषयमें बात चीत की। श्रीमोतीलालने जाना स्वीकार कर लिया। उस रातको सर् चिमनलालके मकान पर हम लोगोंकी मीटींग हुई और श्रीमोतीलालको उन्होंने केसका सारा हाल समझाया और कहा की 'मुनिजी इस विषयमें बहुत "एक्सपर्ट" हैं सो तुमको सब बातोंमें इनसे बहुत कुछ सहायता मिलती रहेगी' इत्यादि। उसी दिन मुझे बंबईमें खबर मिली कि–दिगम्बर पार्टीने श्रीमुंशीजीको उदयपुर लाना निश्चित कर लिया है! अतः इनसे मिलना भी अब निरर्थक था।

उदयपुरमें श्रीमोतीलालजी सेतलवड

दूसरे दिन फ्रंटियरमेलसे हम श्रीमोतीलालजीको साथ लेकर उदयपुरके लिये रवाना हुए। सिंघीजीने जब यह सुना कि–श्रीमुंशीजीको हम अपने पक्षकी ओरसे ला न सके इतना ही नहीं वरन् वे सामनेवाली पार्टीकी ओरसे वहां आ रहे हैं, तब उनको बहुत बुरा लगा और वे हतोत्साहसे हो गये। एक तो यों ही बहुत दिनोंसे मामला अस्तव्यस्तसा चल रहा था और उसके लिये व्यर्थका ही बहुतसा खर्च हो रहा था; जिससे सिंघीजी उकता रहे थे। इसमें फिर उनकी इच्छानुसार कॉन्सल वगैरहका प्रबन्ध नहीं हो रहा था इससे उनकी बेचैनी और भी अधिक बढ़ी। मैंने उन्हें बहुतसी बातें समझाई और उनको कहा कि 'श्रीमोतीलालजी भी वैसे ही बडे बुद्धिमान् प्रसिद्ध वकील और बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं एवं सब बातोंमें बडे कुशल हैं; इसलिये हमारे केसमें कोई त्रुटि न आने पावेगी। और सामनेकी पार्टीकी ओरसे जो श्रीमुंशीजी आ रहे हैं वह भी एक प्रकारसे हमारे हकमें अच्छा ही है। क्यों कि वे स्वयं विद्वान् और इतिहासज्ञ हैं इसलिये फिजूलकी कोई बातोंमें वे अपना समय नष्ट न करेंगे, और हमारी दलीलोंको समझनेकी और उनका वास्तविक उत्तर देनेकी कोशीश करेंगे जिससे हमारा रास्ता जल्दी साफ हो जायगा और हमें उनके साथ झगडनेमें एक प्रकारका आनन्दसा आयगा' इत्यादि।

रातको हम श्रीमोतीलालजीके साथ बैठे और करीब दो बजे तक केसकी बातोंका पुनरावलोकन करते रहे तथा उनको सब प्रमाण समझाये गये। वे बडी शीघ्रतासे अपने नोटस् तैयार करते गये और अनेक नये नये प्रश्न पूछते गये। दूसरे ही दिन कोर्टमें जब सुनवाई शुरू हुई तो श्रीमोतीलालजीने नये ही ढंगसे काम लेना शुरू किया और कमिशनको भी कई नये मुद्दे विचारनेकी सूचना दी। बंबई हाईकोर्टके एक बडे नामी वकील होनेसे तथा कानूनके पारगामी विद्वान् होनेसे उन्होंने कमिशनकी कार्रवाईकी भी कडी समालोचना करनी शुरू की और कई अवास्तविक और अप्रासंगिक प्रमाणोंको उपस्थित करनेकी इजाजत देकर केसको किस तरह अनावश्यक लंबा चौडा बना दिया गया है इस विषयमें उन्होंने कोई दो घंटे बहस की, जिससे कमिशनके मेंबरोंको भी अपनी कुछ लघुतासी प्रतीत हुई। उन्होंने उस दिन कमिशनको अपने केसके कुछ महत्त्वके मुद्दे सूचित कर दिये जिसमें उन्होंने कह दिया कि हमको अपने केसमें सिर्फ इन्हीं मुद्दोंके विषयमें कहना है और विचार करना है। कार्रवाईके खत्म होने पर शामको जब मकान पर हम लोग आये तो सिंघीजी ठीक प्रसन्नसे मालूम दिये और बोले कि–'नहीं आदमी तो अच्छा होंशियार मालूम देता है और मामलेको ठीक तरह संभाल लेगा ऐसी आशा होती है।' उस दिन रातको फिर हमारी मीटींग हुई जो दो बजे तक चलती रही। श्रीमोतीलालजीने कुछ नये मुद्दे उपस्थित किये जिनके विषयमें कुछ ग्रन्थोंमेंसे प्रमाण खोज निकालनेकी जरूरत थी। दूसरे दिन तो उनको पेश करना था। इसके लिये मुझे सारी रात जगना पडा। मैं अपने कमरेमें उन पुस्तकोंको टटोल रहा था और प्रमाणोंको इकट्ठा कर रहा था। मकानमें मच्छड बहुत हो गये थे और वे बडे परेशान कर रहे थे। सिंघीजी तीन बजे उठ

कर मेरे कमरेमें आये तो उन्होंने देखा कि मैं काम कर रहा हूं और मच्छड़ मुझे बुरी तरह सता रहे हैं। उसी समय अपने कमरेमें जा कर वे ५-७ अगरबत्ती ले आये और उनको सुलगा कर सारे कमरेमें खडे खडे इधर उधर उनको घुमाते रहें। कोई घंटे डेढ घंटे तक वे इस तरह करते रहें और मेरे पाससे मच्छड़ोंको दूर भगाते रहें। मैंने कहा 'बाबूजी, आप क्यों इतना कष्ट उठा रहे हैं? जाइये और सोइये। हमको तो ऐसी बातोंकी आदत पडी हुई है। हम तो सारी रात इसी तरह बैठ कर अपना काम करते रहेंगे।' उन्होंने कहा-'हम तो ३-४ घंटे खूब मजेमें सो लिये हैं और आप तो सारी रात इसी तरह बैठे बैठे काम कर रहे हैं। हमसे और कुछ नहीं बने तो हम इतनी सेवा तो करें' इत्यादि। सिंघीजीकी उस रातकी वह शुश्रूषा-वृत्ति और कार्यकी उत्सुकता मुझसे कभी न भूली जाय वैसी मेरे हृदयमें जमी हुई है। उनके जैसे धनिक, सुखशील और राजसी स्वभाववाले व्यक्तिके दिलमें ऐसी ज्ञानभक्ति और सेवावृत्ति हो सकती है, इसकी मुझे कभी कल्पना नहीं हुई थी। मैं उनके कथनको सुन कर मुग्धसा हो गया-और बहुत देर तक उनकी तरफ देखता रहा। मैंने देखा कि उनके मुखपर एक प्रकारकी प्रसन्नता और नम्रताकी प्रभा फैली हुई है और वे शान्त एवं सहज सन्तोषमें निमग्न है।

श्रीमुन्शीजीका उदयपुर आना

दूसरे दिन श्रीमुंशीजी भी दिगम्बर पार्टीके कॉन्सलके तौर पर वहां आ पहुंचे। उन्होंने भी आते ही कोर्टके काममें बडी चपलता पैदा कर दी और अपने पक्षके जो मुद्दे साबीत करने थे उनके विषयमें स्पष्ट निर्देश कर दिया। अभी तक जितने प्रमाण और पुरावे दाखिल किये गये थे और जिस ढंगसे उन पर विचार हुआ था उन सबको उन्होंने काट-छांट कर उनमेंसे कुछ महत्त्वके प्रमाणों पर ही विचार करना आवश्यक बतलाया और बाकी सबको निकाल अलग किया। इधर श्रीमोती-लालजी और उधर श्रीमुंशीजी जैसे बंबई हाईकोर्टके सबसे बडे प्रसिद्ध और अखिल भारतीय प्रतिष्ठावाले कानूनके पारगामी विद्वान् वहां उपस्थित होनेसे, स्टेटके सारे वातावरणमें और खास कर उस कमिशनके काममें बडी सजीवता और तत्परता उत्पन्न हो गई।

श्रीमोतीलालजी और श्रीमुंशीजी दोनों स्टेट-गेस्ट थे और स्टेटके गेस्ट हाउसमें ही वे ठहरे थे। दोनोंके कमरे पास-पासमें थे। हम लोग रातको ८ बजे अपने कॉन्सल श्रीमोतीलालजीसे परामर्श करनेके लिये और अगले दिनके प्रमाणों और दलीलोंकी चर्चाके लिये मीटींगके रूपमें वहां गेस्ट हाउसमें इकट्ठे होते। सामनेकी पार्टीवाले सज्जन भी उसी तरह श्रीमुंशीजीके साथ परामर्श करने एकत्र होते। व्यावसायिक कामकाजके खत्म होने पर, पहले ही दिन मैं श्रीमुंशीजीकी रूममें मिलने गया, तो देखा कि वे अकेले बैठे हुए अपने केसके ५००-६०० पेज उथला रहे हैं और उनमें कुछ तथ्य है या नहीं इसकी खोज कर रहे हैं। बोले-'मुझे तो इस केसके बारेमें इसके पहले एक अक्षरका भी पता नहीं था। बंबईसे आते गाडीमें कल रातको जो कुछ इन काग-जोंमेंसे सार निकाल सका उसके कुछ फुटकर नोटस् कर लिये हैं और इसी परसे

मैंने अपनी आजवाली दलीलें तैयार की थी। कागजोंके देखनेसे पता चलता है कि इसके पहले जो कार्रवाई हो गई है वह सब विना मतलबकी थी और केसका उपस्थापन ठीक ढंगसे नहीं किया गया है। हमारे पण्डितोंको (अर्थात् दिगम्बर पक्षवालोंको) अपने प्रमाणों आदिके विषयमें कोई ठीक जानकारी नहीं है और उनसे जो कुछ सवाल करता हूँ उसका वे ठीक उत्तर नहीं दे सकते।' मैंने श्रीमुंशीजीसे कहा–'मैं तो सिंघीजीके आग्रहसे बंबई खुद आपको अपने पक्षकी ओरसे बुलाने आया था पर सर् चिमनलालने श्रीमोतीलालजीको तय कर लिया इससे फिर मैं मिलने नहीं आया। परन्तु विधाताका योग देखिये कि आपका यहाँ आना निश्चित था इसलिये उसने हमारे सामनेकी पार्टीकी ओरसे आपको यहाँ उपस्थित कर दिया।' इत्यादि प्रकारकी गपशप कर हम अपने अपने स्थान पर पहुंचे।

दूसरे दिन कोर्टमें जब काम शुरू हुआ तो एक शिलालेखके बारेमें चर्चा चल पड़ी। यह लेख दिगम्बर पक्षकी ओरसे एक मुख्य प्रमाणरूपमें पेश किया गया था, पर लेखमें एक जगह ऐसी भद्दी गलती खुदी हुई थी जिससे लेखका हार्द कुछ भी समझमें नहीं आता था। मुझे तो उसकी चावी मालूम थी पर सामनेवालोंको उसकी कुछ कल्पना नहीं थी। इससे गलतीका लाभ उठा कर हमारे पक्षके कॉन्सलने उस पर खूब अपना बौद्धिक जोर बतलाया और श्रीमुंशीजीके संस्कृत ज्ञानकी खूब परीक्षा ली गई। उनके पण्डितोंकी बुद्धि तो कुण्ठितसी हो गई थी और मुंशीजी खूब ऊपर नीचे देख देख कर अपना पेलियोग्राफिकल (प्राचीन लिपिविषयक) ज्ञान रिवाइज कर रहे थे और मन ही मन हंस रहे थे। मुंशीजीके पास ही कमिशनके एक मेंबर (स्व०) श्री रतिलाल अंताणी बैठे हुए थे, जो अपने आपको प्राचीन लिपिका अच्छा ज्ञाता समझते थे। उन्होंने लेखके उस अंशको बिल्कुल और ही ढंगसे पढ़ा और कहा कि–'इसमें तो कोई महादेवके मन्दिरका उल्लेख मालूम देता है।' मुंशीजीसे रहा नहीं गया और वे मुझको लक्ष्य कर बोले कि–'मुनिजी! बताओ न यह क्या शब्द है? यों ही निकम्मा सर खराब कर रहा है।' इस पर श्रीमोतीलालजीने मुझे हाथसे दबा कर चुप रहनेका इशारा किया और बोले कि 'यहां पर नहीं बंबई जा कर पूछना, वहां बतावेंगे!' सुन कर सब हंस पडे।

श्रीमुंशीजीसे जेलमेंसे निकले बाद फिर मेरी कोई मुलाकात नहीं हुई थी सो इस प्रकार उदयपुरमें एक साथ रहनेका मौका मिल जानेसे हम दोनोंको बडा आनन्द आया और उसमें फिर सिंघीजीका मेल हुआ। इससे इतने दिन पहले जो उदयपुरमें खूब परेशानी उठानी पड़ी और मनको ग्लानि हुई वह दूर हो गई और हमारा समय एक प्रकारसे बडे आनन्दमें बीतने लगा। प्रायः रोज शामको एक साथ घूमने जाते और जेल-निवासके सह-स्मरण तथा भविष्यमें किसी साहित्यिक संगठनके विचार आदिमें अपना समय व्यतीत करते थे। कभी कभी सिंघीजी भी साथ हो लेते। उसी प्रसङ्गमेंसे सिंघीजीका भी श्रीमुंशीजीके साथ निकट मैत्रीका सूत्रपात हुआ जो आगे जा कर 'भारतीय विद्या भवन' को इस प्रकार अनन्य सहकार देनेके रूपमें फलित हुआ।

केसके कामके समाप्ति

श्रीमुंशीजीके आये बाद केशरियाजीके केसमें खूब तेजी आई और कोई ९–१० दिनमें ही सारी कार्रवाई खत्म हो गई। कोई ढाई–तीन महिने उदयपुरमें पडे रहनेसे बडी बे चैनी हो रही थी सो दूर हुई और केसका मामला पूरा होते ही वहाँसे रवाना होनेका प्रोग्राम तय हुआ।

सिंघीजीको भी कलकत्ते जानेकी बड़ी उतावली थी और उनको अपने कारोबारकी कितनी ही महत्त्वकी समस्यायें उन्हें विवश कर रही थीं। पर केशरियाजीका यह मामला एक प्रकारसे उन्हींके सर पर पड गया था, इसलिये इसका अन्त हुए बिना वे वहाँसे खिसकना नहीं चाहते थे। इस मामलेमें जितना श्रम सिंघीजीने उठाया उतना और किसीने नहीं उठाया। बहुत कुछ समय और शक्तिके व्ययके उपरान्त उन्होंने आर्थिक व्यय भी काफी किया। कोई १० हजारके लगभग उनका वहाँ पर खर्च हुआ होगा। यदि सिंघीजी न होते तो न मालूम केशरियाजीका वह मामला किस तरह चलता और कैसा उसका स्वरूप होता।

इसका मतलब यह नहीं समझना चाहिये कि सिंघीजी तीर्थोंके झगडेके बारेमें कोई खास दिलचस्पी रखते थे या अन्यान्य सांप्रदायिक सेठोंकी तरह दिगम्बर-श्वेताम्बरकी पक्षापक्षीमें उनको आनन्द आता था। वे इस विषयमें बहुत निष्पक्ष थे और ऐसे झगडोंसे तो उन्हें एक प्रकारकी नफरत थी। केशरियाजीके मामलेमें वे इस तरह फँस गये उसका कारण खास शान्तिविजयजी महाराज थे। उन्होंने इस तीर्थके निबटारेके लिये उक्त रीतिसे जब अनशन कर लिया और इस मामलेको वैसा रूप दे दिया, तब उनकी तरफ विशिष्ट भक्ति होनेके कारण सिंघीजीको उस प्रवृत्तिमें योग देना पडा और फिर धीरे धीरे इस प्रकार केसका सारा मामला संभालनेका उनको फर्ज पडा। यह तो उनका खास स्वभावगत लक्षण था कि जिस कामको वे अपने हाथमें लेते उसको अपनी पूरी शक्ति लगा कर पूरा करते। जैसे वैसे काम करना या बीचमें ही उसे छोड देना यह उनकी प्रकृतिके सर्वथा विरुद्ध था।

उदयपुरके कुछ स्थानोंका निरीक्षण

उदयपुरमें रहते हुए हम दोनों आसपासके ऐतिहासिक एवं दर्शनीय स्थानोंको प्रायः देखने जाया करते थे। एक दिन एकलिंगजीका स्थान देखने गये। आते हुए जरा देर हो गई थी और नागदाके पासकी घाटी पार करते अँधेरा हो गया था। घाटी चढ़ते चढ़ते मोटरमें कुछ खराबी हो गई और इसलिये वहां कुछ रुक जाना पडा। हम दोनों मोटरमें बैठे थे और ड्राइवर इन्जीनकी खराबी सुधार रहा था। इतने ही में बगलकी झाड़ीमेंसे एक बडासा शेर निकल आया और वह हमारे रास्तेमें कोई २०–२५ फुटके फासले पर सडकके बीचमें खडा हो कर, हमारी ओर टकटकी लगा कर देखने लगा। ड्राइवर बडा होंशियार था। वह एकदम कूद कर अपनी सीट पर बैठ गया और तेजदार बत्ती बना कर खूब जोरोंसे होर्न बजाने लगा। नशीबसे चक्रको घुमाते ही मोटर भी स्टार्ट हो गई। उसने बड़ी तेजीसे मोटर छोड दी। जैसी मोटर

शेरके नजदीक पहुंची कि शेरने लंबी छलांग मारी और वह हमारी मोटरके ऊपर हो कर पीछे की ओर कूद पडा। इतनेमें तो मोटर पूरी तेजीके साथ आगे बढ़ गई और शेर झाड़ीमें घुस गया। हम अपनी खुशनशीबी मनाते हुए और ड्राइवरकी होंशियारीकी प्रशंसा करते हुए मकान पर पहुंचे। सिंघीजीने ड्राइवरको ऊपर बुलाकर उसे मिठाई वगैरह खानेको दी और फिर २१ रूपये बक्षीसके दिये।

वहां उदयपुरमें इस तरह केशरियाजीके मामलेमें उलझे रहने पर भी, उनका जो निजी शोख प्राचीन शिक्के, चित्र, शिल्पके नमूने–इत्यादिकका संग्रह करनेका था वह चालू था। नाथद्वारे आदिसे कई लोग पुराने चित्र आदि ले आते थे और यदि उपयोगी मालूम दिया तो सिंघीजी उनको योग्य मूल्य दे कर तुरन्त खरीद लेते थे।

मैं एक दिन घूमनेके लिये अकेला यों ही शहरसे ४–५ मीलके फासले पर बहुत ही एकान्त प्रदेशमें चला गया। वहां जंगलमें एक पहाडीकी खीणमें एक छोटासा शिवालय देखा जो बिल्कुल टूटा हुआ था पर उसके मण्डपका एक तोरण अखंड रूपसे खड़ा था। छोटासा नाजूक तोरण था जो सिर्फ ४ ही अखण्ड शिलाखण्डोंसे बनाया गया था पर उसका शिल्पकाम बहुत ही सुन्दर, आकर्षक और प्रमाणोपेत था। मैंने सिंघीजीसे आ कर उसका जिक्र किया तो वे उसे देखनेके लिये बडे उत्सुक हुए। पर मैंने कहा वहां जानेका मोटर आदिका कोई रास्ता नहीं मालूम देता और ४–५ मील पैदल जाना और फिर आना आपके लिये शक्य नहीं मालूम देता। तब वे बोले 'क्या आप हमको इतने कमजोर और अपंग समझते हैं? देखिये हमारी परीक्षा कर लीजिये हम चल सकते हैं या नहीं।' दूसरे ही दिन सवेरे नास्ता-पाणी कर हम दोनों उस जगहको देखने चल पडे। पथरीले और ऊंचेनीचे पहाडी भागको पार करते हुए हम वहां पहुंचे। सिंघीजीने मन्दिरके उस भग्नावशेष तोरणको बडे ध्यानसे देखा और वे बडे प्रसन्न हुए। बोले–'हमारा चलना बिल्कुल सार्थक हो गया। इस तोरणको देख कर तो मन होता है कि यदि हम इसे उठा कर कलकत्ता ले जा सकें तो उसके लिये हजार–दो हजार रूपया भी खर्चनेको हम तैयार हो जांय।' मैंने कहा–'यह तो इस मेवाड राज्यमें शक्य नहीं है; और ऐसे तो इस दरिद्र मेवाडमें हजारों मन्दिर जहां वहां टूटे फूटे पड़े हैं जिनकी तरफ कभी कोई देखनेवाला भी नहीं है और जिनके उत्कृष्ट शिल्पका ग्रामीणोंके लडके पत्थर मार मार कर प्रतिदिन नाश करते रहते हैं।' इस तरहकी बातेंचीतें करते कोई १२ बजे हम वापस मकान पर पहुंचे और नहा-धो कर भोजन करने साथ बैठे। तब बोले कि 'कहिये हम चलनेकी परीक्षामें पास हुए या नहीं!' मैंने सचमुच ही देखा कि सिंघीजीको उसका कोई वैसा थाक नहीं मालूम दिया और रोजकी तरह अपना काम करते रहे।

सिंघीजीकी उदयपुरमें आर्थिक उदारता

सिंघीजीने उस तीर्थके मामलेमें जितना खर्चा वहां पर उठाया था उसका जिक्र तो ऊपर किया ही है। उसके उपरान्त भी संस्थाओं आदिको उन्होंने वहां कितना ही दान दिया था। उदयपुरकी सार्वजनिक शिक्षाविषयक सुप्रसिद्ध संस्था 'विद्या भवन' (डॉ. श्रीमोहनसिंहजी महेता द्वारा स्थापित) को एक हजारका दान दिया।

जैन बोर्डिंग हाउसको शायद दो-ढाई हजारका दान किया। महिला विद्यालयवालोंने, वहां पर मेरे हाथसे 'कलाभवन' का खातमुहूर्त कराया, जिसमें ५०० रूपये दिये। इस प्रकार और भी कितनी ही फुटकर रकमें उन्होंने यथायोग्य स्थानोंमें दानके रूपमें दीं। सिंघीजीका दान करनेका और खर्च करनेका दिल बहुत बड़ा था, पर वे सदा अपनी प्रसिद्धिसे प्रायः दूर रहते थे। किसीको जो कुछ देते थे उसका जिक्र प्रायः वे किसीसे नहीं करते थे। कोई खास प्रसङ्ग आ जाने पर ही उस बातका उल्लेख हो जाता था।

उस मामलेमें वहां पर, और भी कोई दो-चार बडे कहलानेवाले सेठ आते जाते रहते थे और उनमेंसे एक तो अपने आपको शान्तिविजयजी महाराजके वैसे ही भक्त मानते-मनाते थे। रसोडाका जो भारी खर्च सिंघीजीने वहां उठाया उसमें वे सेठ भी बराबर अपने नोकरोंके साथ खानापीना करते थे और सिंघीजीसे शुरूमें आग्रह भी करते थे कि-'आपको इस रसोडेके खर्चेमें हमको भी आधा हिस्सा लेने देना होगा' इत्यादि। सेठजीने सोचा होगा कोई दो सौ चार सौ रुपये खर्च आवेंगे सो हम भी उसमें नाम कमा लेंगे। पर जब देखा कि खर्चेकी तादाद तो बहुत बडी हो गई है-दो सौ चार सौकी जगह कई हजारने ले ली है; तब वे फिर कभी भूल कर भी इस बातको न निकालते थे और सिंघीजीको आतिथ्यका पुण्य बराबर देते रहते थे। उदयपुरसे चलते समय सिंघीजीने इस बातका यों ही मजाकमें मुझसे जिक्र कर दिया था।

उदयपुरसे चित्तोडको प्रस्थान

ज्यों ही कोर्टका मामला खत्म हुआ, हम सब वहांसे उसी दिन रवाना होनेको तैयार हुए। पर उदयपुरके जैनसमाजने कमिशनके मेंबरों एवं बाहरसे आये हुए वकीलों इत्यादिके साथ सिंघीजी आदिको एक चायपार्टी दी जिसमें श्रीमुंशीजी, श्रीमोतीलालजी आदि सब सम्मीलित हुए। दूसरे ही दिन हम वहांसे सब साथमें रवाना हुए। रातभर चित्तोडके स्टेशन पर ठहर कर, दूसरे दिन सवेरे चाय-दूध ले कर मैं, श्रीमुंशीजी और सिंघीजी तीनों जन इक्के कर चित्तोडका किला देखने गये। मैंने और सिंघीजीने तो पहले भी उस किलेको देखा था पर श्रीमुंशीजी साथमें थे इसलिये फिरसे देखनेमें और अधिक आनन्द आया। राणा कुंभाका कीर्तिस्तंभ देख कर हम लोगोंने परमार नृपति भोजदेवका वह शिवमन्दिर विशेष ध्यानसे देखा जिसमें अणहिलपुरके चौलुक्य नृपति कुमारपालका वि० सं० १२०७ का लेख खुदा हुआ है। पर उस मन्दिरके गर्भागारमें लकडी और बांस भरे पडे थे और कचरेका ढेर लगा हुआ था जिसको देख कर हमको बडी ग्लानि हुई। आगे चलते हुए चामुंडा-कालीका मन्दिर देख कर पद्मिनीके महल वगैरह देखे और फिर वहांसे जैन कीर्तिस्तंभको देख कर तथा ध्वंसावशिष्ट कुछ पुराने जैन मन्दिरोंको देख कर हम यथासमय स्थान पर पहुंचे।

नगरी नामक प्राचीन स्थानका निरीक्षण

मुंशीजी तो दोपहरकी गाडीसे बंबईके लिये रवाना हो गये पर मैं और सिंघीजी चित्तोडके पास ६-७ मीलके फासले पर 'नगरी' नामका एक पुराना स्थान है उसे देखने गये। मैंने ही सिंघीजीसे उस स्थान का परिचय दिया था और बताया था कि यह 'नगरी' वही इतिहास प्रसिद्ध 'माध्यमिका नगरी' है जिसका

उल्लेख 'अरुणद् यवनो माध्यमिकाम्' इत्यादि उक्तिके रूपमें पातञ्जल महाभाष्यमें मिलता है और जो शिबिजनपदकी राजधानी थी। इसी माध्यामिकाके नाम परसे जैन श्वेतांबर संप्रदायके एक मुनिसंघकी पुरातन कालमें एक शाखा प्रसिद्ध हुई थी जिसका उल्लेख कल्पसूत्रकी स्थविरावलीमें 'मज्झिमा साहा' (माध्यमिका शाखा)के रूपमें किया हुआ मिलता है। इस स्थानमेंसे बहुत प्राचीन सिक्के भी मिले हैं जो इतिहासकी दृष्टिसे बडे महत्त्वके हैं' इत्यादि। इस कथनको सुन कर, सिंघीजी उस स्थानको देखनेके लिये बहुत उत्सुक हुए और बोले कि 'उसे देखे विना हम यहांसे नहीं जाँयगें।' मैंने भी उस स्थानको कभी आंखोंसे तो देखा नहीं था, सो मैं भी उसे देखनेके लिये वैसा ही उत्सुक था। पर वहां जाना बडा कठिन मामला था। मोटर वगैरहका कोई अच्छा साधन वहां उपलब्ध नहीं था। एक तांगावाला मिला जो बड़ी हिचकिचाहटके साथ बहुतसा किराया देने पर चलनेको राजी हुआ।

बात यह थी, कि वहां जानेका रास्ता बहुत ही खराब और भयंकर पथरीला था। तांगावालोंको भी जानेमें बडा कष्ट होता था और घोडेको एवं तांगेको – दोनोंको चोटें लगनेका खतरा था। पर हमको किसी तरह जाना था इसलिये उसे मुंहमांगा किराया दे कर हम दोपहरके दो-ढाई बजे चित्तोडके स्टेशनसे रवाना हुए। फ़ासला तो ६ – ७ मील ही का था पर वहां पहुंचनेमें हमें पूरे ढाई घंटे लगे। रास्तेमें तांगा उछल उछल कर चलता जाता था और हमारी कमर और कुल्लोंकी हड्डियोंकी ठीक मरम्मत होती जाती थी। हरएक उछल-कूद पर हम दोनों तांगेके गद्दे परसे (जो कि नामका ही गद्दा था और हमारे नितंबकी चमडीको यों ही वह छील छील कर मुलायम कर रहा था) एक वेंत उछल कर फिर उस पर जमते थे। सिंघीजीका अपनी जिंदगीमें ऐसे तांगे पर सफर करनेका यह शायद पहला ही मौका था। मैं उनकी ओर टकटकी लगा कर देखा करता था और वे मेरी ओर। जहाँ कहीं ऐसी खास उछल-कूदकी जगह आती तो तांगावाला बड़ी रहमदिलीके साथ कहता 'बाबूसाहब, जरा संभल कर बैठना। साला रास्ता बहुत ही खराब है। इस रास्ते तो आपके जैसा आदमी कभी कोई नहीं आया गया। यह तो जंगली भील लोगोंके आने-जानेका रास्ता है। वहां तो आप जैसे बडे आदमियोंके देखनेकी कोई चीज नहीं है। नाहक यों ही आप इतना कष्ट उठा कर वहां जा रहे हैं। यह तो आपकेसे शरीफ आदमीको देख कर मैं चला आया, नहीं तो कोई २५ रूपये भी दे तो मैं नहीं आता। कहीं घोडेका पैर टूट गया या तांगाका पैया टूट गया तो कितनी मुशीबत हो, इसका आप ही खयाल कर लीजिये' – इत्यादि कितनी ही बातें तांगेवाला करता जाता था और हम सुनते जाते थे। जहाँ कहीं बहुत ही खराब जगह आती तो वहां तांगावाला हमको नीचे उतरनेकी सलाह देता और हम उसका तत्काल अमल करते; इतना ही नहीं पर बहुत दूर तक पैदल ही चलना पसन्द करते। क्यों कि उससे कुछ हमको आराम ही मिलता था। तांगावाला भी हमको बहुत भले आदमी समझ कर हमारी प्रशंसाके फूल बिखेरे जाता था।

इस तरह हम नगरी पहुंचे। वहां जो कुछ दो-तीन पुरातनकालीन ध्वंसावशेष थे उनको देखा। हाथीवाडेके नामसे प्रसिद्ध खण्डहरके भीमकाय शिलाखण्डोंको देख कर

बहुत चकित हुए। 'आर्कियोलॉजिकल सर्वे' की रीपोर्टोंमें मैंने उस पुरातन स्थानका बहुत कुछ वर्णन पढा था इसलिये उन खण्डहरों आदिका दर्शन मुझे बहुत ही आल्हादक हुआ। सिंघीजीको भी उनको देख कर प्रसन्नता हुई और बोले कि 'आप यदि न होते तो यह स्थान देखनेका हमको कभी अवसर नहीं आता।' नगरीके खण्डहर बडी दूर दूर तक फैले हुए थे। समय होता तो हम इधर उधर सब जगह घूमते, पर सन्ध्याकाल निकट आ रहा था और उसी रास्तेसे हो कर फिर गुजरना था, इसलिये बडी शीघ्रताके साथ कुछ देख-दाख कर हम वापस फिरे। जगह जगह पर पुराने शिल्पके पत्थर और प्राचीन कालीन बडे आकारकी ईंटें दिखाई पडती थीं, जिनको देख कर सिंघीजीका मन उनकी तरफ आकृष्ट होता था और इच्छा हो जाती थी कि यदि इनमेंसे कुछ उठा कर ले जा सकें तो ले जांय। पर वैसी पत्थरकी चीजें कोई थोडी उठाई जा सकती थीं। तो भी वहांकी स्मृतिके लिये ३-४ बडे आकारकी पुरानी ईंटें जो एक जगह अखण्ड रूपसे हमारे देखनेमें आ गईं, हमने उनको उठा लीं और तांगेमें रख लीं। तांगावाला भी कहने लगा–'हजूर, ये बडी जूनी ईंटें हैं। पांडवोंके जमानेकी हैं। वह हाथीवाडा जो आपने देखा वह भी पांडवोंका बनाया हुआ है। पांडवोंके हाथी वहां पर बान्धे जाते थे और जो बड़े बड़े पत्थर आपने वहां देखे, वे रामचन्द्रजीने जो लंका जानेके समय समुद्रका पुल बान्धा था उसके हैं। पाण्डवोंने इस जगह एक राक्षसको अपने कब्जेमें किया था और उसने ये सब पत्थर लंकाके समुद्रसे यहां ला कर यह हाथीवाडा बनाया था' इत्यादि। वापस लौटते समय हम दोनों प्रायः आधेसे अधिक रास्ता पैदल ही चल कर आये। क्यों कि तांगेका मजा हम खूब चख चुके थे और उससे हमारी हड्डियोंकी अच्छी कसरत हो चुकी थी। परंतु एक अपूर्व एवं ऐतिहासिक स्थानके देखनेका अनपेक्षित मौका मिला जिसके आनन्दमें उस कष्टने हमको अधिक व्यथित नहीं होने दिया।

चित्तोडसे बामणवाडा तीर्थको

रातकी गाडीसे चितोडसे रवाना हो कर हम अजमेरकी ओर चले। प्रातःकाल सूर्योदयके करीब गाडी रूपाहेलीके स्टेशन पर पहुंची, जो मेरी जन्मभूमि है। मैं तो बहुत देरसे जग चुका था और रूपाहेलीके नजदीक आने पर, खिडकीमेंसे मुंह बाहर निकाल कर, इधर उधर उत्सुकभावसे देख रहा था। बचपनकी स्मृतिके कई धुंधले, चित्र सिनेमाकी फिल्मकी तरह, आंखोंके सामनेसे गुजर रहे थे। मेरा भावुक हृदय, अपनी जननीका कुछ दुःखद स्मरण कर विह्वलसा हो गया और मेरी आंखोंमेंसे आंसूकी दो-चार बूंदें टपक पडीं। इतने ही में सिंघीजीकी भी नींद खुल गई और मेरी ओर देख कर वे जरा चिंतितसे हो गये। पूछा–'आप कुछ खिन्नसे क्यों दिखाई दे रहे हैं? क्या बात है?' मैं संभल गया। बोला–'कुछ नहीं'। उन्होंने खिडकीमेंसे मुंह निकाल कर बहार देखा; छोटासा स्टेशन है "रूपाहेली" नाम है। बडी उत्सुकतासे पूछा–'क्या यह वही रूपाहेली है जो आपकी जन्मभूमि है?' मैंने कहा–'हां वही।' वे बडी तेजीसे सीट परसे उठ खडे हुए और डिब्बेका दरवाजा खोल स्टेशनकी ओर गौरसे देखने लगे। बोले–'गांव किधर आया?' मैंने कहा 'वह तो पीछे रह गया

है–कोई २–३ मीलके फासले पर है।' कहने लगे 'हमको आपने जगाया क्यों नहीं? हम भी आपकी जन्मभूमिके, दूरसे ही सही, दर्शन तो कर लेते।' गाड़ीने सीटी दे दी और वह चल पडी। उनकी इच्छा तो हुई कि मुझसे अपने बचपनकी कुछ बातें पूछें, पर मेरा मन वैसा न देख कर वे शान्त रहे और अपने मुंह पर कपडा डाल कर बनावटी नींदसे कुछ फिर सो गये। आध घंटे बाद फिर बैठ खडे हुए। मैं भी हाथ मुंह धो कर स्वस्थ हो गया था और वे भी बाथरूममें जा कर तैयार हुए। इतनेमें हम अजमेर पहुंच गये।

अजमेरसे गाड़ी बदल कर हम अहमदाबाद जानेवाली गाडीमें बैठे और दोपहरको सज्जनरोड स्टेशन (सीरोही स्टेट) पर उतर गये। वहांसे बामणवाडा तीर्थस्थान पहुंचे, जहां पर श्रीशान्तिविजयजी महाराज विराजमान थे और सिंघीजीकी पूजनीया माताजी भी उस समय वहीं उन महाराजकी सेवामें थीं।

श्रीशान्तिविजयजी महाराजकी सेवामें

यथासमय हम दोनों मुनिमहाराजकी सेवामें उपस्थित हुए। महाराजने मेरा उसी उदयपुरकी तरह, बड़ा आदर किया और अपने हाथसे आसन बिछा कर मुझे पासमें बिठाया। सुखसाता विषयक बडे प्रेमसे कुशल प्रश्न पूछा और बोले– 'बहुत अच्छा हुआ आप आ गये। मैं उदयपुर जाने आनेवालोंसे हमेशां आपके कुशल समाचार पूछता रहता था और आपने उदयपुरमें जो शासनकी सेवा की है उसकी मैं रोज अनुमोदना करता था' इत्यादि। फिर सिंघीजीने उदयपुरका सारा किस्सा संक्षेपमें कह सुनाया और मेरे विषयमें कहा कि 'वहां जो कुछ हम काम कर सके और अपने पक्षको अच्छी तरह उपस्थित कर सके उसका सारा श्रेय मुनिजीको है। अगर ये न होते तो हमारा केस बिल्कुल फैल होता'–इत्यादि। सुन कर शांतिविजयजी महाराज और भी अधिक प्रसन्न हुए और पासमें जो भक्त लोग बैठे थे उनके सामने मेरी अत्यधिक प्रशंसा करने लगे। यद्यपि उनकी प्रशंसाकी कोई सीमा न थी, पर उसे सुन कर मैं तो मन-ही-मन उद्विग्न हो रहा था। क्यों कि मैं जानता था कि वे जो प्रशंसा कर रहे हैं वह सिर्फ उनके सौजन्य और सरल स्वभावकी सूचक है। उनकी प्रशंसाके पीछे मेरी कार्यशक्तिका कोई वास्तविक ज्ञान तो था नहीं और अज्ञानमूलक प्रशंसासे प्रफुल्लित होनेवाला मैं वैसा बुद्धु जीव हूं नहीं। उनकी देखा-देखी और उन्हींके शब्दोंको ईश्वरीय वाक्य माननेवाले कई बनिये भी उसी तरह कहने लगे। तब तो मुझे कुछ क्रोधसा भी आने लगा। परन्तु क्या किया जाय–योगीराजके सामने बैठे थे। उनकी आज्ञाके विना उठ कर चलना भी असंभव था और फिर वे बेचारे भोलेभावसे और बडे प्रेमसे ऐसा कर रहे थे, इसलिये उसकी अवज्ञा करना भी अविनय था। सो मैं नीचा मुँह करके विना कुछ बोले चाले आधे घंटे तक वह सब सुनता रहा। आखिरमें, जब वहां कुछ ५–१० और भक्तजन गुरुदेवकी जय बुलाते हुए पहुंच गये और कौ-ओंकी तरह चारों तरफ काँ काँ शुरू हुई, तब मैं धीरेसे उनकी आज्ञा ले कर और फिर पीछेसे सेवामें उपस्थित होनेकी इच्छा प्रदर्शित कर, उठ खडा हुआ। महाराजने तो

फिर उन नवागंतुक भक्तोंको मेरा परिचय देना शुरू किया और कहने लगे 'जानते हो ये कौन हैं ? बडे भारी विद्वान् हैं, जैन इतिहासका जाननेवाला इनके जैसा और कोई नहीं है' इत्यादि। पर मैं वहांसे एकदम सटक कर अपने डेरे पर आ पहुंचा।

कुछ देर बाद सिंघीजी भी आ गये। मैंने कहा 'गुरुमहाराज बहुत ही प्रशंसा करते हैं, जिसे सुन कर मैं तो एक प्रकारसे मनमें त्रस्तसा हो जाता हूँ; और फिर इन मूर्ख बनियोंके सामने, जिनको न गुरुमहाराजके कथनका ही कोई रहस्य समझमें आता है और जो न बेचारे मुझको ही कुछ समझ सकते हैं। खैर, यदि आप इजाजत दें तो मैं तो आज ही रातकी गाडीसे अहमदाबाद चला जाना चाहता हूं। गुरुमहाराजसे मिलना हो ही गया है और आप जा कर उनसे कह दीजिये कि वे मुझे जानेकी आज्ञा दे दें।' इस पर सिंघीजी बोले कि–'आपके चले आने बाद गुरुमहाराजने हमसे तो एक और आज्ञा की है, कि यहां पर एक सभा बुला कर, आपको मानपत्र दिया जाय और साथमें ५-१० हजारकी थेली भी समर्पित की जाय। आज रातको और भी दो-चार मुख्य मुख्य व्यक्तियोंको बुलानेको और इस बातका खास विचार करनेको कहा है। सो हमको तो गुरुमहाराजकी आज्ञाके अनुसार चलना होगा।' इत्यादि। सुन कर मैं तो और भी अधिक हैरान हो गया। मैंने सिंघीजीसे कहा–"आप मेरा स्वभाव जानते हैं। गुरुमहाराज तो बेचारे भोले हैं। उनकी तो भावना रहती है कि हम जिन-विजयजीका कुछ सत्कार करावें जिससे इनका मन प्रसन्न हो। पर मेरा मन ऐसी बातोंसे प्रसन्न नहीं होता। मैं केशरियाजीके इस अप्रिय झमेलेमें पडा वह केवल आपके कारण। नहीं तो मुझे इन तीर्थोंके झगडोंसे क्या मतलब। फिजूल ही समाजके हजारों रूपये वकील-बेरिस्टरोंको लुटाये गये, और इसका नतीजा तो कुछ आनेवाला है ही नहीं। गुरुमहाराजके दबाव और प्रभावके वश हो कर ये बनिये यों चाहे हजारों रूपये खर्च करनेको तैयार हो जांय, पर इनसे वास्तविक समाजोपयोगी और ज्ञानोपयोगी कार्यके लिये कुछ खर्च करनेको कहा जाय तो ये एक पाई भी देनेको राजी नहीं। उदयपुरमें ही पिछले साल गुरुमहाराजने, प्रसङ्गवश मेरी उपस्थितिको लक्ष्य कर, लोकोंसे कहा था कि 'जैन धर्मके प्राचीन इतिहासके शिलालेख आदि जो साधन हैं उनका संग्रह करानेका और छपवाने आदिका काम कराना चाहिये।' तब मैंने कहा था कि–'उदयपुरके यतिवर्य श्री अनुपचन्दजीने मेवाड़के ऐसे बहुतसे जैन शिलालेख इकट्ठे किये हैं; यदि उनको कुछ मदद दे कर यह काम कराया जाय तो बहुत अच्छा काम हो सकता है' इत्यादि। पर किसीने उसके लिये एक पैसा भी देनेकी इच्छा प्रदर्शित नहीं की और फिर गुरुमहाराज चुप हो गये। यह है इनकी गुरुमहाराजके विचारोंके समझनेकी शक्ति। सो मेहरबानी करके आप इस झंझटमें बिल्कुल न पडें; और मैं तो आज ही रातकी गाडीसे अहमदाबाद जाऊंगा, इसलिये स्टेशन पर जानेके लिये वाहनकी व्यवस्था कीजिये।" सिंघीजी मेरे स्वभावसे परिचित थे, वे कुछ न बोले और नौकरको गाडीके लिये तजवीज करनेको कहा। मैं झटपट संध्याकालका भोजन कर, सिंघीजीसे बिदा ले गाडीमें बैठा और स्टेशन पर पहुंचा। दूसरे दिन प्रातःकाल अहमदाबाद, अपने स्थान पर उपस्थित हुआ।

सिंघीजी कुछ दिन वहीं रहे और फिर श्री शान्तिविजयजी महाराजकी आज्ञा मिलने पर वे कलकत्ता गये।

मेरा शान्तिनिकेतन छोडना

उदयपुरमें रहते हुए ही शान्तिनिकेतनके निवास आदिके विषयमें हमने निर्णय कर लिया था कि ग्रन्थमालाके कार्यकी दृष्टिसे और मेरे निजके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी वह स्थान उपयुक्त नहीं है, इसलिये अब उसे सर्वथा छोड कर ग्रन्थमालाका कार्यालय अहमदाबाद ही में स्थिर करना ठीक होगा।

तदनुसार मैं सन् ३५ के जुलाईमें, शान्तिनिकेतनका सब सामान उठा देने और उसकी उचित व्यवस्था करनेके निमित्त आखिरी वार वहां पर गया। पिछले ४ वर्षके निवासके कारण एवं छात्रावासके निमित्तसे वहां पर बहुत कुछ सामान जमा हो गया था। बासन-वर्तन आदि छोटी छोटी चीजोंके अतिरिक्त, लकडीके तख्तपोश, रेकस्, डेस्क और अनाज भरनेके बडे बडे टीन आदि सैंकडों ही रूपयोंका ओर ओर भी भारी सामान था, जिसकी क्या गति की जाय? क्या उसे कलकत्ता भेज दिया जाय? या और कुछ व्यवस्था की जाय?–इसके बारेमें मैंने सिंघीजीसे पत्र लिख कर पूछा तो उन्होंने जवाबमें (ता. २९-७-३५ को) लिखा कि–

... "सविनय प्रणाम. आपका कृपापत्र आज मिला, हाल मालूम हुआ। बोर्डिंगका कोई सामान कलकत्तेमें काम आने जैसा नहीं है। फिजुल खर्चा करके यहां भेजनेमें कोई फायदा नहीं है। बनारस पंडितजीके उपयोगमें आने लायक कोई चीज हो तो उसे वहां भेज दें। बाकी सब वहीं 'शान्तिनिकेतन' को या किसी खास व्यक्तिको आवश्यक हो तो उन्हें दे कर खत्म कर दें।"

सिंघीजीकी इस सूचनानुसार, जो सामान शान्तिनिकेतन आश्रमको देने लायक था वह तो उसे दे दिया और बाकी का अन्यान्य व्यक्तियोंको–जिनमें आचार्य श्रीक्षिति-मोहन सेन आदि कई सज्जन सम्मीलित थे–समर्पित कर दिया। इस तरह वहांका सब काम समाप्त कर फिर मैं कलकत्ते गया।

सिंघीजीके निवासस्थानका परिवर्तन

सिंघीजीने भी प्रायः इसी समय अपना निवास स्थान बदला। कई वर्षोंसे वे लोअर सर्क्युलर रोड पर किरायेकी कोठीमें रहते थे। अब वे बालीगंजमें अपनी निजकी बडी भारी विशाल बाडीमें रहनेको आये। इस बाडीमें उन्होंने अपने परिवारके रहनेके लिये जुदा जुदा मकान बनानेकी दृष्टिसे वर्षोंसे प्लान बना रखे थे। परंतु तुरन्त वे सब मकान तैयार हो सके वैसा नहीं था और उनकी इच्छा अब उसी बाडीमें आ कर रहनेकी तीव्र हो गई थी–सो एक काम चलाउ मकान अपने तीनों पुत्रोंके रहनेकी दृष्टिसे, बडी शीघ्रतासे नया बनवा लिया; और दूसरा जो एक पुराना बडा मकान उस बगीचेमें था उसको सुधरवा कर, और उसके आगेको हिस्सेको, नये ढंगसे, आधुनिक डिझाइनका आकार दे कर, अपने रहने लायक करवा लिया। मैं जब उक्त रीतिसे शान्तिनिकेतनके सामानकी व्यवस्था कर रहा था, तब मुझे मालूम हुआ कि

सिंघीजी आज कल इस नये मकानकी फेरबदलीमें व्यस्त हैं। पर मुझे शान्तिनिकेतनको आखिरी सलाम किये बाद उनसे मिलना जरूरी था और एक खास विशेष बात उनको प्रत्यक्षमें कहने लायक थी, इससे मैंने पत्र लिख कर समयकी सुविधाके विषयमें पूछा और नये स्थानका पता आदि मंगवाया। उत्तरमें उन्होंने लिखा कि—

"आपके आनेके लिये हमारा समय सदा ही अनुकूल है। वहांकी व्यवस्था करके आप यहां आ जाँय। स्थानकी संकीर्णता अब तक जरूर है। परन्तु दो चार दिन किसी सुरत चला लिया जायगा। यहांका पोस्टल एड्रेस ऊपर लिखा है। टेलीग्राफिक एड्रेस वही Dalbahadur है। टेलीफोन नं. "पार्क ८६" है। आपके आनेकी सूचना मिलने पर मोटर हवड़ा स्टेशन पर भेज देंगे। किसी कारण मोटर न पहुंच सका या आप सूचना न दे सकें, तो हवड़ा स्टेशन पर ९ या १० नम्बर BUS में बैठ कर बालीगंजका टिकट लेनेसे वगैर बदली किये वही BUS आपको इस मकानके दरवाजे पर उतार देगा। और यहां सब कुशल हैं, आपका कुशल लिखियेगा।"

मेरा कलकत्ता जाना

मैं जब कलकत्ते गया तो देखा कि सचमुच ही मकानकी संकीर्णता है। मकानमें चारों ओर अभी काम चल रहा है और कोई चीज ठीकसे जमाई नहीं गई है। तो भी मेरे ठहरनेके लिये एक थोडीसी जगह ठीक कर रखी थी। सारा दिन तो प्रायः सिंघीजीके कमरे ही में रहना होता था और हम आपसमें अपनी तरह तरहकी बातें चीतें किया करते थे। पहले तो उहोंने वह सारी बाडी जो करीब कितने ही एकर जितनी जमीन घेरे हुई थी और जिसकी किंमत उस समय भी ५–७ लाख रूपयेकी होती थी, घूम फिर कर बताई। फिर उसमें किस जगह क्या क्या बनवानेका इरादा है उसका प्लान दिखाया। फिर उन मकानोंके वे विस्तृत प्लान भी यथावकाश खोल खोल कर दिखाते रहे जो उन्होंने वर्षोंसे सोच सोच कर बनवाये थे। उन्हींमें उस मकानका प्लान भी शामिल था जिसमें उन्होंने अपने जीवनमें संग्रह की हुई वे सारी पुरानी चीजें म्युजियमके रूपमें स्थापित करनेका उनका ध्येय था। मकान सब भारतीय स्थापत्यके नमूनेके रूपमें बनवानेका संकल्प था।

फिर एक दिन बोले—'हमारी इच्छा तो यह है कि आप भी यहीं आ कर रहें और यहीं बैठ कर 'सिंघी जैन ग्रन्थ माला' का कार्य किया करें। हम आपके लिये भी अलग स्वतंत्र छोटासा मकान बना देंगे जिसमें आप, और जब पण्डितजी आवें तब वे भी, अपनी एकान्त साधना किया करें और हमारी जब इच्छा हो तब हम भी आ कर आपके पास बैठ जाया करें।' फिर उठ कर वह मकान कहां पर, किस ढंगसे बनाया जाय, इसका भी दिग्दर्शन करानेके लिये, उस विशाल बाडीका वह हिस्सा मुझे प्रत्यक्ष बतलाया।

खैर, इस प्रकारकी अनेक बातें हमारी रोज होती ही रहती थीं, पर इस वार एक विशेष बात करनेका भी प्रसंग मुझे प्राप्त हुआ था, जो सिंघीजीके कुटुम्बमें सामाजिक दृष्टिसे सुधारवादकी भावनाका अंकुरोद्गम करनेवाला बना। इस प्रसङ्गने मुझे सिंघीजीके कुटुम्बमें और भी विशेष निकटताका स्थान प्राप्त कराया।

श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजीके विवाह-सम्बन्धका प्रस्ताव

इस प्रसङ्गकी अन्यान्य सब बातें तो व्यक्तिगत हो कर, सिंघीजीकी अपेक्षा, उनके ज्येष्ठ सत्पुत्र श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजी और मेरे बीचके स्नेहसम्बन्धके साथ घनिष्ठता रखती हैं। पर सिंघीजी सामाजिक विचारोंमें कैसे प्रगतिशील भावनावाले थे और उधर बंगालमें बसनेवाले जैनसमाजमें वे एक कैसे सुधारप्रिय व्यक्ति थे इसका विशिष्ट परिचय इस प्रसङ्ग परसे मिलता है। इसलिये इसका उल्लेख यहां पर किये विना सिंघीजीके साथके मेरे ये स्मरण संपूर्ण नहीं बन सकते।

प्रसङ्ग यह था – सिंघीजीके बडे चिरंजीव श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजीकी धर्मपत्नीका कुछ महिनों पहले स्वर्गवास हो गया था। इससे उनका पुनः विवाह-सम्बन्ध कहीं होना निश्चित था। हम लोग जब उक्त प्रकारसे केशरियाजीके मामलेमें उदयपुरमें थे तब आणन्दजी कल्याणजीकी पेढीके एक प्रमुख प्रतिनिधि सेठ प्रतापसिंह मोहोलाल भाई भी प्रसङ्गोपात्त वहां आते जाते रहते थे। उन्होंने श्री राजेन्द्रसिंहजीकी धर्मपत्नीके स्वर्गवासके समाचार वहां किसीसे सुने, इसलिये उनके मनमें स्वभावतः ही यह इच्छा हुई, कि यदि संभव हो सके तो, वे अपनी एक पुत्री बहन सुशीलाका – जो उस समय विवाह योग्य हो रही थी और जिसके सम्बन्धके विषयमें सेठ प्रतापसिंह भाई प्रयत्नशील थे – श्रीराजेन्द्रसिंहजीसे सम्बन्ध करनेका प्रस्ताव करें। प्रतापसिंह भाईको मालूम था कि मेरा स्नेहसम्बन्ध सिंघीजीके साथ बहुत घनिष्ठ है, इससे उन्होंने मेरे द्वारा यह प्रस्ताव उपस्थित करनेका मनमें सोचा। उदयपुरसे मैं जब अहमदाबाद पहुंचा तो एक दिन सेठ प्रतापसिंह भाई मेरे पास आये और उन्होंने अपने ये विचार प्रकट किये। पहले तो मैं सुन कर बडे विचारमें पड गया। क्यों कि ऐसी बातोंसे मेरा कभी कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा। मैंने कभी किसीके व्यावहारिक जीवनकी कोई बातमें रस नहीं लिया। सिंघीजीके साथ मेरा जो स्नेहसंबन्ध था वह केवल साहित्य विषयको ले कर था। इसके अतिरिक्त उनके या उनके कुटुंबके व्यावहारिक जीवनका मुझे कुछ भी पता नहीं था। मैं यह सामान्य ढंगसे जानता था कि बंगालमें बसनेवाले – खास कर मुर्शिदाबादी कहलानेवाले – जैन कुटुंब, सामाजिक व्यवहारमें बहुत ही संकीर्ण होते हैं। गुजरातके जैन समाजकी तरह वहां पर, अभी तक सामाजिक सुधारकी कोई हवा नहीं पहुंची है। मुर्शिदाबादवाले सिवा अपने समाजके अथवा मारवाडी समाजके, कहीं विवाह-सम्बन्ध करते हों या कर सकते हों, इसकी मुझे पूरी शंका थी। सो श्रीप्रतापसिंह भाईका उक्त प्रस्ताव सुन कर पहले तो मैंने उनसे यों ही कह दिया कि 'इस विषयमें मैं कुछ नहीं जानता और मेरा उनके साथ इस प्रकारका कोई सम्बन्ध नहीं है।' पर सेठ तो बहुत अनुभवी, बडे व्यवहारचतुर और दुनियादारीके पूरे निष्णात रहे, सो कहने लगे कि – 'आप यों ही सिंघीजीको लिखिये तो सही। लिखनेमें क्या हर्ज है। यह तो एक गृहस्थके सामान्य व्यवहारकी बात है। हम लोग तो ऐसी बातें सदा ही किया करते हैं। अपनी सन्तानके विवाह-सम्बन्धमें हमको तो बीसों जगह प्रयत्न करना पडता है। यदि उनको पसन्द नहीं होगा तो वे ना लिख देंगे। इससे हमको कुछ बुरा थोडा ही लगनेवाला है। हमारा और उनका वैसा कोई सम्बन्ध नहीं है

जिससे हम सीधा ही उनको लिखे सकें' इत्यादि। इस पर मैंने प्रतापसिंह भाईको कहा कि–'पत्रमें तो मैं ऐसी कोई बात लिखना उचित नहीं समझता, पर कुछ दिन बाद कलकत्ते मुझे जाना है, सो मिलने पर प्रत्यक्षमें मैं आपका सन्देशा उनसे कह दूंगा।' वही यह खास बात थी जो इस समय मुझे सिंघीजीसे कहनी थी। अवसर पा कर मैंने उनको उपर्युक्त सब बात कह सुनाई।

सिंघीजी इस प्रस्तावको सुन कर एकदम विस्मितसे हो गये। चि० श्रीराजेन्द्रसिंहजीके विवाहका प्रश्न तो उनके मनमें घुल ही रहा था और शायद बंगाल तथा मारवाडमेंसे कुछ जगहोंसे कन्याके बारेमें पूछ-ताछ भी चल रही थी। परन्तु गुजरातमेंसे और वह भी अहमदाबाद जैसे जैन समाजके सबसे बडे केन्द्रस्थानमेंसे, और फिर उसमें भी सेठ प्रतापसिंह जैसेके बहुत बडे प्रतिष्ठित घरानेकी ओरसे, कन्या देनेके बारेमें प्रस्ताव हो, यह तो उनके स्वप्नमें भी कभी आने जैसी कल्पना नहीं थी। इसके पहले, एकाध अपवादके सिवा, ऐसा कोई वैवाहिक सम्बन्ध गुजरातके और बंगालके प्रतिष्ठित जैन कुटुम्बोंके बीचमें कभी हुआ ही नहीं था। सिंघीजी इस विचारमें बहुत देर तक निमग्न रहे। बोले–'हम मांसे जा कर एक दफह इसका जिक्र करेंगे फिर आगे कुछ सोचेंगे।'

सिंघीजी अपनी मांके बहुत ही भक्त पुत्र थे। उनके जैसे मातृभक्त मैंने बहुत कम देखे। उनकी मां भी वैसी ही पुत्रवत्सल एवं बडी चतुर, धर्मनिष्ठ और कार्यनिपुण बुद्धिमती सन्नारी थी। सारे कुटुम्ब पर उनका बडा प्रभाव था। उनकी इच्छाके विरुद्ध एक पैर भी कोई खिसक नहीं सकता था। सब कुटुंबी जन उनकी अनुमति ले कर ही वैसा कोई विशिष्ट काम करते थे। एक राजराणीकी तरह उनका कुटुंब पर तेज छाया हुआ था। सिंघीजी जैसे सर्व कर्ताधर्ता भी मांको सूचित किये विना किसी महत्त्वके कामको नहीं करते थे। छोटीसे छोटी बात भी वे मांके आगे जा कर कहते थे और जिसमें मांकी सम्मतिकी अपेक्षा हो उसे जाननेकी इच्छा व्यक्त करते थे। उन्होंने यथावसर मांके पास जा कर यह बात की। मां भी इस अकल्पित प्रस्तावको सुन कर विस्मयमें गर्क हो गई। बोली–'गंभीर प्रस्ताव है, बहुत गहराईके साथ, सभी तरहसे इसका विचार करना चाहिये।' दो-तीन दिन तक उन मां बेटेका इस पर विचार होता रहा। कुटुंबके बहुत निकटके और भी बहन-बहनोई आदि जो स्वजन थे उनसे भी कितनीक चर्चा की गई। कौटुंबिक प्रश्न था और बहुत नाजूक प्रश्न था। समाजके साथ भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध था। समाजमें ऐसा विवाह-सम्बन्ध रूढ नहीं था। कुछ भी अनुचित न होने पर भी, रूढिप्रिय समाजके अगुआ इसका विरोध कर सकते हैं और समाजमें किसी प्रकारका बखेडा खडा कर सकते हैं। ऐसे शंकास्पद बखेडेके काममें पडना ठीक है या नहीं, एक तो यह प्रश्न उनके सामने था। दूसरा प्रश्न था गुजरातके और बंगालके रीतरीवाजोंमें कुछ अन्तर होनेका। बंगालके खानदान कुटुंबोंमें स्त्रियोंके लिये पडदेका बडा कडा रीवाज अभीतक प्रायः वैसा ही चला आ रहा है। पर गुजरातमें पडदेकी अब किसीको कल्पना भी नहीं है। गुजरातका स्त्रीसमाज बहुत कुछ प्रगतिशील है और गुजरातकी लडकियां मारवाड-बंगालकी अपेक्षा बहुत ही बन्धनमुक्त हैं। ऐसी परिस्थितिमें गुजरातकी कन्याका बंगालके

कुटुंबमें मेल मिलना संभव है या नहीं? अगर वैसा मेल नहीं मिला, तो पीछेसे कुटुंबमें क्लेश पैदा होनेकी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है। तो जान बूझ कर ऐसी परिस्थितिकी आशंकाके कारणमें पैर रखना उचित है क्या?

सिंघीजीने इस परिस्थितिका विचार मेरे सामने भी प्रदर्शित किया और बोले—'हमारा निजका विचार तो इसमें कोई प्रतिकूल जैसा नहीं है। न हम इस रूढ मतके पक्षपाती हैं कि गुजरातके साथ ऐसा कोई विवाह सम्बन्ध अभी तक नहीं हुआ इसलिये हमें भी नहीं करना चाहिये; और न हम व्यक्तिगत रूपसे पडदेके ही पक्षमें हैं। परन्तु हम सामाजिक बखेडेसे दूर रहना चाहते हैं और इसमें हमें कुछ उस बखेडेके होनेकी आशंका है' इत्यादि।

इस पर मैंने उनसे कहा कि—'यदि और सब तरहसे यह सम्बन्ध करना आपको उचित जंचता हो, तो केवल रूढ मतके भयसे ही आप वैसा न करना चाहें, तो वह एक प्रकारकी आपकी बडी भारी कमजोरी कहलायगी। आप तो सुधारप्रिय व्यक्ति हैं। समाजमें बहुतसी रूढियां ऐसी चल रही हैं जिनसे समाजको कोई लाभ नहीं प्रत्युत बहुत कुछ हानि है। उनको दूर करनेका प्रयत्न करना विचारशील व्यक्तियोंका कर्तव्य है। आप तो जैन श्वेतांबर कॉन्फरन्सके अध्यक्ष भी बन चुके हैं और उस कॉन्फरन्सने कई दफह ऐसे प्रस्ताव किये हैं, जिसमें सूचित किया गया है कि—जैन समाजमें एकता और विशालता स्थापित करनेके निमित्त, जहां पर धर्मकी दृष्टिसे कोई बाधा न आती हो, वहां पर परस्पर वैवाहिक और भोजन व्यवहारका सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये—इत्यादि। यदि आपके सम्मुख ऐसा प्रसंग उपस्थित है और आप उसमें किसी प्रकारका अनौचित्य नहीं समझते, पर उलटा अच्छा समझते हैं, तब आपका तो कर्तव्य हो जाता है कि समाजके रूढिप्रिय कुछ लोग विरोध भी करें तो उस विरोधकी उपेक्षा कर, सुधारके मार्गमें एक पैर आगे बढावें। आपके जैसे समर्थ व्यक्तिके ऐसा करने पर समाजके अन्य सामान्य स्थितिके सुधारप्रिय जन भी कुछ कदम आगे बढनेकी हिम्मत कर सकते हैं।' इस प्रकारका बहुतसा विचार-विनिमय दो-एक दिन तक होता रहा।

आखिरमें फिर उन्होंने अपना निश्चित अभिप्राय देते हुए कहा कि—'इस बातका विशेष विचार आप खुद चि० राजेन्द्रसिंहसे करें, यह मुझे अच्छा मालूम देता है। क्यों कि वे अब अपना हिताहित समझने और उसके मुताबिक काम करनेके लिये पूर्ण स्वतंत्र हैं। पहली शादीका सब व्यवहार करना हमारा कर्तव्य था। परंतु अब तो उन्हींको सब अधिकार प्राप्त होने चाहिये। हम तो सलाह मात्र देनेके अधिकारी हो सकते हैं। आप स्वयं उनके स्वभाव, शील, व्यक्तित्व आदिसे अच्छी तरह परिचित हैं ही। आप उनको उचित परामर्श भी दे सकते हैं और वे भी आपके आगे हमसे कहीं अधिक दिल खोल कर बातें कर सकते हैं। हमारा निजका उस कुटुंबके साथ कोई परिचय नहीं है और नाही हमें वहांके व्यवहारका कुछ ज्ञान है। यदि चि० राजेन्द्रसिंहको कुटुंब, कन्या आदि सब बातें पसन्द होंगीं और उनको यह सम्बन्ध अभीष्ट होगा, तो हमको उसमें कोई आपत्ति नहीं होगी। फिर इधरका समाज कुछ कहेगा-करेगा तो उसको हम संभाल लेंगे।'

इधर मेरा और श्रीराजेन्द्रसिंहजीका भी परस्पर यथोचित वार्तालाप होता ही रहता था। उन्होंने इस विषयमें सब प्रकारका ठीक विचार कर, पीछेसे कुछ सूचित करनेका मुझसे कहा। मैं सिंघीजीके साथ ग्रन्थमाला आदिके बारेमें विचार-विनिमय करके वहांसे बनारस हिंदुयुनिवर्सिटीमें पण्डितजीसे मिलता हुआ, अहमदाबाद पहुंचा।

*

शान्तिनिकेतनसे ग्रन्थमालाका कार्यालय उठा कर अब अहमदाबादमें उसे रखनेका निश्चय हुआ। अभी तक १ प्रबन्धचिन्तामणि (मूल), २ पुरातनप्रबन्धसंग्रह, ३ प्रबन्धकोष, ४ विविधतीर्थकल्प और ५ लाईफ ऑफ हेमचन्द्राचार्य ये पांच ग्रन्थ छप कर प्रकाशित हुए थे और दूसरे ५–६ ग्रन्थ छप रहे थे। बनारसमें भी पण्डितजीके तत्त्वावधानमें कुछ ग्रन्थोंके तैयार करने–करवानेकी व्यवस्था की गई।

प्रायः दो-एक महिने बाद ता. २२. १०. ३५ का लिखा हुआ सिंघीजीका नीचे मुआफिकका पत्र मुझे मिला–

"सविनय प्रणाम. आपका पत्र नहीं सो दीजियेगा और सेठ प्रतापसिंह भाईकी लडकीके साथ चि॰ राजेन्द्रसिंहके सम्बन्धके बारेमें, ये उस लडकीको देखने अहमदाबाद आवेंगे। आपका अभी वहां रहना होगा या नहीं, सो इस चिट्ठीके मिलने पर कृपा करके तार द्वारा समाचार लिखियेगा। आपका तार मिलने पर ये यहांसे रवाना होंगे।

और हम कल सुबह चार बजे पावापुरीके लिये मोटरसे रवाना होंगे, मगसर बदि ३ तक वापस आ जायेंगे।

और पूज्य माजीकी तबियत कुछ नरम है. और सब कुशल है, आपका कुशल लिखियेगा।

मि. कार्तिक बदी ११ रातको १० बजे।　　　　　आपका विनीत

बहादुरसिंह

इस पत्रकी सूचनानुसार मेरा तार मिलने पर, चि॰ राजेन्द्रसिंहजी अहमदाबाद आये। उनके साथ सिंघीजीका यह छोटासा पत्र था–

... "सविनय प्रणाम. चि॰ राजेन्द्रसिंह आते हैं, इनके बारेमें आपको पहले सब लिख चुके हैं। और इनके साथ हस्तलिखित 'शालिभद्रचरित्र' व Mathura की किताब जरूर भेज दीजियेगा। यहां हमेशां लोग देखनेको चाहते हैं। और आपका कुशल लिखें।"

श्री राजेन्द्रसिंहजी कुछ दिन अहमदाबाद रह कर, फिर बामणवाडामें श्रीशान्तिविजयजी महाराजके दर्शन कर, वे वापस कलकत्ते गये। सिंघीजीका उनके पहुंचने पर ता. ११. १२. ३५ का लिखा मुझे यह पत्र मिला–

"सविनय प्रणाम. चि॰ राजेन्द्रसिंह यहां राजीखुशीसे पहुंचे जिसका समाचार आपको मिल गया है। उनके साथ हस्तलिखित पुस्तक १ व छपी हुई पुस्तक १ पहुंची।

सम्बन्धके बाबदमें सब बातें मालूम हुईं। बाद उसके आपका पत्र उनके नामका आया वो भी देखा।

आप कृपा करके सेठ प्रतापसिंह भाईसे कह दें कि–हम लोग आपसमें यहां सलाह ठीक करके जो कुछ तै होगा, उनको final कह देंगे। ज्यादह देर नहीं करेंगे। आपका कुशल लिखियेगा और यहां योग्य कार्यसेवा लिखियेगा।"

इसी बीचमें श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजीका विवाह-सम्बन्ध वहां होना निश्चित हुआ और ता. १ फेब्रुआरी इ. स. १९३६, के मंगलमय मुहूर्तमें, सेठ प्रतापसिंह भाईकी सुशील पुत्री बहन सुशीलाके साथ अहमदाबादमें, योग्य समारंभपूर्वक, विवाह कार्य सानन्द संपन्न हुआ।

सिंघीजीको हृदयकी बिमारी

जनवरी ही में सिंघीजीको हृदयकी बडी सख्त बिमारी हो गई और बडी मुश्किलसे वे उस बिमारीमेंसे पार हुए। इसके कारण वे अपने पुत्रके विवाहकार्यमें भी यत्किंचित् योग न दे सके। इस बिमारीने उनकी जीवनीशक्तिको बहुत ही दुर्बल बना दिया और एक प्रकारसे वे सदाके लिये अस्वस्थसे बन गये।

मैं अहमदाबादमें रह कर ग्रन्थमालाका काम किये जाता था। इसी बीचमें **देवानन्दाभ्युदय, प्रभावकचरित्र, भानुचन्द्रचरित्र, जैन तर्कभाषा आदि** ग्रन्थ मुद्रित हो कर प्रकाशित हुए और कई नये ग्रन्थोंकी प्रेस कापी आदिका काम होता रहा। दो तीन वर्ष तक सिंघीजीसे मिलना तक न हुआ। पत्रव्यवहार भी ४-६ महिनोंमें एकाध वार होता था।

सन् १९३८ के जूनमें पण्डितजी श्री सुखलालजीको एपेन्डीसाईटका कठिन रोग हो गया जिसके लिये मेरा बम्बई आना हुआ और सर हरकिसनदास हॉस्पिटलमें उनका ऑपरेशन कराया गया। शुभोदयसे पण्डितजीको आराम हो गया। इसके समाचार सिंघीजीको जब मैंने लिखे तो वे बडे सचिन्त हुए और पण्डितजीकी पूरी तरहसे परिचर्या आदि करानेका उन्होंने मुझसे बडे सद्भावके साथ बहुत ही अनुरोध पूर्वक लिखा।

मेरा पुनः बम्बई निवास और भारतीय विद्याभवनकी स्थापना

मैं इस तरह पण्डितजीकी परिचर्याके निमित्त, उक्त हॉस्पिटलमें था, तब एक दिन श्रीमुंशीजी—जब कि ये बम्बईकी कॉंग्रेस गवर्नमेंटके होम मिनिस्टरके माननीय पद पर आरूढ थे—हॉस्पिटलकी विजीटके लिये शायद चले आये। पण्डितजीके कमरेमें जाने पर इन्हें मालूम हुआ, कि मैं आज कल यहीं बम्बईमें हूं, तो इन्होंने मिलनेकी इच्छा प्रदर्शित की। दूसरे दिन (जुलाई ता. १०को) सवेरे इन्होंने अपनी मोटर भेजी और मैं इनसे मिलने गया। सेठ मुंगालालजीने दो लाख रूपये, किसी एक विशिष्ट और उच्च प्रकारके विद्याध्ययनके निमित्त, दान किये हैं और उसके लिये कोई 'पुरातत्त्वमन्दिर'के ढंगकी संस्था स्थापित करनेकी योजना ये सोच रहे हैं एवं उसमें मेरे संपूर्ण सहकार की ये आशा रखते हैं—इस विषयकी बातें-चीतें हुईं। नासिक सेंट्रल जेलमें जब हम साथमें रहते थे तब, बम्बईमें एक ऐसी ही कोई संस्था स्थापित करनेके मनोरथ कभी कभी जो किया करते थे, उसकी याद भी इन्होंने दिलाई और अनपेक्षित रीतिसे अब उसके लिये ऐसा सुयोग उपस्थित हो गया है तो उसको सफल करनेकी कोई स्थायी योजना हमें बनानी चाहिये और एक साथ रह कर अब कुछ काम करना चाहिये—इत्यादि प्रकारके विचार इन्होंने प्रदर्शित किये।

श्री मुंशीजीके ये विचार सुन कर मुझे बडा अकल्पित आनन्द हुआ। इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा, सर्वविद्यास्पर्शिनी विद्वत्ता, अद्भुत कार्यप्रवणता, समर्थ संयोजनाशक्ति, सतत साहित्यानुराग और अपने साथियोंके साथ तादात्म्य साधनेकी अकृत्रिम तत्परता – आदि गुणोंको लक्ष्य कर मेरे मनमें विश्वास हुआ कि यदि ये इस तरह इस कार्यमें दत्तचित्त हो गये तो ऐसी संस्थाके निर्माणमें जरूर बहुत अच्छी सफलता मिल सकती है।

परन्तु, मैं तो अपना लक्ष्य 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' के पीछे स्थिर कर चुका था, इसलिये इस संस्थाके निर्माणमें श्री मुंशीजीको मैं अपनी कितनी सेवा दे सकूंगा इसका मुझे उस समय कोई खयाल नहीं था। सो मैंने उस समय तो कुछ सामान्य रूपसे अपनी परिस्थिति विदित कर, जिस तरह हो सकेगा उस तरह अपना यथा-योग्य सहयोग देते रहनेकी इच्छा प्रदर्शित की। पण्डितजीको ठीक होने पर मैं इनको अहमदाबाद ले गया। वहां कुछ समय रह कर वे फिर बनारस हिंदु युनिवर्सिटीमें, अपने कार्यस्थान पर गये। श्री मुंशीजीके इस बीचमें मुझ पर कई पत्र आ चुके और शीघ्र ही मुझे बंबई आनेका इन्होंने आग्रह किया। चूंकि ग्रंथ मालाका कार्य भी बंबईमें रहनेसे अधिक वेगसे होता रहेगा और साथमें श्री मुंशीजीको भी, नई संस्थाके निर्माणमें यथायोग्य अपना सहयोग दे सकूंगा, इस विचारसे मैंने बंबईको अपना मुख्य निवासस्थान बनानेका विचार किया।

अगष्ट ता. ३ को मैं बंबई पहुंचा और माटुंगामें किंग सर्कल पर एक मकान किराये पर रख कर, वहां रहना निश्चय किया। श्री मुंशीजीके साथ बैठ कर 'भारतीय विद्या भवन' की योजना तैयार की गई और उसका कार्यालय भी प्रारंभमें माटुंगा ही में खालसा कालेजमें स्थापित करना निर्णीत हुआ। मैंने यह सब अपनी प्रवृत्ति सिंघी-जीको ता. ६ सप्टेम्बरको एक विस्तृत पत्र लिख कर ज्ञात की। इसके उत्तरमें ता. १५. ९. ३८ को उन्होंने नीचे दिया हुआ वैसा ही विस्तृत पत्र मुझे लिखा।

Calcutta 15. 9. 38

श्रद्धेय श्री जिनविजयजी,

सविनय प्रणाम. आपका पत्र ता. ६ का यथासमय मिला. पढ कर आनन्दित हुवे। सिरीजके प्रकाशनके बारेमें पहले बनारसमें और अब बम्बईमें जो व्यवस्था आपने की और जिसका पूरा विवरण आपने लिखा सो मालूम हुवा। ठीक है. खर्च एक मुस्त कुछ ज्यादे भी लग जायगा मगर कुछ पुस्तकें जल्दी निकल जायगी तो अच्छा होगा। यहां भी कई स्कॉलर पूछते रहते हैं, कि और और पुस्तकें कब निकलेंगीं?

और माननीय मि. मुंशीजीकी संस्थाविषयक स्कीमकी पुस्तिका मिली। आपके पत्रसे भी पूरा विवरण ज्ञात हुवा। यह स्कीम बहुत ही सराहनीय है। ऐसे कामोंमें तो दिल तोड कर काम करनेवालोंकी आवश्यकता है। स्कीमकी योजना करना idialistic आदमीयोंके लिये कोई मुश्किल नहीं। रूपये भी प्रायः मिल जाया करते हैं। मगर कभी असफलता देखनेमें आती है तो एक तो उसमें काम करनेवालोंमें "प्राण" का अभाव और दूसरे ऐसे कामोंसे लाभ लेनेवालोंका अभाव। लेकिन इसमें आप और मुंशीजी जैसे उत्साही पुरुष जुट गये हैं इससे इसमें सफलता प्राप्त होना अवश्य है।

हमको इस बातका तो पूरा भरोसा है कि आप इस प्रवृत्तिमें सहयोग देने पर भी ग्रंथमालाके काममें किसी प्रकारकी शिथिलता नहीं आने देंगे। परन्तु उत्साहके वश सिर पर कार्य भार ज्यादह ले कर स्वास्थ्यभंग न हो जाय इस बातका हमेशां खयाल रखनेके लिये हमारा अनुरोध है।

मुंशीजी हमें याद करते हैं और मिलनेकी इच्छा रखते हैं–जान कर खुशी हुई। उनसे मेरा प्रणाम कहियेगा। मिलना तो कभी संयोगवश होगा तब ही होगा। कारण उनका कलकत्तेसे और हमारा बम्बईसे विशेष सम्बन्ध न होनेसे ज्यादा आने जानेका मौका नहीं आता।

श्रद्धेय पण्डितजीकी तबियत अब ठीक है और दो-तीन दिनमें अहमदाबादसे बनारस जांयंगे जान कर बडी प्रसन्नता हुई। एकाएक उनके बीमारीकी खबर पा कर हम लोगोंको इतनी अधिक चिन्ता हुई थी कि कुछ लिख नहीं सकते। यह तो हम लोगोंका, जैन समाजका और देशका सौभाग्य कहना होगा कि इस दफे इस असाधारण विपत्तिसे उनकी प्राणरक्षा हुई।

और पूज्य माताजी और हम ता. २१ को यहांसे निकल कर मांडोली जा रहे हैं। जाना तो सीधे रास्ते देहली हो कर ही होगा। बम्बई होते हुए जाना तो तब ही बन सकता था जब हम अकेले होते। वहां दो-तीन महिने रहनेका प्रोग्राम है। मगर हम अकेले दिवाली पर १०–१५ रोजके लिये कलकत्ता आनेका इरादा करते हैं। आपसे मिले बहुत दिन हो गये इसलिये मिलनेको दिल चाह रहा है। इसके अलावा आगमादि तथा कथा-वार्तादिक ग्रन्थ इस ग्रन्थमालामें निकालना या नहीं आदि आवश्यक बातें भी करनेकी है। मौसम भी उस वक्त अच्छा है। यदि आपको किसी प्रकारकी असुविधा न हो तो उस वक्त एक दफे आप कलकत्ते आ जांय तो अच्छा होगा।

और हमारा स्वास्थ्य श्रीगुरुदेवकी कृपासे अब प्रायः पूर्ववत् ठीक हो गया है, परन्तु सतर्क रहना पडता है। आपके स्वास्थ्यके तर्फ हमेशां ध्यान रखते रहियेगा जिससे साहित्यकी, समाजकी और देशकी सेवा ज्यादेसे ज्यादे बन पडे।

चि. राजेन्द्रसिंह हमारे साथ जा रहे हैं। मांडोलीमें २–३ रोज ठहर कर अहमदाबाद जा कर अपनी स्त्री और लडकेको ले कर कलकत्ते जांयगें। चि. वीरेन्द्रसिंह और उनकी बहु मांडोलीमें करीब १॥ महीनासे हैं और अभी कुछ रोज वहीं रहेंगें। सं० १९९५, आश्विन वदि ६

आपका विनीत

बहादुरसिंह

इस पत्रके पढनेसे मालुम होगा कि 'भारतीय विद्या भवन' की योजना और स्थापना का सिर्फ प्रारंभिक परिचय ही मैंने जब सिंघीजीको लिख भेजा तो उसे देख कर वे इसके प्रति कैसे सहानुभूतिवाले और इसकी सफलताके लिये कैसे आशावाले हो गये थे। उनकी इच्छानुसार उस वर्षके डीसेम्बर (सन् १९३८) में मैं कलकत्ते गया और कुछ दिन तक उनके साथ रहा। इस समय उनके संग्रहमें जो मुगल, राजपूत और कांगरा स्कूलके सैंकडों ही फुटकर चित्र थे उनको मैंने ठीक व्यवस्थित करनेका प्रयत्न किया और आलबमके रूपमें उन्हें सजाया। सिंघीजी भी इस काममें बराबर

अपना योग देते थे और चित्रोंके विषय और परीक्षण आदिमें अपनी प्रवीणताका परिचय कराते थे। इस संग्रहको ठीक करते समय यह भी निर्णय किया गया कि इनमें जो उत्तम और विशिष्ट प्रकारके चित्र हैं, उनके कुछ संग्रह, क्रमशः सिंघी जैन ग्रन्थमालामें प्रकाशित किये जांय। ऐसा ही विचार शिक्कोंके संग्रहके केटेलॉगके बारेमें भी किया गया।

ग्रन्थमालाके स्टॉकको कलकत्तेसे हटानेका निर्णय

ग्रन्थमालाकी छपी हुई पुस्तकोंका जो स्टॉक अभी तक कलकत्तेमें सिंघीजीके वहां रखा जाता था उसे अब वहां न रख कर अहमदाबाद भेज देना निश्चित हुआ। कलकत्तेमें उन पुस्तकोंके रखने की कोई अच्छी व्यवस्था न थी और वहां रखनेका कोई अर्थ भी न था। पुस्तकोंके विक्रय वगैरहकी सब व्यवस्था करना मेरे ही जिम्मे थी इसलिये सिंघीजीकी इच्छा हुई कि जहां मेरा रहना हो और जहां पर मैं सरलताके साथ उनकी व्यवस्था कर सकूं, वहीं वह स्टॉक रखा जाय। पर इसके साथ ही मेरे आगे यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि–अहमदाबादमें भी इन सब पुस्तकोंको कहां पर रखा जाय। मेरा रहनेका जो स्थान है वह छोटासा है और अपनी आवश्यकताके अनुरूप है। ग्रन्थमालाके ग्रन्थ ज्यों ज्यों छपते जांयगें त्यों त्यों उनका स्टॉक बढता जायगा। उसके लिये पर्याप्त जगह कैसे प्राप्त करनी होगी? इसके समाधानके लिये सिंघीजीने कहा–'आप ५–७ हजार रूपये खर्च कर कोई दो-एक बडे कमरे अपने मकानमें और नये बना लीजिये। क्यों कि जब हमें ग्रन्थमालाका काम केवल चालू ही नहीं रखना है पर इससे भी अधिक बढाना है, तो फिर इसके रखनेकी व्यवस्था आदि तो अवश्य करना ही होगा।' कितनी उदारता, कितनी विशाल दृष्टि और कितना साहित्यानुराग! सिंघीजीका यह कथन सुन कर कुछ देर तक तो मैं मौन रहा और फिर बोला–'अभी फिलहाल इस स्टॉकके रखने जितनी जगह तो मकानमें हैं। आगे स्टॉकके बढने पर देखा जायगा।'

बम्बईमें नवीन स्थापित 'भारतीय विद्या भवन'के विषयमें भी बहुतसी बातें हुई और उसमें मेरा सहयोग किस प्रकारका है और वह सहयोग 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'के कार्यमें बाधक न हो कर उलटा किस तरह साधक हो सकता है इस बारेमें जो मेरी कल्पना थी वह उनको दी गई। क्यों कि सिंघीजीको भय था कि कहीं मैं इस नूतन संस्थाके कार्यभारमें फंस कर ग्रन्थमालाके कार्यमें मन्दगति न हो जाऊं। उन्होंने मेरी कल्पनाका प्रोत्साहन किया और मैं सन्तुष्ट हो कर उनसे विदा हुआ।

इसके बाद ग्रन्थमालाकी दो-एक पुस्तकें और तैयार हुई तो उनके पुठेपर जिस प्रकारका पीला–केशरिया रंगका कागज लगाना, प्रारंभ ही से निश्चित किया था वह युद्धके कारण बाजारमें मिलना कठिन हो गया। तब मैंने अगर उसीके रंग-ढंगका मिलता-जुलता कोई कागज न मिले तो फिर दूसरी जातिका कागज लगाना ठीक होगा या नहीं इस विषयमें उनसे पत्र लिख कर पूछा। क्यों कि उनका इस विषयमें बहुत ध्यान रहता था और पुस्तकोंके गेट-अप इत्यादिके बारेमें वे खास दिलचस्पी लेते थे, यह मैंने ऊपर पहले ही सूचित किया है। इसके उत्तरमें ता. ३.३.३९ का लिखा हुआ उनका नीचे मुआफिक पत्र मिला।

"सविनय प्रणाम. आपका पत्र ता. २६. २. ३९ का मिला। पुस्तकका पार्सल भी मिला। 'साहित्य संशोधक' में हरिगुप्तका उल्लेख देखा। वह अंक रख लिया है। गुप्त शिक्कोंके बारेमें हमारा Catalogue तैयार करेंगे तब काम आयगा। ग्रन्थमालाका काम अच्छी तरह चल रहा है यह जान कर पूर्ण सन्तोष हुवा। यहां रखी हुई पुस्तकोंके अहमदाबाद भेजनेका प्रबन्ध शीघ्र करा देंगे।

सिरीझके कवरपेजके कागजका रंग बदलनेके पक्षपाती हम नहीं है। हमें केशरिया रंगसे कोई मोह नहीं है। मगर जो रंग पहलेसे व्यवहार करने लग गये हैं उसीको कायम रखनेसे उसकी एक विशिष्टता रहेगी। दूरसे देख कर ही लोक पहचान जायंगें कि यह "सिंघी सिरीझ" है। और इन्हीं बातोंको सोच विचार कर अपने केशरिया रंग पसन्द किया था। उस वक्त भी दूसरे दूसरे फेशनेबल रंग मिलते थे परन्तु कई बातोंको ध्यानमें रखते हुए पुराने फेशनका "केशरिया बांगा" ही इसके लिये पसन्द किया गया था। हां रंग यही या इससे मिलता जुलता रख कर जात या quality बदल दिया जाय तो कोई हर्ज नहीं। यह सब जिल्दके कागजके लिये है, अन्दरके मेटरके लिये तो जिस ग्रन्थमें जैसा अच्छा हो वैसा दिया जा सकता है।

पू० माजीकी तबियत वैसी ही है। सारे शरीरमें दर्द रहता है। उन्होंने आपको प्रणाम लिखनेको कहा है। हमारी तबियत ठीक ही चल रही है। और सब अच्छे हैं। चि. राजेन्द्र-सिंह त्रिपुरी कॉंग्रेसमें जायंगें वहांसे शायद बंबई जांय। आप अगर त्रिपुरी आये तो वहां, नहीं तो बंबईमें वे आपसे मिलेंगे। और आपकी तबियत ठीक रहती होगी, लिखियेगा।"

आपका विनीत—**बहादुरसिंह**

इसके बाद, ता. २९.४.३९का लिखा हुआ उनका निम्नगत पत्र मिला, जिसमें कलकत्तेसे ग्रन्थमालाका जो सारा स्टॉक अहमदाबाद भेजना निश्चित हुआ था उसके विषयके समाचार थे।

"सविनय प्रणाम. आपका कृपापत्र अक्षयतृतीयाका यथासमय मिला।

ग्रन्थमालाकी सब पुस्तकें आपके पास भेज देनेके लिये चि. राजेन्द्रसिंहसे कहा हुआ था, मगर इन दिनोंमें उनको कई दफे बहार जानेके कारण तथा और और कामोंमें व्यस्त रहनेके सबब वो इस कामको करा नहीं सके। आज हम खुद सब पुस्तकें निकलवा कर धूपमें दिलवा कर साईझ माफिक पेकिंग केसका आर्डर दे दिया है। पेकिंग केस आ जानेसे अपने सामने पेक करवा कर तीन–चार रोजके अन्दर रवाने करा देंगे। आपका रहना तब तक वहां हो जब तो ठीक है, नहीं तो हम अहमदाबाद रेल्वे स्टेशनका बुक करके रेल्वे रसीद आपको बम्बई भेज देंगे। आप फिर अहमदाबादमें जिनको भेजना हो भेज कर पुस्तकें रखनेकी व्यवस्था करवा दीजियेगा। हमने यहां हरेक पुस्तककी पचास-पचास कापियां रख ली हैं। अब जो जो पुस्तकें तैयार होती जांय उनकी ५०–५० कापी यहां भेजनेकी कृपा कीजियेगा।

कवरके लिये केशरिया कागज नये जातका आपने भेजा वो बिल्कुल ठीक है। Stiff Cover के उपर चिपकानेके लिये तो इतने मोटे कागजकी जरूरत नहीं इससे पतला ही शायद ठीक रहेगा। Paper Cover वालोंमें यह ठीक रहेगा–फिर जैसा आप उचित समझें।

पंडितजीके यहां आनेकी बात तो Middle of March से चल रही है, न मालूम कब आवेंगे।

पू० माजीने प्रणाम लिखवाया है। कुटुंबके और सब भी सविनय प्रणाम कहलाते हैं। हमलोग मजेमें हैं आपका कुशल समाचार बीच बीचमें देते रहियेगा। यहां योग्य कार्य-सेवा लिखियेगा।"

आपका विनीत—**बहादुरसिंह**

मेरे स्वास्थ्यकी शिथिलता

बम्बईमें रहनेसे ग्रन्थमालाके कार्यमें अधिक प्रगति होने लगी। प्रेस वहीं होनेसे प्रुफोंका आना-जाना अधिक शीघ्रतासे होने लगा और इससे ग्रन्थोंकी छपाई-का काम पहलेकी अपेक्षा अधिक वेगसे चलने लगा। इधर 'भारतीय विद्या भवन'-का कार्य भी यथेष्ट प्रगति कर रहा था। यद्यपि मैंने उसके बाह्य कार्यकी कोई विशिष्ट जिम्मेवारी अपने ऊपर नहीं ली थी, तो भी उसके अन्तरंग काममें तथा ग्रन्थोंके संपादन आदिके काममें, मुझे यथेष्ट योग देना पडता ही था। 'भारतीय विद्या' नामक संशोधनात्मक हिन्दी-गुजराती त्रैमासिक पत्रिकाके संपादनका सब काम प्रारंभसे मुझे ही अपने हाथमें लेना पडा था। तदुपरान्त 'भारतीय विद्या ग्रन्था-वली' अन्तर्गत कुछ ग्रन्थोंका संपादन भी मैंने शुरू किया था। अधिकारके रूपमें नहीं पर सहकारके रूपमें भवनकी और और सब बातोंका भी मुझे प्रतिदिन खयाल रखना पडता था।

इसी बीचमें, उदयपुरमें होनेवाले 'राजस्थान साहित्य सम्मेलन'के प्रथम अधिवेशनके अध्यक्षके रूपमें, और पीछेसे उसकी समितियोंमें भाग लेनेके निमित्त, वारंवार राजस्थानमें जाने-आनेके कारण एवं अन्य साहित्यिक अन्वेषणके निमित्त समय समय पर होनेवाले प्रवासादिके कारण, मेरे स्वास्थ्यमें बहुत कुछ शिथिलता दिखलाई देने लगी। बीच-बीचमें कुछ बीमारियां भी सताने लगीं। निरंतर एक जैसा वर्षों से बैठे बैठे काम करनेके सबबसे कमर भी बेचारी बेकारसी होने लगी। इससे अब ये सब काम मन ऊपर अपना भारभूत प्रभाव बताने लगे। इधर ज्यों ज्यों ग्रन्थमा-लाका काम बढता जाता था और उसके ग्रन्थ छप छप कर जमा होते जाते थे त्यों त्यों उनको संभालना, उनकी रक्षाका प्रबन्ध करना, उनकी विक्री आदिकी व्यवस्था करना और उसके आयव्ययका हिसाब रखना इत्यादि प्रकारके कामका बोझ भी मन पर बढता जाता था। सिंघीजीने यह सब जिम्मेवारी, मेरे ही ऊपर छोड रखी थी। वे तो सिर्फ ग्रन्थमालाके कार्य निमित्त जितना भी खर्चा हो उसके भेज देनेके सिवा और ग्रन्थोंकी अधिकाधिक प्रसिद्धिके सिवा और किसी बातमें हस्तक्षेप करना नहीं चाहते थे। इधर उनका भी शरीर शिथिलसा रहा करता था और बीच-बीचमें हृदयकी बीमारी आदिका प्रकोप होता रहता था। इससे ग्रन्थमालाकी भावी व्यवस्थाका खयाल मुझे सदा चिन्तित रखने लगा। जब कभी मेरा स्वास्थ्य कुछ अधिक खराब हो जाता, तो बन्धुवर पण्डितजीका यही आग्रह हुआ करता कि अब किसी तरह ग्रन्थमालाके कामको समेट लो और जो ग्रन्थ छप रहे हैं उन्हें पूरे कर आगेका काम बन्ध कर दो। (पण्डितजीका यह आग्रह तो आज भी वैसा ही चालू है।)

इन सब कारणोंसे बीचमें मैंने बहुत बडे अर्से तक सिंघीजीको कोई पत्र तक नहीं लिखा और अपनी प्रवृत्तिके विषयमें उन्हें कुछ भी ज्ञात नहीं किया।

भारतीय विद्या भवनके साथ ग्रन्थमाला संलग्न कर देनेका विचार

'भारतीय विद्या भवन'की प्रवृत्ति और स्थिति श्री मुंशीजीके सतत प्रयास और विशिष्ट प्रभावके कारण दिन प्रतिदिन उन्नति करती जाती थी और पिछले तीन-चार वर्षोंमें आर्थिक एवं संगठनकी दृष्टिसे उसने अच्छी दृढभूमि प्राप्त कर ली थी। मुंशीजी कभी कभी मुझसे प्रेरणा किया करते थे कि 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'को यदि भवनके साथ संलग्न कर देनेका आप प्रयत्न करें तो इससे भवनकी प्रसिद्धि एवं प्रतिष्ठा और भी अधिक बढेगी और आपको भी कुछ भावी निश्चिंतता प्राप्त होगी। मेरे दिलमें भी कभी कभी ऐसा विचार आता रहता था। कोई वर्ष डेढ-वर्ष इस विचार-मन्थनमें व्यतीत हो गया। फिर जब मेरा निश्चय हो गया कि ग्रन्थमालाको भवनके साथ संलग्न करनेसे इसका भविष्य अधिक स्थिर और कार्यशील बना रहेगा; तब मैंने, सिंघीजीको बडे अर्सेबाद, एक विस्तृत पत्र (ता. १२.३.४२ को) लिखा और उसमें अपने ये सब विचार संक्षेपमें सूचित कर, इस विषयमें प्रत्यक्ष विचार करनेकी दृष्टिसे उनसे मिलनेकी इच्छा प्रदर्शित की।

सिंघीजी भी इस बीचमें मेरा कोई पत्रादि न प्राप्त कर कुछ विचार निमग्न हो रहे थे। उनको भी शायद ग्रन्थमालाके भविष्यकी अनिश्चितताका कुछ आभास हो रहा था। इसलिये मेरा उक्त पत्र प्राप्त कर उन्होंने भी वैसा ही एक विस्तृत पत्र मुझे लिखा और उसमें अपना मनोगत भाव, बडे सौजन्यके साथ, पर कुछ उपालंभके रूपमें, व्यक्त किया। सिंघीजीका यह पत्र मेरे लिये एक ऐतिहासिक पत्र है। इसने ग्रन्थमालाके भविष्यको नया रूप देनेके लिये भूमि तैयार की और मेरे मनको उसके लिये अधिक उत्सुक बनाया। सिंघीजीका कलकत्तेसे ता. २४.३.४२ का लिखा हुआ यह पत्र इस प्रकार है-

श्रद्धेय श्री जिनविजयजी,

सविनय प्रणाम. आपका कृपापत्र ता. १२. ३. ४२ का अजीमगंज हो कर यहां मिला। हम कार्यवश यहां ४।५ रोजके लिये आये थे परन्तु १० रोज हो गया। अब शायद ४।५ रोज और भी ठहरना पड़े। बाकी परिवारके सब अजीमगंजमें हैं, यह तो आपको मालूम ही है।

अहोभाग्य कि इतने दिनों बाद आपने मेरेको प्रत्यक्ष रूपसे याद किया और सिंघी ग्रन्थमालाके कार्यकी प्रगतिकी कुछ रूपरेखा सामान्य रूपसे अपने पत्रके द्वारा सूचित की। ग्रन्थमालाका कार्य प्रारम्भ हुआ था उस वक्त तो हरेक फर्मा छपने पर एक क्रापी मेरे प्रास आ जाया करती थी। इससे मालुम हो जाता था कि प्रेसमें क्या काम चालू है, और आपके पत्रोंसे यह विदित हो जाता था कि आगेके प्रकाशनके लिये कौन कौनसे पुस्तक पसन्द किये गये हैं और उस पर काम कितना आगे बढ रहा है। अब अवस्थाका इतना परिवर्तन हो गया है कि पुस्तकें छप कर बाईंडींग हो कर बाहर आ जाती हैं और मेरेको पता भी नहीं रहता है। मालुम तब पडता है जब या तो उसकी मांग मेरे पास आती है

था उसकी समालोचना कभी कभी पेपरोंमें, कभी पत्र द्वारा मेरे पास आती है, और दोनों हालतमें हमें मौन रहनेको बाध्य होना पडता है।

उदाहरणके लिये **"भानुचन्द्रगणिचरित"** को लीजिये। उसके छप जानेकी मेरेको कोई सूचना नहीं मिली – पुस्तकको आंखोंसे देखी भी नहीं। देहलीवाले पनालालजी नामके कोई व्यक्ति (नाम और पता हम भूलते न हों तो) ने उसके विरुद्धमें कुछ समालोचना पेपरोंमें निकाली उसका कोई उत्तर न मिलने पर मेरेको सीधा पत्र लिखा कि उस पुस्तकमें कई बातें भ्रमपूर्ण हैं। अवश्य उनके भ्रमका निराकरण करना मेरे शक्तिसाध्य बात न थी; परन्तु जिस पुस्तकको अपनी नजरोंसे भी नहीं देखा उसके विषयमें कुछ भी जवाब देना असम्भव था इसलिये "चुप" रहना पडा। उस पुस्तककी कई कॉपी बादमें मिली।

पहले जब पुस्तकें छप कर तैयार होती थीं तो सब कापियां यानि १०००/५०० यहीं आ जाती थीं। जब पुस्तकें बहुत इकट्ठी हो गई, रखनेके स्थानका अभाव हुआ तब आपके साथ यही तय हुआ कि हरेक पुस्तककी ५०/५० कापियां यहां रख कर बाकीकी सब अहमदाबाद भेज दी जांय। वैसा ही किया गया। अब वे पुस्तकें बक्सोंमें बन्द अहमदाबादमें रखी होंगी। हमने आपसे गत ७/८ वर्षोंमें कई दफे विनती की होगी कि जिस उद्देश्यको ले कर ये पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं, उसको सफल करनेके लिये, भारतवर्षमें और यूरोपमें इन्हें वितरण कर दी जांय। ताकि विद्वद्वर्ग हमारी और आपकी हयातीमें देखें तो सही कि किसने क्या और कैसा काम किया है और कर रहे हैं। हां, आपसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाले दस-बीस मित्रोंने इन्हें देखा और प्रशंसा जरूर की; परन्तु मेरा और आपका उद्देश्य क्या इतने ही से सिद्ध हो गया? आप हमारी प्रसिद्धिके लिये नई नई योजना सोच रहे हैं। क्या भारतवर्ष, यूरोप और अमरिकाकी विख्यात विख्यात लाईब्रेरियोंमें और विद्वद्वर्गके हाथमें ये पुस्तकें पहुंच जातीं तो कम-से-कम उस श्रेणिके लोगोंमें, आपके साथ साथ मेरी भी कुछ-न-कुछ ख्याती नहीं होती? एक विद्वान् और पण्डितके रूपसे नहीं परन्तु ऐसे कामोंमें दिलचस्पी रखनेवाले और इस कामको करनेवाले विद्वद्वर्गको उत्साहित रखनेवालेके रूपमें तो सही। इस कामके यानि वितरणकार्यको करनेके लिये अलग स्टाफकी जरूरत हो तो उसके लिये भी हमने मंजुरी दे दी थी। मगर किसी न किसी कारणवश वह बात अब तक नहीं बनी। आज तो युद्धकी परिस्थिति ऐसी आ खडी हुई है कि इरादा करने पर भी नहीं हो सकता। एक दिन ऐसा भी आयेगा कि जिस रोज पं० सुखलालजी, आप और हम इस संसारमें न रहेंगे† और परस्परके महाप्रस्थानका अन्तर भी

† दैवयोगसे आज, यह ता. ७. ७. ४५ का दिन है, जब कि मैं सिंघीजीके पत्रमेंकी इन पंक्तियोंकी प्रतिलिपि कर रहा हूं। यह ठीक आज सिंघीजीके स्वर्गगमनकी पहली वार्षिक तारीख है। भवनका सब कार्य आज बन्ध रखा गया है और मैं उनके स्मरणका यह अंश बैठा बैठा लिख रहा हूं। सिंघीजीका फोटू मेरे सामने रखा हुआ है जिसकी ओर मैं इन पंक्तियोंको लिखता हुआ बीच-बीचमें टकटकी लगा कर कुछ देर तक देखता रहता हूं। मुझे कुछ आभास हो आता है कि सिंघीजीकी यह प्रतिकृति मानों मुझसे कह रही है कि 'देखो, मैंने १९४२ में आपको लिखा न था कि एक दिन ऐसा भी आयेगा कि जिस रोज हम संसारमें न होंगे, सो आज हम संसारमें नहीं है। हमें तो संसारसे बिदा हुए भी आज

ज्यादा नहीं होगा। क्यों कि हम तीनों करीब करीब एक ही उम्रके हैं और स्वास्थ्य भी शिथिलसा हो गया है। पूर्ववत् न तो मनोबल है और न शरीरबल। हम तीनोंके अभावमें इन पुस्तकोंके समूहका क्या होगा? आपने शायद नहीं सोचा होगा। क्यों कि आप तो अभी उसके निर्माणकार्यमें व्यस्त हैं। हमने सोच लिया है और वह यह कि या तो दीमकके पेटमें या वजनके दरोंसे बुकसेलरोंके पेटमें।

जब हमने सब पुस्तकें अहमदाबाद भेजी थीं उस वक्त जो जो पुस्तकें थीं उनकी ५०/५० कापियां हमने यहां रख ली थीं। बादमें जो पुस्तकें प्रकाशित हुईं उसकी भी ५०/५० कापी मेरे पास आनी चाहिये थीं मगर नहीं आईं। ३-३ या ४-४ कापियां आईं उसका नतीजा यह हुआ कि **'देवानन्दमहाकाव्य'** और **'तर्कभाषा'** की एक भी कापी मेरे पास नहीं है। मुझे ठीक याद नहीं कि ये पुस्तकें मेरे पास आई थी या नहीं? अगर दो-दो तीन-तीन कापी करके आई भी हों तो किसी किसीको दे देनेमें चली गई होंगी। मेरे पास अब नहीं है। दूसरे पिछले प्रकाशित पुस्तकोंकी एक-एक दो-दो कापी हैं।

ये सब बातें यों ही प्रसङ्गोपात मनमें आ गई सो लिख दीं। आप इन बातों पर विशेष ऊहापोह न करें। इन बातोंका मनमें आते हुए भी हमको सबसे ज्यादह संतोष इस बातका है कि काम ठोस, अच्छा, और बहुत अच्छा हो रहा है; और वह भी ऐसे सुयोग्य सज्जनोंके द्वारा कि जो अपने अपने विषयमें भारतवर्षमें अपनी जोड नहीं रखते। यह हम दर असलमें अपना अहोभाग्य मानते हैं—और इसमें कोई खुशामदकी बात नहीं। आप मेरे आग्रहसे इस कामको करनेके लिये तत्पर हुए और काम चल पड़ा। 'सिंघी ग्रन्थमाला' ने विद्वज्जनोंमें ख्याति प्राप्त की। नहीं तो, न तो मेरे मन पसन्द माफिक इसको करनेवाले ही कोई मिलते और न इस ग्रन्थमालाका जन्म ही होता। अस्तु। हमारा रहना अप्रेल-मईमें अजीमगंजमें होना ही संभव है। कार्यवश कभी कभी २।४ दिनके लिये कलकत्त आते रहते हैं। आप अपनी इच्छानुसार इधर आवें तो बडी खुशी होगी। मिलनेको बहुत अर्सा हो गया है।

आपके पत्रमें और और विषयकी जो चर्चा है मिलने पर ही वे बातें होंगी, पत्रके द्वारा संभव नहीं।

एक पूरा वर्ष व्यतीत हो गया है।' हमारा व्यथित मन, इस अप्रिय आभासका चिन्तन करना पसन्द नहीं करता, पर कालके बलके आगे बिचारे दुर्बल मनका क्या जोर। काल कहता है सिंघीजी सचमुच ही आज संसारमें नहीं है। सिंघीजीके इस पत्रमें जो भविष्य-कथन किया गया है उसका उनके अपने विषयका कथन तो सिद्ध हो गया है, देखें हमारे विषयका कथन कब सिद्ध होता है और हमारे भी महाप्रस्थानका दिन कब आता है। हमें आभास होता रहता है कि हमारे उस परम आत्मीय बन्धुजनके सूचनके अनुसार, उनके और हमारे महाप्रस्थानके बीचमें कोई ज्यादह अन्तर तो नहीं होगा। परन्तु खेद इतना ही है कि सिंघीजी ही हमसे पहले प्रस्थान कर गये और ग्रन्थमालाके जितने ग्रन्थ पिछले १२ वर्षोंमें प्रकाशित हुए वे देख गये उनसे कहीं अधिक ग्रन्थ, जो हम अपने शरीरकी स्वस्थता और आयुष्यकी क्षीणताकी अवगणना करके भी, केवल उन्हींके सन्तोषके खातिर, संपादित कर प्रकाशित करनेका परिश्रम उठा रहे हैं उनको देखनेके लिये कुछ वर्ष क्यों न ठहरे!

श्रीयुक्त मुंशीजीसे मेरा सादर प्रणाम कहियेगा। अपनी बहुमुखी कार्यावलीमें भी उन्होंने मेरेको याद किया इसलिये मुझ पर उनका स्नेह है यह प्रत्यक्ष है। वे पिछली दफे जब कलकत्ते पधारे थे तब कई दफे उनसे मिलना हुआ था। एक दफे मेरे यहां भोजनकी भी कृपा की थी। बम्बई जानेका दिलमें लगा हुआ है, मगर लडाईके जमानेमें जाना बन पडे ऐसी आशा नहीं।

अजीमगंज जाने पर पू० माजीको आपका प्रणाम जरूर कहेंगे। उनके सारे शरीरमें दर्द दिन-पर-दिन बढता ही जाता है। अब तो हिलने-डोलनेकी भी शक्ति नहीं रही। कोई इलाज काम नहीं देता। अशाता वेदनीयका पूर्ण उदय है। उनको तो इस पर भी संतोष है कि मेरा बान्धा हुआ निकाचित कर्म इसी भवमें बहुतसा इस रूपमें क्षय हो रहा है।

हमारी तबियत कभी ठीक, कभी बे-ठीक ऐसी ही चल रही है। आप अपने स्वास्थ्यका संभाल रखें। कृपया पत्रोत्तर अजीमगंज दें। आपका स्नेही

बहादुरसिंह।

मेरा सिंघीजीसे अजीमगंज मिलने जाना

सिंघीजीका यह पत्र मिले बाद मैं तुरन्त ही उन्हें मिलनेके लिये जानेको उत्सुक हुआ पर कुछ कारण वश जा न सका। आखिरमें जुलाई (१९४२) के तीसरे सप्ताहमें मैं बंबईसे अजीमगंज जानेको रवाना हुआ। रास्तेमें कुछ ३-४ रोज बनारस, हिंदु युनिवर्सिटीमें पंडितजीसे मिलनेको उतर गया। वहां पर पण्डितजीसे भी, ग्रन्थ-मालाके भविष्यके प्रबन्धके विषयमें, यथेष्ट विचार-विनिमय किया और फिर वहांसे (ता. २३ जुलाईको) अजीमगंज पहुंचा।

अजीमगंज सिंघीजीका मूल निवास स्थान है। बंगालमें बसने वाले जैनियोंका वह एक छोटासा केन्द्रस्थान है। मुर्शिदाबादके नवाबोंके जमानेसे अनेक जैन कुटुम्ब, राजपूतानासे वहां जा कर, बसे हुए हैं और वहांके जगत्प्रख्यात जगत्सेठ तथा अन्यान्य कई धनाढ्य जैन कुटुम्ब, कोई दो-ढाई सौ वर्षोंसे सारे हिंदुस्थानमें, अच्छे प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित समझे जाते हैं। सिंघीजीका खानदान भी उन्हीं कुटुम्बोंमेंसे एक है। विद्यमान जगत्सेठकी माता और सिंघीजीका माता दोनों सगी बहने थीं। सिंघीजीका जन्म वहीं हुआ और बचपन भी वहीं बीता। पिछली लडाईके समयमें उनका सारा कुटुम्ब कलकत्ते आ कर बसने लग गया। इस लडाईके समय, जब कलकत्तेमें जापानके आक्रमणकी आशंका खडी हुई, तो वे अपने सारे कुटुम्बको ले कर फिर अजीमगंज रहने चले गये और जब तक लडाईका आतंक दूर न हो जाय तब तक वहीं-स्थायी रहनेका निश्चय किया। मैं जब इस वार उनसे मिलने गया तो सारा कुटुम्ब वहीं था इसलिये मुझे भी वहीं जाना पडा।

अजीमगंजमें, भागीरथीके बिल्कुल किनारे उनकी सुन्दर कोठी बनी हुई है। ठीक दरवाजेके सामने ही भव्य नदी बह रही है। कोठीमेंसे देखने पर, नदीके उस पारका बडा ही सुन्दर दृश्य, दिन-रात आँखोंको आनन्दित करता रहता है। उन्होंने अपनी

सुरुचिके मुताबिक नदीके कांठेको एक अच्छा आकर्षक आकार दे कर उसे बहुत ही स्वच्छ और सुन्दर बना दिया है। दरवाजेके सामने ही एक नौका लगी रहती है जिसमें बैठ कर उस पार आना जाना होता रहता है। सिंघीजीने अपने मकानमें बीजली और पानीके नलका भी स्वतंत्र प्रबन्ध कर लिया और इस तरह संपूर्ण आधुनिक आवश्यकताके अनुकूल उस कोठीको सजा लिया। पास ही में एक और अच्छा नया मकान भी बिल्कुल आधुनिक ढंगके आकारका, बनाना प्रारंभ कर दिया। मैं जब मकान पर पहुंचा तो वे नदीके किनारे खडे खडे उस मकानके कामको देख रहे थे और काम करनेवालोंको कुछ सूचना दे रहे थे।

इस बार बहुत दिन बाद हम दोनोंका मिलना हुआ इससे एक दूसरेके प्रति मनमें बडा उत्सुक भाव जग रहा था। पर मैंने देखा कि सिंघीजीका शरीर बहुत कुछ दुर्बल हो गया है और उनके खान पानकी मात्रा भी बहुत ही घट गई है। रातको नींद ठीक नहीं आती है और मनमें सदा ग्लानिसी बनी रहती है। परिवारके साथ बोलने चालनेमें भी वैसी कोई प्रसन्नता नहीं दिखाई दी। बोले—'मेरी तबियत इन दिनों कुछ नरमसी रहती है। कोई कार्य करनेकी इच्छा नहीं होती और मन भी प्रसन्न नहीं रहता है। इसीसे आपको पत्र वगैरह लिखनेमें उत्साह नहीं आता और पिछले दो तीन पत्रोंका ठीक उत्तर नहीं दिया गया। पण्डितजीके भी कई दिन हुए दो-एक पत्र आये पडे हैं, परन्तु उनका भी जवाब अभी तक नहीं दे पाया' इत्यादि।

अजीमगंजमें किया गया ग्रन्थमालाका भावी निर्णय

पूरे पन्द्रह दिन मैं उस समय सिंघीजीके साथ अजीमगंजमें रहा। वर्षाऋतु अपने पूरे जोशमें थी और खूब बारीस हो रही थी। नदीका पानी काफी चढा हुआ था और वह मानों सिंघीजीके द्वारकी सीढियोंको आलिंगन करनेकी उत्सुकता बता रहा था। सिंघीजीके बैठनेके कमरेमेंसे पश्चिमकी ओर कोई डेढ-दो-मील तकका नदीका स्थिर परन्तु समुन्नत एवं विशाल जलप्रवाह तथा उसके दोनों किनारोंपर सटी हुई सघन वृक्षघटा और झाडीका अत्यन्त मनोरम दृश्य, एक प्रकारका बहुत ही भव्य और रम्य चित्रसा लगता था और आँखोंको अनिमेषभावसे देखनेको आकृष्ट करता था। मेरे प्रकृतिप्रिय चित्तको यह दृश्य बडा सुहावना मालूम देता था और मैं घंटों खडा खडा उसकी ओर देखते हुए तृप्त ही नहीं होता था। रातको भी मैं जग जग कर मकानकी खुली छतमें जा कर खडा हो जाता था और घंटों उस एकान्त नीरव रात्रिकी अनन्य सुषमाका संवेदन कर आल्हादित होता था। दिनमें कभी सिंघीजीके साथमें और कभी श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजी आदिके साथमें, नावमें बैठ कर आसपासके स्थानोंको देख आया करते थे। एक सन्ध्याको, अजीमगंजसे दो-एक मीलके फासले पर राणी भवानीका बनाया हुआ जो ऐतिहासिक मन्दिर है, उसको बतानेके लिये खास तौरसे सिंघीजी मुझे ले गये। उन्होंने वहांका सब इतिहास बतलाया और उस मन्दिरकी कारीगिरी आदिका परिचय कराया। सिंघीजीको इतिहास और स्थापत्य दोनों विषयोंका बडा शौक था और उस विषयकी चर्चामें वे जब तल्लीन हो जाते तब घंटों बातें करते नहीं थकते। मुर्शिदाबादके प्राचीन इतिहासकी तथा वहांके नवाबों एवं अन्यान्य प्रसिद्ध व्यक्तियोंके विषयकी उनकी जानकारी खूब गहरी थी। प्रसङ्गोपात्त इस जानकारीका

उन्होंने मुझे बहुत कुछ परिज्ञान कराया। जगत्सेठके घरानेकी जितनी बातें उनको ज्ञात थीं उतनी शायद आज तक अन्य किसीको ज्ञात नहीं हुई होंगीं। उनके पास ये सब बातें सुन कर मैंने उनसे कहा, कि–'बाबूजी, आपके पीछे इन सब बातोंका जाननेवाला शायद और कोई नहीं रहेगा। इसलिये अच्छा हो यदि आप अपनी इस जानकारीके नोटस् करके या किसीसे करवा करके कहीं छपवा दें। अथवा मुझे दें दें तो मैं उन्हें छपवानेकी व्यवस्था कर दूं।' इस पर वे बोले 'हमसे खुदसे तो कुछ लिखा जा नहीं सकता। वैसा मानसिक स्वास्थ्य भी हमारा अब है नहीं। और कोई दूसरा हमारे मनके मुताबिक लिखनेवाला हमको मिलता नहीं।' इत्यादि अनेक प्रकारकी चर्चा उनसे सतत होती रहती थी।

फिर एक रातको जब उनका मन ठीक स्वस्थ था, तब हम दोनों शान्तिसे बैठे और 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'के विषयमें विचार-विनिमय करने लगे। मैंने ग्रन्थमालाके तब तकके कामका उन्हें सिंहावलोकन करा कर भविष्यका विचार उपस्थित किया। मैंने कहा–'ग्रन्थमालाके संचालनका समग्र भार, अब तक मेरे अकेलेके व्यक्तित्व ऊपर ही निर्भर रहा है। स्टॉक सब अहमदाबादमें रहता है, जहां अब उसके रखनेकी विशेष जगहका अभाव है। मेरा रहना अधिक बम्बई होता है और शरीर भी न मालुम किस दिन जवाब दे सकता है। ऐसी हालतमें ग्रन्थमालाकी स्थिति क्या हो? इसलिये मैंने सोचा है कि उसका संयोजन 'भारतीय विद्या भवन' के साथ कर दिया जाय तो सब तरहसे उचित होगा।' फिर 'भवन'की स्थिति और श्रीमुंशीजीकी अभिलाषा आदिका भी मैंने उनको यथायोग्य परिचय दिया। बनारसमें पण्डितजीके साथ जो कुछ परामर्श हुआ उसका भी जिक्र किया। सब बातोंको शान्तिके साथ सुन कर वे बोले–'इस बारेमें तो हमारे लिये आप ही सर्वथा प्रमाणभूत हैं। आपको अगर इस प्रकार भवनके साथ इसका संबन्ध जोड देना लाभदायक प्रतीत होता हो, तो हमको उसमें कोई आपत्ति नहीं है। आप अपनी सुविधा और सुव्यवस्थाकी दृष्टिसे जो कोई भी योजना हमें सूचित करेंगे वह हमको मंजूर होगी। हमारी तो एकमात्र अभिलाषा आपकी और हमारी हयातीमें जितने भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित किये जा सकें उतने प्रकट हुए देखनेकी है। और फिर यदि बादमें भी इस ग्रन्थमालाका काम ठीक ढंगसे चलता रहे तो वह अभीष्ट ही है। हमने अपने जीवनका सबसे बडा स्मारक इसी ग्रन्थमालाको माना है। और इसकी प्रगतिके लिये जो भी योग्य योजना या व्यवस्था आप सूचित या निर्धारित करेंगे वह हमें स्वीकार्य होगी' इत्यादि।

फिर भवनके साथ किस ढंगसे इस ग्रन्थमालाका सम्बन्ध जोडा जाय इसकी रूपरेखा सोची गई। साथमें, अबसे इसके प्रकाशनात्मक कामको और भी अधिक वेग देनेके लिये कुछ सहायक आदिका विशिष्ट प्रबन्ध करनेकी और उसके लिये यथेष्ट खर्च करनेकी भी उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की। सिंघीजीका इस समयका उत्साह मेरे लिये अतीव उत्तेजनात्मक था और उनके वैसे उत्साहको देख कर स्वयं मैं भी अधिक उत्साहित हो रहा था। कोई वार्षिक २० हजार तकका बजट अंकित किया गया।

'भारतीय विद्या भवन'के अन्धेरीवाले विशाल मकानमें (जिसको पीछेसे मिलीटरीने युद्धविषयक परिस्थितिके कारण अपने लिये मांग लिया), सबसे ऊपर एक बडा हॉल बनानेकी हमारी कल्पना थी जिसमें प्राचीन वस्तुओंका म्युजियमके रूपमें संग्रह करनेका मेरा लक्ष्य था। उसके लिये मैंने उनसे १० हजार रूपयोंकी याचना की तो उसका उन्होंने बडी प्रसन्नताके साथ स्वीकार किया।

बनारसमें पण्डितजीका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था और मेरी इच्छा हो रही थी कि पण्डितजी अब बनारस छोडकर बंबई या अहमदाबाद ही में आ कर रहें। सो सिंघीजीने पण्डितजीके लेखक–वाचकके खर्चेके लिये भी, सदाके लिये, अपनी ओरसे आवश्यक सहायता देनेका पूर्ण उत्साह प्रदर्शित किया और उसके लिये मेरा जितना अन्दाजा था उससे कहीं अधिक ही देनेका उन्होंने निर्णय किया।

इस प्रकार वहांका सब काम समाप्त होने पर, मैं सिंघीजीकी अनुमति लेकर, ता. ७ ऑगष्टको अजीमगंजसे बनारसके लिये रवाना हुआ। उसके दूसरे ही दिन बंबईमें कॉंग्रेसकी वह ऐतिहासिक महासमितिकी बैठक होनेवाली थी और उसमें देशके भाविके विषयमें कोई महत्त्वका निर्णय होनेवाला था। इससे सारे देशका वातावरण एक प्रकारसे क्षुब्धसा हो रहा था। सरकार सब जगह अपनी दमन-नीतिकी पूरी तैयारी कर रही थी। जानकार लोगोंने अनुमान कर लिया था कि सरकार कॉंग्रेसके सभी छोटे-बडे कार्यकर्ताओंको जेलमें ठूंसनेका इन्तजाम कर रही है। सिंघीजी जानते थे कि श्रीमुंशीजीका और मेरा भी सरकारके केदखानेके दफ्तरोंमें नाम दर्ज हुआ पडा है, इसलिये संभव है कि उस पुराने लीष्टके मुताबिक हमको भी वह अपना महमान बनावे। 'विना ही कुछ उपयुक्त काम किये यदि वह ऐसा करे तो उसके लिये कोई ननु–नच करनेका अवकाश नहीं है, पर यदि काम करनेवालोंही को वह अपनी महमानगिरिका सम्मान देना चाहती हो, तो उस हालतमें हमें उस सम्मानके लिये उत्सुक नहीं होना चाहिये'–ऐसा सिंघीजीका मुझसे अनुरोध था। क्यों कि वैसा होने पर, यह जो ग्रन्थमालाका भावी आयोजन सोचा गया है वह सब 'उलट–पुलट' हो जायगा। इसकी उनको बडी आशंका थी। इसलिये उनसे विदा होते समय भी उन्होंने आखिरमें इस बातकी ओर पूरा लक्ष्य रखनेकी मुझसे विज्ञप्ति की।

ता. ८ ऑगष्टको मैं बनारस पहुंचा और पण्डितजीसे वहांका सब हाल सुनाया। ग्रन्थमालाके विषयमें जो विचार तय हुआ वह भी उनको विदित किया। सिंघीजीने मेरे साथ ही पण्डितजीको देनेका पत्र भेजा था सो भी उनको दिया गया। पण्डितजीके प्रति सिंघीजीकी कितनी उच्च श्रद्धा और समादर बुद्धि थी वह इस छोटेसे पत्रसे अच्छी तरह ज्ञात हो जाती है।

अजीमगंज, ७. ८. ४२

श्रद्धेय श्रीपण्डितजी

सविनय प्रणाम. आपका पहलेका तीन पत्र हजम कर लेनेके बाद चौथा पत्र पा कर, उसी पत्रवाहकके साथ उत्तर भेज रहा हूं। शरीर स्वस्थ न रहनेके कारण कोई काममें दिल नहीं लगता, इसलिये पत्रोंका उत्तर यथासमय न दे सका, कृपया क्षमा करें।

आपके लिये एक सुयोग्य लेखक-वाचकका प्रबन्ध कर देना यह तो मेरे लिये एक सौभाग्यका विषय है। यह तो सामान्य सेवा है जो मैं सहर्ष स्वीकार करता हूं। इसके अतिरिक्त सेवाकी भी समय समय पर जरूरत पडे तो हम हाजिर हैं। खर्चका कोई अन्दाजा आपने नहीं लिखा था। मुनिजीसे पूछने पर मालुम हुआ कि करीब ७५) मासिक हो सकता है। हमने वार्षिक १००० भेजनेका स्थिर कर लिया है।

सिरीझके कामका कोई बोझ आपके सिर पर नहीं लादना चाहते, परन्तु इतना खयाल तो आप अवश्य रखेंगे कि इसके प्रकाशनका वेग बढ जाय। मुनिजीकी और हमारी हयातीमें जितनी ज्यादह पुस्तकें निकल जांय यही इष्ट है। इसके लिये मुनिजीके सहायकके रूपमें भी एक और आदमीकी नियुक्तिके लिये १७५-२००) माहवारका खर्च मंजुर किया है।

इसके भविष्यके लिये भी एक योजनाकी बात मुनिजीके साथ हुई है। आप इनसे मालुम करके इसके बारेमें भी अपना मन्तव्य जरूर लिखें। अगर यह योजना आपको ठीक न जंचे तो दूसरी कोई योजनाका ध्यान दिलावें। क्यों कि इसका भविष्य भी स्थिर कर लेना अब जरूरी है।

मेरा स्वास्थ्य इन दिनों ठीक नहीं रहता है। अरुचिके सिवाय और कोई बिमारी नहीं है। वर्षाके दो मास ऐसे ही बीतेंगे। पीछे शायद ठीक हो जायगा। आपका स्वास्थ्य ठीक रहता होगा, लिखियेगा। आपका विनीत–**बहादुरसिंह**

पण्डितजीके साथ आवश्यक परामर्श कर, ता. ९ ऑगष्टकी रातकी गाडीसे बनारससे रवाना हो मैं बंबई पहुंचा। भवनके अध्यक्ष श्रीमुंशीजीको सिंघीजीके साथ किये गये विचार विनिमयका सार विदित किया। मुंशीजी सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। भवनके साथ ग्रंथमालाका किस तरह संयोजन किया जाय उसका हम दोनोंने विचार किया और फिर मुंशीजीकी ओरसे सिंघीजीको एक ऑफिसियल पत्र लिखा गया (जिसकी नकल इसके साथ परिशिष्ट नं. १ में दी गई है). मैंने भी उनको अलग स्वतंत्र पत्रसे सब बातें बहुत कुछ विस्तारके साथ लिख कर सूचित कीं और मुंशीजीके पत्रके उत्तरमें उन्हें किस प्रकारका ऑफिसियल पत्र लिखना चाहिये इसका सार लिख भेजा। तदनुसार ता. २४. ९. ४२ को उन्होंने श्रीमुंशीजीको भेजनेका पत्र तैयार किया (जो परिशिष्ट नं. २ में दिया गया है) और उसके साथ, ता. २९. ९. ४२ को मुझे भी, निम्नलिखित, एक विस्तृत पत्र लिखा जिसमें ग्रन्थमाला विषयक अपने सब मनोगत भाव बडी स्पष्टताके साथ व्यक्त किये और भवनका, मेरा और ग्रन्थमालाका परस्पर सम्बन्ध कैसा हो इसकी उन्होंने अपनी कल्पना प्रकट की। ग्रन्थमालाके इस नूतन सम्बन्ध-संयोजनकी दृष्टिसे, यह पत्र मेरे लिये एक महत्वके ऐतिहासिक दस्तावेजसा है। सिंघीजीने इस पत्रमें अपने जीवनके प्रियतम उद्देश्य और ध्येयका अन्तिम भाव प्रकट दिया था। इस पत्रकी संपूर्ण प्रतिलिपि इस प्रकार है–

अजीमगंज, २९. ९. ४२

श्रद्धेय श्री मुनिजी

सविनय प्रणाम. आपके ता. १७. ८. ४२ और २०. ८. ४२ के लिखे दोनों पत्र मिल गये थे। श्रीमुन्शीजीका भी पत्र मिल गया था। जवाबमें देरी हुई है उसका एक कारण यह है कि बनारससे श्री पण्डितजीके आनेकी प्रतीक्षा थी। अब वे ता. १७. ९. ४२ को

यहां आये थे और ता. . ९. ४२ को वापस बनारस चले भी गये हैं। उनके साथ जो परामर्श करना था वह आपके दोनों पत्र सामने रख करके कर लिया है। जैसा आपने सूचित किया है उसके अनुसार मुन्शीजीवाला पत्र भी आप ही को भेज रहा हूँ। आप पढ़ लीजिये तब उन्हें दे दीजियेगा। उनके पत्रमें जो कुछ जरूरी लिखना रह गया हो तो आप उसमें मेरी तरफसे पूर्ति कर सकते हैं। और कोई नई बात दाखिल करनी सूझ पड़े तो आप उसमें दाखिल कर सकते हैं। जो घटी बढ़ी होगी वह आपके द्वारा मुझको मालूम तो हो ही जायगी।

संस्थाका सवाल है और एक्झीक्यूटीव बॉडीमें पास करा लेना है। इसलिये शुरूमें थोड़ा विलम्ब हो जाना स्वाभाविक है।

अगर आपके नये सुझाव पत्रमें दाखिल करके यहींसे श्रीमुन्शीजीको भेजना हो तो आपका पत्र आनेके बाद यहाँसे दूसरा पत्र श्रीमुन्शीजीको भेजा जा सकता है। आपको तो मैं अपने बीच हुई बातचीतके अनुसार मूल सिद्धान्त ही लिख देता हूँ। ब्योरेकी बातें श्रीमुन्शीजीके पत्रमें लिखता हूँ। संस्था और सिरीझके नये सम्बन्ध तथा भावी सम्बन्धकी दृष्टिसे आपको और भी ब्योरेकी बातें सूझ सकती हैं, क्यों कि आपको हमारा और उस संस्थाका–दोनोंका अनुभव है। श्रीमुन्शीजीने अपने पत्रमें "सिंघी जैन ज्ञानपीठ" का जो निर्देश किया था उसका भाव पहले पूरा ध्यानमें आया न था; पर आपके दूसरे पत्रके विस्तृत वर्णनसे ध्यानमें आ गया। अपने बीच जो और जैसी बात हुई है उसके अनुसार मेरा एकमात्र विचार "सिंघी जैन सिरीझ" चलानेका तथा उसकी गति जितनी आप बढ़ा सकें बढ़ानेका है। अभी मैं "सिंघी जैन ज्ञानपीठ" की स्थापना और उसके निर्वाहका प्रश्न मेरे जिम्मे नहीं लेना चाहता। आगे थोड़े अनुभवके बाद और दूसरी दूसरी परिस्थितियोंको देख कर, अवसर आया तो उस पर विचार किया जायगा। अभी तो आपका और मेरा सारा बल सिर्फ "सिंघी जैन सिरीझ" की ओर लगे यही मेरा संकल्प है। सिरीझमें प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंके लिये जितना और जो कुछ प्रेस, कागज आदिका खर्च आवेगा वह करना मुझे मंजूर है। इसके सिवाय आपको सहायक रूपसे आदमी या आदमियोंकी जरूरत हो उसके वास्ते भी मैंने आपसे कह ही दिया है। सुयोग्य आदमी जिससे आपका बोझ कुछ कम हो और प्रकाशनकी गति अधिक बढ़े उसके लिए थोड़ा और भी ज्यादह खर्च करना पड़े तो आपके लिखनेसे वह भी मुझे मंजूर होगा। कामकी गति और फेलाव बढ़ानेके लिए जुदे जुदे सम्पादक आपको पसन्द करने होंगे और उनका जो समुचित एडिटिङ्ग चार्ज होगा वह आपके लिखे या मंजूर किये अनुसार देना मुझको मंजूर होगा। परन्तु इस विषयमें इतना तो स्पष्ट कर देना इस मौके पर और जरूरी है कि कहीं ऐसा न हो कि सिरीझका सम्पादन कार्य तो उन सबएडिटरों (Sub-editors) के हाथमें ही रहे और आपकी निजकी कृतियाँ "भारतीय विद्या" या दूसरे किसी मासिक पत्र-पत्रिकाओंमें निबन्धके रूपमें या पुस्तकके रूपमें प्रकाशित हो कर उनके महत्त्वको बढ़ाती रहे। इसको थोड़ा और भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है; इतने दिनों तक तो आपका सम्बन्ध "सिरीझ"से और "भारतीय विद्या भवन" से अलग अलग रूपमें था और अलग अलग नाते दोनोंका काम आपको करना पड़ता था और करना उचित भी था। अब जब सिरीझको "भारतीय विद्या

विद्या भवन" के साथ जोड़ दिया गया है तो "सिरीझ" का प्रकाशन भी भा० वि० भ० का प्रकाशन गिना जायगा। ऐसी दशामें आपके श्रमका फल "सिरीझ" को ही मिले तो उसे भा० वि० भ० को मिला ही समझा जायगा। इससे मेरा आशय इतना स्वार्थगत नहीं है कि आप उस संस्थाकी मासिक पत्रिका या अन्य प्रकाशनोंमें कुछ भी सहयोग न दें। क्यों कि आपका लेखन-विषय बहुमुखी है; एक नहीं अनेक संस्थाएँ उससे लाभ ले सकती हैं। परन्तु मुख्यतया आपके परिश्रमका फल इस 'सिरीझ' को ही मिले मेरे लिये यह वांछनीय है। आप चाहे इसे "स्वार्थ" कहें तो शायद आपका कहना भी अन्याय न होगा।

मैंने श्रीमुन्शीजीके पत्रमें जो लिखा है उससे शायद आपको यह मालूम दे कि अभी सिरीझ चलानेकी जो बात हो रही है वह थोड़े समयके लिए अर्थात् आपकी मोजूदगी तक ही है। इस बारेमें मैं अपना आशय स्पष्ट कर देता हूँ। आप उचित समझें तो श्रीमुन्शी-जीको भी यह बात कह सकते हैं। मेरा आशय यह है कि आपकी मोजूदगीमें ही आप ऐसा दूसरा समर्थ व्यक्ति तैयार कर लें या खोज लें, जो आपकी तरह ही सिरीझका काम चालू रख सके और जिस पर आपका हर दृष्टिसे पूरा विश्वास हो और जिसे मैं भी अपने जीवनकालमें देख सकूँ। ऐसा हो तो आपका सिरीझके वास्ते उत्तराधिकारी ठीक हो गया। मेरे उत्तराधिकारियोंकी रसवृत्ति आप जानते ही हैं। इससे जो कुछ मुझको करनेका मन है और होगा वह एक मात्र आपके और आपके पसन्द किये हुए आगेके मुख्य कार्यकर्ताके भरोसे ही करना होगा। मैं समझता हूँ कि सिरीझका काम वेगसे बढ़ानेके साथ साथ आप अपने लायक आदमीको पा सकें तो संभव है कि आपके रहते ही फिरसे सिरीझकी विशेष स्थिरताके लिए सोच सकूंगा और कर सकूंगा। आपसे मैंने जो कहा था कि दूसरा ऐसा सहकारी रखिये जिससे आपका समय बचे और बोझ कम हो, उसका भीतरी आशय यह भी था कि आखिरको आप और मेरे रहते हुए, योग्य आदमी मिल जानेसे मैं आईन्दाके लिए विशेष विचार सिरीझके लिए कर सकूँ। बॉम्बे या भवनके साथ मेरा या मेरे वारि-सोंका असलमें कोई सम्बन्ध नहीं है। जो कुछ है वह आपके कारण ही है। आपके बाद अगर जरूरत भी पड़ी तो मैं या मेरे उत्तराधिकारी शायद ही कोई सिरीझके कामके लिए बम्बई जाँय। हकका लाभ लेनेके लिए शायद कभी कभी पत्र-व्यवहार करें तो कर सकें, इससे ज्यादा तो नहीं। इससे मेरा विचार यह रहा है कि अभी तो आपकी मोजूदगी तककी ही बात रहे और इस बीचमें सुयोग्य व्यक्ति मिल जाने पर आप और मैं फिर बैठ कर नये सिरेसे सिरीझके लिए विशेष विचार कर लेंगे। आपकी तरह मेरा भी ध्येय सिरी-झकी प्रगति और स्थिरताका है। हम लोग इधर रहते हैं इसलिए इधरकी किसी संस्थामें प्रत्यक्ष भाग लेनेका भी अवसर सहज है; पर बम्बई तो दूरकी बात है। इस पर आप विचार करेंगे तो मेरा दृष्टिकोण ध्यानमें आ जायगा।

आप और मुन्शीजी दोनों बाहर ही रहें ऐसी उम्मीद है। फिर भी दिन-ब-दिन जो परिस्थिति बिगड़ती जा रही है उसके ऊपरसे यह तो निश्चयपूर्वक कहना संभव नहीं है कि आप दोनों बाहर ही रहेंगे। जो कुछ होनेवाला है वह तो हो कर ही रहेगा। मेरा कहना तो इतना ही है कि आप पैसेकी तरफसे बेफिक्र हो कर अभीसे काम तेज और नियन्त्रित करें और मैं बाकीकी चिंता शिर पर ले कर बैठा हूँ।

मैंने श्रीमुन्शीजीके ऊपर लिखे हुए पत्रमें लिखा है कि "भारतीय विद्या भवन" मुनिजीकी मंजूरीके अनुसार खर्च करे, उसका हिसाब रखे, और वह हिसाब हर साल हमको भेजे। तदनुसार सभी पैसे भा० वि० भ० को ही भेजे जायँगे। उसीके द्वारा फिर सभीको पैसा मिलेगा। जिसमें आपके खर्चेका भी समावेश हो जाता है। मैंने यह इसलिए किया है कि आप हिसाबके बोझसे बिलकुल मुक्त हो जायँ। अब सीधे मुझसे पैसे मंगाना और सबको चुकाना आपको माफिक हो तो इतना क्लोज बदलना पड़ेगा। जो आप लिखेंगे तो यहाँसे सुधार कर पुनः पत्र भेजा जा सकेगा। परन्तु उस हालतमें सारा हिसाब जो कि अबसे कहीं ज्यादा होगा आप ही को रखना होगा। कुछ हिसाब आप रखें और कुछ हिसाब विद्याभवन रखे यह रास्ता सीधा और उचित नहीं है। इसलिए आप इस विषयको भी ध्यानपूर्वक पूर्वापर सोच कर अपने सुभीतेके अनुसार निर्णय करें।

जो जो पुस्तकें मैंने कलकत्तेसे वापस पार्सलमें अहमदाबाद भेजी थी उसकी तो ५०/५० प्रति मैंने रख ही ली थी। बाद उसके जो जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उसकी एक भी नकल मेरे पास नहीं है। कोई पूछे तो मैं यह भी नहीं बता सकता कि कौन कौन पुस्तकें प्रकाशित हुई। आप उचित समझें तो बाकीकी पुस्तकोंकी ५०/५० नकलें रेल पार्सलसे मेरे पास भिजवा दें।

पूज्य माताजीका प्रणाम। उनकी तबीयत आप देख गये वैसी ही है। मेरी तबीयत आगेसे ठीक है और सब मजेमें हैं। आप आनंदमें होंगे। आपका विनीत

बहादुरसिंह

सिंघीजीका यह पत्र जब मुझे मिला तब मैं अहमदाबाद था और देशमें चारों ओर चलते हुए राष्ट्रीय आन्दोलनका उन्मनस्क भावसे अवलोकन करता हुआ अस्थिर-चित्त बन रहा था।

जेसलमेरके ज्ञानभण्डारोंका अवलोकन करने जाना

ता. ९ ऑगस्टको, सरकारने कॉंग्रेसकी वर्किंग कमीटीको पकड कर जेलखानोंमें बन्ध कर दिया जिससे सारे देशमें बडा उग्र और तंग वातावरण फैल गया था। उसमें हमारे भवनके भी कई विद्यार्थी अपना अभ्यास वगैरह छोड कर, अपनी अपनी इच्छा और उत्साहके अनुसार इधर-उधर राष्ट्रीय आन्दोलनमें सम्मीलित होनेके लिये चले गये। सरकार द्वारा जो अत्याचार और दमननीतिका क्रूर चक्र घुमाया जाने लगा उसको देख-सुन कर हरएक राष्ट्रप्रेमी मनुष्यका दिल व्यथित हो रहा था। मेरा मन भी बहुत उत्तेजित होता रहता था और अपने चालू साहित्यिक कार्यमें वह किसी तरह लगता नहीं था। मन रह रह कर आन्दोलनकी ओर खिंचा जा रहा था। परन्तु अङ्गीकृत कार्य, मुझे बलात्कारसे अपने मनको अङ्कुशमें रखनेकी आज्ञा करता था। इससे अन्तरमें सतत एक बडा भारी द्वन्द्व युद्ध चल रहा था और उसके सबबसे मेरी मानसिक और उसके साथ शारीरिक स्थिति भी कुछ व्याकुलसी हो गई थी।

स्थानपरिवर्तनकी दृष्टिसे मैं अहमदाबाद चला गया। परन्तु, वहां तो इस आन्दोलनमें और भी उग्र रूप पकड रखा था। अहमदाबादका युवकवर्ग-स्कूलों और कॉलेजोंमें पढनेवाले लडके और लडकियोंका समूह-आन्दोलनका अग्रगामी सूत्रधार
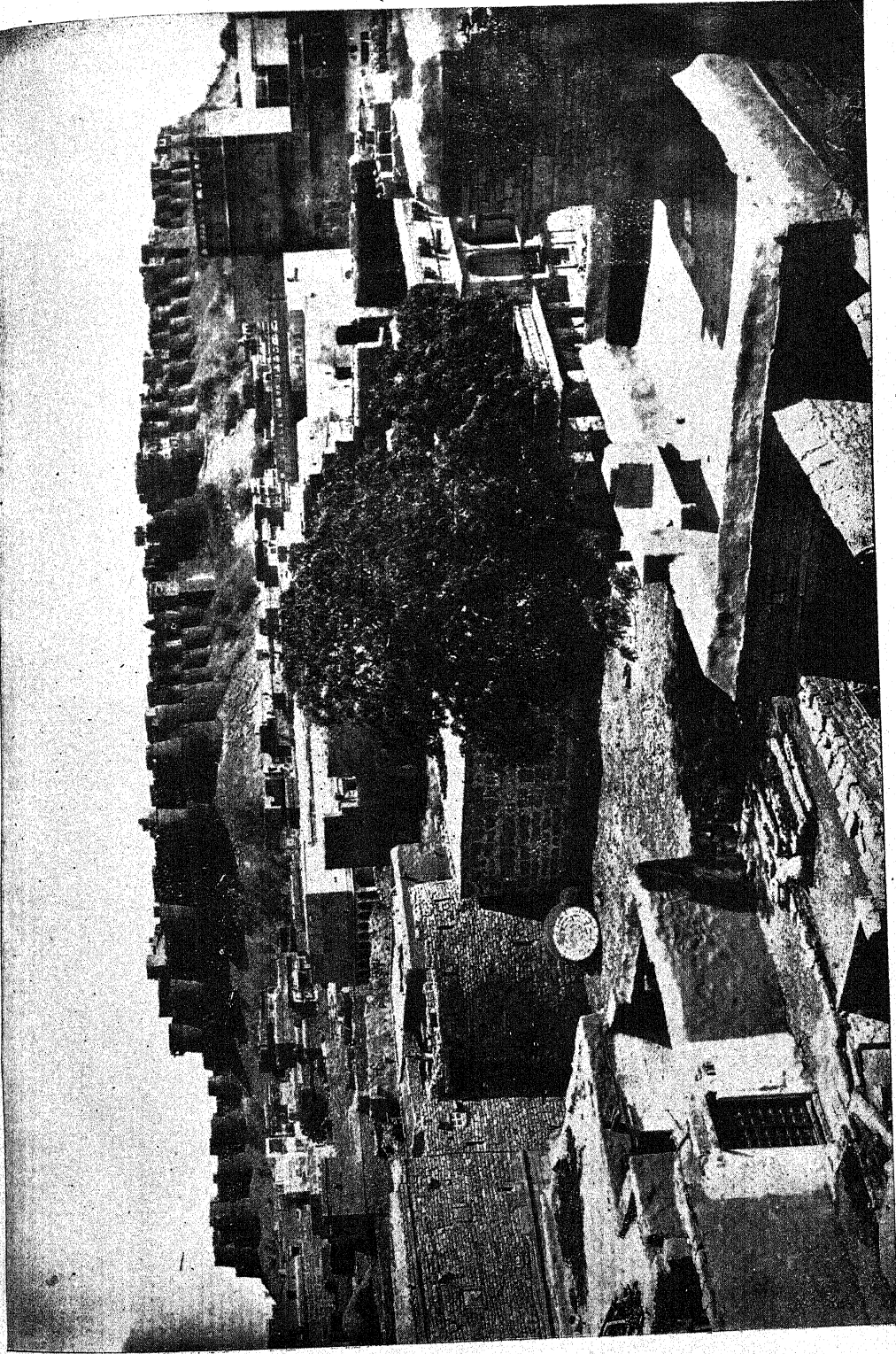
जेसलमेरका किला – जिसमें जैन ज्ञानभाण्डार सुरक्षित है
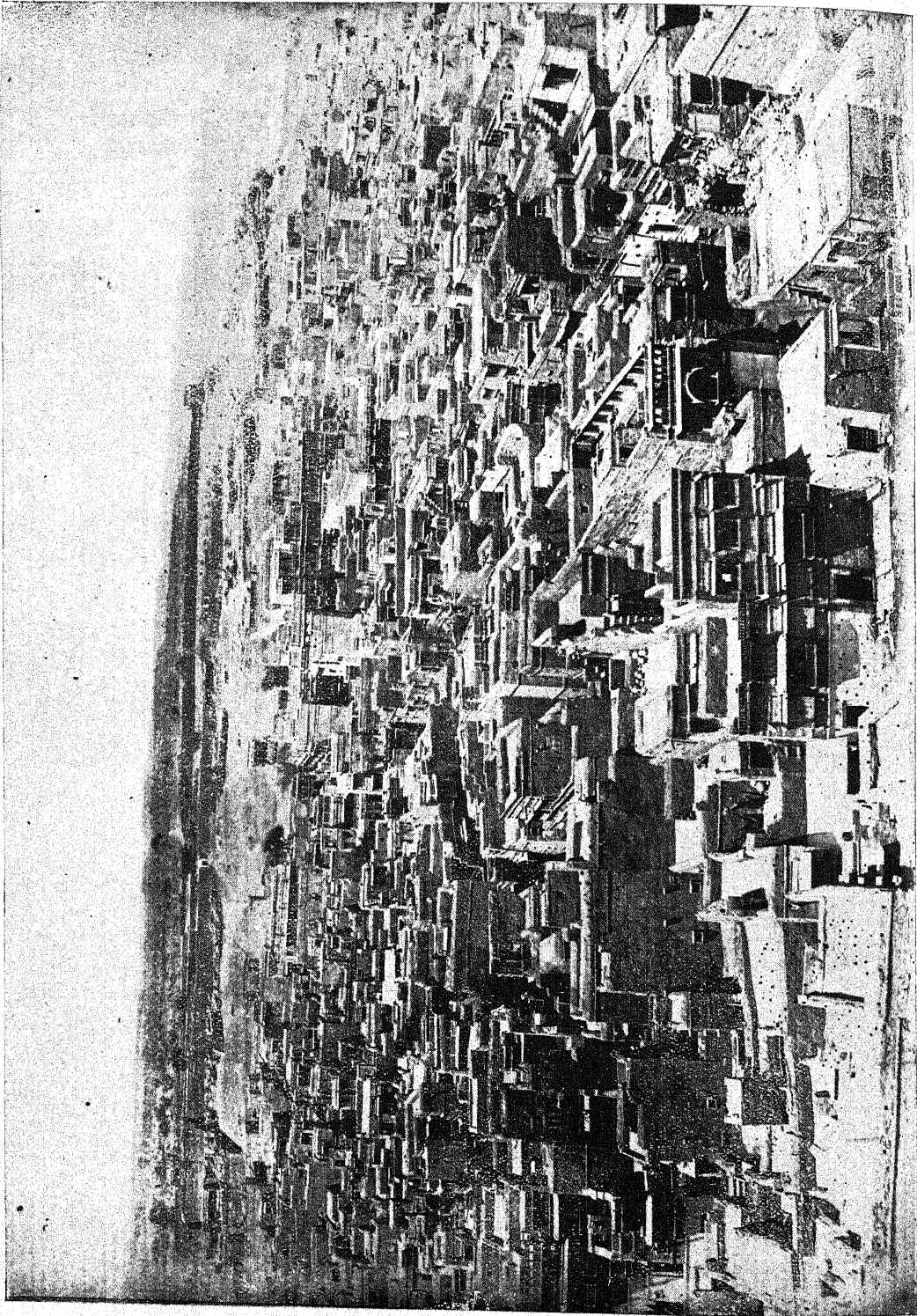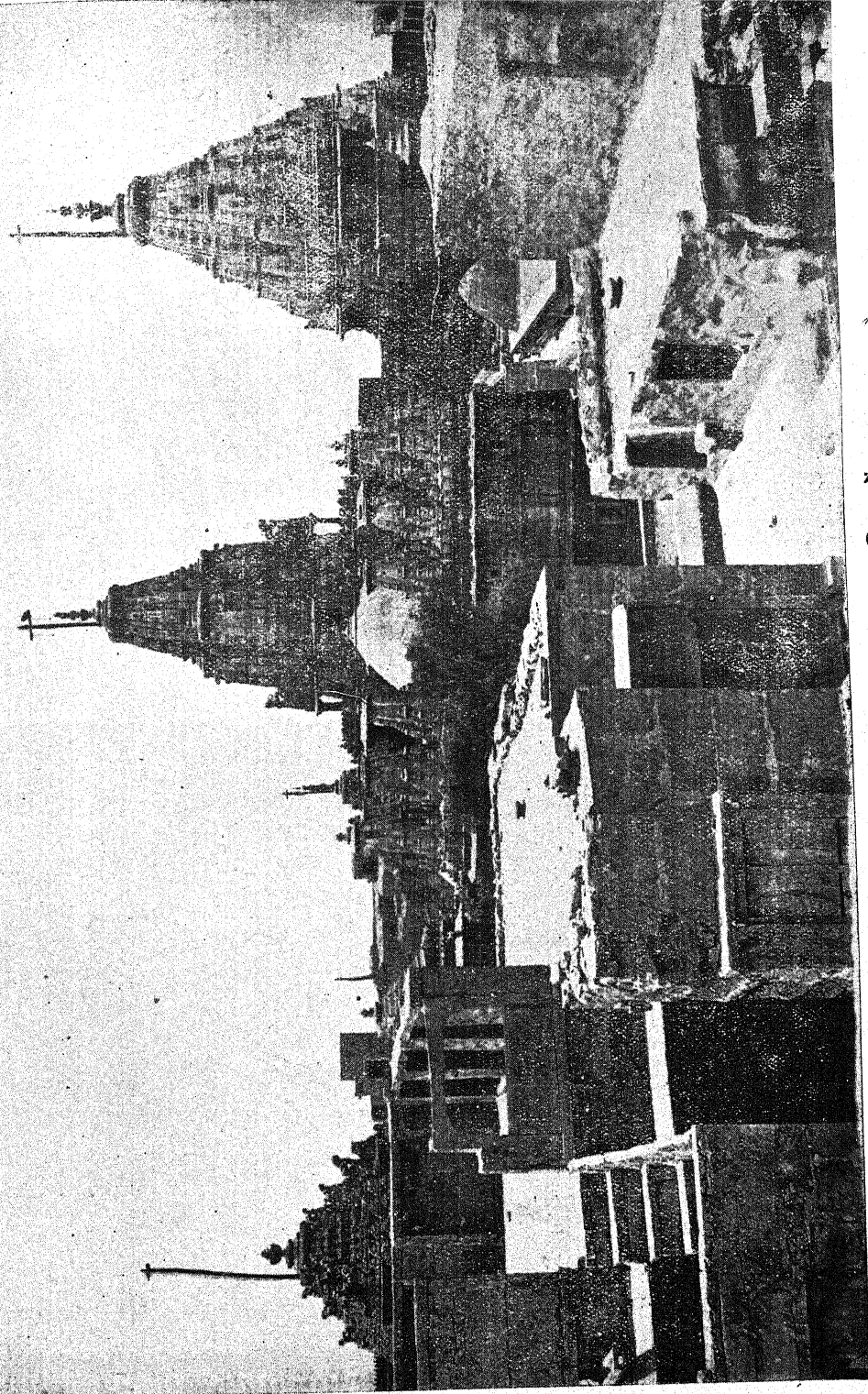
जेसलमेरके किलेमें जैनमन्दिर–मध्यस्थितमन्दिरके भूमिगृहमें ज्ञानभाण्डार है
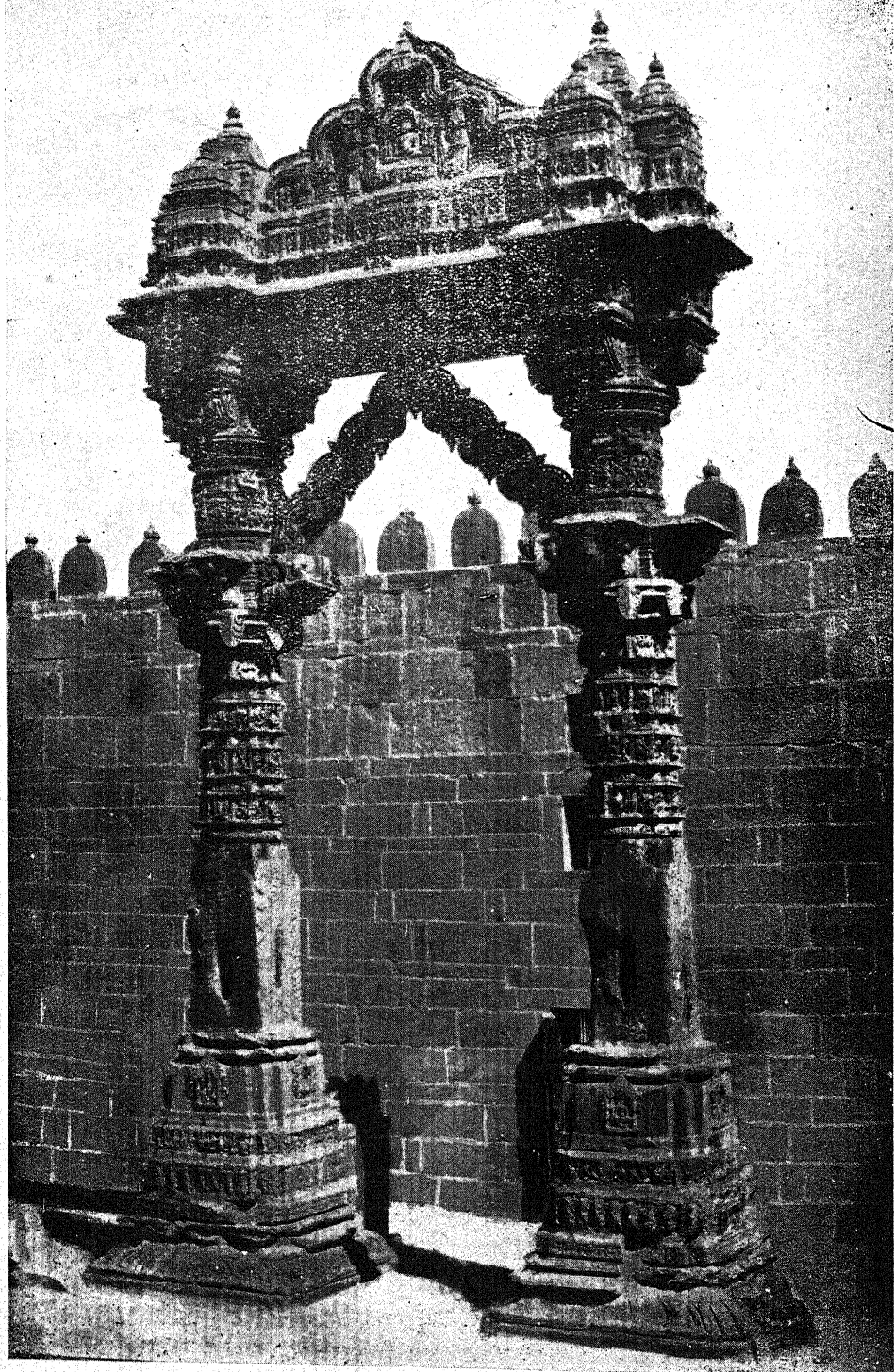
लोद्रवाके जैनमन्दिरका तोरण - जिसका जिक्र सिंघीजीने अपने पत्र (पृ. ६८) में किया है

बना हुआ था। भारतवर्षके किसी भी स्थानके युवकोंने, इसके पहले कभी भी वैसा शौर्य और राष्ट्रप्रेम नहीं बताया जैसा अहमदाबादके युवकोंने इस आन्दोलनके समय बताया। पुलीसकी केवल निर्दय लाठियों ही की नहीं, प्राणघातक गोलियोंकी भी इन युवकोंने कुछ परवा नहीं की। कई बत्तीस लक्षणे युवक इस राष्ट्रयज्ञकी वेदीमें बलिदान हो गये। शहरमें महिनों तक हडताल चलती रही। मिलें भी प्रायः सब बन्ध रहती थीं और मजदूर लोक अपने अपने घर जा कर शान्त हो कर बैठ गये थे। जो कुछ दौड धूप और सरगर्मी दिखाई देती थी वह सरकारके नौकरोंमें और पुलीसके जवानोंमें थी। मेरे अन्तेवासी कुछ छात्र भी फना होनेकी तैयारी करके अपनी सेवा इस आन्दोलनमें देनेको जुड गये। सी. आई. डी. वाले पुराने मित्र, मेरे स्थानकी खबर रखनेके लिये दिनमें दो-चार दफह चक्कर लगा जानेका कष्ट नियमित उठाने लगे। इससे मेरा मन और भी अधिक उत्तेजित होने लगा। प्रतिदिन सैंकडोंकी संख्यामें जेलमें जानेवाले बन्धुओंके अपूर्व उत्साहको देख कर, मुझे अपने आपको इस तरह उदासीन हो कर बैठे रहनेवाली अपनी – निष्क्रिय अवस्था पर ग्लानि होने लगी।

इतनेमें मुझे जेसलमेरसे आचार्य श्रीजिनहरिसागरजी महाराजका एक पत्र मिला जिसमें उन्होंने वहांके जैन ज्ञानभण्डारका अवलोकन करनेके लिये आनेका सादर आमंत्रण दिया और इस कार्यमें अपनी ओरसे शक्य उतना सहकार देनेका सद्भाव प्रदर्शित किया। इन आचार्य महाराजके साथ मेरा कोई ४ – ६ महिनोंसे, इस बारेमें पत्रव्यवहार चल रहा था। बीचमें चौमासेके पहले ही जेसलमेर जानेका मैंने विचार किया था, परन्तु उधर सिंघीजीसे मिलनेके लिये अजीमगंज तरफ जाना जरूरी था इससे अभी तक जानेका ठीक अवसर नहीं मिला था। अब चौमासा उतरनेको था और उसके बाद कुछ ही दिनमें आचार्य महाराज वहांसे अन्यत्र विहार कर जानेका विचार कर रहे थे, सो इन्होंने मुझे सूचित किया कि – 'यदि आपकी आनेकी इच्छा हो तो यह समय सबसे अच्छा अनुकूल रहेगा' इत्यादि।

जेसलमेरके ज्ञानभण्डारको देखनेकी मेरी इच्छा – इच्छा ही नहीं उत्कट उत्कंठा – बहुत वर्षोंसे हो रही थी। जबसे मैंने गुजरात पुरातत्त्वमन्दिरकी योजना हाथमें ली तभीसे (सन् १९२० से) मेरी अभिलाषा वहां जानेकी और उस भण्डारके ग्रन्थोंको देखनेकी बराबर बनी रही थी। पाटण वगैरहके प्रसिद्ध ग्रन्थ संग्रहोंका तो मैंने बहुत कुछ अवलोकन कर लिया था परन्तु जेसलमेरके भण्डारके देखनेका कोई योग अभी तक प्राप्त नहीं हुआ था। सन् १९२८ में मैं जब जर्मनी गया और सप्टेंबर महिनेमें, हाम्बुर्गमें, सुप्रसिद्ध जैन साहित्यज्ञ डॉ. हर्मन याकोबीसे प्रत्यक्ष मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, तो बातचीतमें उन्होंने खास करके मुझसे यह भी पूछा कि – 'आपने जेसलमेरके भण्डारको ठीक तरहसे देखा है या नहीं?' इसके उत्तरमें मुझे उनसे यह कहते हुए बडा ही संकोचका अनुभव हुआ था कि – 'अभी तक मैं उस स्थानमें जा नहीं पाया हूं।' इस पर उन्होंने, सन् १८७४ में डॉ. ब्युल्हरके साथ किस तरह उस भण्डारमेंके कुछ ग्रन्थोंका बडी मुश्किलके बाद जैसा वैसा अवलोकन वे कर पाये थे एवं किस तरह उन ग्रन्थोंके रखनेकी वहां दुर्व्यवस्था उन्होंने देखी थी – इसकी बहुतसीं बातें उत्सुकता

एवं मनोरंजकताके साथ सुनाईं थीं; और मुझसे खास करके प्रेरणा की थी कि 'आपको जा कर एक दफह उस भण्डारको ठीक तरहसे देखना चाहिये और उसमें जो कुछ अलभ्य तथा अपूर्व साहित्य हो उसको प्रकाशमें लाना चाहिये' इत्यादि। फिर जब मैं शान्तिनिकेतन गया और सिंघी जैन ग्रन्थमालाका कार्यारंभ हुआ तबसे तो, इस जेसलमेरके भण्डारके दर्शन करनेकी मेरी उत्कंठा बराबर बढती ही रही थी और उसके लिये किसी अच्छे संयोगके प्राप्त होनेकी, सदैव प्रतीक्षा किये करता था। क्यों कि इतःपूर्व वहांके निवासी किसी सज्जनसे मेरा कोई प्रकारका यत्किंचित् भी परिचय नहीं था और सर्वथा अपरिचित दशामें वहां जानेसे मेरा अभीष्ट कार्य सिद्ध हो सकेगा या नहीं इसकी मुझे पूरी शंका थी। इसलिये जब आचार्य श्रीजिनहरिसागरजी महाराजका वहां चातुर्मास सुना, तो मैंने उनसे इस विषयमें पत्रव्यवहार शुरू किया और उसके परिणाममें, उस भण्डारके देखनेका सुयोग प्राप्त होनेकी मुझे, उक्त रूपसे, उनसे सूचना मिली।

इस सूचनाके प्राप्त होते ही मैंने अपने मनको एकदम जेसलमेर जानेके लिये एकाग्र कर लिया और अहमदाबादसे ता. ३० नवेम्बरको सवेरेकी गाडीसे अपने साथ ४-५ सुयोग्य सहकारी लेखक बन्धुओंको ले कर मैं जेसलमेरको रवाना हुआ। मारवाडके बाहडमेर स्टेशनपर उतर कर, वहांसे ११० मीलकी दूरी पर, रेलकी पटडियोंसे सर्वथा अस्पृष्ट ऐसी १६००० वर्ग मील भूमि पर शासन करनेवाली और जेसाणाके प्रिय नामसे राजपुतानेमें सुख्यात, जेसल भाटीकी बसाई हुई उस जेसलमेर नगरीमें, मोटर लॉरी द्वारा ता. १ डीसेंबरकी सन्ध्याको हम जा पहुंचे। वहां जाते समय मैंने सोचा था कि यदि ठीक सुविधा मिल गई, तो ज्यादहसे ज्यादह कोई एक महिनेमें मैं उस भण्डारका संपूर्ण निरीक्षण कर लूंगा। अतः उसी हिसाबसे साथका सब प्रबन्ध कर वहां पहुंचा था। परन्तु, वहां पहुंचने बाद एक महिना तो मुझे वहांकी परिस्थितिसे परिचित होने ही में और वहांके भण्डारके संरक्षकोंके साथ कार्यसाधक संपर्क साधनेमें ही व्यतीत हो गया। उसके बाद मेरा कार्य कुछ सरलतापूर्वक चालू हुआ। फिर तो ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया त्यों त्यों मुझे काम करनेकी अधिक सुविधा मिलती गई और पीछेसे तो जेसलमेरके बन्धुओंने इतना सद्भाव प्रकट किया कि जिससे जेसलमेर मुझे अपना आत्मीय स्थानसा लगने लगा और जिसकी मुझे स्वप्नमें भी आशा नहीं हो सकती थी वैसी, अपने अभीष्ट कार्यमें मुझे सफलता प्राप्त हुई। ज्यों ज्यों मैं भण्डारमें सुरक्षित विशेष विशेष ग्रन्थोंका अवलोकन करता गया, त्यों त्यों मेरा वहां १०-२० या २५-५० ही की नहीं परन्तु छोटे बडे सैंकडों ही ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि करने-करानेका लोभ बढता गया। कोई १०-१२ सुयोग्य लेखकोंका अच्छा झुंड बिठा कर पूरे ५ महिनोंमें मैंने इस प्रतिलिपिका कार्य संपन्न किया।

जेसलमेर नरेशका अपूर्व सद्भाव

जेसलमेरके इस साहित्यिक अन्वेषणके साथ, मैंने वहांकी कितनी ही अन्य ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं सामाजिक परिस्थितिके साथ सम्बन्ध रखनेवाली सामग्रीका भी अन्वेषण किया। इन सब बातोंका तो यहां पर परिचय देना प्रासंगिक

नहीं है, परन्तु एक बातका यहां उल्लेख करना मुझे अवश्य कर्तव्य है; और वह है– जेसलमेराधिपति यदुकुलतिलक महाराजाधिराज श्री श्रीमान् जवाहरसिंहजी महारावलजीने मेरे प्रति जो अपूर्व सद्भाव बतलाया उसके लिये उनके प्रति अपना कृतज्ञभाव प्रकट करना। श्रीमान् महारावलजीने जिस आदर, सौजन्य और प्रेमसे मेरा आतिथ्य किया और मुझे अपना एक आत्मीय जनसा मान कर मेरे प्रति वात्सल्य-भाव दिखलाया वह मेरे जीवनकी एक अद्वितीय प्रियतर स्मृति है। जेसलमेरके भण्डार आदिका वर्णनवाला एक इतिहासात्मक स्वतंत्र निबन्ध लिखनेका अनुरोध मुझसे सिंघीजीने उसी समय किया था† और उसके लिये मैंने उनसे वचन भी दिया था। उस निबन्धमें जेसलमेरका संक्षिप्त इतिहास, वहांके जैन मन्दिरों एवं जैन ज्ञान-भण्डारोंका विस्तृत वर्णन तथा अन्यान्य ऐतिहासिक स्थानोंका परिचय–इत्यादि बातोंके साथ, जेसलमेराधिपति श्रीमान् महारावलजीके सौजन्यशील व्यक्तित्वका कुछ परिचय देनेकी एवं उन्होंने मेरे प्रति जिस जिस प्रकार परम सद्भाव प्रदर्शित किया और वहांके निवास समय जिस तरह मेरा स्नेहपूर्ण आतिथ्य किया, उसका विशेषरूपसे उल्लेख करनेकी मेरी अभिलाषा थी। परन्तु अवकाशाभावसे सिंघीजीकी उस इच्छाका पालन मैं शीघ्र न कर सका और उस निबन्धके देखनेकी आशा ही में वे चल बसे, जिसका आज मुझे बडा खेद हो रहा है।

जेसलमेर जानेकी सिंघीजीको खबर मिलना

मैंने इस प्रकार अकस्मात् जेसलमेर जानेका और वहांके भण्डारका अवलोकन करनेका कार्यक्रम जो निश्चित किया उसकी सिंघीजीको पहले कुछ भी खबर नहीं दी थी। मैंने सोचा था कि जेसलमेर जाने पर वहां कुछ अपने कार्यमें सफलता मिले तो फिर उनको इसकी खबर दूं, वरना यों ही खबर देनेसे उनको क्या प्रसन्नता होगी। सो प्रायः डेढ-पोनेदो महिने तक तो मैंने उनको इस विषयमें एक अक्षर भी नहीं लिखा। मैं बंबई हूं या अहमदाबाद हूं इसका भी उनको पता नहीं था। परन्तु, मैं अपनी प्रवृत्तिके समाचार बीच-बीचमें पण्डितजीको बनारस लिखता रहता था, सो पण्डितजीने मेरे जेसलमेरके कुछ पत्र प्रसङ्गोपात्त सिंघीजीको अजीमगंज पढने भेज दिये। इससे उनको यह सब हाल मालूम हुआ और उससे उनकी जिज्ञासा बढी कि मैं कब जेसलमेर जा पहुंचा और वहां जा कर किस तरह भण्डारका अवलोकन करना शुरू किया एवं उसके करनेमें मुझे कैसा अनुभव प्राप्त हो रहा है–इत्यादि। क्यों कि वे भी कुछ वर्ष पहले जेसलमेरकी यात्रा कर गये थे और उस भण्डारके ऊपर ऊपरसे दर्शन भी कर चुके थे। वे स्वयं बडे चतुर निरीक्षक थे इसलिये उनको भण्डारकी अव्यवस्था आदि देख कर मनमें खेद ही हुआ था। सो उन्होंने अपना अनुभव और मनोभाव बतलानेके लिये स्वयं अजीमगंजसे ता. ५. १. ४३ को अच्छा लंबासा, नीचे दिया हुआ, मुझे पत्र लिखा–

श्रद्धेय श्री मुनिजीकी सेवामें, ५. १. ४३

सविनय प्रणाम। बहुत दिनोंसे आपका कोई पत्र नहीं। आपने कब जेसलमेर जानेकी ठान ली यह भी मुझे मालूम नहीं। पंडितजीके पत्रसे मालूम हुआ कि आप वहाँ जा

---

† इसका जिक्र सिंघीजीने मेरे परके अपने अन्तिम पत्रमें भी किया है।

विराजे हैं। बल्कि उन्होंने आपका उन पर आया हुआ पत्र भी मुझे देखनेको भेज दिया है कि जिसे पढ़ कर वहाँकी सारी परिस्थितिसे वाकिफकार हो जाऊँ।

वहाँकी परिस्थितिका अनुभव कुछ तो हमें पहले भी था। हम जब सं० १९८६ में वहाँ गये थे तब भोंयरेके भण्डारके तीन या चार चाबीवालोंको एकत्रित कराके भण्डार खुलवा कर देखा था, बस देखने ही भर था, और तो हम भी क्या समझते? आध घण्टे देख सुन कर बाहर निकल आये। ज्ञानकी पूजा कर दी। इतना तो जरूर देखा, प्राचीनकालके भण्डार स्थापन करनेवाले इसे कितने यत्नके साथ, पाषाणकी पेटियों और आलमारियोंमें भोंयरेके अन्दर, सुरक्षित रखनेका प्रबन्ध कर गये थे और अब उन्हींके वारिस अपढ़ और उज्जड़ लोगोंके हाथमें आ कर इसकी कैसी दुर्दशा हो रही है। हमारे धर्म, साहित्य और समाजका अमूल्य रत्न ऐसे लोगोंके अधीन है कि जो उसके महत्त्वका कुछ अंश भी नहीं समझते। आपने लक्ष किया हो तो जरूर देखा होगा कि एक कोनेमें अनेकों पुस्तकोंके दो दो चार चार अलग पानोंका ढेर झाडूसे बटोर कर रखा हुआ है। पूछनेसे मालूम हुआ कि जब कभी पुस्तकें धूपमें दी जाती हैं तब हवासे उड़ कर उनके पाने इधर उधर हो जाते हैं। कुछ तो जहाँ के तहाँ रख दिये जाते हैं, कुछ जो समझमें नहीं आते कि कहाँके हैं, वे ऐसे ढेर कर दिये जाते हैं। इस रीतिसे वह ढेर बढ़ता जाता है। न मालूम उनके इस अनाड़ीपनसे कितनी ही अमूल्य और अद्वितीय पुस्तकें त्रुटित हो गई होंगी। पुस्तकें त्रुटित होनेका यही कारण है। भण्डार करनेवालेने त्रुटित ग्रन्थ कभी भण्डारमें नहीं रखवाया होगा। अब आपका स्वास्थ्य अगर सहायक हो, और आप वहाँ कुछ रोज जम कर बैठ सकें तो हमें पूरी आशा है कि आप उस अपूर्व ग्रन्थ भण्डारमेंसे कुछ ऐसे रत्न चुन कर जरूर लावेंगे जो 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' को अधिक सुशोभित करेंगे और जैन साहित्यके कितनेक अज्ञात तथा अप्रकाशित ग्रन्थोंको प्रकाशमें लावेंगे।

मालूम नहीं आप पहले भी कभी जेसलमेर गये थे या नहीं। वहाँकी प्राचीन राजधानी लोद्रवामें अपना जैन मन्दिर भी एक स्थापत्य शिल्पका अपूर्व और अद्वितीय नमूना है, जो अवश्य देखने योग्य है। उसका तोरण जो अब तक अखण्ड है बड़ा ही सुन्दर है। प्रतिमाएँ भी बड़ी मनोहर हैं। परन्तु उन पर चक्षु, टिला, गलबन्ध (collar), कपालपट्ट, ठुड्डीमें हीरा आदि आदि न मालूम कितने उपसर्ग लगा कर उनकी मनोहरताको नष्ट कर दिया गया है। मन्दिरमें भी कबूतर हगते होंगे, साफ करनेका कोई प्रबन्ध नहीं, परन्तु फिर भी दर्शनीय है।

आज हमने श्रीमुंशीजीको एक पत्र लिखा है जिसकी नकल आपकी फाईलके लिए भेजते हैं। मेरी तरफसे अब कोई बात यानी कर्तव्य बाकी नहीं रहा। अब वे लोग उसे कानूनी तौर पर ले कर (Take over) कार्य चालू कर दें तो हो जावे।

और यहाँ सब कुशल है, आपके स्वास्थ्य सम्बन्धी तथा वहाँके कुछ कुछ हालात बीच बीचमें अवसर देख कर लिखनेकी कृपा करें। सब कोईका प्रणाम मालूम करें।

आपका विनीत – **बहादुरसिंह**

इस पत्रके पढनेसे ज्ञात होगा कि सिंघीजीको हमारे साहित्य और स्थापत्यकी महत्ताका, एवं रक्षाका कितना ऊंचा खयाल था और हमारे अज्ञान समाजकी ओरसे

होनेवाली उसकी उपेक्षा और दुर्व्यवस्थाको देख कर उनको कैसा दुःख होता था। जेसलमेर जानेसे और वहांके भण्डारको देख कर उसमेंसे अलभ्य-दुर्लभ्य ग्रन्थोंके प्राप्त करनेसे, मुझे तो आनन्द होना स्वाभाविक ही था; पर उनको भी इससे कितना आनन्द हुआ था इसका खयाल इस पत्रके पढनेसे अच्छी तरहसे आता है। ज्ञानके उद्धार और साहित्यके प्रकाशके लिये ऐसी तीव्र उत्सुकता और ऐसी उच्च भावना रखनेवाला अन्य कोई धनिक जैन, वर्तमान समयमें मेरे देखने सुननेमें तो नहीं आया।

सिंघीजीका यह पत्र पा कर, फिर मैंने यथावकाश एक विस्तृत पत्र उनको लिखा जिसमें किस तरह बम्बई-अहमदाबादमें, वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलनके कारण मेरा मन क्षुब्ध हो रहा था और फिर किस तरह अकस्मात् जेसलमेर आ पहुंचना हुआ एवं किस तरह यहां पर कार्यको गति देनेके लिये अब तक क्या क्या प्रयत्न करना पडा-इत्यादि सब बातोंका खुलासावार वर्णन किया गया था। खेद है कि उस पत्रकी प्रतिलिपि मेरे पास नहीं है। हो ती तो उसका उद्धरण यहां पर खास करने जैसा था। उसी पत्रमें उनको खर्चके लिये कुछ रूपये भेजनेकी भी सूचना की थी। इस पत्रके उत्तरमें उन्होंने ता. १. २. ४३ को निम्नलिखित पत्र मुझे भेजा जिसमें खर्चके लिये रूपये भेजनेकी तथा मेरे पत्रको पढ कर उनको जो आनन्द आया उसकी सूचना थी।

श्रद्धेय श्री मुनिजीकी सेवामें

सविनय प्रणाम. आपका कृपापत्र ता. २०. १. ४३ का जेसलमेरसे लिखा आया। पत्र विशेष उत्साहजनक और मनोरंजक है। इसका उत्तर तो अवसर मिलने पर लिखेंगे। वर्तमानमें तो आपने रूपया मंगवाया इसके पहुँचनेमें विलम्ब न हो, इस विचारसे यह छोटासा नोट लिख कर भेज रहा हूँ। सौ सौके नोट वहाँ जैसे स्थानमें भुंजानेमें कष्ट न हो इस विचारसे दस दसके ही भेजे हैं। भाई शंभूको १५००) आपके लिखे अनुसार भेज दिये हैं।

पूज्य माजीकी तबीयत वैसी ही है। उनका तथा और सबोंका प्रणाम। यहाँ सब मजेमें हैं। आप अपने कुशल समाचारसे अनुगृहीत करते रहें। इस दफे आपको अपना मनोवांछित कार्य तो मिल गया है। मगर उसके आवेशमें आप अपने स्वास्थ्यका ध्यान भुला न दें। उसी पर सब निर्भर है। विशेष फिर। श्रीमुंशीजीसे पत्र-व्यवहार चल रहा है। सं० १९९८ माघ ब० ११　　　　आपका विनीत-**बहादुरसिंह**

इस पत्रमें लिखित सिंघीजीकी उस व्यावहारिक बुद्धिमत्ता और अनुभवदर्शिताका भी नोट करने जैसा है जिसमें उन्होंने रूपये भेजते समय १००-१०० के नोटकी जगह १०-१० के छोटे छोटे नोट भेजना सूचित किया है। सचमुच ही जेसलमेरमें उस समय सौ रूपयेका नोट भंगाना बडा तकलीफ देनेवाला काम था। सौके नोटके पीछे वहां रूपया-बारह आना बटावका देना पडता था। कभी कभी तो किसी बेचारे भोले भाले आदमीको ५ रूपये तकका बटाव देनेकी नोबत आती थी। कैसी छोटी छोटी परन्तु समय पर महत्त्वकी बन जानेवाली बातों पर सिंघीजीका कितना सूक्ष्म खयाल रहता था यह इससे सूचित होता है।

मेरा जेसलमेरका निवास

सिंघीजी मेरे स्वास्थ्यकी शिथिलतासे अच्छी तरह परिचित थे इससे उनको हमेशां इस बातका खयाल रहता था कि कहीं उत्साहमें आ कर मैं अपनी शक्तिसे अधिक परिश्रम करने न बैठ जाऊं और बीमार न हो जाऊं। इसलिये वे हमेशां इस विषयमें मुझे सावधान किया करते थे। पर मेरी स्थिति इससे उलटी हो जाती थी। उनका इस प्रकारका अनन्य उत्साह और सद्भाव देख कर मेरा उत्साह और भी अधिक बढ जाता था और मैं अपने कार्यमें विशेषरूपसे व्यग्र हो जाता था। जेसलमेर जाने पर एक तो कोई महिने-डेढ-महिने बाद मुझे अपनी सुविधानुसार भण्डारका अवलोकन करनेकी सरलता प्राप्त हुई और फिर उसी समय सिंघीजीके ऐसे प्रोत्साहनदायक पत्र मिले। इससे मेरा मन अत्यधिक उत्साहित हुआ और मैं दिन-रात काम करनेमें व्यस्त हो गया। प्रातःकालके करीब ४ बजे उठ कर काम शुरू किया जाता था जो रातको १० बजे तक चलता रहता था। बीचमें खाने-पीने आदिके निमित्त कोई सब मिल कर दो घंटे अन्य कार्यमें व्यतीत किये जाते थे, बाकीका सब समय लेखन-संशोधनमें दिया जाता था।

वहां पर एक-एक घंटा भी मुझे एक-एक दिनके जैसा महत्त्वका लग रहा था। अपनी हमेशांकी आदतके मुताबिक मैं हर तीसरे चौथे दिन दाढी बनानेका आदी बना हुआ हूं। परन्तु इस तरह सप्ताहमें दो दिन दाढी बना कर, घंटा-डेढ घंटा उसके लिये खराब करना, वहां मुझे सहन न होने लगा। सो मैंने, कुछ जेलनिवासियोंकी तरह, दाढीका बनाना बन्ध कर उसका बढाना पसन्द किया। वह दिन रात बढने लगी।† प्रारंभमें मुझे अपना चेहरा कुछ विचित्रसा लगने लगा पर मैंने यह सोच कर समाधान कर लिया कि यहां जेसलमेरकी इस निर्जन मरुभूमिमें, कौन ऐसा जान पहचानवाला या मिलने जुलनेवाला विशिष्ट व्यक्ति मिलेगा जो मेरी इस नई दाढीके कारण दिखनेवाली विचित्र सूरतकी समीक्षा करना चाहेगा। इस प्रकार दो-ढाई महिनेमें तो मेरी दाढी ठीक ठीक बढ गई। मैंने उसका फोटू भी लिवाया और सिंघीजीको तथा अन्य मेरे निकटतम व्यक्तियोंको कौतूहलकी दृष्टिसे उसे देखनेको भेजा। सिंघीजीको उसे देख कर बडा कौतूहल हुआ और उन्होंने अपने एक पत्रमें लिखा कि आपने ठीक "**जैसा देश, वैसा भेष**" वाली कहावतको चरितार्थ करना आरंभ किया है।'

---

† तब दिलमें यह भी खयाल आया कि यदि ४–६ महिने जो यह इसी तरह विना विघ्न बाधाके बढती रही, तो जब मैं वापस अपने स्थान पर पहुंचूंगा तब एक अच्छा दाढीवाला हो कर बुजुर्गकी हैसियतसे अपने स्नेहिजनोंके बीच, शायद और भी अधिक सम्मानका भाजन बन सकूंगा और फिर सदाके लिये यह जेसलमेरकी दाढी मेरी महत्ताको बढाती रहेगी। हर तीसरे-चौथे दिन उठ कर सेविंग करनेका संकट टलेगा – ब्लेड वगैरहका खर्च मिटेगा। ये थे शेखचिल्लीकेसे ही विचार; पर इन विचारोंसे भी एक प्रकारका मनमें आनन्द आ रहा था और मेरे आनन्दका अनुभव लेनेके लिये मेरे साथी अध्यापक श्रीयुत के. का. शास्त्री – जिनको अहमदाबादकी गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटीने, मेरे सहायकके रूपमें, मेरे साथ भेजा था – वे भी अपनी दाढी बढाने लगे।

यों, ज्यों ज्यों मेरी दाढी बढती गई त्यों त्यों (शायद उसीके प्रभावसे हो) जेसलमेरमें मेरी ख्याति भी बढती गई। इसके परिणाममें, एक दिन मुझे श्रीमान् महारावलजीकी ओरसे, मिलनेके लिये सादर आमंत्रण देनेको, श्रीमान्‌के प्राइवेट सेक्रेटरी, मेरे डेरे पर आ उपस्थित हुए। छत्रपतिकी आज्ञाका पालन करना मेरा कर्तव्य हुआ और दूसरे दिन मैंने राजमहलमें उपस्थित होनेकी इच्छा प्रदर्शित की। बिचारी दाढी पर संकट आ गया। क्यों कि उस विचित्र सूरतमें श्रीमान् महारावलजी जैसे राज्याधिपतिसे मिलने जाना मुझे असांस्कारिक लगा। **'विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि राजद्वाराणि'** इस राजनीतिशास्त्रकी शिक्षाका स्मरण करते हुए, मैंने उसी दिन, नापितको बुला कर उस दाढीका वपन कराया और इस तरह फिर मैंने अपनी उस असली सूरतको अपनाया।

जेसलमेरके ग्रन्थोंकी रक्षाके लिये सिंघीजीकी उदारता

जेसलमेरके भण्डारमें जो ताडपत्रके ग्रन्थ रखे हुए हैं वे पुरानी पद्धतिके ढंगसे मामुली कपडेके बस्तोंमें बन्धे पडे हैं। उन पर जो लकडीकी पट्टियां दे रखी हैं वे भी बडी वेडोल और बिना मापकी हैं। पुस्तकोंके बान्धने छोडनेका कोई अच्छा इन्तजाम नहीं है। नाही कोई खास आदमी उस कामको करनेवाला है। जितनी भी दफह ये ग्रन्थ खोले जाते हैं उतनी ही दफह कुछ-न-कुछ पन्ने इनमेंसे इधर उधर होते रहते हैं और टूटते रहते हैं। एक पोथीके पन्ने दूसरी पोथीमें मिलते रहते हैं और इस तरह प्रायः बहुतसे ग्रन्थ त्रुटित बनते जाते हैं। मैंने यह हालत देख कर भण्डारके संरक्षकोंसे कहा, कि जैसे पाटन और खंभात वगैरह स्थानोंके ताडपत्रीय ग्रन्थोंकी सुरक्षाके लिये, प्रत्येक ग्रन्थको अलग अलग लकडीकी अच्छी सुन्दर पेटीमें, ऊपर नीचे सफाईदार पाटली लगा कर रखनेका प्रबन्ध किया गया है वैसा ही इन ग्रन्थोंके लिये करनेसे, इनकी रक्षा अच्छी तरहसे होगी और ये यों बुरी तरहसे नष्ट होनेसे बच सकेंगें। तब उन पंचोंने कहा कि—'यह काम तो आप ही यदि कृपा करके कर सकें तो हो सकता है। वरना हमारे तो सामर्थ्यके बहारकी यह बात है। कुछ दिन बाद तो वे फिर इस कामके करने-करानेका मुझसे खूब आग्रह ही करने लगे। श्रीमान् महारावलजीके जाननेमें यह बात आई तो उन्होंने भी मुझसे इस कार्यके करा देनेका सादर अनुरोध किया। तब मैंने सिंघीजीको इस विषयमें लिखा और भण्डारके ग्रन्थोंकी रक्षाके लिये उनकी ओरसे लकडीकी पेटियां आदि बना दी जांय तो वह भी एक बडा पुण्यदायक कार्य होगा और ग्रन्थोंके प्रकाशनकी जितनी ही ग्रन्थोंके संरक्षणकी भी पूरी आवश्यकता है इसका उनको खयाल दिलाया। इसके उत्तरमें, उन्होंने तारसे मुझे उस कार्यको करने-करानेकी अपनी सम्मति भेजी। उसके खर्चके लिये मैंने कोई हजारेक रूपयोंका अन्दाजा लिखा था सो उन्होंने मंजूर कर लिया। जेसलमेरके संघने सिंघीजीकी इस उदारताके लिये उनको (ता. १२. ४. ४३) धन्यवादका एक सादर पत्र लिखा। सिंघीजीकी स्वीकृति मिलने पर मैंने वहांके सुथार मिस्त्रीको बुलाया और उसको नमूनेके लिये दो चार पेटियां बनानेकी कल्पना दी, तो वह बोला 'जिस सागकी लकडीकी आप बात करते हैं उसका तो एक ४-६ इंच-

जितना भी टुकडा आपको यहां जेसलमेरमें नहीं मिल सकता; तो फिर २-४ पेटियां बनानेकी तो बात ही कैसे की जाय ?' इधर उधर सब जगह तलायश करने पर यही पता चला कि जेसलमेरमें ऐसी पेटियां बनानेकी कोई सामग्री नहीं है। वह सब सामग्री कहीं बाहरसे लानी चाहिये और इस महायुद्धके आपत्कालमें वह संभव नहीं है। हो गया, भण्डारके ग्रन्थोंकी रक्षाका जो मनोरथ मेरे मनमें उत्पन्न हुआ था वह तत्काल तो वहीं विलीन हो गया। जेसलमेरके संघको मैंने आश्वासन दिया कि लडाईके बाद यदि फिर संयोग बना तो मैं आ कर इस कार्यको करनेकी कोशीश करूंगा।

जेसलमेरसे प्रस्थान

इस तरह पूरे ५ महिने मैंने जेसलमेरमें व्यतीत किये। इतने समयमें मैंने न केवल किलेमेंके बडे ज्ञानभण्डारका ही अवलोकन-अन्वेषण आदि कार्य किया; अपि तु आचार्यगच्छीय भण्डार, थेरुशाहका भण्डार, तपागच्छीय भण्डार, बडे उपाश्रयमें रक्षित यतिवर्य श्रीवृद्धिचन्द्रजी एवं उनके शिष्यवर्य पं० श्रीलक्ष्मीचन्द्रजीका भण्डार तथा यतिवर्य श्रीडूंगरसीजीका भण्डार-इत्यादि सभी छोटे बडे भण्डारोंका मैंने निरीक्षण किया। लोंकागच्छीय उपाश्रयका ज्ञानभण्डार, जिसको आज तक कभी किसीने नहीं देखा था, उसको भी मैंने देखा। इन सब भण्डारोंमेंसे, मेरी दृष्टिसे मुझे जो कुछ नवीन और अधिक उपयोगी साहित्यिक सामग्री मालुम दी उसकी हस्त प्रतिलिपियां तथा टिप्पणियां वगैरह तैयार कीं। कोई छोटे बडे २०० ग्रन्थोंकी संपूर्ण प्रति लिपियां कराई गई। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्राचीन देश्य भाषामें ग्रथित न्याय, व्याकरण, आगम, कथा, चरित्र, ज्योतिष, वैद्यक, छन्द, अलंकार, काव्य, कोष आदि विविध विषयोंकी रचनायें इसमें अन्तर्भूत हैं। ताडपत्र पर लिखित प्राचीनतम प्रतियोंकी भिन्न भिन्न प्रकारकी लिपियोंकी तथा उनमें प्राप्त चित्र आदिकोंकी प्रतिकृतियां लेनेकी दृष्टिसे पचासों ही फोटोप्लेट भी उतरवाये गये। इस कार्यमें, श्रीयुत प्रो० केशवराम का. शास्त्री, पं० अमृतलाल, पं० शान्तिलाल सेठ, पं० मूलचन्द व्यास आदि मेरे साक्षर साथियोंने तथा अन्य कई लेखकोंने पूर्ण उत्साह एवं बडी एकाग्रताके साथ मेरा हाथ बंटाया और मुझे सफल मनोरथ बनाया।

प्रायः ३५०० लगभग इस कार्यमें अर्थव्यय हुआ। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि यह कार्य 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' के लिये ही किया गया था और इसका यह सारा खर्च सिंघीजीकी ओरसे ही हुआ था।

जेसलमेरके केवल जैन संघने ही नहीं, सभी ग्रामवासियोंने मेरे और मेरे साथियोंके प्रति अच्छी तरह प्रेमभाव प्रदर्शित किया। जैन संघने तो हमको एक आतिथ्यपूर्ण सत्कार समारंभसे सम्मानित भी किया।

ता. २९ अप्रेलको सायंकाल ४ बजे करीब जेसलमेरसे हमने बिदाय ली। श्रीमान् महारावलजीने आज्ञा की थी, कि वे खुद अपने महलोंमेंसे, अपनी निजकी मोटरमें बिठा कर मुझे बिदा करेंगे। तदनुसार मैं उनकी सेवामें उपस्थित हुआ और आधा घंटा बातचीत आदि करके उन्होंने बडे प्रेम और सद्भावसे मुझे बिदा किया। मेरे

जेसलमेरमें लेखक

[दाढीवाला स्वरूप]

जेसलमेरमें ग्रन्थान्वेषण करनेवाला लेखकका सहायक मंडल
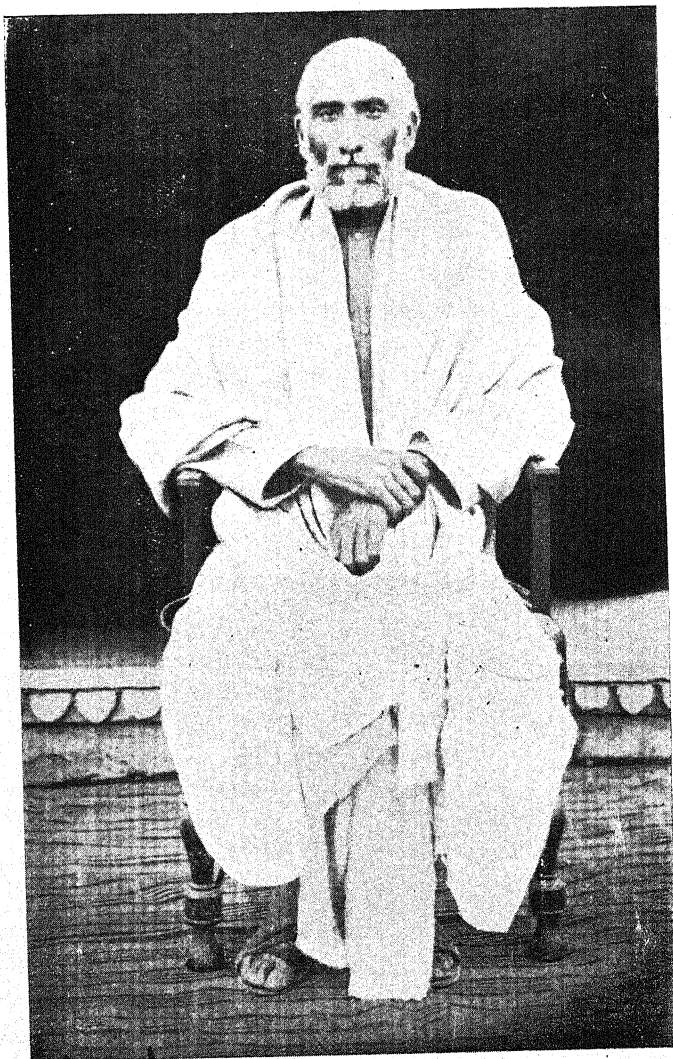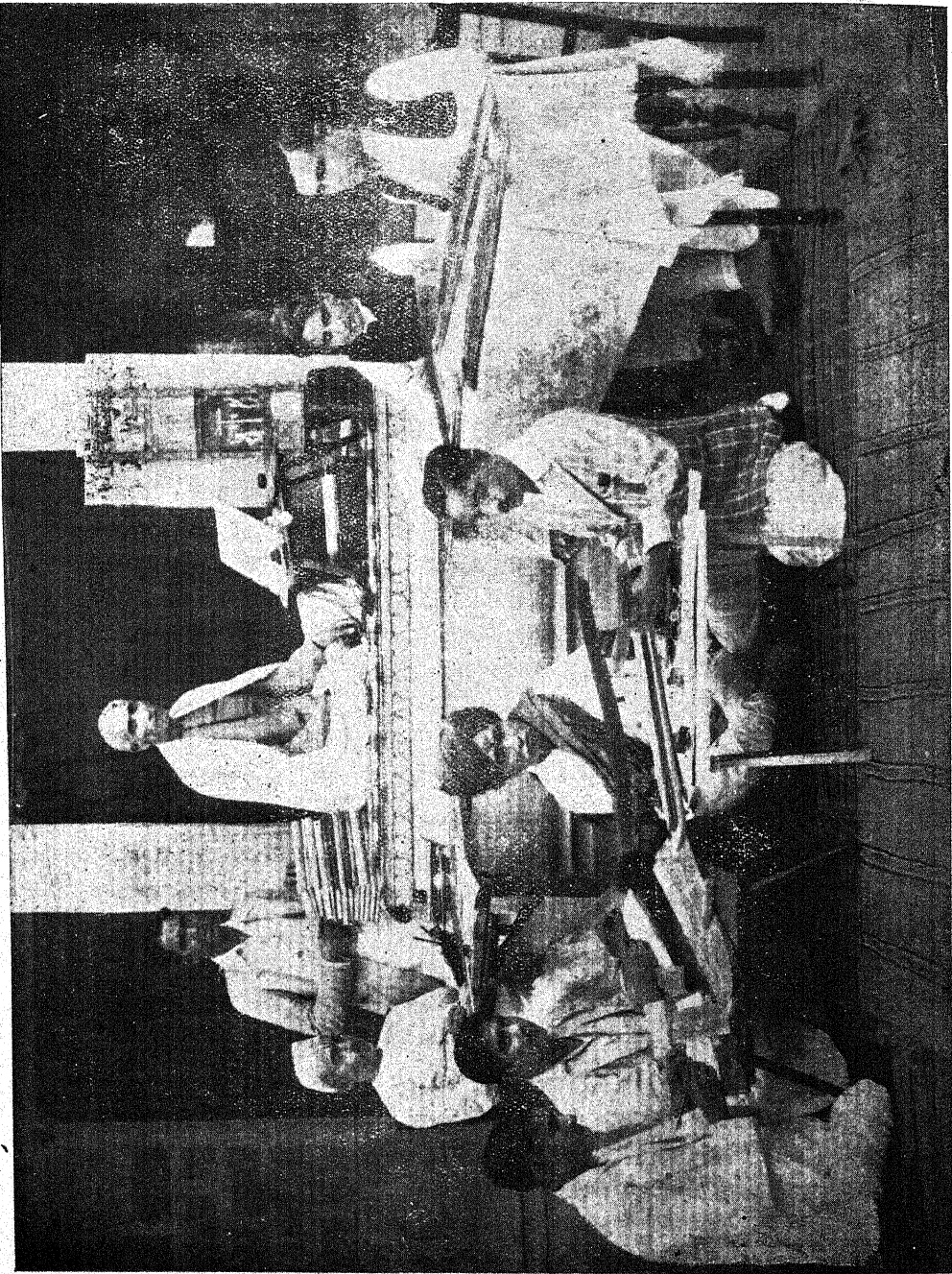
साथकी पार्टीको भी दूसरी दरबारी लॉरीमें बिठा कर स्टेशन पर पहुंचानेकी आज्ञा की। रातको १० बजे हम मारवाड राज्य (जोधपुर)के रामदेवरा स्टेशन पर पहुंचे। दूसरे दिन प्रातःकालकी गाडीसे रवाना हो कर ता. १ मईको १२ बजे वापस अहमदाबाद पहुंचे।

मेरा तत्काल बम्बई जाना और सिंघीजीका भी वहां आ पहुंचना !

जैसा मैं अहमदाबाद पहुंचा कि उसके दूसरे ही दिन बंबईसे श्रीमुंशीजीका बहुत जरूरी पत्र मिला जिसमें इन्होंने भवनके एक आन्तरिक प्रबन्धकी समस्याके लिये मुझे तत्काल बंबई आनेकी सूचना दी। ता. ३, मईको रवाना हो कर मैं बंबई पहुंचा। दो-एक दिन स्वस्थ हो कर मैं सिंघीजीको पत्र लिखनेका विचार कर रहा था, उतनेमें ता. ६ की रातको ८ बजे मुंशीजीका मुझे टेलीफोन मिला कि 'सिंघीजी आज कलकत्तेसे यहां पर, सेठिया ब्रधर्सके वहां लग्नप्रसङ्गके सबबसे आये हैं, और अमुक जगह ठहरे हैं।' मैंने तुरन्त वहां पर फोन किया और उनकी खबर निकाली। मेरी इस तरह बम्बईमें अचानक उपस्थिति जान कर उनको आश्चर्य हुआ। क्यों कि वे समझते कि मैं तो शायद अभी तक जेसलमेरमें ही बैठा हूं। इस प्रकार अकस्मात् उनका और मेरा बंबई आ पहुंचना—हम दोनोंको बडा हर्षदायक हुआ। दूसरे दिन सवेरे ही हम दोनों, उनके स्थान पर मिले और फिर तुरन्त मुंशीजीके मकान पर जा पहुंचे। उसी दिन, उसी समय, भवनके लिये यह जो नया मकान (हारवे रोड पर) किराये पर लिया गया, उसमें वास्तुविधि करनेका मुहूर्त था। सो हम सब सिंघीजीको साथ ले इस मकानमें आये और उनकी उपस्थितिमें मंगलकर वास्तुमुहूर्त संपन्न हुआ। मेरे मनमें उसी क्षण यह भाव उठा था, कि सिंघीजी जैसे पुण्यवान् मनुष्यकी जो इस प्रकार, इस शुभ मुहूर्तमें, ऐसी अकस्मात् और अकल्पित उपस्थितिका हमको लाभ प्राप्त हुआ है, इससे इस स्थानमें, भवनका भावी जरूर सविशेष अभ्युदयकारक होना चाहिये।

इसके बाद, यथावसर वारंवार मेरी, मुंशीजीकी और सिंघीजीकी मीटींगें होने लगीं और 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' का भवनके साथ जो संयोजनीकरण करनेका पिछले १०-१२ महिनोंसे विचार-विनिमय और पत्रव्यवहारादि हो रहा था, उसका सब कुछ, प्रत्यक्षमें बैठ कर आखिरी निर्णय कर लेनेकी बातें सोची जाने लगीं। पण्डितजीको भी बनारस तार दे कर बंबई बुला लिया गया और इस तरह हम चारोंने साथमें बैठ कर, ता. ११ मईको ग्रन्थमाला और भवनके सम्बन्धका अन्तिम निर्णय किया और उसके लिये लिखे गये एग्रीमेंटके दस्तावेज पर, सिंघीजीने अपने शुभ हस्ताक्षर कर उसको प्रमाणित बनाया।

भवनके सब प्रमुख सदस्योंका सिंघीजीको परिचय करानेके लिये, मुंशीजीने एक दिन अपने वहां चहापार्टीका आयोजन किया तथा एक दिन सबको भोजनके लिये भी आमंत्रित किया गया। इस तरह अपनी ग्रन्थमालाको भवनके हाथमें समर्पण कर सिंघीजी निश्चिन्त बने और उसकी भावी प्रगतिके विषयमें मुझको प्रोत्साहित देख कर प्रसन्न हुए। सब कार्य संपन्न होने पर ता. १२ मईको नागपुर मेलसे वे कलकत्ताको रवाना हुए।

बंबईकी यह उनकी अन्तिम यात्रा थी। ६–७ दिन वे यहां पर इस समय रहे थे। बहुतसा समय प्रायः उनका मेरे और पण्डितजीके सहवास ही में व्यतीत होता था और हमारे बीचमें अनेक प्रकारकी बातेंचीतें होती रहती थीं। जेसलमेरके मेरे साहित्यिक और सांस्कृतिक आदि कार्यकी पूरी हकीकत तथा वहांके मेरे विविध अनुभव सुन कर बडे खुश हुए और उन सब बातोंका एक विस्तृत वर्णनात्मक प्रबन्ध लिख कर यथाशक्य शीघ्र छपा देनेका मुझसे सविशेष अनुरोध किया।

भवनकी दिनप्रतिदिन होती हुई प्रगतिको देख कर उनको खूब सन्तोष हुआ और बोले कि 'इस कार्यको देख कर हमारा भी मन होता है कि हम भी सालभरमें कुछ महिने यहां बंबई आ कर रहें और आपलोगोंके सहवासमें अपना समय आनन्दसें व्यतीत करें। हमें कलकत्तेमें अब और किसी प्रकारका तो कोई बंधन है नहीं। सिर्फ मांका हमें एक विशिष्ट बन्धन है। जब तक वह बैठी है तब तक हम उनको छोड कर कहीं अधिक दिन रह नहीं सकते। जिस दिन मां न होगी उस दिन फिर हम सर्वथा बन्धनमुक्त हैं।' बोरीबन्दर स्टेशन पर जब मैं उनको पहुंचाने गया तब उन्होंने अपना यह भाव प्रकट किया था। परन्तु इसके विपरीत, क्रूर कालके मनमें क्या था इसकी किसीको कल्पना थोडी ही थी।

कलकत्ते पहुंच कर उन्होंने अपने कुशलसमाचार सूचक निम्नलिखित पत्र लिखा।

सिंघीपार्क
बालिगंज, कलकत्ता
ता. १६, मई. १९४३

"सविनय प्रणाम. हम परसों तीन बजे यहां पहुंचें। रास्तेमें गरमीका तो कहना ही क्या? आज अजीमगंज जा रहे हैं।

श्रद्धेय श्रीपण्डितजीको मेरा सविनय प्रणाम निवेदन करियेगा। उनकी तथा आपकी तबियत ठीक होगी। आप लोगोंके साहचर्य्यमें हमारे दो-तीन रोज बडे आनन्दसे निकल गये, नहीं तो हम शादीके दूसरे ही रोज भागनेवाले थे। मुन्शीजीको भी कल एक पत्र लिखा है। सं० २०००, वैशाख सु० १३"

आपका विनीत
बहादुरसिंह

सिंघीजीका हाथका लिखा हुआ अन्तिम पत्र

इसके बाद ता. ११. ८. ४३ का लिखा हुआ सिंघीजीका एक पत्र मुझे मिला जिसमें उन्होंने खास करके जेसलमेरमें मैंने जो ग्रन्थभण्डारका अन्वेषणकार्य किया उसका विवरणात्मक एक प्रबन्ध लिख कर उसे 'भारतीय विद्या' पत्रिकामें प्रकाशित करनेकी अपनी विशिष्ट इच्छा प्रदर्शित की थी। एक प्रकारसे सिंघीजीका मुझ पर यह अन्तिम पत्र था। इसके बाद उनके खुदके हाथका लिखा हुआ कोई पत्र मुझे नहीं मिला। हालां कि उसके बाद दो दफह उनसे प्रत्यक्ष भेंट हुई थी। वह पत्र इस प्रकार है–

श्रद्धेय श्रीजिनविजयजी

सविनय प्रणाम. बम्बईसे आनेके बाद आपको मैंने शायद कोई पत्र नहीं लिखा। आपने पूज्य पिताजीका नया लाइन ब्लॉक बनवानेके लिये, उनका एक लाइन ड्रॉईंग बनवा कर भेजनेको कहा था। सो अब तक नहीं भेज सके। कारण हमारे artist की स्त्रीको थाइ-सीसकी बिमारी हो गई है सो वो करीब करीब अपने मुल्कमें ही रहता है। हम भी करीब डेढ महीनेसे कार्यवशात् कलकत्तेमें हैं। आप इस वख्त कहां है मालूम नहीं। यहां कल-कत्तेमें फ़ाईल देखते देखते एक लाइन ब्लॉकका printed copy मिल गया; देखा तो मालुम हुआ कि यह नया बनवाया हुआ है। मगर बहुत तालाश करने पर भी न तो इसका original drowing मिला और न इसका Block, मालुम नहीं कहां गुम हो गया। जो कुछ भी हो यह drowing अगर आपको पसन्द हो तो इसीसे फिर Block बनवा कर काम चल सकता है। न मालुम क्यों और कब इस Block को बनवा कर इसे यों ही रख छोडा गया। हमें तो इसमें कोई ऐब नजर नहीं आती। आप अगर पसन्द करें तो इसीसे ब्लॉक बनवा कर काममें लाना शुरू कर दें।

हमारी यह इच्छा आपसे प्रकट की थी कि आपके जेसलमेरके प्रवासका एक संक्षिप्त विवरण 'भारतीय विद्या' में प्रकाशित कर दें, ताकि इस विषयमें रस लेनेवाले लोगोंको यह जाहिर हो जाय कि आपने वहां जा कर क्या क्या देखा, क्या क्या कठिनाईयां झेलीं, कैसे कैसे उन सबोंको हल किया, किसकी सहायता मिली, कैसे कैसे अमूल्य ग्रन्थ भण्डारोंमें पड़े पड़े सड़ रहे हैं, उनके उद्धारका आंशिक रूपमें आपने कितना कार्य किया आदि आदि। अगर आपने इस विषयमें कुछ लिखा हो तो जरूर प्रकाशित करें।

यहां तथा अजीमगंजमें सब कुशल हैं। आपका स्वास्थ्य इन दिनों ठीक रहता होगा। नथमलजी इधर आये हैं उनके साथ श्रीपण्डितजीका पत्र मिला। उनको Carbuncle हो गया था सो उसी पत्रसे मालुम हुआ। अब ठीक है, उनको अलग पत्र दे रहे हैं।

नथमलजीको कलकत्ता युनिवर्सिटीसे नाहार स्कॉलर्शिप मिल गया है इसलिये आगे पर उनको रिसर्च तथा Ph. D. के लिये तैयारी करनेमें सुगमता रहेगी। शेष कुशल.

आपका विनीत—**बहादुरसिंह**

भवनके लिये लाईब्रेरी लेनेको मेरा कलकत्ते जाना

मैं जब जेसलमेरमें था, तब कलकत्ता युनिवर्सिटीके एक सुप्रसिद्ध निवृत्त प्रोफेसर बम्बई आये थे और श्रीमुंशीजीसे मिल कर उन्होंने अपना निजी विशाल ग्रन्थसंग्रह (लाईब्रेरी) यदि भवन खरीद करें तो, वे उसे देना चाहते हैं—इस बारेमें कुछ बातचीत की थी। साथमें उसकी कीमत भी उन्होंने सूचित की थी जो ५० हज़ार जितनी बडी रकम थी। भवनके लिये एक अच्छी लाईब्रेरीका होना नितान्त आवश्यक था। वास्त-वमें ऐसी संस्थाका तो प्रधान प्राण, उत्तम प्रकारकी लाईब्रेरी ही मानी जाती है। उच्च कोटिके पुस्तकोंका अच्छा संग्रहवाली लाईब्रेरीके विना ऐसी संस्थाका अस्तित्व वन्ध्यत्वका ही द्योतक होता है। परन्तु ऐसी अच्छी लाईब्रेरी प्राप्त करना कोई सुलभ वस्तु नहीं है। इसके लिये काफी धनकी भी जरूरत रहती है और सतत उद्योगकी भी। मैं और

मुंशीजी भवनके पास ऐसी अच्छी लाईब्रेरीके होनेकी झंखना इसके जन्मदिनसे ही कर रहे थे और यथेष्ट उद्योगमें भी रहते थे। अतः जब उक्त विद्वानने अपनी लाईब्रेरीके बारेमें मुंशीजीसे बात की तो इनका मन एकदम उसको लेनेके लिये उत्कंठित हो गया और उनको कह दिया कि– 'मुनिजीके आने पर उनसे परामर्श करके हम आपकी लाईब्रेरीको ले लेनेका प्रयत्न करेंगे।' मेरे आने पर मुंशीजीने इस विषयका जिक्र किया तो मैंने भी उसको हस्तगत कर लेनेकी तीव्र उत्कंठा बतलाई। लेनेका निर्णय किया जाय, उसके पहले उक्त विद्वान् महाशयके पाससे पुस्तकोंका लीस्ट मंगा कर देख लेना उचित मालुम दिया और उनको लीस्ट भेज देनेके लिये लिखा गया। परन्तु ३–४ महिने व्यतीत हो जाने पर भी, और २–४ पत्रादि लिखने-लिखाने पर भी, उनकी ओरसे जब लीस्ट नहीं मिल सका, तब आखिरमें यह तय किया गया कि मैं खुद कलकत्ते चला जाऊँ और उस लाईब्रेरीको प्रत्यक्ष आँखोंसे देख कर, उचित जंचे तो उसका सोदा कर डालूं। सिंघीजी वहां थे ही; इससे मुझे इस विषयमें उनसे यथेष्ट सहायता मिलनेकी पूरी संभावना थी। क्यों कि उक्त विद्वान् मेरे भी पूर्वपरिचित थे और सिंघीजीके साथ भी उनकी अच्छी जानपहचान थी। जानेके पूर्व मैंने सिंघीजीको इस बारेमें थोडीसी पत्र द्वारा पूर्व सूचना भी दे दी।

उन दिनों कलकत्ता युनिवर्सिटीमें भी एक जैन चेयर स्थापित करनेके लिये, युनिवर्सिटीके प्रधान पुरुष डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी एवं संस्कृत विभागके मुख्य-आचार्य म. म. श्रीविधुशेखर शास्त्री, सिंघीजीसे प्रेरणा कर रहे थे और इस विषयमें शास्त्री महाशयने मुझको तथा खास करके पण्डितजी सुखलालजीको पत्रादि लिख कर, हम लोगोंसे भी सिंघीजीको प्रोत्साहित करनेकी एवं यथायोग्य अन्य प्रकारकी आवश्यक सहायता प्राप्त करानेकी अभिलाषा व्यक्त की थी। शास्त्री महाशयका प्रस्ताव था कि सिंघीजी उस चेयरके स्थापित करनेका प्रारंभिक अर्थभार उठावें और पण्डितजी उसके प्रथम अधिष्ठाता बन कर उसके संचालनका भार उठावें, तो पीछेसे कामके जम जाने पर, युनिवर्सिटी भी स्वयं उसके अर्थभारको उठा लेनेके निमित्त प्रयत्न करना अपना आवश्यक कर्तव्य समझेगी। सिंघीजीने इस प्रस्तावके बारेमें अपना कुछ मनोभाव प्रकट किया कि यदि पण्डितजी जो इस प्रस्तावित चेयरके संचालनका काम अपने हाथमें लेनेका विचार करें तो वे उसके लिये प्रारंभिक आर्थिक भारके उठानेका विचार करनेको स्वयं तत्पर हो सकते हैं। सो इस विषयमें कुछ विचार-विनिमय करनेके लिये सिंघीजीने पण्डितजीको भी मेरे साथ कलकत्ते आनेका आमंत्रण दिया था। अतः हम दोनों साथ ही बम्बईसे ता. १६ सप्टेंबरको कलकत्ताके लिये रवाना हुए।

हम कलकत्ता पहुंचे उसके ४–५ दिन पहले ही सिंघीजी भी अजीमगंजसे वहां पर कार्यवश आ पहुंचे थे। इससे उद्दिष्ट कार्यके संबंधका वार्तालाप उसी दिनसे प्रारंभ हो गया। मैंने उनसे उक्त लाईब्रेरीके विषयमें, इतःपूर्व जो पत्रव्यवहारादि हुआ था उसका सब हाल सुनाया और कहा कि– 'मैं तो ऐसी बातोंके लिये वैसा व्यवहारकुशल (प्रेक्टीकल) हूं नहीं, परन्तु आप इसमें पक्के निष्णात हैं और आपसे मुझे इस कार्यमें यथेष्ट सहायता मिलनेकी पूरी श्रद्धा होनेसे ही मैं यहां पर आया हूं। अतः किस

तरह यह कार्य सिद्ध किया जाय उसके लिये आप उद्योग करें।' सिंघीजीको उक्त लाईब्रेरीका कुछ पूर्व इतिहास मालुम था और बहुत वर्षों पहले स्वयं उन्हींको उसके ले लेनेके लिये, उसके मालिककी ओरसे एक प्रस्ताव भी उनके पास पहुंचा था। परन्तु सिंघीजीको स्वयं उसका कुछ उपयोग नहीं था इसलिये उन्होंने उसके लेनेकी आवश्यकता नहीं समझी। उस समय तो उसकी कीमत आधेसे भी कम दामोंवाली कही गई थी–अर्थात् २० – २५ हजारके करीब। इस तरहकी बहुतसी बातें उन्होंने मुझको सुनाई और फिर अब उसकी कीमत आदिका ठीक अन्दाजा किस प्रकार लगाया जा सके, उसके लिये वे उपाय सोचने लगे। दो एक दिनमें वहांके अन्यान्य विद्वान् मित्रों द्वारा उसका कुछ उपयुक्त आभास हमको प्राप्त हो गया और फिर मैं स्वयं उस लाईब्रेरीको प्रत्यक्ष देखने और उसके मालीकसे बातचीत करने गया। एक-दो दिन तक मैंने लाईब्रेरीकी सब किताबें खूब ध्यानपूर्वक देखीं और उनकी आनुमानिक गिनती की। इस तरह जब यह पूर्वभूमिका तैयार हो गई तो फिर उन प्रोफेसर महाशयको सिंघीजीके वहां एक दिन दोपहरको चहा पीनेके निमित्त मैंने आमंत्रित किया। उसकी अगली रात्रिको फिर सिंघीजीके साथ बैठ कर उसकी कीमत आदिके विषयमें हमने विचार कर लिया। सिंघीजीने पूछा–'आपके ध्यानमें इसका कितना अन्दाजा आता है?' मैंने कहा–'कोई ३५ से ४० हजार तककी कीमत इसकी ठीक हो सकती है और उतनेमें मिले तो जरूर ले लेनी चाहिये। इसमें कुछ २ – ४ हजार शायद ज्यादह भी जाते मालुम देते हों, तो भी एक अच्छे विद्वानका दीर्घव्यापी जीवनमें किया हुआ उत्तम ग्रन्थसंग्रह है और ऐसे संग्रह इच्छित समय पर मिलने बहुत दुर्लभ होते हैं, इसलिये इसे ले लेनेकी मेरी उत्कट अभिलाषा है।' फिर सिंघीजीने उसकी रकमके बारेमें भवनने क्या प्रबन्ध किया है, इसके विषयमें पूछा, तो मैंने कहा–'अभी तक तो वैसा कोई खास प्रबन्ध नहीं किया गया है। परन्तु मुंशीजीकी और मेरी श्रद्धा एवं आशा है कि आप जैसे भवनके हितैषी दाताओंसे याचना करने पर वह रकम मिल ही जायगी। और अभी तो मैं कोरा चेक ले कर आपके पास यहां आया हूं; जितनी भी रकम यहां देनी पडे, उसे इस चेकमें आपको भरना है और भारतीय विद्या भवनके नामे मांडना है।' सुन कर सिंघीजी जरा मुस्कराये और बोले–'एक तो इसके लेने करनेकी महेनत भी हम करें और फिर ऊपरसे उसके लिये रूपयाकी व्यवस्था भी हम ही करें। यह बडा अच्छा रोजगार आप हमें बतला रहे हैं।' फिर मैंने उनसे लाईब्रेरी अथवा ग्रन्थभण्डार, किसी मनुष्यके लिये, एक कैसा उत्तम स्मारक है और वह कितना पवित्र एवं पुण्य कार्य है इस पर कितनीक प्रसङ्गोचित चर्चा की। फिर मैंने अन्तमें उनसे यह प्रस्ताव किया कि आपने अपने पिताजीकी पुण्य स्मृतिके लिये तो 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' जैसी जगत्प्रसिद्ध स्मारक वस्तुका निर्माण कर उनके नामको अमर कर दिया है। परन्तु अपनी पूजनीया माताजीकी स्मृति निमित्त तथा प्रिय धर्मपत्नीके पुण्यश्रेयार्थ, अभी तक कोई वैसा कार्य नहीं किया जिसके साथ उनके नामकी सुमधुर स्मृति संलग्न हो। इन दोनोंके नामस्मारकके निमित्त कोई विशिष्ट वस्तुका निर्माण आपको अवश्य करना चाहिये। अगर ऐसी उत्तम लाईब्रेरी जैसी पवित्र चीजके

इनमेंसे किसी एकके नामका संयोजन हो तो उससे बढ कर अन्य कोई श्रेष्ठ स्मारक होगा !' इत्यादि । सुन कर वे बहुत देर तक चुप रहे । उनकी मुखाकृतिसे मुझे [मालू]म हुआ कि वे मेरे कथन पर कुछ गंभीर भावसे अपने अन्तरमें विचार करने लग हैं । कोई दस मिनीट बाद वे बोले – 'आपने इन दोनों नामोंके स्मारकके विषयमें अभी कहा, उस पर कुछ जरूर विचार करने जैसा, हमारे मनमें इसी क्षण कुछ [ख्य]ाल पैदा हुआ है । पत्नीके एक स्मारक निमित्त तो हमने कोई १५००० रूपये, यहां जो जैन भवन बननेवाला है, उसमें दिये हैं और बाकी तो उसकी स्मृतिके लिये [श्रे]ष्ट कार्य करना उसके बेटोंका (अर्थात् अपने पुत्रोंका) कर्तव्य है । परन्तु, हां, [अप]नी मांके लिये कुछ करना यह हमारा फर्ज है । आप कोई ऐसी योजना विचार [कर]के हमसे कहिये जिससे उस पर हम विचार करते रहें ।' यों बातें चीतें करते करते [को]ई रातके १२ बज गये और फिर सोनेके लिये उठे । अन्तमें मैंने कहा 'तो मेरा [प्रस्ताव] भरना आपने मंजूर कर लिया है न ?' जरा स्मित करके बोले 'देखा जायगा; [अगर] आपको कोई नहीं मिला तो फिर हम तो है ही । परन्तु, महेरबानी करके अभी [किस]ीसे इस बातकी चर्चा न करियेगा और उन प्रोफेसर महाशयको तो ऐसा बिल्कुल [आभ]ास न होने दीजियेगा कि यह लाईब्रेरी हम खरीद रहे हैं । वरना वे अपनी [कीम]त और भी बढा कर कहेंगे और हमसे ५० के बदले ६० मांगेंगे ।'

[दू]सरे दिन ठीक ४ बजे वे प्रोफेसर चहा पीनेके लिये आये । सिंघीजी, मैं और वे [ती]नों एक टेबिल पर बैठे और फिर चहा पीनेके साथ लाईब्रेरीकी कीमतका विचार [हुआ] । प्रोफेसर साहबने ५० हजारसे कुछ भी कम लेना स्वीकार न किया । सिंघीजीने [पहले] ३५ हजार और फिर आखिरमें ४० की ऑफर की और उनको उन पुरानी [बा]तोंका भी स्मरण दिलाया; परन्तु वे राजी न हुए और सौदा न बैठा । सिंघीजी मुझे [ए]कान्तमें ले जा कर बोले – 'आपका क्या विचार हैं ? ये माननेवाले दिखाई नहीं [देते] । यदि आपको बहुत जल्दी नहीं है तो कुछ दिन अभी ठहर जाइये और यहां पर [बा]० पूरणचन्दजी नाहारकी जो लाईब्रेरी है उसे भी देख लीजिये । अगर आपको वह [ठ]ीक कामकी मालुम दी तो हम उसके दिलानेका प्रयत्न कर, इतनी ही रकममें उसे दिला देंगे । हमारे खयालमें वह लाईब्रेरी इससे भी बहुत अच्छी है और आपको इतनी ही कामकी मालुम देगी' वगैरह वगैरह । चूं कि नाहार लाईब्रेरी तो मेरी बहुत पहलेसे और खूब अच्छी तरह देखी हुई थी ही, इससे मैंने कहा – 'यदि वह लाईब्रेरी जो मिल सकती हो तो फिर मैं इसके लेनेकी बिल्कुल इच्छा नहीं करना चाहता ।' सो इस तरह उस समय वह बात खत्म हुई और मैंने उक्त प्रोफेसरकी लाईब्रेरी लेनेका विचार स्थगित किया । नाहार लाईब्रेरी लेनेके विषयमें प्रयत्न करनेका काम सिंघीजीने अपने ऊपर लिया और उसमें कुछ समयकी दरकार होगी इससे मैंने बंबई जानेका अपना कार्यक्रम निश्चित किया ।

सिंघीजीका मेरे साथ जैसा इधर लाईब्रेरीके विषयमें विचार-विनिमय होता रहता था, उसी वैसी ही पण्डितजीके साथ कलकत्ता युनिवर्सिटीमें जैन चेयरकी स्थापनाके बारेमें चर्चा भी होती रहती थी । इस सिलसिलेमें म. म. श्रीविधुशेखर शास्त्री आदिका भी

वारंवार मिलना आदि हुए करता था। परिणाममें सिंघीजीने अपनी यह स्पष्ट इच्छा प्रदर्शित की कि यदि पण्डितजी कलकत्तेमें रहना और कम-से-कम तीन वर्ष तक चेयरके संचालनका भार अपने ऊपर लेना स्वीकार करें, तो मैं उसका आर्थिक भार, जो प्रायः वार्षिक ६००० रूपये तकका सोचा गया है, उठानेके लिये खुशी हूं।' परन्तु पण्डितजीकी शारीरिक स्थिति, अब इस भारको उठानेके लिये ठीक अनुरूप न होनेसे, इन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की और वह विचार वहीं खत्म हुआ। पण्डितजी भी फिर वहांसे बनारस जानेके लिये उद्युक्त हुए।

मैं ता. २८ सप्टेंबरको कलकत्तासे रवाना हो कर ता. ३० को बंबई पहुंचा। मुंशीजीसे वह सब वृत्तान्त कह सुनाया और नाहर लाईब्रेरीके प्राप्त करनेकी प्रतीक्षा करने लगा। सिंघीजीने इस प्रकार लाईब्रेरीके लिये अपनी उदारताका जो भाव मुझसे प्रकट किया था वह मैंने अपने मनमें पूर्ण गुप्त रखा था। मैंने पण्डितजी या मुंशीजी तकको उसका जिक्र न किया था। मैंने सोचा था जिस दिन यह कार्य सोलह आना सिद्ध हो जायगा, उसी दिन इसकी प्रसिद्धि करनेमें बहुत स्वारस्य रहेगा। परंतु विधिका संकेत इसमें कुछ और ही प्रकारका था। उस संकल्पित उदारताका यश प्रत्यक्ष सिंघीजीको न मिल कर, उनके स्वर्गवासके पश्चात्, उनके सत्पुत्र श्रीमान् बाबू राजेन्द्रसिंहको मिलना निर्मित हुआ था।

सिंघीजीके स्वास्थ्यका बिगडना

मेरे कलकत्तेसे आने बाद, थोडे ही दिन पीछे, सिंघीजीका स्वास्थ्य खराब रहने लगा, और वह धीरे धीरे विकृत रूप धारण करने लगा। उनको किडनीकी बीमारी थी जो इस समय उग्र अवस्थामें पहुंच गई। कलकत्तेके सभी बडे बडे डॉक्टरोंसे उपचार कराया जाता था परन्तु रोग काबूमें नहीं आता था। दिन प्रतिदिन स्थिति चिन्ताजनक होती जाती थी। बीच-बीचमें कभी ५-७ दिन कुछ ठीक मालुम देता और उसके बाद उससे भी अधिक खराब हालत हो जाती। इससे सभी कुटुंबी जन खिन्नमनस्क होने लगे। बाबूजीकी ऐसी अस्वस्थ प्रकृतिके चिन्ताजनक समाचार मुझे श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजीने एक पत्र लिख कर सूचित किये। उन्होंने लिखा कि–

... "आपके कलकत्तेसे गये बाद, पूज्य श्रीबाबूजी साहबकी तबियत ठीक नहीं रहती है। सांसका फुलना, पेटमें वायु होना, पेशाब कमती होना, रातमें नींद नहीं आना इत्यादि शिकायतोंसे तकलीफ पा रहे हैं। ता. ८ नवम्बरसे १३ नवम्बर तक हीचकी बराबर बनी रही जिससे शरीर बहुत थक गया है। शरीर भी बहुत ज्यादह दुर्बल हो गया है। दवाई बराबर चालू है। जो बीमारी ज्यादह हो गई थी वह कम गई है, लेकिन असल बीमारी अभीतक एक ही माफिक है। पूज्य श्रीबाबूजी साब १२ सप्टेंबरसे कलकत्तेमें ही हैं। आजकल लखनऊके हकीमकी दवाई चल रही है। पूज्यश्री दादीमां भी इसीलिये १४ नवबंरसे कलकत्तेमें ही है।"

उनकी तबियतके ऐसे उद्वेगकारक समाचार जानकर, मेरी इच्छा तुरन्त कलकत्ता जानेकी हुई। परन्तु डीसेंबरके दूसरे सप्ताहमें, कानपुरमें श्रीमुंशीजीकी अध्यक्षता

नीचे, विक्रमोत्सव समारंभ मनाया जाने वाला था, और उसके साथ डॉ. ताराचंद, डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी, डॉ. सरकार, डॉ. त्रिपाठी, डॉ. शरण आदि भारतीय इतिहासके प्रमुख ज्ञाता विद्वानोंकी एक छोटीसी कॉन्फरेन्स बुलाई गई थी, जिसमें भारतीयविद्या भवन द्वारा प्रस्तावित 'भारतीय इतिहास' के आलेखनकी प्रारंभिक रूपरेखाका ऊहापोह किया जानेवाला था। इसलिये मुझे मुंशीजीके साथ वहां जाना आवश्यक हुआ। उसके बाद, डीसेंबरके अन्तमें बनारसमें ओरिएन्टल कॉन्फरेन्स होनेवाली थी, उसमें भी सम्मीलित होना मुझे बहुत जरूरी था। इसलिये बनारस हो कर फिर कलकत्ता जाना मैंने स्थिर किया और इस विषयका एक पत्र मैंने सिंघीजीको कानपुरसे लिखा। इस पत्रमें मैंने कानपुरमें इतिहासज्ञ विद्वानोंके साथ किये गये विचार-विनिमयका भी कितनाक वृत्तान्त लिखा था। क्यों कि उनको इस विषयमें बहुत अधिक रस रहता था। अत एव मैं उनको अपनी ऐसी प्रवृत्तिका हाल समय समय पर लिखा करता था। परन्तु इस पत्रका उनकी तरफसे कोई उत्तर नहीं मिला; क्यों कि स्वास्थ्यकी खराबीके कारण उनका स्वयं पत्रव्यवहार करना बन्ध हो चुका था। इससे मैंने अनुमान किया कि प्रकृति जरूर कुछ अधिक अस्वस्थ होनी चाहिये।

सिंघीजीसे मेरी अन्तिम भेट

डीसेम्बरके अन्तमें बनारस-हिंदु युनिवर्सिटीमें होने वाली ओरिएन्टल कॉन्फरेन्समें सम्मीलित होनेके लिये मैं वहां गया। वहां उस कॉन्फरेन्समें आनेवाले इतिहासज्ञ विद्वानोंके साथ, जिनमें, सर् राधाकृष्णन्, डॉ. मजुमदार, डॉ. आल्टेकर, प्रो. पुणतांबेकर, डॉ. बागची, प्रो. नीलकण्ठ शास्त्री, आदि प्रमुख थे—भारतीय इतिहासकी योजना और कार्य-पद्धति आदिका विशेष भावसे ऊहापोह किया गया और हम लोगोंके बीचमें कुछ थोडासा मतभेद था उसका निकाल किया गया। बनारसमें वह कार्य समाप्त होनेपर फिर मैं सिंघीजीको मिलनेकी दृष्टिसे कलकत्ता गया। रास्तेमें डालमियां नगरके प्रतिष्ठापक और भारतके एक प्रमुख प्राणवान् उद्योगाधिपति साहु श्रीशान्तिप्रसादजी जैनके आग्रहसे, एक रात वहां पर उतर गया। विद्याप्रेमी साहुजीने, 'भारतीय विद्या भवन' की प्रवृत्तिका विस्तृत हाल सुन कर अपनी प्रसन्नता और सद्भावना प्रकट की, तथा मेरे निवेदन करने पर, भवनको पोष्ट ग्रेज्युएट स्टडीजके लिये मासिक ५०-५० रूपयेकी ५ स्कॉलर्शिप देनेकी बडी उदारता बतलाई। 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'के द्वारा होने वाले ग्रन्थोद्धार कार्यको देख-जान कर उसकी उन्होंने प्रशंसा की। उन्होंने भी बनारसमें एक ऐसा ही ज्ञानप्रकाशनका बहुत बडा कार्यालय तथा ग्रन्थालय आदि स्थापित करनेकी योजना तैयार की थी जिसके विषयमें मुझसे बहुत कुछ परामर्श किया। आनन्दकी बात है कि 'भारतीय ज्ञानपीठ'के नामसे स्थापित होकर यह संस्था अब अपना कार्य अच्छी तरह कर रही है।

ता. ६ जनवरी, १९४४ के रोज मैं कलकत्ता पहुंचा। श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजी तथा श्रीयुत नरेन्द्रसिंहजी दोनों कहीं कार्यवश बहार गये हुए थे। सिंघीजीके कुटुम्बके आत्मीय और विश्वस्त डॉक्टर श्रीरामराव अधिकारी वहीं थे, सो इनसे बाबूजीके

स्वास्थ्यका पूरा हाल मालुम हुआ। उसे सुन कर मन पर बहुत कुछ चिन्ताजनक प्रभाव पडा। श्यामको ६ बजे उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया। उठ कर प्रणामादि किया। उस दिन उनका स्वास्थ्य अन्यदिनोंकी अपेक्षा कुछ अच्छा उनको मालुम देता था सो प्रसन्नतापूर्वक बातें चीतें करने लगे।

मेरे दाहिने खवेमें ३–४ महिनोंसे कुछ दर्द हो रहा था वह उनको मालुम था, इसलिये सबसे पहले उन्होंने उसीके विषयमें पूछा और जब उनको मालुम हुआ कि वह दर्द अभी तक मिटा नहीं है, तब वे कुछ उत्तेजित स्वरसे कहने लगे कि–'आपका शरीर तो आगे ही ऐसा है और फिर इन शर्दीके दिनोंमें कभी कानपुर, कभी बनारस और कभी कलकत्ता आदिके इस तरहके कष्टदायक प्रवास कर उसे आप क्यों और अधिक खराब कर रहे हैं, और क्यों अपने आयुष्यको अधिक क्षीण बना रहे हैं ?'– इस प्रकारका बहुतसा स्नेहप्रपूर्ण उपालंभ उन्होंने मुझको दिया।

इसके उत्तरमें मैंने फिर वे सब बातें उनको विस्तारसे सुनाईं जिनकेलिये मुझे कानपुर, बनारस आदि स्थानोंमें जाना–करना आवश्यक हुआ था। फिर 'भारतीय इतिहास' के आलेखनकी योजनाका परिचय उनको दिया और अभी तक जितना काम हो गया है उसका दिग्दर्शन कराया। प्राचीन इतिहासके विषयमें उनकी बहुत ही अधिक रुचि रहती थी इसलिये ये सब बातें सुन कर वे बहुत प्रसन्न हुए। मैंने जब उनसे कहा कि 'डॉ. रमेशचन्द्र मजुमदारको हम लोगोंने इस कार्यके प्रधान संपादक बनाना चाहा है और कल सुबह उनसे मिल कर, अपने साथ ही उनको बंबई ले जानेका विचार है'; तो वे बोले कि 'डॉ. मजुमदार इस कामके पूर्ण योग्य हैं; हमारा उनसे अच्छा परिचय है; बहुत अच्छे व्यक्ति हैं'–इत्यादि। फिर वे बोले 'भारत-वर्षका एक ऐसा विस्तृत और प्रमाणभूत इतिहास लिखे जानेके लिये तो हमारे मनमें भी बहुत बार विचार आता रहा है और हमको इसमें बहुत ही रस रहा है। श्रीमुंशीजीने जो इस कामको इस तरह अब उठाया है वह बहुत ही उत्तम है और इसमें आप लोगोंको जरूर सफलता मिलनी चाहिये। हमारा शरीर अच्छा हो गया तो हम भी इसमें यथायोग्य मदत देनेको उत्सुक होंगे'–इत्यादि।

फिर थोडी देर बाद बोले–'आपने कई दफह एक अच्छा विस्तृत जैन इतिहासके लिखे जानेकी बात की है; सो इस कार्यके साथ उसकी भी कोई योजना हो जाय तो वह भी साथमें तैयार हो सकता है। क्यों कि भारतवर्षके सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानोंका सहकार आपको इस कार्यमें मिलनेवाला है ही। उन्हींमेंसे जैन संस्कृतिके ज्ञाताओं द्वारा जैन इतिहासकी सामग्री भी सहज ही में तैयार कराई जा सकती है।' मैंने कहा 'आप जरा अच्छे बन जांय और जैसा कि आपने बम्बईमें मुझसे कहा था–साल भरमें कुछ महिने वहां आकर रहना पसन्द करेंगे; तब फिर इसके बारेमें अपने कोई योजना सोचे विचारेंगे।' इस तरहकी विविध बातें, उसी पुरानी पद्धतिके मुताबिक, हमारे बीचमें उस रातको होती रही।

बनारसमें पण्डितजीकी परिस्थिति आदिके बारेमें भी उन्होंने पूछ-ताछ की और जब मैंने यह कहा कि 'अब पण्डितजी बनारस सदाके लिये छोड रहे हैं और यहांसे मैं

जब वापस लौटूंगा तब मेरे साथ ही बंबई आनेकी उन्होंने तैयारी करली है।' तब उन्होंने अपना सन्तोष प्रकट किया और कहा कि–'हमारी इच्छा तो यही है कि अब आप दोनों साथ ही रहें तो अच्छा है।' इसी वार्तालापमें उनको एक वस्तु याद आई और अपने पास बैठे हुए परिचारकको बुला कर कमरेमेंसे एक फाईल मंगवा कर मुझे देखनेको दी। कहा 'मैं कई दिनोंसे आपको देखनेके लिये इसको भेजना चाहता था पर भेज नहीं सका। पण्डितजी जब अजीमगंजमें आये थे तब उनके साथ बातें चीतें करते हुए हमारे मनमें 'एक योजना' उत्पन्न हुई थी, जिसको हमने इस तरह लिख डाला है। आप इसे देख जाईये और इसके विषयमें कुछ सूचना आदि करने जैसी हो उसे इसमें नोट कर दीजिये। हमको इस विषयमें श्रीराजेन्द्रसिंह आदिसे कुछ चर्चा करनी है। कुछ ठीक हो जाने पर उन लोगोंसे विचार कर, इस योजनाको कोई निश्चित रूप देनेका अब हमारा खयाल हो रहा है।' यह कह वह फाईल मेरे हाथमें दी।

[यह पूरी योजना परिशिष्टमें इसके पीछे दी गई है।]

कोई पूरे ३ घंटे हम साथ बैठे और यह अखंड वार्तालाप चलता रहा। बीच बीचमें शरीरकी स्थितिको लक्ष्य कर वे यह भी कहते जाते थे कि 'न मालुम हम अब कितने दिनके महेमान हैं–शरीरके लक्षण कुछ अच्छे नहीं दिखाई देते' आदि। आखिरमें, डॉ. रामरावने आ कर कहा कि 'आज आपने वार्तालापमें बहुत श्रम लिया है और अब ज्यादह नहीं बैठना चाहिये।' जिसे सुन कर मैं तुरन्त उठ खडा हुआ और अपने स्थान पर जानेको उद्यत हुआ। तब मुझसे कहने लगे कि–'हम अभी तक उस नाहार लाईब्रेरीके विषयमें कुछ नहीं कर पाये हैं। क्यों कि आपका पिछली दफह यहांसे जाना हुआ उसके कुछ ही दिन बाद हमारा शरीर इस तरह खराब हो गया है और यह अभी तक वैसा ही चल रहा है। आप अब आये हैं तो नाहारजीके पुत्रोंसे इस विषयमें स्वयं बात चीत कर लें और उसका तय कर लें।' मैंने कहा 'आप इसकी अभी कोई चिन्ता न करें। मैं भी उसके विषयमें प्रयत्न करूंगा और फिर इसका विचार करेंगे।' बस यह कह कर मैं अपने कमरेमें चला गया और जा कर सो गया। नींद थोडी ही आनेवाली थी–शेष रात्रि यों ही शंका-कुशंकाके विचारोंमें व्यतीत हो गई।

एक तरहसे सिंघीजीके साथ मेरा इस प्रकारका यह आखिरी वार्तालाप था। इसके बाद उनके साथ फिर कोई ऐसा कार्यसूचक वार्तालाप न हो सका। दूसरे दिन डॉ. बाबूसे मालुम हुआ कि उनकी प्रकृति आज फिर कुछ अधिक खराब मालुम दे रही है। वे सारा दिन सोये ही रहे और कुछ विशेष अस्वस्थ मालुम दिये। दो दिन वैसा ही रहा; तीसरे दिन कुछ फिर जरा स्वस्थता मालुम दी। मैं पासमें गया और आधा घंटा बैठा रहा, पर कुछ विशेष बोले नहीं। लखनऊके एक नामी हकीमकी दवा चल रही थी उसको बन्ध किया। दूसरे डॉक्टरोंको बुलाया गया। उनके शरीर और चेहरा आदिका स्वरूप देख कर तो मुझे लग रहा था कि डॉक्टर लोग जैसा बीमारीका गंभीर रूप समझ रहे हैं वैसा तो कुछ अभी है नहीं। कुछ ट्रीटमेंटमें परिवर्तन होना चाहिये ऐसा मेरा खयाल हुआ। बाबूजी बोले 'हमने यहांके सभी नामी

डाक्टरोंको बुला लिया है परंतु ये लोग कुछ ठीक निदान नहीं कर पाते।' तब मैंने कहा 'यदि आप पसन्द करें तो मैं बम्बईसे किसी अच्छे डॉक्टरको बुला लाऊँ। क्यों कि बम्बईमें आज कल बहुत नामी नामी डॉक्टर हैं और उनकी ख्याति सारे हिन्दुस्थानमें फैली हुई है। कुछ उनमेंसे अपने अच्छे परिचित भी हैं।' तो वे बोले बम्बईसे कोई डॉक्टर यहां आवे और एक दो रोज रह कर चला जावे, उसका कुछ मतलब नहीं होता। हमारी प्रकृति कभी कुछ ठीक मालुम देती है तो कभी बहुत ही खराब। इससे दो चार दिन किसी डॉक्टरके रहने करनेसे कुछ ठीक उपचार नहीं हो सकता।' मैंने कहा 'किसी ऐसे ही डॉक्टरको यहां लाया जायगा जो अपनी जरूरत हो तब तक निश्चिन्ततासे रह सके।' इस प्रकारकी थोडीसी बातचीत कर मैं उठ गया और फिर डॉ. रामबाबू और श्रीराजेन्द्रसिंहजी तथा श्रीनरेन्द्रसिंहजीसे इस विषयमें विशेषभावसे परामर्श किया गया। उसके परिणाममें मुझे तुरन्त बम्बई जाकर किसी नामी डॉक्टरको ले आनेका निश्चय हुआ। तदनुसार मैंने गाडीमें अपनी सीट रीझर्व कराई और ता. ११ जनवरीको मैं वहांसे बम्बई आनेको निकला। सिंघीजीका मन कुछ निश्चित नहीं था; पर उनके पुत्रोंकी खास इच्छा रही कि क्यों न एक दफह कलकत्तेसे बाहरके भी अच्छे डॉक्टरका उपचार कर देख लिया जाय? मैं निकलते समय फिर उनसे मिलने गया। पासमें माजी बैठी हुई थीं। उनके मुखपर ग्लानिकी वेदना पूर्ण छाई हुई थी। सिंघीजी विशेष निर्विण्णसे दिखाई दिये। मेरा हृदय गद्गद हो गया और छाती दब गई। वे बोले 'क्या आप जा रहे हैं?' मैंने कहा 'मैं तुरन्त ही वापस आना चाहता हूं। मेरे खयालमें आपकी बीमारी कोई वैसी असाध्य नहीं है, जैसा आप सोच रहे हैं। कुछ ट्रीटमेन्टमें परिवर्तन होनेकी जरूरत है। इससे मैं बम्बईके कुछ अच्छे नामी डॉक्टरोंसे परामर्श करना चाहता हूं। डॉ० रामबाबूने मुझे आपकी बीमारीका पूरा स्टेटमेंट लिख कर दिया है। इसे बम्बईके डॉक्टरोंको बतलाकर उनका अभिप्राय लेना चाहता हूं।' बोले 'अब बम्बईका डॉक्टर क्या और दूसरी जगहका डॉक्टर क्या? परमात्माके डॉक्टरकी प्रतीक्षा करनी ही ठीक है।' इतना कह कर वे चुप रहे, तो मैंने अपने मनमें ढाढस बान्ध कर कहा 'आपको इस तरह हताश न होना चाहिये। आपकी बीमारी कोई वैसी गंभीर नहीं है। ईश्वरकी कृपासे सब कुछ ठीक हो जायगा।' इस पर वे बोले 'हमारा तो जो होना होगा सो होगा। परन्तु यदि आप हमारा कहना मानें तो आप इस तरह अब कहीं ज्यादह आना जाना न करिये और अपने स्वास्थ्यकी रक्षा कीजिये। कौन जाने अब फिर कभी मिलना होगा या नहीं?।' उनके ये आखिरी वचन बहुत ही हार्दिक और करुणस्वरपूर्ण थे जिनको सुन कर मेरा हृदय टूट गया और मेरी आँखें डबडबा गई। मैं उनको प्रणाम करता हुआ उठ खडा हुआ, जिसके बदलेमें उन्होंने भी दोनों हाथ जोडकर बडे सद्भावसे प्रणाम किया। बहुत ही व्यथित हृदयके साथ मैं उनके कमरेमेंसे बहार निकाला। उनके ये शब्द 'कौन जाने अब फिर कभी मिलना होगा या नहीं' मेरे हृदयको मानों छुरीसे काटने लगे और आँखोंमेंसे आंसु गिरने लगे। उस भारी वेदनाको किसी तरह हृदयमें दबाता हुआ मैं मोटरमें बैठा और स्टेशन पर पहुंचा।

बम्बई पंहुच कर तुरन्त श्रीमुंशीजीसे मिला और सिंघीजीके स्वास्थ्य एवं किसी अच्छे डॉक्टरके ले जाने करनेकी बातचीत की। दो तीन दिनमें डॉ. श्रीनाथूभाई पटेलको ले जानेका ठीक किया गया और उसके लिये कलकत्ते तार दिया गया। वहां पर, मेरे निकले बाद एक बडे होमियोपाथ डॉक्टरकी दवाई शुरू की गई जिसका असर कुछ ठीक मालुम हुआ और इसलिये फिलहाल बम्बईसे डॉक्टरको न लानेका मुझे तार मिला।

मार्च १, ४४का लिखा हुआ श्रीनरेन्द्रसिंहजीका एक पत्र मुझे मिला जिसमें बाबूजीकी तबियत कुछ कुछ ठीक होनेके समाचार थे। उन्होंने लिखा था–

'पूज्य बाबूजी साहबकी तबियत पहलेसे बहुत ठीक है। पानी निकल गया है। केवल मुंहमें थोडा है। कमजोरी अभी भी है–लेकिन शायद out of danger हो गये हैं। गुरुदेवकी कृपासे इस दफहका संकट तो कट गया मालुम पडता है। माननीय मुन्शीजी, पण्डितजी, डॉ. मजुमदार सबसे पूज्य पिताजीका प्रणाम कहियेगा।'

इससे मेरे मनको कुछ सन्तोष हुआ कि सिंघीजी अब इस प्राणघातक दशासे मुक्त हो जायंगे। उन्होंने मुझे एक दफह अपनी जन्मपत्रिकाका उल्लेख करते हुए कहा था कि 'हमारी आयु ६२–६३ वर्षकी हमारी पत्रिकामें बतलाई गई है।' इससे भी मुझे विश्वास बैठा कि ये अभी तो जरूर आरोग्य प्राप्त कर लेंगे। परन्तु कोई इसके एक पक्षके बाद श्रीनरेन्द्रसिंहजीका (ता. १८.३.४४ का लिखा हुआ) दूसरा पत्र मिला जिसमें बाबूजीकी तबियत फिर कुछ गडबडा गई है, इसके समाचार थे। उन्होंने लिखा था–

'... आपका पत्र पहुंचा। पूज्य पिताजीको पढ कर सुना दिया। पिताजी आप सबको–पूज्य पण्डितजी मोतीबहन वगैरहको–प्रणाम लिखाते हैं। उनकी तबियत बहुत कमजोर है। बीचमें २–३ रोज बगीचेमें जा कर बैठे थे बादमें इन्फ्ल्युएंजाका एटेक हो गया व बहुत ही कमजोर हो गये हैं।'

एप्रीलके मध्यमें श्रीयुत नरेन्द्रसिंहजी कार्यवश बंबई आये तो उनसे बाबूजीकी प्रकृतिके विषयमें मालुम हुआ कि वह वैसी ही चली जा रही है। कभी दो दिन ठीक मालुम देती है तो चार दिन खराब। सुन कर मेरी चिन्ता बढी कि इस तरह तो अब ये कितने दिन निकाल सकेंगे। मेरा मन फिर कलकत्ते जानेको उत्कंठित हुआ। परन्तु इधर मुझे कुछ राजपूतानामें, राजस्थान साहित्य सम्मेलनकी समितिमें उपस्थित होना आवश्यक था इसलिये उस समय जाना बन नहीं पडा। मई, जूनके दो ढाई महिने, उदयपुर, अजमेर, पाटण, अहमदाबाद वगैरह स्थानोंमें जाने आनेके कारण मैं कलकत्तेसे कोई खास समाचार प्राप्त नहीं कर सका। इससे जुलाईके अन्तमें मैंने वहां जाना निश्चित किया।

सिंघीजीका स्वर्गवास

ता. ९ जुलाईको मुझे श्रीमुंशीजीका फोन मिला कि–सेठिया ब्रधर्सके वहांसे मुझे अभी फोन आया है और कहा है कि परसों, (अर्थात् ७ तारीखको) कलकत्तेमें सिंघीजीका स्वर्गवास हो गया! इसके दूसरे दिन कलकत्तेसे, श्रीमान् राजेन्द्र-

सिंह, श्रीनरेन्द्रसिंह तथा श्रीवीरेन्द्रसिंह—तीनों भाईयोंके हस्ताक्षर अंकित अपने पुण्यश्लोक पिताजीके दुःखद स्वर्गवासका शोक-पत्र भी मुझे प्राप्त हुआ। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह शोक-समाचार मेरे हृदयको असाधारण रूपसे व्यथित करनेवाला हुआ। यद्यपि एक-न-एक दिन यह दुःखद समाचार मुझे मिलने वाला है इसका आभास मुझे बीच-बीचमें होता रहता था। परन्तु पिछले दो-ढाईं महिनोंसे मुझे कलकत्तेसे वैसी कोई गंभीर बीमारीकी खबर मिली नहीं थी और मैं कुछ ही दिनोंमें वहां जानेकी सोच रहा था । इससे इस प्रकार, अकस्मात्, मुझे उनके एकदम दिवंगत होनेकी ही ऐसी अनिष्टानिष्ट खबर मिलेगी, इसके लिये मैं सावचेत न था। मैंने अपने हृदयको बहुत संभाला, पर वह ऐसे सहृदय स्नेहीजनके शाश्वत वियोगको, उदासीन भावसे सहन कर सके, वैसा विरक्त, शुष्क या कठोर न होनेसे उसने बहुत कुछ क्लेशानुभव किया। मेरे साहित्यिक जीवनके सबसे बडे प्रोत्साहक, सुकुशल परीक्षक, अनन्य सहायक, अकृत्रिम प्रशंसक और सहृदय संवेदकके, राजाके जैसे गौरवगरिमावाले जीवनकी समाप्तिके दारुण आघातका संवेदन कर, कई दिन तक मैं व्यथित और विमनस्क बन रहा। अपने प्रिय बन्धुजनोंके जीवन वियोगमें मनुष्यको और कुछ करनेकी प्रकृतिने शक्ति ही क्या दी है!

समाप्ति

सिंघीजीके साथके मेरे संस्मरणोंकी यहां पर समाप्ति होती है। इस निबन्धमें मेरा उद्देश्य, उनके गौरवमय जीवनका संपूर्ण परिचय देना नहीं है। इसमें तो मेरा उद्देश सिर्फ उनके साथ, पिछले १४-१५ वर्षोंमें मैंने स्वयं उनकी उदारता, साहित्यानुरागिता, संस्कारिता, बुद्धिमत्ता, कार्यनिष्ठा, कर्तृत्वशक्ति, कलारसिकता, समाजहितैषिता, विद्याप्रियता—इत्यादि अनेकानेक सद्गुणोंका जो प्रत्यक्ष परिचय पाया, उसीका प्रसङ्गवर्णन करनेका है।

इस परिचयसे ज्ञात होगा कि बाबू बहादुरसिंहजी सिंघी एक महान् व्यक्तित्ववाले पुरुष थे। उनका जैसा उत्तम शरीर-सौंदर्य था वैसा ही उदार हृदय-सौंदर्य था। आकृति और प्रकृतिसे वे एक राजाके समान तेजस्वी पुरुष थे। मुझे कलकत्तेमें एक विद्वान् मित्रने एक दफह कहा था कि—'सिंघीजीको जन्म किसी राजघरानेमें लेना था, परन्तु, पूर्वजन्ममें तपस्यामें कुछ न्यूनता रह जानेसे अथवा किसी प्रकार कुछ योगभ्रष्ट हो जानेसे, उनको इस प्रकार एक सामान्य वैश्यके कुलमें जन्म लेना पडा है।' उनका रहन-सहन, बोल-चाल, खान-पान, दान-मान आदि सभी बातें राजाकीसी थीं। उनकी प्रकृतिमें वैश्यवृत्तिका प्रायः अभाव था।

यद्यपि सन्मान उनको प्रिय था, लेकिन उसको प्राप्त करनेके लिये उन्होंने चलाकर कभी कोई प्रयत्न नहीं किया। उनका स्वभाव एकान्तप्रिय था इसलिये वे अपने आप किसी सभा, समाज या समूहमें हिलने-मिलनेकी प्रवृत्ति करना ज्यादह पसन्द नहीं करते। कोई खींच कर उनको ले जानेका प्रयत्न करता तो वे सरल भावसे चले जाते। परंतु जिसके साथ उनका दिल मिल जाता उसके साथ वे संपूर्ण एकरस हो जाते थे।

उनकी बौद्धिक और संयोजक शक्ति बडे उत्कृष्ट दरज्जेकी थी। उन्होंने अपने अकेले दिमाग और परिश्रमसे अपनी जमींदारी और कोलियारीके कारोबारको ऐसी उत्तम स्थितिमें पहुंचाया कि जिसको जान कर हरकोई चकित होता। उनकी व्यापारिक प्रामाणिकता ऐसी प्रतिष्ठित थी कि इंग्लेंडकी मर्केंटाईल बेंकके हिन्दुस्थान विभागके डायरेक्टरोंकी बॉर्डने, उनको अपना एक डायरेक्टर बननेके लिये प्रार्थना की थी। किसी भी हिंदुस्थानी व्यापारीको आज तक यह सम्मान नहीं मिला था। देशके अन्यान्य प्रसिद्ध धनवानोंकी तरह, यदि उनके दिलमें भी यह बात आती, कि वे इधर-उधर हाथ मार कर, अपने पैर फैलावें और कंपनियों आदिके डायरेक्टरादि बन कर अपना नाम कमावें; अथवा कोन्सीलों आदिकी उम्मीदवारीमें खडे रह कर, रुपया लुटा कर, राजकीय मैदानमें कदम बढावें; तो उनके लिये सब जगह बहुत बडा स्थान तैयार होता और देशके वे एक बडे अग्रगण्य व्यापारी एवं सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ पुरुषकी प्रतिष्ठा प्राप्त करते।

यद्यपि बाहरसे वे बहुत बडे लक्ष्मीप्रिय लगते थे तथापि अन्तरसे वे बहुत ही अधिक सरस्वतीभक्त थे। यही एक विशिष्ट कारण था कि जिससे मेरा उनके साथ इतना घनिष्ठ स्नेहसम्बन्ध और साहित्यिक कार्यसम्बन्ध स्थापित हुआ।

मैंने उनसे अनेकगुणा अधिक द्रव्य दान करनेवाले धनी-व्यापारी देखे-सुने हैं परन्तु दानमें जो विवेक उनका देखा वैसा अन्य किसीका मेरे जाननेमें नहीं आया। जिस किसी संस्था या व्यक्तिको उन्होंने दान दिया उसमें उनका विवेक-विचार सदा काम करता रहा। प्रसङ्ग और आवश्यकताको लक्ष्य कर उन्होंने हजारों-लाखों खर्च किये परन्तु अनावश्यक या अप्रासंगिक रूपमें उन्होंने एक पैसा भी जाने देना कभी पसन्द नहीं किया। जहां, जिस समय, जैसा विवेक बताना चाहिये उसमें वे कभी उपेक्षा नहीं करते। उनका जीवन ऐसे बीसों उदाहरणोंसे भरा हुआ है और जिनमेंसे अनेकोंकी मुझे प्रत्यक्ष जानकारी है लेकिन उनके उल्लेखकी यहां जगह नहीं है।

पिछले वर्ष बंगालमें जो भयंकर अन्नकी महंगी फैली और उनके जन्मस्थान अजीमगंज-मुर्शिदाबाद आदिमें बिचारे गरीबोंकी जो प्राणहारक दुर्दशा होनी शुरू हुई, उसे देख कर उनका दिल कंपित हो गया और अपनी शक्तिभर उन्होंने कंगालोंको मुफ्त और गरीबोंको अल्प मूल्यमें धान्य वितरण करनेका प्रबन्ध, स्वयं अपने मनुष्यों द्वारा किया, जिसमें कोई ४ लाख रूपये उन्होंने खर्च खाते मांड दिये। परन्तु औरोंकी तरह न उन्होंने किसी फण्ड-मण्डलका आश्रय लिया लिवाया और न अखबारोंमें उसके आंकडे छपवा कर अपने नामका बाजा बजवाया।

धर्म, समाज, साहित्य और देशके कार्यमें उन्होंने लाखों ही रूपये अपने जीवनमें खर्च किये परन्तु उसका उन्होंने कोई हिसाब नहीं रखा। मित्रों, कुटुम्बी जनों, सगों और आश्रितोंको भी उन्होंने बहुत कुछ द्रव्य दिया, परन्तु उसको कभी उन्होंने प्रसिद्धिके रूपमें प्रकट नहीं किया। प्राचीन कलात्मक एवं इतिहासविषयक सामग्रीका संग्रह करनेमें उन्होंने सबसे अधिक द्रव्यव्यय किया लेकिन उसको भी, अपना गौरव बतानेकी दृष्टिसे, उन्होंने कभी जाहिरमें रखना पसन्द नहीं किया।

उनका जीवन सब तरहसे संयत था। ४४ – ४५ वर्ष जैसी साधारण उम्रमें उनकी धर्मपत्नीका स्वर्गवास हो गया परन्तु उन्होंने फिरसे विवाह सम्बन्ध करनेका किंचित् भी विचार नहीं किया। योगमार्गकी तरफ उनकी अच्छी श्रद्धा और कुछ प्रवृत्ति भी थी। कुछ ध्यान और जापादि भी नियमित करते रहते थे। इतने बडे धनवान् होने पर भी उन्हें किसी वस्तुका व्यसन नहीं था। व्यसन था तो केवल साहित्यावलोकनका और कलात्मक-वस्तुसंग्रहका। स्थूलबुद्धि और संस्कारशून्य मनुष्यकी संगति उनको बिलकुल रुचिकर नहीं होती थी। विद्वानोंका सहवास उनको सदैव प्रिय लगता था। कलकत्ता युनिवर्सिटी, रॉयल एसियाटिक सोसायटी, बंगीय साहित्य परिषद् तथा कलकत्ता रीसर्च इन्स्टीट्युट आदि संस्थाओंके प्रमुख संचालक और साहित्यिक कार्यकर्त्ता आदि विद्वानोंसे उनका घनिष्ठ परिचय और खास मेलमिलाप था। शायद कलकत्ताके कुछ थोडेसे ही धनपति उनको ठीक जानते होंगे, लेकिन विद्यापति सभी बडे विद्वान् उनको बहुत अच्छी तरह जानते थे।

इसी विशिष्ट विद्यानुरागिताके कारण उनको 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' का इतना अधिक आकर्षण था और इस 'ग्रन्थमाला' को उन्होंने अपने जीवनका एक विशेष प्रियतर कार्य मान लिया था। उनके ऐसे ज्ञानप्रिय आत्माके उत्साहके वश हो कर ही मैंने भी इस ग्रन्थमालाको अपना जीवनशेष कार्य बना लिया और इसकी प्रगतिमें अपनी सर्व शक्ति समर्पित कर देनेका साध्य स्थिर कर लिया। मेरा स्वास्थ्य, मुझे इस कार्यसे मुक्त होनेके लिये, वारंवार भयसूचक घंटी बजाता रहता है और वह प्रायः अब आखिरी नोटीश देनेकी दशाके भी नजदीक पहुंच रहा है, तब भी मेरा मन सिंघीजीके उत्साहको लक्ष्यमें रख कर, इससे निवृत्त होनेको तत्पर नहीं हो रहा है।

यद्यपि, ग्रन्थमालामें जल्दी जल्दी जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित किये जा सकें उतने प्रकाशित होते देखनेकी उनकी बडी उत्सुकता और उत्कंठा रहती थी; परन्तु साथमें, मेरा कृश शरीर, अत्यल्प आहार और बहुत अधिक परिश्रम देख कर, वे मुझे हमेशां उसके लिये रोकते रहते थे। मैं खुद ऐसा श्रम करूं उसकी अपेक्षा इस काममें अच्छे सहायक हो सके वैसे सहकारी तैयार करनेका उनका आग्रह रहता था और उसके लिये वे यथेच्छ खर्च करनेको तत्पर थे। उनका खयाल था कि मेरा ऐसा यह दुर्बल देह कितने दिन तक चल सकता है। इससे ग्रन्थमालाका कार्य मेरे पीछे भी ठीक चलता रहे वैसी व्यवस्था करने-करानेकी मुझसे आशा रखते थे। मैं, अपने पीछे इस कामको ठीक तरहसे चलाता रहे ऐसा कोई योग्य उत्तराधिकारी विद्वान् रख जाऊं, इसके लिये वे मुझसे सदा आग्रह करते रहते थे। परन्तु विधिका विधान उससे विपरीत निकला। मैंने अभी तो उनकी उस आशाको सफल बनानेका कुछ प्रयत्न शुरू ही किया था, कि वे मुझे यों ही बीचमें छोड कर उस धामको चले गये जहांसे फिर कोई पीछा नहीं आता और मैं यहां बैठा हुआ उनके पुण्यस्मरणोंको, इस तरह लेखबद्ध करनेका, आज यह श्राद्ध कर्म कर रहा हूं।

जिस परम पूजनीया माताकी सेवामें सदा हाजर रहनेकी उनके मनमें दृढ ग्रन्थि बंधी हुई थी और जिसकी जीवनशेष क्रिया अपने हाथोंसे करके फिर यथेच्छ परिभ्रमण करनेकी एवं स्थाननिर्मुक्त होकर जहां दिल चाहा वहां निवास करनेकी, परम

अभिलाषा कर रखी थी – उस व्याधिग्रस्त, जराजीर्ण वृद्ध माताके परम वात्सल्य भावकी एवं महाविलापकी भी कोई कल्पना न कर, निर्मम भावसे चल बसे। वह माता जो इस पुत्रवियोगके असह्य भारसे भग्नहृदया होकर चार महिने पीछे अपने पुत्रकी संभाल लेनेको स्वयं भी परमधामके लिये प्रस्थान कर गई।

अब तो अन्तमें, उस धामके अधिष्ठाता परम पुरुष और परम शक्तिरूप जगन्माता - पिता इन परलोकवासी आत्माओंको परम शान्ति प्रदान करें यही मेरी परम अभिलाषा है।

*

सिंघीजीकी सत्संतति और उनके सत्कार्य

सिंघीजी पुण्यवान् पुरुष थे। उनके जन्म लेने बाद ही उनके पिताजीका व्यवसाय बढा और वे एक छोटेसे व्यापारीके रूपमेंसे बढ कर क्रोडपति होनेकी प्रसिद्धि प्राप्त कर सके। उनके कुटुंब और सगे संबंधीयोंका परिवार अच्छा समृद्ध और सुविस्तृत हैं। वे अपने पीछे अत्यन्त सुयोग्य और सर्वकार्यक्षम तीन पुत्र तथा छोटे बडे पांच पौत्र और तीन पौत्रियां छोड गये हैं। उनके पुत्र, अपने पुण्यश्लोक पिताके सर्वथा अनुरूप और आदर्शके पथगामी हैं। संस्कार, सदाचार, शिक्षण और सत्संगति आदि सभी बातोंमें ये अपने पिताका अनुकरण करनेवाले हैं। सिंघीजीके संकल्पित और स्थापित कामोंको तद्वत् चालू रखनेकी और उसमें यथायोग्य वृद्धि करनेकी भी इनकी पूरी सदिच्छा है।

श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजीने अपने पिताकी पुण्यस्मृतिके निमित्त, मेरी प्रेरणासे, भारतीय विद्या भवनको ५० हजार रूपयोंका उदार दान दे कर, और उसके द्वारा उक्त नाहार लाईब्रेरीको खरीद कर, भवनको एक अमूल्य निधिके रूपमें भेंट की और इस प्रकार अपने स्वर्गस्थ पिताकी उस अप्रकट शुभकामनाको, जिसका कि इनको बिल्कुल पता ही नहीं था, परिपूर्ण किया।

इसी तरह श्रीमान् नरेन्द्रसिंहजीने अपने पिताके पुण्यार्थ कलकत्तेके जैन भवनको ३०–३५ हजारका दान दे कर तथा सराक जातिकी उन्नतिके निमित्त, पिताजीका चालू किया हुआ सहायताके कार्यका भार उठाकर, अपनी उदारवृत्तिका खाता शुरू किया है। सिंघीजीके स्वर्गवासके बाद इन तीनों भाईयोंने मिलकर कोई ५०–६० हजार रूपये दान-पुण्यमें खर्च किये और उसी तरह, अपनी दादीमां अर्थात् सिंघीजीकी पूजनीया माताका जब स्वर्गवास (नवंबर, १९४४) हो गया तो उनके पीछे भी इन बन्धुओंने गत जनवरीमें कोई इतने ही हजार रूपये पुण्यार्थ व्यय किये।

सिंघीजीकी स्मृतिको अमर करनेवाला जो सबसे बडा कार्य – जिस कार्यको सिंघीजीने अपने जीवनका परमप्रिय कार्य माना था वह – सिंघी जैन ग्रन्थमालाका प्रकाशन उसी तरह चालू रखनेका श्रीराजेन्द्रसिंहजी तथा श्रीनरेन्द्रसिंहजीने उदात्त भावसे मेरे सम्मुख स्वीकृत किया है। इसके अतिरिक्त सिंघीजीका और भी कोई विशिष्ट प्रकारका सार्वजनिक स्मारक बनाया जाय इसकी भावना ये सिंघी बन्धु कर रहे हैं।

परमात्माकी कृपासे इनकी भावना सफल हों और ये दिन प्रतिदिन ऐसे सत्कार्योंसे अपने स्वर्गवासी पिताकी प्रतिष्ठाको सवाई बढा कर 'सवाई सिंघी'का पद प्राप्त करें, यही हमारी आन्तरिक मनःकामना है। तथास्तु।

*

अनुपूर्ति - सिंघीजीकी लिखी हुई 'एक योजना'

मैंने अपने स्मरणोंमें, पृ० ८२ पर, सिंघीजीने मुझे अपनी आखिरी मुलाकातमें जिस 'एक योजना' को देख जानेके लिये देनेका जिक्र किया है, वह योजना यहां पर दी जाती है। यह योजना संपूर्ण सिंघीजीके अपने हाथकी लिखी हुई है। इसको मैंने उस समय तो यों ही देख कर वापस कर दी थी। क्यों कि उसके बाद, उनसे इस बारेमें बातचीत करने जैसी परिस्थिति ही नहीं रही। उनके स्वर्गवासके पश्चात्, जब मैं पिछले सप्टेंबरमें कलकत्ता गया तब उनके कागजातोंमें यह योजना मिली तो उनके सुपुत्रोंने मुझे इसका उपयोग, उनके पुण्यस्मरणोंमें करनेके लिये दी।

यह योजना सिंघीजीके ज्ञानप्रिय हृदयकी एक विशेष भावना प्रकट करती है। उन्होंने जिस प्रकार ग्रन्थोंके उद्धारके लिये 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'की स्थापना की, उसी प्रकार जैन संस्कृति और जैन साहित्यके विषयमें प्रावीण्य संपादन करनेवाले कुछ विद्वानोंको तैयार करनेकी भी उनकी उत्कृष्ट मनशा थी और इस दृष्टिसे वे कई अभ्यासियोंको स्कॉलर्शिप वगैरहकी मदद सदैव दिया करते थे। परन्तु बनारसमें पण्डितजीके रहनेसे उनके पास अनेक ऐसे विद्यार्थी आते रहते थे जो इस प्रकारकी नियमित स्कॉलर्शिप और छात्रवृत्तिके इच्छुक और अधिकारी दृष्टिगोचर होते थे। ऐसे योग्य छात्रोंको आर्थिक उत्तेजन दे कर, उनको अपने अध्ययनमें विशिष्ट प्रकारकी सफलता प्राप्त करनेमें उत्साहित करना चाहिये जिससे भविष्यमें हमको - समाजको अच्छे विद्वानोंकी प्राप्ति सुलभ हो - इस प्रकारका परामर्श सिंघीजीको पंडितजी वारंवार दिया करते थे। इधर 'भारतीय विद्या भवन'में भी मेरे पास पोष्ट ग्रेज्युएट विभागमें और संस्कृत विभागमें उच्च अध्ययनाभिलाषी विद्यार्थी आने लगे और जिनको भवनने अच्छी योग्य छात्रवृत्तियां देनेका उपक्रम चालू किया, तब मैंने भी सिंघीजीसे कुछ ऐसे छात्रोंको उनकी ओरसे नियमित और व्यवस्थित छात्रवृत्तियां दी जानेकी प्रेरणा की। इसके परिणाममें उन्होंने अपनी यह 'एक योजना' तैयार की थी जिसको कार्यान्वित करनेके पूर्व ही वे दिवंगत हो गये और यह योजना यों ही कागज पर लिखी पडी रही!

इस योजनाका उद्देश बतला रहा है कि सिंघीजी एक ऐसा ट्रस्ट बनाना चाहते थे जिसकी आयमेंसे उनकी इस प्रस्तावित योजनाका ध्येय सफल होता रहे। यद्यपि उनका स्वर्गवास हो गया है और वे अब इस योजनाकी सफलता देखनेके लिये पार्थिव शरीरसे हमारे बीचमें विद्यमान नहीं है, तथापि उनका पुण्यवान् आत्मा परलोकके पवित्र धाममें स्थित हो कर अपनी आन्तरिक दृष्टिसे हमारे कार्योंका अवलोकन अवश्य कर रहा होगा। उनके सत्पुत्र अपने पिताकी इस अन्तिम योजनाको कार्यान्वित करनेका संपूर्ण सामर्थ्य रखते हैं और मैं आशा रखता हूं कि वे जरूर इसे सफल करेंगे।

मुझे यह लिखते हुए हर्ष होता है कि - उनके चिरंजीवोंने भारतीय विद्या भवनान्तर्गत 'सिंघी जैनशास्त्रशिक्षा पीठ' के तत्त्वावधानमें जैन साहित्य और संस्कृति विषयक उच्च अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंके उत्तेजन निमित्त, मासिक १०० रूपये स्कॉलर्शिप देना निश्चित किया है।

यही यथार्थ पितृतर्पण है।

*

३.१२.

एक योजना

प्रास्ताविक—मैंने अपने आरम्भिक जीवनमें ही अपने पुण्यश्लोक स्वर्गवासी पितृदेवसे जैन धर्म और जैन तत्त्वज्ञानके विषयमें कुछ शिक्षा पाई थी, जिससे मेरी अभिरुचि जैन दर्शन और जैन साहित्यके प्रति प्रथमसे ही रही है। उसीके फल स्वरूप तथा स्वर्गीय पूज्य पितृदेवकी पुण्य स्मृतिमें "श्री सिंघी जैन ग्रन्थमाला" की स्थापना हुई है, जो साहित्य रसिक इतिहास वेत्ता मुनिजी श्री जिनविजयजीके सुयोग्य प्रधान सम्पादकत्वमें करीब बारह वर्षसे प्रकाशित हो रही है। जिसमें जैन-साहित्य-पारावारसे उद्धृत साहित्य, इतिहास और तत्त्वज्ञान आदि विषयके प्रौढ, अपूर्व तथा कई सर्वथा अज्ञात ग्रन्थरत्न आधुनिक पद्धतिके अनुसार संशोधित-सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुके हैं; और इसी स्वल्पकालके अन्दर ही इन विषयोंके प्राच्य और प्रतीच्य विशिष्ट विद्वानों की प्रशंसा और सौहार्दपूर्ण दृष्टि भी आकर्षित कर चुके हैं। वर्तमानमें वैसे ही उच्चकोटिके कुछ ग्रन्थ छप रहे हैं और कुछ ग्रन्थ छपनेके लिये तैयार हो रहे हैं। आशा है कि अबसे यह कार्य और भी विस्तार और प्रगतिपूर्वक चलेगा।

शिल्प, स्थापत्य, इतिहास और पुरातत्त्वसे संबंध रखनेवाली अन्य चीजोंका शौख मुझे छोटी उम्रसे ही रहा, जो बौद्धिक विकाशके साथ साथ क्रमशः विशेष वृद्धिंगत हुआ। उसके फलस्वरूप मैंने अपनी शक्तिभर प्राचीन और मूल्यवान् अनेक वस्तुओंका संग्रह किया है, जो पुरातत्त्व, इतिहास और कलाकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। परन्तु इन वस्तुओंका प्रकृत उपयोग और वास्तविक मूल्यांकन उन उन विषयोंके सुयोग्य विद्वानोंके द्वारा ही हो सकता है। मेरे निजके अनुभवकी वात है कि इतने बाह्य साधनोंकी सुलभता होते हुए भी इन विषयोंकी चर्चा, खोज और अध्ययन करके इससे लाभ उठाने वाले सुयोग्य विद्वानोंका अपने समाजमें एकान्त अभाव है और यह अभाव मुझे बहुत ही अखर रहा है।

"श्री सिंघी जैन ग्रन्थमाला" में प्रकाशनके उपयोगी ग्रन्थोंके संकलन, संशोधन और सम्पादनके कार्यमें सहकार और साहाय्य देनेवाले उपयुक्त विद्वानोंका अभाव, उस कार्यमें अगाध परिश्रम करनेवाले उसके प्रधान सम्पादक मुनि श्री जिनविजयजीको इतना खटकता है और वैसे व्यक्तियोंको जुटानेमे पंडितजी और मुनिजीको इतना बोझ और परिश्रम उठाना पडता है कि कभी कभी उनोंके मनमें भी भविष्यकी प्रगतिके लिये निराशाकी झलक दिखाई देने लग जाती है।

करीब सो वर्ष हुए 'इस' देशमें भारतीय सभी विद्याओंका अध्ययन और अध्यापन एक नई दृष्टिसे होने लगा है, जिसके पुरस्कर्ता मुख्यतया विदेशी विद्वान ही रहे। इसके फलस्वरूप यूरोप और अमेरिकाकी यूनिवर्सिटिओं, कोलेजों और खानगी संस्थाओंकी तरह भारतमें सरकारी, अर्धसरकारी, राष्ट्रीय, खानगी अनेक संस्थाओंमें, अनेक प्रकारकी जुदी जुदी भारतीय विद्याओंको पढने पढानेवालोंका तथा उन पर काम करनेवालोंका एक सुयोग्य वर्ग तैयार हुआ है जो इस दिशामें किमती काम कर रहा है।

भारतीय विद्याओंमें जैन परम्पराका एक विशेष स्थान है। उसके पास अनेक प्रकारकी बहुमूल्य पुरातन सम्पत्ति है जिसका अध्ययन अध्यापन पाश्चात्य देशोंकी तरह इस देशमें भी मुख्यतया जैनेतर वर्ग ही कर रहा है।

जैन परम्परामें सुयोग्य और बुद्धिमान व्यक्तियोंकी कमी नहीं है परन्तु इस क्षेत्रमें उनका लक्ष्य उतना नहीं गया है जितना कि जाना आवश्यक हो पड़ा है, और इसी कारण, जैन-समाज पुरानी और नई विद्याओंके बारेमें विशेष परावलम्बी बन गया है। वह दूसरोंकी विद्यासंबंधी तपस्याका कुछ मूल्य तो आंक सकता है परन्तु खेदका विषय है कि खुद उतनी तपस्या करनेमें रस नहीं लेता। इससे जैन समाजका विद्याविषयक अंग, जो भूल-कालमें दूसरे दर्शनोंके मुकाबिलेमें विशेष बलवान गिना जाता था, अब निर्बल बन चुका है, या बन रहा है। और जो भारतके समान रूपसे विकाशकी दृष्टिसे भी अखरनेवाला है। यह कमी किसी अंशमें तभी दूर हुई मानी जा सकती है जब कि विद्याके उच्च सभी केन्द्रोंमें थोड़े बहुत सुयोग्य जैन भी प्रतिष्ठित हों, और भिन्न भिन्न विषयमें गौरवपूर्ण काम करते हों। यह वस्तु तभी संभव है जब कि इस दिशामें अनेक होनहार युवकोंका मनो-योग आकर्षित हो। इसके वास्ते सबसे पहली जरूरत है छात्रवृत्तिओंके द्वारा विद्यार्थीओंको उत्तेजन देनेकी। इस विचारसे मैं कुछ कायमी छात्रवृत्तियोंके निभावके निमित्त एक **स्थायी कोष** स्थापित करता हूं, जिसके व्याज या आमदनीसे नियमित रूपसे छात्रवृत्तियां प्रदान की जाया करें। आशा करता हूं कि मेरे उत्तराधिकारीयोंके द्वारा इस कोषमें यथा-संभव वृद्धि ही होती रहेगी।

जैन समाजके श्वेताम्बर–दिगम्बर मुख्य दो फिरकोंमेंसे दिगम्बर परंपरामें तो अनेक गृहस्थ पंडित और कुछ प्रोफेसर भी हैं। उस समाजमें अनेक योग्य विद्या-संस्थायें भी हैं; और गृहस्थ छात्रोंको उत्तेजन देनेवाले खास खास उदारचेता महानुभाव भी हैं। परन्तु श्वेताम्बर फिरकेमें, खास कर उच्च कोटिके गृहस्थ विद्वानोंको तैयार करनेकी दृष्टिसे, न तो कोई संस्था है न कोई ऐसा कायमी उत्तेजन ही है। इसलिये इस अंगकी पूर्तिके निमित्त मेरी छात्रवृत्तिओंका क्षेत्र मैं परिमित ही रखता हूँ। तेरा पंथीओंको छोड कर मूर्तिपूजक और स्थानकवासी दोनों ही श्वेताम्बर हैं और दोनों ही में विशिष्ट गृहस्थ विद्वानोंकी कमी करीब करीब एकसी है। इसलिये मेरी छात्रवृत्तियोंका क्षेत्र उक्त दोनों फिरके रहेंगे।

कोषकी पूरी योजना नीचे लिखे अनुसार है

नाम–इस कोषका संक्षिप्त नाम "श्री सिंघी जैन कोष" रहेगा। उसका पूरा नाम "बाबू बहादुरसिंहजी सिंघी जैन कोष" रहेगा।

उद्देश्य–इस कोषके मुख्य दो उद्देश्य हैं।

१ अधिकारी विद्यार्थीयोंको निर्दिष्ट विषयके अध्ययनके लिये छात्रवृत्ति देना।

२ सुयोग्य लेखकोंकी लिखी जैनविषयक पुस्तकोंके लिये पुरस्कार देना, और सुयोग्य विद्वानोंके द्वारा शिक्षा संस्थामें निर्दिष्ट विषय पर व्याख्यान दिला कर उसे लेखबद्ध कराना और प्रकट करना।

छात्रवृत्तिके अधिकारी–इस कोषमेंसे दी जानेवाली छात्रवृत्तिओंके अधिकारी नीचे लिखी योग्यतावाले और नीचे लिखे अनुसार अध्ययन करनेवाले होंगे।

(१) जो संस्कृतके साथ मेट्रीक्युलेशन परीक्षा पास हों और आगे प्राच्यविद्या विभागकी किसी परीक्षाके साथ B. A. का अध्ययन करना चाहते हों।

(२) जो संस्कृतके साथ B. A. पास हों और इतिहास, तत्त्वज्ञान या संस्कृत ले कर M. A. होना चाहते हों।

(३) जो प्राच्य विद्या विभागमें अध्ययन करना चाहते हों।

(४) जो उपरोक्त किसी विषयमें M. A. हो जानेके बाद आगे जैन परम्परासे सम्बद्ध किसी विषय पर डॉक्टरेट करना चाहते हों।

(५) जो प्राच्य विद्या विभागमें किसी भी विषयमें आचार्य परीक्षा देनेके बाद जैन परम्परासे सम्बद्ध किसी विषय पर संशोधन (रिसर्च) करना चाहते हों।

छात्रवृत्तिकी रकम-

(क) उपरोक्त नं. १ के अधिकारीको इन्टर तक मासिक रु० १५) और B. A. तक मासिक रु० २०) मिलेगा।

(ख) उपरोक्त नं. २ के अधिकारीको मासिक रु० ३०) मिलेगा।

(ग) उपरोक्त नं. ३ वाले अधिकारीको प्रवेशिका या मध्यमा तक मासिक रु० २०) तथा शास्त्री या तीर्थ तक मासिक रु० २५) और आचार्य तक मासिक रु० ३०) मिलेगा।

(घ) उपरोक्त नं. ४ और नं. ५ के अधिकारीको मासिक रु० ५०) दो वर्ष तक मिलेगा।

अध्ययनका स्थान- (१) प्राच्य विद्या विभागके लिये बनारस हिन्दु युनिवर्सिटी, गवर्नमेन्ट संस्कृत कोलेज-बनारस, कलकत्ता संस्कृत कोलेज; ये स्थान नियत है. (२) B. A. और M. A. के लिये बनारस हिन्दु यूनिवर्सिटी, कलकत्ता युनिवर्सिटी और बॉम्बे युनिवर्सिटी है. (३) संशोधन (रिसर्च) के लिए बनारस हिन्दु युनिवार्सिटी, कलकत्ता युनिवार्सिटी, भारतीय विद्याभवन-बम्बई, तथा गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी-अहमदाबाद है।

निबन्धके लिये पुरस्कार- जैन तत्त्वज्ञान, जैन साहित्य, जैन मूर्तिकला, जैन चित्रकला, जैन स्थापत्य, जैन इतिहास इत्यादि जैन परम्परासे सम्बन्ध रखनेवाली किसी भी विषय पर लिखी हुई मौलिक पुस्तक, यदि नियुक्त समितिके द्वारा पुरस्कारपात्र साबित हो, तो उसके वास्ते वार्षिक रु० ५००) देना। गुजराती और हिन्दीमें छपी पुस्तककी पसन्दगी और पारितोषिक वितरण भारतीय विद्याभवन-बम्बईके जिम्मे रहेगा। अंग्रेजी और बंगालीमें छपी हुई पुस्तकोंकी पसन्दगी और पारितोषिक वितरणके लिये कलकत्ता युनिवर्सिटीको उतनी ही रकम वार्षिक दी जायगी।

व्याख्यान- तीन वर्षमें रु० १०००) की रकम किसी युनिवर्सिटीको देना जो किसी भी जैन विषय पर विशिष्ट वक्ताको आमन्त्रित करके चार लिखित व्याख्यान करावे, जिसका नाम "सिंघी व्याख्यान" रहेगा, वे व्याख्यान "श्री सिंघी जैन ग्रन्थमाला"में छपेंगे।

पुरस्कारके लिये पसन्द की जानेवाली पुस्तक किसी भी जैन जैनेतर लेखककी हो सकती है। व्याख्यानके लिये आमन्त्रणका अधिकारी भी कोई जैन जैनेतर सुयोग्य व्यक्ति हो सकता है।

***

परिशिष्ट १

[श्री मुन्शीजीने बाबू श्री बहादुर सिंहजी सिंघीको लिखा हुआ ऑफिसियल पत्र]

26 Ridge Road,

Bombay, 14th Aug. 1942.

MY DEAR SINGHIJI,

Shri Muniji told me about the conversation that you had with him as regards the Singhi Jain Series as also your intended donation to the Bharatiya Vidya Bhavan. I am deeply obliged to you for the kindly interest that you have taken in this matter.

For the last three years and a half, thanks to friends, like you, we have been able to build up a good Indological Institution and a fine building which unfortunately for the moment is with the Military.

Muniji also told me that you are willing to give by way of donation to the Bhavan—the copyright in all the works published so far; that you are also willing to pay the expenses incidental to the preparation and publication of further works in this Series which are being published under the editorship of Muniji. I understand that you were good enough to consider the question of donating Rs. 10,000/- to the Bharatiya Vidya Bhavan for a hall in the Bhavan to be named after you.

In view of your generous intentions I think I would get the Bharatiya Vidya Bhavan to do the following:—

If you give us the copyright of the works of the Singhi Jain Series and the Donation the Bhavan can:

(a) Name the Jain Shastra Shiksha Pith which the Bhavan is conducting a Shree Singhi Jain Gnyan Pith;

(b) The Bhavan will appoint Muni Jinavijayaji as the Head of the Department so long as he is willing to work and as such he would be the Editor of the Singhi Jain Series as he has been hithertobefore;

(c) That whatever monies you donate for the Gnyan Pith would be used exclusively for the purpose of that Department and the publication of the Jain Series.

(d) That whatever books connected with the Jain Shastra published by the Bhavan also will be included in this Series;

(e) That the sale proceeds of the books will also be credited to the account of this Department and will be utilised for maintaining it and publishing further works;

(f) Even if a grant is not received from you for the annual maintenance of this department and the publication of works the Bhavan undertakes to continue the Series from the surplus sale proceeds of the Series and maintain the Singhi Gnyan Pith as part of the Bhavan;

(g) That a hall will be named Shree Bahadur Singhji Singhi Hall.

On hearing from you on this we will immediately take steps to get this approved by the Committee.

I agree with Muniji and yourself that now that we three are collaborating we should strenuously increase our work for the coming five years.

Yours sincerely

K. M. MUNSHI.

परिशिष्ट २

[सिंघीजीके ऑफिसियल पत्र जो श्री मुन्शीजीको लिखे गये]

Azimganj,
24-9-42

My dear Munshiji,

I was in due receipt of your letter of the 14th ultimo.

I am thankful to you for your kindly suggesting to change the name of the Jain Shastra Shiksha Pith which is now being conducted by the Bharatiya Vidya Bhavan to that of the Shree Singhi Jaina Gnyan Pith, in view of my donation to the Bhavan—the copyright in all the works published so far in the Singhi Jain Series. But in the talk that I had with Muniji Shri Jina Vijayaji I had no idea of establishing any connection with the Jaina Shastra Shiksha Pith, and I am still of the same opinion. The Jain Shastra Shiksha Pith should continue its activities as heretofore without any interference or connection by or with me.

My only aim and object was to connect the work of the publication of the Singhi Jaina Series with the Vidya Bhavan, and for that purpose in view I propose the following terms, which I hope will be acceptable to the Executive Body of the Bharatiya Vidya Bhavan.

1 I shall give the copyright of the books published hereafter in the Singhi Jain Series, to the Bharatiya Vidya Bhavan.

2 Muniji Sri Jina Vijayaji to remain the Chief Editor of the Singhi Jain Series, as long as he is willing and able to work.

3 I shall pay the emoluments of Muniji as heretofore and as settled between him and me hereafter.

4 I shall pay the emoluments of other Sub-editor or Sub-editors and other employees as will be appointed according to the requirements and selection of the Chief Editor, Shri Muniji.

5 I shall pay all the costs of papers, printing charges, binding charges and other costs incidental to the preparation and publication of the Singhi Jain Series, the accounts of which will be passed by Muniji and will be submitted to me annually by the Vidya Bhavan.

6 The nett sale-proceeds of the books published in the Singhi Jain Series to be included and credited in the account of the said Series and to be utilized towards the publication of the said Series as above.

7 The Bharatiya Vidya Bhavan to remain hereafter as the publisher of the Singhi Jain Series and shall hand over to me 50 copies of each of the books published in the Series free of charge, and shall also distribute free of charge to the person or persons as directed by the Chief Editor.

8 The selection of the works to be published in the Singhi Jain Series is to be left entirely to the discretion of Muniji as its Chief Editor, who will do so in consultation with me.

9 Even if a grant or the expenses as mentioned above are not paid or borne by me in future, for the continuation and maintainance of the work of the publication of the books in the Singhi Jain Series, the Bharatiya Vidya Bhavan shall continue the editing and publishing of new works, or reprinting of the books already published in the Series, as directed by the Chief Editor, from the surplus sale-proceeds of the books of the Series published up to that period.

10 In case of the absence of the Chief Editor and the stoppage of a grant or the expenses from me, the selection of the works to be published in the Series from surplus sale-proceeds as provided above, is to be left to the discretion of a suitable person to be appointed by the Bharatiya Vidya Bhavan.

11 Any provision made at the present moment for future when Muniji and myself or any one of us shall not be in the land of the living, will be entirely a hypothetical one and therefore has been left out intentionally. New arrangements shall have to be made with my successor or successors and the Executive Body of the Bharatiya Vidya Bhavan, in case I do not make any permanent provision for the continuation of the publication of the Singhi Jain Series during my lifetime, and my successor or successors elect to continue to bear the expenses of such publication.

12 I shall donate Rs. 10,000/- (Ten thousand) in cash towards the expenses of constructing a Hall in the centre of the second floor of the Bharatiya Vidya Bhavan building, and the said hall to be designated after the name of the person to be suggested by me.

Yours sincerely,
BAHADUR SINGH SINGHI

Azimganj P. O. (Bengal)
5th January, 1943.

My dear Munshiji,

Adverting to my letter to you dated 24-9-42 to which I have not yet the pleasure of a reply, I wish to add the following terms and provisions in the matter of my donating to the Bharatiya Vidya Bhavan—the copyright of the books in the Singhi Jain Series, hitherto and to be published hereafter.

13 In case the Bharatiya Vidya Bhavan in future for any reason whatsoever indefinately stops or becomes unable to continue publication of books in Singhi Jain Series or in the event of the Bharatiya Vidya Bhavan ceasing to exist, which God may forbid, the copyright of all the books of the Singhi Jain Series published up to that time shall revert back to me or to my heirs and successors and all the books of the said series in stock or in possession of the Bharatiya Vidya Bhavan including in the press, if any, shall be made over to me or my heirs and successors.

With reference to your suggestion for changing the name of the Jain Shastra Shiksha Pith to Shree Singhi Jain Gnyan Pith, *vide* clause(a) of your letter dated 14-8-42. I have no objection to the same, provided I shall not have to bear or contribute any expenses for the post and nothing out of the sale proceeds of the books of the Singhi Jain Series is spent towards the upkeep of the post. I am however willing to pay the remuneration of Professor Gopani or any other incumbent of the post, if and so long as he will be engaged by Muni Shree Jina Vijayaji as his assistant in the publication work.

I hope that all the points are now clear and the matter may be placed before the Committee to have their formal sanction.

Yours sincerely,
Bahadur Singh Singhi.

स्वर्गस्थ श्रीसिंघीजीके कुछ संस्मरण।

*

[लेखक–जैन दर्शनशास्त्राचार्य, पण्डितप्रवर श्रीसुखलालजी संघवी]

स्व० बाबू बहादुरसिंहजी सिंघीके साथ मेरे परिचयका सूत्रपात ई० १९१८में हुआ। ई० १९४४ तकके इस लम्बे समयमें हम दोनों जुदे जुदे स्थानोंमें अनेक बार मिले; अनेक बार बहुत दिनों तक साथ भी रहे। समाज, धर्म, तत्त्वज्ञान, साहित्य, कला, इतिहास और पुरातत्त्व आदि अनेक विषयोंपर उनके साथ मेरी चर्चा-वार्ता भी हुई। कभी कभी, साथ प्रवास भी किया। साहित्य और समाजके उत्कर्षकी दृष्टिसे कई बार कार्यसाधक योजनाओंके बारेमें उनके साथ विचार करनेका भी काफी प्रसंग आया। इन सब प्रसंगोंमें मेरे मन पर सिंघीजीकी अनेक असाधारण विशेषताओंकी जो गहरी छाप पड़ी है, उसमेंसे कुछ विशेषताओंका निर्देश, यहाँ उनके प्रथम वार्षिकश्राद्धकी स्मरणाञ्जलीरूपसे करना चाहता हूँ।

बीजमेंसे वटवृक्ष

ई० १९४२के सितम्बरमें जब कि सिंघीजी अपने जन्मस्थान अजीमगंजमें थे, मैं वहां गया था। मैंने प्रश्न किया कि 'इस अजीमगंज जैसे नवाबी शहरमें और व्यापारी कुटुंब तथा संस्कारमें आपको पुरातत्त्व, कला, इतिहास आदिका शौख कैसे लगा?' उन्होंने जो उत्तर दिया उसमें मुझको एक छोटेसे बीजमेंसे बड़े बरगदकी कहानी दिखाई दी। वे अपने मातापिताके इकलौते पुत्र थे। उस समयकी हैसियतके अनुसार उन्हें उनके पिताजी बहुत मामूली हाथखर्ची देते थे। उनका बाहर बहुत जाना-आना पिता-माता पसंद कम करते थे। तो भी वे अपने मकानसे सटे हुए श्रीयुत पूर्णचन्द्र नाहर–जो उनके मोसेरे भाई होते थे–के मकानमें जाया-आया करते थे। नाहरजी पुरातत्त्वके शौखीन और तत्सम्बन्धी चीजोंके संग्राहक थे। सिंघीजीने नाहरजीके पास कुछ सिक्के, चित्र आदि देखे और उनसे कुछ पूछताछ भी की। नाहरजीके बड़े चावके साथ समझाने पर धीरे धीरे सिंघीजीके दिलमें पुरानी और कलामय चीजोंके संग्रहकी इच्छाका बीजवपन हुआ। फिर तो वे अपनी हाथखर्ची ऐसी चीजोंको खरीदने और जुटानेमें ही लगाने लगे। पिताजीसे खानगी वे अपनी माताजीसे भी थोड़े बहुत पैसे पाते थे। उसको भी उन्होंने इसी शौखकी तृप्तिमें खर्च

करना शुरू किया। कुछ सिक्के, कुछ चित्र आदि चीजें इकट्ठी हुईं। कभी उन्हें पिताजीने देखा तो वे भी प्रसन्न हुए और फिर तो कहा कि तुम्हें यदि ऐसा शौख है तो चलो मैं भी एक पुराना भण्डक दिखाता हूँ। उस भण्डकमेंसे सिंघीजीको पुरानी बहियाँ और एकाध यादी मिली। जिसमें जगत् सेठके खजानेकी अनेक चीजें दर्ज थीं। सिंघीजीकी खोज और संग्रहविषयक रसवृत्ति इतनी अधिक प्रदीप्त होती गई कि फिर तो उनका वह पेशा ही बन गया। व्यापार और कारोबारका काम बढ़ता गया। आगे उसका भार उनके कंधोंपर भी आया पर खोज और संग्रहकी वृत्ति घटनेके बजाय और भी बढ़ी। वे जहाँ रहते और जाते, जहाँ कहीं प्रवास करते, वहाँ सर्वत्र उनकी धून कला, पुरातत्त्व, इतिहास आदि विषयोंसे सम्बद्ध नाना प्रकारकी चीजोंको देखने, खरीदने और संग्रह करनेकी ही रहती थी। जिसकी प्रतीतिके लिये दो एक खास प्रसंगोंका उल्लेख करना ठीक होगा।

कलकत्तेमें कोई गृहस्थ रत्नकी मूर्तियाँ लेकर आया है जो मोर्गेज रखना चाहता है; ऐसी जानकारी एक बार बाबूजीको मिली। उधर उस गृहस्थकी बातचीत स्वर्गवासी दरभंगाके महाराजासे चल रही थी। सिंघीजीको मालूम होते ही वे उस गृहस्थके पास होटलमें पहुँचे तो दरभंगा महाराज बाहर निकल रहे थे। महाराजाकी व्याजकी शर्त कुछ सख्त थी। सिंघीजीने मौका देखकर जैसी उस गृहस्थने शर्त चाही तदनुसार स्वीकार करके वहीं एक लाखका चेक दे दिया और उन रत्नमूर्तिओंको ले आये। वह कीमती तो थीं ही पर साथ ही वह ऐतिहासिक दृष्टिसे बड़े महत्त्वकी थीं। इसलिये सिंघीजीने कुछ भी आनाकानी बिना किये उस गृहस्थकी बात मंजूर कर ली। ये मूर्तियाँ छत्रपति शिवाजी और उनके कुटुम्बकी पूज्य देवताएँ हैं जिन पर उस समयका लगा चन्दनका अंश अब भी मौजूद है।

ई० १९३२ में सिंघीजी गुजरानवाला जैन गुरुकुल पंजाबमें वार्षिकोत्सवमें प्रमुख होकर गये थे। मैं भी साथ था। उन्होंने सुना कि अमुक कसबेमें जो कि लाहोर से काफी दूर है, एक जैन गृहस्थके पास सुंदर जैन मणिमूर्ति है। वह मिल न सके तो आखिरको दर्शनकी दृष्टिसे वे बहुत श्रम लेकर वहाँ गये। उस गृहस्थने मूर्ति तो न बेची पर बड़े आदरसे सिंघीजीको मूर्तिका दर्शन कराया। वे आ कर मुझसे उस मूर्तिकी खूब तारीफ करने लगे और कहा कि

अगर वह बेचता तो दामकी दरकार न करके भी ले लेता । इसी धूनसे उन्होंने देहलीके बादशाही भण्डारकी कही जानेवाली अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक और सचित्र पुस्तकें खरीद कर अपने संग्रहमें रखी हैं जिनमेंसे कुछ बादशाह जहाँगीरकी हस्तलिखित और उनके प्रसिद्ध चितेरेके द्वारा चित्रित भी हैं । उनके संग्रहमें अनेक चीजें लखनऊ और मुर्शिदाबादके नवाबोंके भण्डारमेंसे भी आई हुई हैं जिनके वास्ते सिंघीजीको बहुत श्रम और खर्च करना पड़ा है । वे १९२६ ई० की गरमीमें जैन कॉन्फरेन्सके अधिवेशनपर बंबई आये थे । पर उनकी मुख्य प्रवृत्ति तो पुरानी चीजोंके संग्रहकी ओर ही थी । जुदा होते समय कुछ पैसेका प्रश्न आया तो वे कहने लगे कि अभी तो हमारे पास खर्ची कलकत्ते पहुँचने जितनी ही रह गई है । मैंने आश्चर्यसे पूछा कि 'आपकी जेब तो भरी रहती है फिर ऐसा क्यों ?' उन्होंने कहा 'हमारे व्यसनने खिस्सा खाली कराया ।' कितनी खरीद की ? इस प्रश्नके जवाबमें उन्होंने कहा कि 'करीब ४५००) रूपयेकी चीजें खरीद चुका हूँ । अब अधिक रहना हुआ तो पैसा मंगाना पड़ेगा ।' क्या क्या और कैसी चीजें मिलीं ? इसके जवाबमें उन्होंने सब ब्यौरेवार वर्णन किया तो मैंने कहा कि 'अमुक अमुक पोथी या चीज तो निकम्मी है ।' उन्होंने कहा कि 'उन चीजोंमें जो थोड़ी वस्तुएँ मुझे मिली हैं वे ही मेरी दृष्टिसे मूल्यवान् हैं' – ऐसी चीजोंके साथ थोडा कूड़ा कर्कट तो आ ही जाता है । वे १९४३ की अन्तिम यात्राके समय बंबई आये थे । तबीयत ठीक नहीं थी; पर मोटर लेकर वे अपने परिचित पुरानी चीजोंके व्यापारिओंके घर जाते थे । पुस्तक, चित्र, सिक्का कारीगरीके नमूने आदि जो कुछ नया-पुराना अच्छा मिला उसे परीक्षापूर्वक खरीद लेते । छोटी उम्रमें चित्तपर पड़े खोजके बीजने आर्थिक अभ्युदय और ज्ञानवृद्धिके साथ साथ इतना अधिक विकास साधा कि जिसे हम उनका असाधारण संग्रह देखकर एक वटवृक्ष कह सकते हैं ।

सिंघीजीका संग्रह सिक्कोंकी दृष्टिसे विश्वभर के ऐसे संग्रहोंमें शायद तीसरे नम्बर पर आता है । जिसमें जुदे जुदे सब समय के, सब धातुओं के सिक्के हैं । उनके संग्रहकी दूसरी चीजें भी वैसे ही महत्त्वकी हैं । कोई भी ऐतिहासिक या पुरातत्त्वविद् सिंघीजी के संग्रहको विना देखे अपनी कलकत्तेकी यात्राको पूर्ण नही मान सकता था ।

सिंघीजीकी शिक्षा

सिंघीजीका अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी, उर्दू और गुजराती भाषाका गहरा और शुद्ध परिचय देखकर मेरी उनकी पढ़ाईके बारेमें जिज्ञासा हुई। मैं नहीं ज़ानता था कि उन्होंने स्कूल-कोलेजकी तालीम कितनी ली है। मेरे प्रश्नके जवाबमें उन्होंने कहा कि 'मैंने तो हास्कूलकी तालीम भी पूरी नहीं की। मैं पढ़नेमें विशेष श्रम करता न था और ऐशआराम तथा खेल-कूदमें लगा रहता था। माता-पिताका अनुसरण करनेके लिये सबकभर कर लेता था, पर पढाईमें दत्तचित्त न था।' तो फिर आपका इतना ज्ञान कैसे बढ़ा? इसके जवाबमें उन्होंने अपना किस्सा सुनाया। वे बोले 'मेरे बड़े साले मुझसे पढ़ाईमें आगे रहते थे। एकबार मुझे चानक लगी कि मैं सालेसे भी पीछे रहूँ तो फिर बहनोईका बड़प्पन कैसे? इस चानकने मुझे इतना उत्तेजित किया कि फिर तो मेरा सारा ध्यान पढ़ाईमें लग गया। इसका फल यह आया कि मुझे अनेक विषय पढ़नेका शौख लगा, समझ भी बढ़ती गई और स्कूली पढ़ाईके अलावा अन्य विषयोंकी पुस्तकें भी पढ़ने लगा। और यह अध्यवसाय आज तक चालू है।'

धर्म और तत्त्वज्ञानकी शिक्षा

सिंघीजीके पिता जिन्हें हम बड़े बाबूजी कहते थे वे जैसे कारोबारमें निष्णात थे वैसे ही जैनधर्म और जैन परंपरासे सम्बन्ध रखनेवाली बातोंमें भी निष्णात थे। और साथमें जैसे धार्मिक और श्रद्धालु थे वैसे ही ज्ञानरसिक भी थे। वे खुद ही अपने घरमें परिवारको धर्म और तत्त्वकी शिक्षा देते रहे। इससे सारे परिवारमें धार्मिकता और जिज्ञासाका पूरा वातावरण आज तक रहता आया है। सिंघीजीने अपने पिताजीसे ही जैन धर्म और जैन तत्त्वज्ञानकी खास शिक्षा पाई थी। वे जैसे जैन आचारके मर्मोंको सीख चुके थे वैसे ही कर्मतत्त्व, जीवविचार, नवतत्त्व, नय-निक्षेप-अनेकान्त आदि तात्त्विक विषयोंको भी अधिकांश पिताजीसे सीख चुके थे। पर उनकी यह शिक्षा उम्रकी वृद्धिके साथ साथ बढ़ती गई और संप्रदायकी सीमाको लांघकर विस्तृत बनी। वे सिलोनी बौद्ध प्रचारक धर्मपाल अनगारिकके व्याख्यानोंको सुननेके लिये नियमित बौद्ध मन्दिरमें जाते। और भी कहीं कोई धर्म और तत्त्वज्ञान आदि विषयों पर बोलनेवाला सुप्रसिद्ध विद्वान् आया तो वे उसके व्याख्यान भी सुनते। इतना ही नहीं पर यथासंभव उस उस धर्म और तत्त्वज्ञानकी प्रमाणभूत पुस्तकें भी पढ़ते थे। समझ और

ग्रहणशक्ति जैसी उनकी तीव्र थी वैसी ही उनकी तर्कशक्ति भी तीव्र थी । इस-लिये हर एक बातको समझने और स्वीकारनेमें उनके मनमें 'क्यों और कैसे' ऐसे प्रश्न आते ही थे । मैंने अनेक बार देखा कि विना दलीलकी कोई भी बात माननेके लिए वे तैयार नहीं । फिर यह भी देखा कि सतर्क और युक्तियुक्त बात जंचनेपर उन्हें उसे माननेमें बिलकुल हिचकिचाहट भी नहीं होती थी । चाहे वह चालू सांप्रदायिक मान्यतासे विरुद्ध कितनी ही क्यों न हो । इस कारणसे उनका मानस बिलकुल असांप्रदायिक बन गया था । अत एव किसी अन्य संप्रदायके आचार या मन्तव्योंके साथ उनके मनमें सांप्रदायिक संघर्ष होते मैंने नहीं देखा । एक बार कहे कि 'दिगम्बर—श्वेताम्बरका मूर्तिस्वरूपकी मान्यताविषयक झगड़ा निपटाना सरल है । क्यों कि उभयमान्य अमुक अमुक प्रकारकी मूर्तिका निर्माण संभव है ।' एकबार तत्त्वज्ञानकी चर्चा चली जब कि एक बुद्धिशाली फिलोसो-फीके M. A. व्यक्ति भी उपस्थित थे । सिंघीजीने कहा कि 'जैन संमत केवल-ज्ञान अगर सर्वग्राही है तो ईश्वरको व्यापक और सर्वज्ञ माननेवाले दर्शनोंके नज-दीक जैन दर्शन इतना अधिक आ जाता है कि फिर तो विवाद मात्र शब्दका ही रह जाता है ।' उनकी यह बात सुनकर उस M. A. पास व्यक्तिने मुझसे कहा कि 'कहाँ व्यापारी मानस और कहाँ फिलॉसोफीका गूढ प्रश्न? ऐसा सुमेल शायद ही किसी इतने बडे जैन व्यापारीमें हो ।' तत्त्वज्ञानकी कितनी ही गहरी चर्चा क्यों न हो मैंने उनको उससे ऊबते कभी नहीं देखा, बल्कि कई बार तो वे बीचमें मार्मिक प्रश्न भी कर डालते । यहाँ उनकी शक्ति और रुचिका निदर्शक एक प्रसंग निर्दिष्ट करना पर्याप्त होगा । उन्हें नींदकी शिकायत थी । १९३९ का जून मास था । सिंघी सिरीजमें उस समय नई पुस्तक प्रमाणमी-मांसा प्रकाशित हुई थी । सबेरे मैंने पूछा कि 'रात कैसी बिती?' उन्होंने कहा कि 'मजे की ।' 'क्या आज नींद आई?' ऐसा जब मैंने प्रश्न किया तो उन्होंने कहा कि 'नींद तो क्या आती है? पर रातको मजेमें प्रमाणमीमांसाकी प्रस्तावना पढ़ गया ।' मैंने कहा कि 'वह तो बहुत जटिल और कंटाला लानेवाली है ।' तो वे कहने लगे कि 'मैं तो एक ही आसनसे पूरी प्रस्तावना पढ़ गया और मुझे उसमें कोई अरुचि या कंटाला नहीं आया ।' सिंघीजीकी आदत थी कि कोई महत्त्वकी पुस्तक आई तो उसकी प्रस्तावना आदि पढ़ जाना । सिंघी सिरीजकी पुस्तकोंके लिये तो उनका यह सुनिश्चित क्रम था कि पुस्तक प्रकाशित हुई कि

उसके प्रस्तावना आदि मार्मिक भाग पढ़ लेना। चाहे वह किसी विषयकी और किसी भाषामें क्यों न हो। इस तरह उनकी धर्म और तत्त्वज्ञानकी शिक्षा शुरू तो हुई घरमें और संप्रदायके घेरेमें, पर आगे जाकर वह व्यापक और संप्रदायमुक्त बन गई।

श्रद्धा और तर्कका सुमेल

सिंघीजीकी तर्कशक्ति बहुत तीव्र थी। परन्तु उसका श्रद्धाके साथ सुभग मेल देखनेमें आता था। कुटुम्ब पितृपरंपरासे जैन होनेके कारण तथा माता-पिता दोनोंकी दृढ़ श्रद्धालुताके कारण घरमें ऐसे अनेक नियम थे जो खास जैन धर्मसे सम्बन्ध रखते हैं। अमुक अमुक नियत तिथियोंपर सब्जीका त्याग, खास तिथि और पर्वके दिन मंदिरमें पूजा पढ़वाना इत्यादि प्रथाएँ नियमित रूपसे आज भी उनके घरमें चालू हैं। सिंघीजी उन नियमों और प्रथाओंका बराबर पालन करते रहे। फिर भी उनके तर्कवादने उन्हें कट्टर बनानेसे रोका था। वे खुद तो धर्मप्रथाका पालन करते रहे पर अन्यान्य अन्धश्रद्धालु जैनोंकी तरह वे दूसरोंके बारेमें कट्टर न होकर उदारवृत्ति वाले थे। दूसरा अपनी इच्छासे चाहे जैसा बरते इसमें उन्हें नाराजी नहीं। एक बार सांवत्सरिक पर्व था जो जैनोंका सर्वोत्तम पर्व है। उस दिन सिंघीजी नियमानुसार अपनी माता और कुटुम्बके साथ प्रतिक्रमण करने गये। मैं उसमें संमीलित न था। प्रतिक्रमण समाप्तिके बाद हम दोनों मिले। खमत-खामना हुआ। मैंने देखा कि मेरे प्रतिक्रमणमें संमीलित न होनेसे उनके मन पर कोई असर नहीं हुआ है। मैंने पूछा कि 'आपको प्रतिक्रमणमें कैसा रस आया?' उन्होंने कहा 'थोड़ा प्रतिक्रमणका और अधिकतर नींदका ही रस, बहुतसे प्रतिक्रमण करनेवालोंमें देखा।' जब मैंने कहा 'इतनी लम्बी क्रियामें जवानोंका एकाग्र रहना सरल नहीं।' तब वे कहने लगे कि 'यह सांवत्सरिक प्रतिक्रमणकी क्रिया इतनी अधिक लम्बी हो गई है कि वह आप ही अपने भारसे क्षीण हो रही है। और मैं देख रहा हूँ कि नई पीढियाँ दिन ब दिन उस भारसे ऊब रही हैं। अब तो सरल और रोचक आवश्यक कर्म जरूरी है। हम तो अपनी जींदगी तक जैसा भी है करते रहेंगे; पर दूसरोंसे वैसी अपेक्षा रखना बुद्धिमानी नहीं।' पर्यूषणमें कल्पसूत्रका वाचन-श्रवण जैनपरंपरामें असाधारण महत्त्व रखता है। छोटे बड़े स्त्री पुरुष सभी उसमें भाग लेते हैं। अजीमगंजमें कोई साधु १९४२ ई० में चातुर्मास थे। साधुजी

एक प्रभावशाली आचार्यके शिष्य थे। बाबूजी कल्पसूत्र सुननेको तो जाते न थे पर एक दिन साधुजीका दर्शन करने चले गये। तब साधुजीने कहा कि 'आप तो संघके मुखिया हैं, कल्पसूत्र तो जरूर सुनना चाहिए और उपाश्रयमें आना चाहिए।' इतने प्रथापालक होते हुए भी बाबूजीने जवाब दिया कि 'जिस ढंगसे घंटों तक कल्पसूत्र बांचा जाता है, उस ढंगसे सुननेमें मुझको तो कोई लाभ नहीं दिखता। जो प्रश्न हमारे मनके हैं, जो समाजके हैं, जो धर्मके हैं उनका तो कोई स्पर्श तक नहीं करता। और साधुमहाराज यह भी नहीं देखते कि कल्पसूत्रकी कौनसी बात बुद्धिग्राह्य है और कौनसी काल्पनिक। सुननेवाले अधिकतर नींद लेते हैं और बांचनेवाला बांचता जाता है। मैं तो अपने घरमें ही अपने आप कुछ योग्य स्वाध्याय कर लेता हूँ। यदि आप लोग समय और श्रोताओंको न पहचानेंगे तो कल्पसूत्रका स्थान घट जायगा।' सिंघीजीकी यह स्पष्टोक्ति सुनकर साधुजी सन्न रह गये।

पर्यूषणमें धर्मस्थानोंमें साधुजीके मुखसे प्रथानुसार कल्पसूत्र आदि सुननेका रिवाज जैन परंपरामें बहुत रूढ़ हो गया है। उसके स्थानमें धार्मिक, सामाजिक आदि जीवनस्पर्शी विषयोंके ऊपर चालू जमानेके अनुसार सुविद्वानोंके द्वारा व्याख्यान करानेकी नई प्रथा गुजरातमें शुरू हुई है, जो पर्यूषण व्याख्यानमाला कहलाती है। सामान्यतया कट्टर जैन इस व्याख्यानमालाको धर्मनाशक समझते हैं। कलकत्ताके समझदार जैन युवकोंने अपने यहाँ भी इस व्याख्यानमालाका प्रारम्भ किया जिसमें स्थानिक और बाहरके सुप्रसिद्ध विद्वान् बुलाये जाते थे। नवयुवकोंके इस रूढ़िपरिवर्तनमें बाबूजीका हार्दिक सहयोग था। वे व्याख्यानश्रेणीमें नियमित जाते थे। १९४० ई०में उस प्रसंग पर मैं भी कलकत्ता गया था। वहाँ देखा तो बाबूजीके प्रभावशाली सहयोगके कारण सारा जैन समाज उस व्याख्यानश्रेणीमें रस ले रहा था। यहाँ तककी एकदिन एक पुराने जैनसूरिने भी उस व्याख्यानमालामें एक व्याख्यान करके सहयोग दिया।

जब १९३१ ई०में वे पालीताना गये तो मैं भी साथ था। सिंघीजी, माताजी आदि पालखीमें बैठ कर रोज पहाड़के ऊपर दर्शन-पूजा निमित्त जाते थे। मैं तो चलकर तलहट्टी तक जाता था। ऊपरसे उतरते समय तलहट्टीमें यात्रिओंके लिए नास्ता-पानीका सुप्रबन्ध हमेशा रहता है। जब यात्री कुछ खाते पीते हैं तब वे बेचारे पालखी उठानेवाले अलग चुपचाप बैठे रहते हैं; जिनके कंधों पर चढ़ कर

आरामके साथ यात्री यात्राका पुण्योपार्जन करता है और अंतमें तलहट्टीमें स्वादु भोजन भी पाता है। मैंने इस बेतुके बर्तावकी टीका की कि 'आपको जो लोग यात्रा कराते हैं उनको छोड़ कर तलहट्टीमें मिठाई खाना क्या आपको शोभा देता है? तलहट्टीवाले उनके वास्ते प्रबन्ध न करें तो न सही पर कंधे पर चढ़नेवाले यात्रिओंको तो कुछ सोचना चाहिए।' मेरे इस कथन पर सिंघीजी आदि सब मंडलीका ध्यान गया। उन्होंने तत्क्षण निर्णय किया कि रोज अपनी पालखी उठानेवालोंके लिये एक मन गुड़ बांट देना। सिंघीजी और माजीकी सद्वृत्त और विद्वान् साधुके प्रति बड़ी भक्ति रहती थी। तो भी पालीतानाकी धर्मशालाओंकी आगे पीछेकी गंदगी और अव्यवस्था देख कर वे वहाँ साधुसाध्वीओंके पास जाना पसंद करते न थे। पर जब सुना कि एक मोरबीकी रानीका अच्छा अनाथाश्रम है तब वे वहाँ गये। वहाँकी सफाई और अनाथोंकी परिचर्या देख कर उन्हें धर्मशालाओंकी स्थिति और भी अखरी। वे भावनगर गये तो थे यात्रा-निमित्त; पर जब वे मेरी सूचनाके अनुसार दक्षिणामूर्तिको देखने गये तब उसके बालमंदिर आदि विभागोंको, शिक्षकगणको तथा कार्यक्रमको देख उनके मन पर उत्तम छाप पड़ी।

सिंघीजीकी सुधारक वृत्ति

सिंघीजीका जन्म और संवर्धन रूढ़िचुस्त शहर और समाजमें हुआ था। फिर भी योग्यायोग्यका विचार करनेकी शक्तिके कारण उनकी मनोवृत्ति विविध क्षेत्रोंमें सुधारककी थी। वे श्वेताम्बर थे, पर कहा करते थे कि 'दिगम्बर आदि दूसरे फिरकोंके साथ उत्तरोत्तर मेल बढ़ानेका प्रयत्न आवश्यक है।' इसी कारण वे बाबू छोटेलालजी जैन जो दिगम्बर हैं उनके साथ अनेक कार्योंमें सच्चे दिलसे मिल कर भाग लेते थे। सामाजिक प्रथामें भी उनका विचार सुधारगामी था। इसीसे उन्होंने अपने बड़े पुत्र श्रीमान् राजेन्द्रसिंहजीका लग्न पुरानी रूढ़ प्रथाका त्याग करके गूजरात—अहमदाबादमें किया और विरोधी रूढ़िवादी जो उनकी बिरादरीमें हैं उनकी एक भी बात न सुनी और न उनके तीव्र विरोधकी परवाह की। वे सामान्यतः वैधव्य प्रथाके समर्थक न थे और यदि कोई विधवा निर्भयता और सच्चाईसे पुनर्लग्न करती हो तो वे उसके सम्मानके पक्षपाती थे। उन्हें स्त्रीशिक्षणको उत्तेजन देना बड़ा पसन्द था। एक बार हम लोग जालन्धर आर्य-कन्या विद्यालयमें गये। उसके स्थापक लाला देवराजजी जो बहुत बुड्ढे और

निवृत्त थे, उनसे मिले। जब उस वृद्ध पुरुषने कन्याविद्यालयको दिखाया जिसमें एक अलग विधवा विभाग भी था, तो बाबूजीने विना मांगे ही अमुक दान देनेको कह दिया। परापूर्वसे अजीमगंज कलकत्ता आदिमें खास कर मारवाड़ी समाजमें पर्देकी प्रथा है जो सिंघीजीके घरमें भी चली आती है। पर पिछले वर्षोंमें मैंने देखा कि उनके घर पर वह प्रथा बहुत शिथिल हो रही है और उसे वे ठीक भी समझते थे। वे मुझे कहते थे कि स्त्रियाँ साहस करें तो हमको कोई आपत्ति नहीं।

योगाभ्यास

सिंघीजीने अपने पितासे योगप्रक्रियाका अभ्यास भी किया था। बड़े बाबूजी अमुक हद तक योगप्रक्रिया जानते थे और वे यथासंभव घरमें सीखाते भी थे। एक बंगाली महानुभाव थे जो इस विषयमें बड़े बाबूजीके गुरु थे। बड़े बाबूजीकी इच्छा थी कि बहादुरसिंह उनसे और भी अधिक सीखे। पर मुझको सिंघीजी कहते थे कि 'मैंने जो अभ्यास कर लिया था उससे आगे सीखनेके लिये उस बंगाली महानुभावके पास अवकाश न था।' सिंघीजी आबूनिवासी शान्तिविजय-महाराजके भक्त थे। मैंने उनसे उक्त महाराजजी और उनकी योगशक्तिके बारेमें पूछा था कि 'आपको कैसा अनुभव है?' तो उन्होंने कहा था कि शान्तिविजयजी महाराजका योगाभ्यास उस बंगाली महानुभावकी अपेक्षा अवश्य अधिक है। मैंने उनको शान्तिविजयजी महाराजके सुनाई देनेवाले चमत्कारोंके बारेमें भी पूछा था तो उन्होंने सच सच जैसा अनुभव वे कर चुके थे कह बताया था। पर इतना निश्चित है कि शान्तिविजयजी महाराजके प्रति उनका आदर पर्याप्त था। फिर भी वे कहते थे कि 'महाराजजी कोई काम व्यवस्थित कर नहीं सकते।' मैंने एक बार पूछा कि 'आपने योगप्रक्रियाका परिणाम अपने जीवनमें प्रयोग करके कभी देखा है?' उन्होंने हाँ कहते हुए कहा कि 'केन्सरके भयसे मुखमें एक बार मुझे बड़ा ऑपरेशन करना पड़ा। यूरोपियन तथा देशी बड़े बड़े सर्जन थे। घर पर ही ऑपरेशन हुआ। डॉक्टरोंने जब क्लोरोफोर्म देना चाहा तो मैंने कहा कि क्लोरोफोर्म की कोई जरूरत नहीं। आप लोग बेधड़क अपना काम कीजिए। मैं निष्कम्प स्थिर रहूंगा। तिसपर भी बीचमें आप लोग जरूरत समझें तो खुशीसे दवाई सुंघाना।' उन्होंने अपने योगाभ्यासके अनुसार जीभ आदिका विनियोग अमुक स्थानमें किया। ऑपरेशन बहुत सख्त था; करीब पौना घंटा

चला। उनके मित्र बंगाली डॉक्टर गिरीन्द्रशेखर जो आजकल कलकत्ता यूनिवर्सिटीमें प्राध्यापक हैं उन्होंने नाडी पकडी थी। पर आखिर तक क्लोरोफोर्म देनेकी जरूरत नहीं हुई। मैंने कहा कि 'क्लोरोफोर्म देनेपर भी मैं तो ऑपरेशनमें चिल्ला पडा था।' उन्होंने कहा कि 'यदि आपको इस प्रक्रियाका अभ्यास होता तो शायद ऐसा न होता।' पर मानसिक समत्वके बारेमें जब मैंने पूछा तो उन्होंने कहा कि 'यह साधना उस प्रक्रियासे भी सरलतासे सिद्ध होनेकी नहीं।'

सौष्ठवदृष्टि और कलावृत्ति

सिंघीजीकी बैठक हो या उनके बरतनेकी कोई भी चीज हो, उसे देखकर कोई भी समझदार व्यक्ति इतना तो विना जाने रह नहीं सकता कि सिंघीजीकी रुचि और कलावृत्तिमें दूसरोंकी अपेक्षा एक खास प्रकारकी विशेषता है जो दूसरोंमें सुलभ नहीं। उनकी इस वृत्तिका परिचय मुझे आगरामें उनके प्रथम परिचयमें ही मिल गया। बड़े बाबूजीकी इच्छासे मैंने नई दृष्टिसे आवश्यक सूत्रका, जिसे प्रतिक्रमण भी कहते हैं, हिन्दीमें अनुवाद विवेचन आदि किया था। आगरेके सुमिते के अनुसार यथासंभव अच्छे ही ढंगसे छपाई शुरू भी हुई थी। मैंने सिंघीजीको छपे थोडे फर्मोको दिखाकर उनका अभिप्राय पूछा कि 'इसमें कुछ सूचना करनी है?' उन्होंने तुरन्त ही कहा कि 'और तो सब ठीक है, पर कागज टाईप इससे भी अच्छे मिले तो और भी अच्छा।' जब मैंने कहा कि 'इसके लिये तो बंबई और कलकत्तेसे टाईप कागज लाने होंगे, और छपे फर्मे रद भी करने होंगे।' उन्होंने उसी क्षण कहा कि 'जो करना पड़े सो करो खर्चका प्रश्न ही नहीं है। पर अच्छेसे अच्छा बनानेका ध्यान रखो।' हमने फिर वैसा ही किया और उनकी सौष्ठव दृष्टि तथा कलावृत्तिकी तृप्तिका भरसक प्रयत्न किया। फलतः वह संस्करण इतना आकर्षक निकला कि आगे उसके ऊपरसे अन्यान्य स्थानोंसे दो संस्करण दूसरे निकले जिनसे उनके प्रकाशकोंने खूब फायदा उठाया। बाबूजीने तो मुफ्त वितरण करने ही के लिये वह आवश्यकसूत्र तैयार कराया था जिसका उस सस्ते जमानेमें भी करीब पांच हजार का बील आगराकी संस्थाको उन्होंने चुकाया। सिंघीजीको चित्र, स्थापत्य आदिका बहुत सक्रिय रस था। वे अपनी नई नई कल्पनाके अनुसार डिझाइन तैयार करवाते थे। एतदर्थ वे अपने पास एक आर्टिस्ट भी रखते थे। भगवान् महावीरके विहार क्षेत्रका नकशा कल्पसूत्रके वर्णनानुसार उन्होंने स्वयं ही खींच

रखा था। उसे वे अच्छे ढंगसे तैयार करके छपाना चाहते थे। १९३९ ई०में जब मैं मिला तो उनसे कहा कि 'जब नकशा तैयार करना ही है तो साथ साथ उन पुराने गांव, कस्बे, शहर, नदी, आदि सब स्थानोंकी भी जांच क्यों न करवावें कि इनमेंसे कौन कैसी हालतमें है? आज कल उसका क्या नाम है? और वह है या नहीं?—इत्यादि। ऐसी जांच करानेसे कल्पसूत्रके उस पुराने वर्णनकी ऐतिहासिकताका भी बहुत कुछ पता चल जायगा और वह नकशा एक प्रमाणभूत वस्तु बन जायगा।' उनको मेरी बात पसंद आई और तुरन्त ही कहा कि 'इस जांचके लिये आदमी खोजिए। पूरे साधनके साथ वह पादविहार करके जगह जगह घूमे और देखे। चाहे जितना खर्च हो मैं करूंगा।' उस समय कार्यक्षम सुयोग्य व्यक्ति प्राप्त करनेका मेरा प्रयत्न सफल होता तो आज उनकी कल्पनाका वह नकशा लोगोंके सन्मुख होता।

वे देश परदेशके सचित्र पत्र-पुस्तक देखते रहते थे। उनमें देखी हुई और वर्णन की गई जुदी जुदी वस्तुओंके ऊपरसे सिंघीजीने एक फवारा बनाना चाहा। डिझाईन के अनुसार काम शुरू कराया, क्या करना, कैसे करना इत्यादि सारी सूचनाएँ कारीगरोंको वे खुद करते थे। अन्तमें उनकी कल्पनाका वह फवारा बन गया जो उनके मकान सिंघीपार्कमें कलकत्तेमें विद्यमान है और उनकी कलावृत्तिका द्योतक है। कोई चीज उन्हें अशोभन पसंद नहीं आती थी। इसीसे दस हजार का बजट पचीस हजार तक पहुंचा पर फवारेको मनमाना बना देखकर उन्हें खर्च नहीं अखरा।

सिंघीजीने अपने तीन पुत्र और एक खुदके वास्ते इस तरह चार बंगलोंका नकशा स्वयं ही तैयार किया था। लडाई छिड़ जानेसे जो अभी कागज पर ही है। परंतु उनकी बनवाई एक स्मरणीय वस्तुका उल्लेख करना आवश्यक है। उनके बंबई वासी एक मित्र चाहते थे कि पावापुरी जलमंदिरका पुराना पुल यात्रिओंके लिये ठीक नहीं है। इससे नया और अच्छा पुल बनवाया जाय। उस मित्रने यह काम सिंघीजीको सौंपा। सिंघीजीने पत्थर कारीगरी आदिका निश्चय करके आगरासे कारीगर और पत्थर मंगवा कर पावापुरीमें एक सुंदर नया विशाल पुल कलकत्तेमें ही बैठे बैठे अपनी सूचनाके अनुसार बनवाया। परन्तु शोक इस बातका है कि वे उसे अपनी आंखोंसे देखनेका मनोरथ पूरा कर न सके।

चांदी, सोना, लकडी, पत्थर, जौहरात आदिकी अनेक छोटी मोटी चीजें सिंघीजी के द्वारा अपनी कलादृष्टिके अनुसार बनवाई हुई आज भी देखी जा सकती है।

मातृ-पितृभक्ति

अपने माता-पिताके प्रति सिंघीजीका इतना अधिक आदर था कि ऐसे बड़े और स्वतन्त्र मिजाजके पुत्रोंमें कम देखा जाता है। अपनी इच्छा कुछ भी हो पर वे माता-पिताकी इच्छाको प्रधान स्थान देते थे। बडे बाबूजीका स्वर्गवास होनेके बाद जब जब मैं गया और देखा तो मेरे देखनेमें यही आया कि वे दुपहरमें नियमसे अमुक घण्टे माताके पास बिताते। कुछ बांचना, उनसे कुछ सुनना, पत्तोंसे खेलना—पर माताको हर तरहसे प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करना। ऑफिसमें कितना ही काम क्यों न हो, मिलनेवाले कितने ही क्यों न बैठे हों; पर उनका माताके पास बैठनेका नियत समय प्रायः निर्बाध रहता था। माताजी भी धर्मरुचि और खास कर योगरुचि थीं। उन्हें जैन शास्त्रके तत्त्वोंका परिचय ठीक था। और शास्त्र सुनना बडा पसंद था। मैं जब कभी माजीके पास बैठता तो शास्त्र और धर्म तत्त्वकी चर्चा चलती। कभी आनन्दघन, कभी चिदानन्द और कभी यशोविजयजीकी कृतिओंका वाचन-श्रवण चलता। बहुधा यही देखा कि उस मातृमण्डलकी चर्चा वार्ताके समय सिंघीजी आवश्यक काम छोडकर भी बैठते थे। सिंघीजीने एक बार कहा कि 'मैं अपना जन्म-दिन आने पर उसकी खुशी माताजीकी आरती उतार कर मनाता हूँ।' माताजीकी परितृप्तिके लिये वे शान्तिविजयजी महाराजके पास महिनों तक आबू आदि भिन्न भिन्न स्थानोंमें कारोबार छोड़कर रहते थे और हजारोंका खर्च करते थे। यों तो वे अपने माता-पिताके साथ जैन-तीर्थोंकी अनेक बार यात्रा कर चुके थे पर १९३१ ई०में वे माताजीको लेकर उत्तर और दक्षिण हिन्दुस्थानके सभी प्रसिद्ध जैन-जैनेतर तीर्थोंमें हो आये।

१९२९ ई०में पिताजीके स्वर्गवासके बाद उनकी स्मृति कायम रखनेकी भावनासे उन्हींको अभिमत विद्या, साहित्य और धर्मकी अभिवृद्धि और उत्तेजन देनेका सिंघीजीका विचार स्थिर हुआ। क्या काम करना, कहाँ करना, कैसे करना, किस दृष्टिसे और किसकी निगरानीमें संचालित करना इत्यादि मुख्य प्रश्नोंपर ऊहापोह होनेके बाद, सिंघीजीने तय किया कि मेरी कल्पना और सम-

झको संतोष दे सके ऐसा व्यक्ति मुनिश्री जिनविजयजीके सिवाय दूसरा नहीं है। सिंघीजी खुद इतिहास-साहित्य-कलारसिक तथा पुरातत्त्वप्रिय थे। और मुनिजी उन विषयोंकी जीवितमूर्ति हैं, ऐसा उन्हें मालूम था। फिर तो उन्होंने सारा काम मुनिजीके सुपुर्द करनेका अंतिम निर्णय किया और मुनिजीसे कहा कि 'बडे बाबूजीकी अमुक इच्छा थी, मेरी अमुक इच्छा है, जैन समाजकी और देशकी क्या क्या जरूरतें हैं और हमारी इच्छाके अनुसार उन जरूरतों की पूर्ति किस तरह हो सकती है—यह विचार आप कीजिए। हम उसमें कभी सूचना करेंगे पर काम करना आपके जिम्मे है। मेरे जिम्मे आर्थिक और दूसरे साधन आपकी सेवामें अधिकसे अधिक उपस्थित करना इतना ही है।' ऐसा कह कर बडे बाबूजीकी स्मृतिके निमित्त बोर्डिंग चलाने, सिरीज निकालने आदिका सारा काम मुनि श्री जिनविजयजीको सौंप दिया। और अन्त तक कभी हस्तक्षेप नहीं किया। जब बात होती या मिलते तो यही कहते कि 'मेरे पिताजी की भावना और मेरी इच्छा सिद्ध होती है। और होगी तो सुयोग्य विद्वानोंके द्वारा ही। हम तो जितना अपने जीवनमें सदुपयोग करेंगे उतना ही हमारा।'

सिंघी सिरीज और छात्रवृत्ति देने आदिका काम तो शुरू ही था। पर दूसरा एक प्रसंग ऐसा आया जब उन्होंने अन्य धार्मिक काम करनेका भी सोचा। स्वर्गवासी मुनि मंगलविजयजी उन्हें पावापुरीमें मिले। वे चाहते थे कि हम कुछ काम करें और सिंघीजी मदद करें। बाबूजीने उनकी बात सुन कर कहा कि 'आप साधुलोग ऐसा हलवा-पुड़ी छोडकर कैसे काम करेंगे?' सिंघीजीका वाक्प्रहार काम कर गया। उक्त मुनिजी और उनके शिष्य दोनों कृतनिश्चय हुए तो सिंघीजीने कहा कि 'अच्छा, हम आपको नियत अमुक आर्थिक मदद करेंगे। आप हजारीबाग जिलेमें सराक जाति जो पहले जैन थी उसके उद्धार-का काम शुरू कीजिए। दूसरी मदद भी आ जायगी।' दोनों गुरुशिष्यने उस जिलेमें डेरा डाला। सिंघीजी कलकत्ता बैठे बराबर मदद देते रहे और फिर तो दूसरे भी लोग सहायक हो गये। जो काम आज तक भी चलता है। असलमें सिंघीजीकी यह प्रवृत्ति अपने पिताजीकी स्मृतिके निमित्त ही शुरू हुई थी। इसमें सिंघीजीको अपनी माताजी तथा पुत्रोंका भी पूर्ण सहयोग रहा।

सिंघीजीका दरबार

जमींदारी और दूसरे कारोबारके कारण उनके पास जो दरबार जमता था वह तो दूसरा; पर मैं जिस दरबारका निर्देश करता हूँ वह अलग है। चित्रकार, इतिहासज्ञ, दार्शनिक प्रोफेसर या पण्डित और दूसरे अनेक उस उस विषयके निष्णात उनके पास अनेक कारणोंसे आया करते और कलकत्तेमें जब मैं उनके निकट ऐसा विद्वानोंका दरबार देखता था तो मनमें मन्त्री वस्तुपालका स्मरण हो आता था। सबसे मौनपूर्वक सादर बात सुनना और यथोचित सत्कार करना यह उनका जीवित विद्यापूजन था।

अतिनम्र दानशीलता

सिंघीजी जितने अधिक आतिथ्यप्रिय थे उतनी ही उनकी दानवृत्ति भी उदार थी। वे दान तो यथाशक्ति करते थे पर विशेषता उनकी यह थी कि उसकी जाहिरातका कोई प्रयत्न नहीं करना। निकट परिचय होने पर भी उनके बड़े बड़े और विशिष्ट दानोंका हाल मुझे बहुत पीछे मालूम हुआ। और मैंने उसके बारेमें कुछ पूछा तो बिलकुल संक्षेपमें जवाब मिला। पर उनकी खास विशेषता तो मैंने यह देखी कि दानसे भी अधिक दानपात्रके प्रति नम्रता और आदर। इस विशेषताका सूचक प्रसंग मैं अपने अंगत जीवनसे लिखूं तो उससे कोई औचित्यभंग न होगा।

मैं अमदाबाद गूजरात विद्यापीठमें काम करता था। उस कामको पूरा निपटानेके बाद मेरी एक इच्छा यह भी थी कि मैं और प्रवृत्ति बंध करके अंग्रेजी पढ़ूँ। मेरी इस इच्छाका न जाने उन्हें कहांसे पता चला। १९२८ ई० में जब मैं कलकत्ता था तो एक रोज अचानक मेरे कमरेमें आ कर बैठ गये। मुझसे पूछा कि 'क्या आपकी इच्छा अंग्रेजी पढ़नेकी है?' मैंने कहा 'है तो सही पर अभी समय नहीं आया। शायद दो सालके बाद आवे।' वे कहे कि 'जब समय आवे तब पढ़िये और अच्छा प्रबन्ध करके पढ़िये।' मैंने कहा 'उस समय देखा जायगा।' उन्होंने कहा 'अच्छा रीडर, अच्छा शिक्षक और दूसरा भी सुचारु प्रबन्ध करोगे तो कितने खर्चका अन्दाज है?' मैं शुरुमें सकुचाया। पर अन्तमें उन्होंने ही अच्छी जगह रह कर पढ़नेका अंदाज लगाया कि मासिक ढाई सौ तो चाहिए। मैं चुप था। उन्होंने सत्वर अपने आप मुझसे कहा कि 'ढाई सौ हो या तीन सौ जो खर्च हो आप यदि मुझसे लेंगे तो मैं अपनेको धन्य समझूंगा।'

(येही उनके यथावत् शब्द हैं) मैंने कहा 'समय आने पर देखा जायगा।' उनके स्वयं स्फुरित, मुझ जैसेके प्रति अकारण नम्र शब्द, सुन कर मेरा चित्त अनेक लागणियोंसे भर गया। १९३० ई० के मार्चमें मैंने गुजरात विद्यापीठको छोड़ा। तब, चाहे जितने समय तक अपेक्षित, सब खर्च, एक एक सालका, एकसाथ पहिले ही से मंगा लेनेको मुझको सिंघीजीने कहा था। मैं इंग्रेजीका अपना अभ्यास कहीं बैठ कर एकाग्रताके साथ करना चाहता था पर इतनेमें महात्माजीकी दांडी कूचसे राष्ट्रमें जो हलचल पैदा हो गई उसमें मैं भी बम्बई वगैरहमें प्रचारके कार्यमें व्यस्त हो गया। उस लहरके कुछ शान्त होने पर मैंने अपना अभ्यास शुरू किया जो करीब दो-ढाई वर्ष चलता रहा। सिंघीजी उसमें अपेक्षित सहायता देनेके लिये सदा उत्सुकताके साथ मुझे लिखा करते थे। परन्तु मैं अपनी चित्तवृत्तिके अनुसार बहुत ही संकोचके साथ जब उनसे कुछ रकम मंगवाता तो वे मनमें, मेरे संकोचको देख कर कुछ खिन्न ही होते थे। बनारसमें हिंदुयुनिवर्सिटीमें जो जैन चेयरकी स्थापना, जैन श्वेताम्बर कॉन्फरन्सके प्रयत्नसे की गई थी उसके संचालनके लिये कोई योग्य व्यक्ति मिल नहीं रहा था; अतः कॉन्फरन्सके कुछ अधिकारी मित्रोंने, कुछ समय तक, मुझको उस स्थानके संभालनेकी प्रेरणा की। बनारस यों ही मेरी परम प्रिय विद्याभूमि थी। मेरा चित्त उसके लिये आकृष्ट हो गया और उसमें शान्तिनिकेतनसे श्रीमुनिजीकी भी उत्साहजनक प्रेरणाका पुट मिल गया। सिंघीजीको यह खबर मिली तो उन्होंने मुझको तारसे बंबईमें सूचित किया था कि 'आर्थिक दृष्टिसे काशी जानेकी जरूरत नहीं। चाहे जितना और चाहे जहाँ रह कर अध्ययन कर सकते हो।' ऐसी नम्र और उदार वृत्ति मैंने मात्र मेरे प्रति ही नहीं देखी है। वे बड़े मनुष्यपरीक्षक थे। एक बार जिसे परीक्षापूर्वक चुनते थे उसके साथ उनका वैसा ही व्यवहार रहता था। मैंने देखा है कि मुनिश्री जिनविजयजीको अपनी परीक्षासे चुन कर **'सिंघी जैन सिरीझ'**के सर्वेसर्वा बनानेके बाद उनके प्रति कितना नम्र और आदरशील उदार व्यवहार रहा है। वे मुझसे अनेकबार कहते थे कि 'मेरी सिरीझके लिये मुनिजी जैसे व्यक्तिका मिलना मेरा अहोभाग्य है।' मुझसे कहते थे कि 'मुनिजी इतना अधिक काम क्यों करते हैं? और तबीयत क्यों बिगाड़ते हैं?. सहायक सुयोग्य आदमी रख लें। खर्चका तो कोई प्रश्न ही नहीं। उनकी शक्ति चिरकाल काम दे तो पैसा क्या चीज है?'

इतनी विवेकयुक्त सच्ची नम्रता व्यापारीमें सुलभ नहीं। ऐसी नम्रता देख कर मुझे भारविका 'न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम् ।' वाक्य याद आ जाता था।

अंतिम इच्छा और अंतिम मुलाकात

ई० १९४३ के ऑगस्टमें उनका एक पत्र मेरे पर अमदाबाद आया। जब मैं कारबंकलसे मुक्त हो कर हॉस्पीटलसे घर आ गया था। उसमें उन्होंने लिखा था कि 'डॉ० श्यामाप्रसादजी पहिले मिले थे, और अभी सर् आशुतोष चेयरके प्रोफेसर विधुशेखर शास्त्रीजी मिलने आये थे। उन लोगोंकी इच्छा है कि कलकत्ता युनिवर्सिटीमें जैन-चेयर स्थापित हो और मैं मदद करूं। शास्त्रीजी आप ही को जैन-चेयर पर बुलाना चाहते हैं। इसलिये यदि आप कलकत्ता आवें तो जैन-चेयरके लिये पूरा खर्च करना मुझे पसंद है। आपके खर्चका तो प्रश्न ही नहीं। पर दूसरे सहायक अध्यापकका खर्च भी आप आवें तो मैं कर सकता हूँ' इत्यादि। मैं स्वस्थ होनेके बाद बम्बई आया और आचार्य श्री जिन-विजयजीके साथ सितम्बरमें कलकत्ता गया। थोड़े ही महिने पहले सिंघीजी, सिंघी जैन सिरीझ, भारतीय विद्या भवनको सारे खर्चकी अपनी जवाबदे-हीके साथ, सौंप चुके थे। सिंघीजी दिलसे चाहते थे कि मैं कलकत्ता रहूँ; पर मैंने जब अपना निर्णय बतलाया कि 'अब तो ऐसी कायमी जवा-बदेही लेनेको मैं तैयार नहीं हूँ। चाहे, काम शुरू करना हो तो थोड़े महिने जरूर आ जाऊंगा।' मैंने उस समय रहना स्वीकार न किया और उनकी वह अन्तिम इच्छा यों ही रह गई। मैं वहाँसे काशीके लिये निकला। विदा होते समय सिंघीजीके उद्गार ये थे कि 'अब तो मिलना कब होता है सो भगवान जाने।' बराबर उस वक्त वे शान्तिविजयजी महाराजके स्वर्गवासके निमित्त होनेवाली शोक सभाके लिये जा रहे थे। इसलिये मुझसे यह भी कहा कि 'गुरुजी मुझसे छोटे थे पर पहले गये। अब देखें हम कब तक जीएँगे और अपना कब मिलना होगा।' यही हमारी अंतिम मुलाकात।

सिंघीजीका सर्वतोमुखी विद्यानुराग

जैसा कि मैंने प्रारम्भमें सूचित किया है सिंघीजीके साथ मेरा परिचय २५ वर्षसे अधिक समय तक रहा है। इस सुदीर्घ परिचयके जितने प्रसङ्ग मुझको अभी स्मृतिगत रहे उनमेंसे अनेकोंको स्थान और समयाभाव के कारण यहाँ छोड़ दिया गया है। पर जो थोड़े प्रसङ्ग-स्मरण मैंने ऊपर दिये हैं उनके ऊपर

से कोई भी पाठक सिंघीजीके बहुमुखी व्यक्तित्वको समझ सकता है और साथ ही जब वह मुनीजीके लिखे विस्तृत परिचयवर्णनको पढ़ेगा तब उसके मनमें यह प्रतीति और भी दृढ़तर और विशद हो जायगी कि सिंघीजीकी विद्याभिरुचि किसी एक विषयमें सीमित न थी। मैं गुजरात, मारवाड़, पंजाब, यू० पी०, बिहार और बंगालके अनेक प्रतिष्ठित और धनी मानी जैन कुटुंम्बोंके परिचयमें थोडा बहुत रहा हूँ। कई बड़े बड़े कुटुम्बोंके साथ तो मेरा सहवास-जन्य निकट परिचय भी रहा है; पर सिंघीजी जैसी महानुभावता मैंने अभी तक किसी अन्य व्यक्तिमें नहीं देखी है। परम्परासे व्यापारी संस्कारवाले समाजमें, व्यापारिक कुशलतावाले और बुद्धिमान व्यक्तियों का होना सुलभ है; पर व्यापारिक-कौशल और बुद्धिपाटवके साथ सांस्कृतिक विद्याओंकी उत्कट अभिरुचि और कुशलताका सुयोग उतना ही दुर्लभ है। सिंघीजीमें यह सुयोग था इसीलिए मैं उन्हें महानुभाव कहता हूँ। इतिहासप्रसिद्ध वस्तुपाल मंत्रीकी जीवनकथा पढ़ते समय मेरे मनमें कई बार संदेह होता था कि क्या सचमुच इतनी परस्पर विरुद्ध दीखने वाली सिद्धियाँ व्यापारी कुलके एक संतानमें संभव हैं ? पर सिंघीजीके विशेष परिचयने मेरे उस संदेहको सर्वथा निर्मूल कर दिया था कि व्यापारी होते हुए भी वह इतिहास, पुरातत्त्व, चित्रकला, स्थापत्य, मूर्तिरचना, निष्कविद्या और मणिरत्न-परीक्षामें निष्णात हो सकता है। १९४२ के सितम्बरमें एक दिन मैंने सिंघीजीके मुखसे कोयले और पत्थरकी विविध जातियोंके स्थान, उत्पत्ति और गुण-दोष विषयक तुलनात्मक वर्णन सुने तो मैं अंतमें सहसा बोल उठा कि 'आप तो इस विषयके अध्यापक हो सकते हैं।'

यों उनका स्वभाव अल्पभाषी था, बाकीके व्यवहारकी बातोंमें जहाँ २० शब्द बोलनेकी आवश्यकता प्रतीत होती वहाँ वे उसे १०में ही खतम कर देना पसंद करते थे, पर इन सांस्कृतिक विषयों की चर्चा करते वे मानों कभी थकते ही न थे। उनके ऐसा सर्वतोमुखी विद्याप्रेमी और कोई धनिक गृहस्थ मेरे परिचयमें नहीं आया।

ऐसे उत्कट विद्याप्रेमके साथ उनकी चित्तवृत्ति भी बड़ी विलक्षण उदार थी, जो बडे बडे विद्याप्रेमियोंमें भी बहुत ही कम देखी जाती है। स्वयं ऐसे विशिष्ट रूढिप्रिय एवं पुराने आदर्शवाले समाजके एक सम्मान्य घरानेमें जन्म लेने पर और अपने आसपास संकुचित सांप्रदायिक और संकीर्ण सामाजिक

भावनाका घनीभूत वातावरण फैला रहने पर भी उसका उनके मन पर कोई खास प्रभाव नहीं था। उनकी मनोवृत्ति विचारप्रधान थी, आचारजड नहीं। विचारशील व्यक्ति, जिसका बाह्य आचार फिर कैसे ही मार्गका अनुगामी हो, उनकी दृष्टिमें आदरपात्र रहता था। किसीके विभिन्न आचारको देख कर वे संकुचित या चकित हो जानेकी क्षुद्र वृत्ति रखने वाले नहीं थे। इससे उलटा, किसी भी विचारजड व्यक्तिके विषयमें उनका किंचित् भी आदर भाव नहीं होता था, चाहे फिर वह व्यक्ति औरोंकी दृष्टिमें कितना ही धर्मात्मा क्यों न हो।

उपसंहार

सिंघीजीके साथ एक बार मुनिजीका और मेरा सम्बन्ध होनेके बाद वह केवल स्थिर ही नहीं हुआ, बल्कि वह उत्तरोत्तर बढ़ता और विशद होता गया। उसका क्या कारण? यह प्रश्न मेरी तरह हम लोगोंको जाननेवाले और भी कइयोंके मनमें उठता होगा। इसके उत्तरके साथ ही प्रस्तुत स्मरणका उपसंहार करना चाहता हूँ। ध्येयकी समानता, पारस्परिक गुणदृष्टि और असाम्प्रदायिक स्वतन्त्र मनोवृत्ति – ये तीन ही ऐसा सम्बन्ध बंधनेके मुख्य कारण मुझको प्रतीत होते हैं। कला, स्थापत्य, साहित्य, पुरातत्त्व, इतिहास और तत्त्वज्ञान आदि मूल्यवती भारतीय पैतृक सम्पत्तिकी – विशेषतः जैनपरम्पराश्रित वैसी सम्पत्तिकी – सुरक्षा, उसका ऐतिहासिक दृष्टिसे सम्पादन-प्रकाशन और यथासम्भव परिवर्धन करना यही एकमात्र मुनिजीका तथा सिंघीजीका ध्येय रहा है। जो मेरी प्रकृतिके लिये भी बिलकुल अनुकूल ही था। इस तरह ध्येयकी समानता होने पर भी बाकीके दो तत्त्व न होते तो आपसी सम्बन्धकी इतनी पुष्टि और विशदता शायद ही होती। सिंघीजी धनवान् थे पर उनकी प्रकृति खुशामदप्रिय न थी। हम दोनों यथा-सम्भव विद्योपासक और विद्याजीवी रहे, फिर भी हममेंसे किसीकी प्रकृति खुशा-मदखोर नहीं। तीनोंका पारस्परिक आकर्षण गुणदृष्टिमूलक रहा और वह मुख्य ध्येयकी सिद्धिके साथ ही साथ वृद्धिङ्गत होता गया। परन्तु पारस्परिक सम्ब-न्धकी विशदताका मुख्य आधार तो मुझको असाम्प्रदायिक स्वतन्त्र मनोवृत्तिका साम्य मालूम होता है। इस वृत्तिके उद्बोध और विकासके साथ ही मुनिजीने तो अपना साम्प्रदायिक वेश और तदनुकूल जीवनव्यवहार कभीका फेंक-फांक दिया था। सिंघीजी यद्यपि पारम्परिक जैन संस्कारमें जन्मे और संवर्धित हुए थे; परन्तु उनकी दृष्टि भी पुरातत्त्वीय और ऐतिहासिक अनुशीलनके साथ साथ

साम्प्रदायिकताके बन्धनसे मुक्त हो कर काम करती थी। हालां कि वे देखनेमें व्यवहारतः सामान्य रूपसे साम्प्रदायिक जैसे दीखते थे। मैं भी पन्थगत संकीर्ण परिस्थितिमें जन्मा और बड़ा भी हुआ, पर एक या दूसरे कारणसे अभ्यास और चिंतनकी वृद्धिके साथ साथ, मेरे मनमें असाम्प्रदायिकताका भाव ही प्रबळ होता गया। इस सत्यगवेषक ऐतिहासिक दृष्टिने हम लोगोंके पारस्परिक सम्बन्धको विशद बनानेमें बड़ा काम किया है। मुनिजी इतने अधिक निर्भय और स्वतन्त्र प्रकृतिके मुझको मालूम हुए हैं कि उन्हें कोई भी धनी या विद्वान् दूसरी तरहसे अपने निकट इतना अधिक लानेमें सफल हुआ कभी मैंने नहीं देखा। जैन और जैनेतर परम्पराके अनेक धनी मानी उनके परिचयमें अधिकाधिक आते गये मैंने देखे हैं, पर उन्हें जितना सिंघीजी अपने निकट ला सके उतना कोई ला न सका। इसका प्रधान कारण असाम्प्रदायिक स्वतन्त्र मनोवृत्तिकी समानता ही मुझको प्रतीत हुई है। मैं समझता हूँ कि कोई भी पारस्परिक स्थायी कार्यसाधक सुमेल चाहता हो तो उसे ऊपर सूचित तीन तत्त्वोंका अवलम्बन लेना चाहिये।

*

सिंघीजी पूरे राष्ट्रप्रेमी थे—यद्यपि राष्ट्रकी वर्तमान प्रवृत्तियोंमें उन्होंने बाहरसे कोई विशेष सक्रिय भाग नहीं लिया तथापि उनका अन्तर संपूर्णतः राष्ट्रके उत्थान और जागरणमें ओतप्रोत था। इसी तरह वे धार्मिक और सामाजिक सुधारके भी उत्सुक अभिलाषी थे—इस विषयकी जितनी भी सत्प्रवृत्तियां जहां कहीं होती रहती थीं उनमें उनकी पूरी सहानुभूति और सन्निष्ठा रहती थी।

उनके स्वर्गवाससे जैन समाज एक ऐसे महान् व्यक्तित्वसे वञ्चित हुआ है जिसकी पूर्ति होना सहज नहीं।

उनकी उस महान् आत्माको परम शान्ति प्राप्त हो यही मेरी आन्तरिक प्रार्थना है।

* *
*

बाबू श्रीबहादुरसिंहजी सिंघीके जीवनके कुछ स्मारक संवत्सर

*

वि. सं. १९४१ में अजीमगंजमें जन्म। मुर्शिदाबाद, नवाब हाईस्कूलमें मेट्रीक तक पढाई।

वि. सं. १९५४ में बालुचरनिवासी श्रीलक्ष्मीपति सिंहजीके पुत्र श्रीछत्रपति-सिंहजीकी पुत्री श्रीमती तिलक कुमारीके साथ विवाह सम्बन्ध।

सन् १९०४ में ज्येष्ठ पुत्र श्रीमान् राजेन्द्रसिंहका जन्म।

„ १९१० में द्वितीय पुत्र श्रीमान् नरेन्द्रसिंहका जन्म।

„ १९१४ में छोटे पुत्र श्रीयुत वीरेन्द्रसिंहका जन्म।

„ १९१४ में स्थायी निवासके रूपमें कलकत्ता रहने आये। उसी समयसे अपने पिताके कारोबारको स्वयं संभालने लगे।

„ १९१८ में श्रीपतिसिंहजी और जगतपतसिंहजीका आपसी झगडेका निकाल करनेके लिये आरबीट्रेटर बने।

„ १९१९ में कोलियारी और माइनींगके उद्योगका प्रारंभ किया।

„ १९२३ में सबसे पहले जमीनदारी खरीद करनेका काम चालू किया।

„ १९२६ में बम्बईमें होने वाली जैन श्वेताम्बर कॉन्फरन्सके प्रेसीडेंट बने।

„ १९२८ में इनके पिता बाबू श्रीडालचन्दजीका स्वर्गवास हुआ। पिताजीके पुण्यार्थ प्रायः १०००० हजार गरीबोंको १ सेर पक्के चावलसे भरा हुआ पित्तलका बडा कटोरा, मय ४ आनेके साथ, दान किया। २५ तोला भार चांदीकी रकाबियां, करीब ५०० की संख्यामें बिरादरीके सब घरोंमें तथा सब देवस्थानोंमें भेंट दी।

„ १९२९ में बालीगंजमें प्रायः ५ लाख रूपयेकी जमीन खरीद की जो अब 'सिंघी पार्क' के नामसे मशहूर है।

„ १९३० में अपनी माताको साथ लेकर पश्चिम और दक्षिण भारतके तीर्थस्थानोंकी यात्रा की।

सन् १९३१ में अपने पिताकी स्मृतिमें शान्तिनिकेतनमें 'सिंघी जैन ज्ञान पीठ' की स्थापना की । 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'का प्रारंभ हुआ ।

„ १९३२ में धर्मपत्नी श्रीमती तिलक सुन्दरीका स्वर्गवास हो गया । उनके पुण्यार्थ अन्यान्य दानादि कार्योंके अतिरिक्त कलकत्तेमें जैन भवनकी स्थापनाके निमित्त १५००० रुपये दान किये ।

„ १९३२ से श्रीशान्तिविजयजी महाराजके समागममें आने जाने लगे ।

„ १९३२ में पञ्जाबके गुजरानवाला शहरमें स्थापित 'जैनगुरु कुल'के वार्षिकोत्सवके सभापति बने ।

„ १९३४ में केशरीयाजी तीर्थके केसके मामलेमें विशिष्ट योग दिया ।

„ १९३६ में पहले पहल 'हृदय रोग' का आक्रमण हुआ ।

„ १९३८ के अक्टूबरमें मारवाडके मांडोली गांवमें होनेवाली जैनोंकी एक बडी सभाके प्रेसीडेंट बने ।

„ १९३८ के डीसंबरमें अपने पार्कमें न्युमेस्मेटिक (भारतवर्षके प्राचीन-निष्कविद्या निष्णातोंकी) कॉन्फरन्सका आयोजन किया ।

„ १९३९ में कलकत्तेमें होनेवाले ओसवाल महासम्मेलनके स्वागताध्यक्ष चुने गये ।

„ १९४० में कलकत्तेके भारती महाविद्यालय द्वारा स्थापित 'जैन साहित्य परिषद्'के स्थापक-अध्यक्ष चुने गये ।

„ १९४१ के डीसेंबरमें कलकत्तेमें 'सिंघीपार्क मेला'का बहुत बडा आयोजन किया जिसमें कलकत्तेके सभी बडे बडे लोगोंने और अमलदारोंने पूरा सहयोग दिया। इस मेलेके निमित्त प्रायः ४१००० रूपयोंकी बडी रकम इन्होंने रेडक्रॉस फंडको भेंट की ।

„ १९४१ के डीसेंबर ही में कलकत्ताका निवास छोड कर सारे कुटुंबके साथ अजीमगंज जा कर रहने लगे ।

सन् १९४२ के नवेंबर महिनेसे अजीमगंज वगैरह स्थानोंमें गरीबोंको सस्ते भावसे चावल देने शुरू किये जो १९४३ के डीसेंबर तक बराबर १४ महिनों तक देते रहे। इसमें उन्होंने कोई ३००००० (तीन लाख) रूपये व्यय किये।

" १९४३ के अप्रेलमें, कलकत्ताके रेडीयो स्टेशनसे महावीर जयन्ती उत्सव निमित्त, 'महावीरके उपदेश' पर संभाषण किया।

" १९४३ के मईमें, 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' भारतीय विद्या भवनको समर्पित की। भवनको एक हॉल बनानेके लिये १०००० रूपये समर्पण किये।

" १९४३ के अक्टूम्बरमें बीमारीका आक्रमण हुआ।

" १९४४ के जुलाईमें कलकत्तेमें स्वर्गवास। इनके स्वर्गवास निमित्त इनके सुपुत्रोंने अजीमगंज वगैरह स्थानोंमें कोई ५०००० रुपयेका दान-पुण्य किया।

" १९४४ के नवेम्बरमें इनकी पूजनीया वृद्ध माताजीका स्वर्गवास। इनके पीछे भी सिंघीजीके पुत्रोंने कोई ६०–७० हजार रूपये दान-पुण्य निमित्त व्यय किये।

* *
*
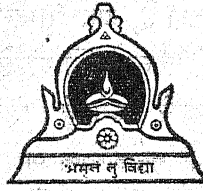
भारतीय विद्या

वर्ष ३] श्रावण, सं० २००० ❀ जुलाई, सन् १९४४ [अंक १

प्रज्ञाकर गुप्त और उनका भाष्य

ले० — श्रीयुत महापंडित राहुल सांकृत्यायन

*

धर्मकीर्त्ति भारतकी अप्रतिम प्रतिभा है। उनका 'प्रमाणवार्तिक' भारत ही नहीं विश्वके न्यायग्रन्थोंमें सदा बहुत ऊँचा स्थान रखेगा। आचार्यने अपने इस ग्रंथकी १४५२½ कारिकाओंमें अपने गम्भीर चिन्तनका निष्कर्ष अत्यन्त संक्षेपमें अतएव समझनेमें कुछ कठिन रूपमें रख दिया है। धर्मकीर्त्तिके नामसे कुछ काव्यमय पद्य भी सुभाषित संग्राहकोंने उद्धृत किये हैं, मगर वे बहुत कम विश्वसनीय हैं। न्याय (=प्रमाण)-शास्त्रपर उनके 'सात निबन्ध', और उनमेंसे दो पर स्वोपज्ञवृत्ति विख्यात हैं—

१. न्यायबिन्दु
२. हेतुबिन्दु
३. सम्बन्धपरीक्षा (सवृत्ति)
४. वादन्याय
५. सन्तानान्तरसिद्धि
६. प्रमाणविनिश्चय
७. प्रमाणवार्तिक (तृतीय परिच्छेदपर सवृत्ति)

इन ग्रंथोंमें 'न्यायबिन्दु' पहिले ही से प्राप्त था। 'वादन्याय' और 'प्रमाण-वार्त्तिक'को मैं तिब्बतकी यात्राओंमें प्राप्त कर सम्पादित कर चुका हूँ—'प्रमाण-वार्त्तिक' स्ववृत्तिके खंडित [illegible]को भोट भाषासे संस्कृतमें करके। 'हेतुबिन्दु'का

भी उद्धार भोट भाषाके सहारे किया है, और 'सम्बन्धपरीक्षा' की २५ कारिकाओंमेंसे २२ जैन ग्रंथोंमें प्राप्त थीं, तीनको मैंने भोटसे संस्कृतमें कर दिया। इसकी वृत्तिको भी भोट भाषासे पूरा करनेमें लगा हूं। 'हेतुबिन्दु' और 'संबंधपरीक्षा' पुस्तकाकार नहीं छपे हैं, तो भी धर्मकीर्त्तिके पांच निबन्ध संस्कृतमें उपलब्ध हैं। 'सन्तानान्तरसिद्धि' में 'वादन्याय' की भाँति एक पद्य और बाकी गद्य है। पद्य जैन ग्रंथोंमें उपलब्ध है, गद्य भाग ६०–६५ श्लोकोंके बराबर होनेसे भोट भाषासे संस्कृतमें करना अल्पश्रमसाध्य है; किन्तु गद्यपद्यमय 'प्रमाणविनिश्चय' प्रायः 'प्रमाणवार्त्तिक'के बराबर है, और उसे भोट भाषासे संस्कृतमें करना ज्यादा श्रमसाध्य है। साथ ही डर भी है, कि कहीं मूल ग्रंथ किसी जैन भंडार या तिब्बती विहारसे न निकल आवे, और इस प्रकार सारा श्रम व्यर्थ हो जावे।

अस्तु, धर्मकीर्त्तिके सातों निबन्धोंका न्यायके विद्यार्थियोंके सामने होना, अत्यावश्यक है, यह निर्विवाद है।

प्रमाणवार्त्तिक-भाष्य—जैसा कि मैंने ऊपर कहा, प्रमाणवार्त्तिक बहुत कठिन ग्रंथ है, शब्दाडंबरके कारण नहीं, बल्कि थोडेमें बहुत कह डालनेकी धर्मकीर्त्तिकी प्रवृत्तिके कारण। लेकिन, मूलको लगानेके लिये मनोरथनंदीकी वृत्तिसे सुंदर साधन नहीं मिल सकता था। यह वृत्ति हमारे भारतीय आचार्य तिब्बत ले गये थे। शायद भोट भाषामें अनुवाद करना चाहते थे। मगर वह तो नहीं हो सका; लेकिन इस तरह उन्होंने भारतमें अन्यान्य ग्रंथोंकी तरह नष्ट होनेसे उसे बचा लिया। वार्त्तिकके शब्दोंको समझनेके लिये मनोरथनन्दीकी यह वृत्ति बहुत उपयोगी है, इसमें सन्देह नहीं; मगर वार्त्तिकके भावोंके समझनेके लिये हमें और बडे ग्रंथकी जरूरत थी। धर्मकीर्त्तिके तृतीय परिच्छेद—स्वार्थानुमानको समझानेका काम उनकी स्ववृत्तिपर लिखी गई कर्णकगोमीकी विस्तृत टीकाने किया जो हमें तिब्बती विहारोंने प्रदान की[1]। अन्य तीन परिच्छेदोंपर प्रज्ञाकर गुप्तका भाष्य—वार्त्तिकालंकार—एक अनमोल निधि है। इस प्रकार आज वार्त्तिकके भावोंको समझनेके लिये हमारे पास ३५ हजार ग्रंथ[2] (श्लोक प्रमाण) मौजूद हैं।

---

१ किताबमहल (प्रयाग) द्वारा प्रकाशित (१९४४)।

२ मनोरथनंदी ८ हजार, स्ववृत्ति ३ हजार, कर्णकगोमी ८ हजार, वार्त्तिकालंकार १६ हजार।

संस्कृतके भाष्यकारोंमें—पतंजलि (१५० ई. पू. व्याकरण महाभाष्य), वात्स्यायन (ईसवी तीसरी सदी, न्यायभाष्य), शबर (चौथी सदी, मीमांसाभाष्य), व्यास (पांचवी सदी, योगभाष्य)—के बाद प्रज्ञाकरका नंबर पांचवा और विस्तारमें दूसरा है; मगर गद्य-पद्यमिश्रित शैली, लौकिक न्यायपूर्ण चुभती संस्कृत भाषा लिखनेवालोंमें प्रज्ञाकरका नाम सर्वप्रथम आता है—प्रज्ञाकरके भाष्यका तृतीयांश पद्यबद्ध है।

धर्मकीर्त्तिने अपने दूसरे निबंधोंके आरम्भमें 'विघ्नविनाशार्थ' मंगलाचरण लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझी। प्रमाणवार्त्तिकमें मंगलश्लोक[३] मिलता है, मगर वह मूलका है या स्ववृत्तिका यह निश्चित तौरसे नहीं कहा जा सकता। धर्मकीर्त्ति कुछ अधिक स्वतंत्र विचारके थे। विज्ञानवादके लिये जैसे उन्होंने बेगार काटी है, और बुद्धके सर्वज्ञत्वको जिस तरह टाल दिया है, उससे भी यही सिद्ध होता है। किन्तु, प्रज्ञाकर अधिक श्रद्धालु थे। उन्होंने इन दोनों विषयोंपर खूब लिखा है; और कितनी ही जगह वह नैयायिक नहीं कट्टर धर्माचार्यके रूपमें सामने आते हैं और अपने ग्रंथके अन्तवाले श्लोकको बेकार कर देते हैं—

हे वादिनो न खलु सन्ततपक्षपात-
द्वेषं मनः स्वपरपक्षकृतान्धकारम्।
तत्त्वप्रबोधनविधायि मनस्विवृत्तं,
मध्यस्थभाव इति तत्र मतिर्विधेया॥

दिग्नाग और धर्मकीर्त्तिके प्रति प्रज्ञाकरकी अगाध श्रद्धा थी। दिग्नागको एक जगह उन्होंने 'सकलन्यायवादिनां न्यायपरमेश्वर' (४।१३०) कहा और लिखा—

अन्तर्विन्ध्यनिवासिसान्द्रविततध्वान्तोद्धतध्वंसिधीः
अत्युच्चैरुदयाद्रिसन्ततशतप्रेङ्खन्मयूखोत्करः।
आचार्यो न विमार्गगः प्रतिहतो नान्यैरपूर्वो रविः,
नास्तव्यस्तगभस्तिहस्तविफलप्रारम्भसम्भावितः॥ (४।१३०)

और धर्मकीर्त्तिके बारेमें—

तीर्थ्याः श्रीधर्मकीर्त्तेर्मतमिदममलं तादृशामेव गम्यम्,
यादृग् व्याख्यातुमीशाः कथमिति सुचिरं चिन्त्यतामत्र हेतुः।

---

३ "विधूतकल्पनाजालगम्भीरोदारमूर्तये। नमः समन्तभद्राय समन्तस्फुरणत्विषे॥"

अस्मिँस्त्वभ्यासमात्राद् यदि भवति परस्तत्र तत्त्वार्थसिद्ध्यै,
युक्तोऽस्मिन् पक्षपातः स्वपरमतिरियं युक्त्ययुक्त्योः कृतार्था: ॥
—ग्रन्थान्ते

प्रज्ञाकरने अपने ग्रंथमें जगह जगह जो लौकिक न्याय (मुहावरे) प्रयुक्त किये हैं, उनके कुछ नमूने हैं—

'मृतेनापि कुक्कुटेन वासितव्यम्' (२।२९७)
'हरीतकीं प्राप्य देवता विरेचयिष्यति' (४।११७)
'अन्येन कर्कटिका भक्ष्यतेऽन्यस्य नासाच्छेदक्रिया' (४।१७०)
'कर्कटकसधर्माणो हि जनकभक्षा राजपुत्राः' (४।१८१)
'यस्यैव भोजनं तस्यैव भग्नभांडभागिता' (४।१८२)
'सोऽयं इतस्तटमितो व्याघ्रः' (४।१९२)
'पततः काशकुशावलम्बनम्' (४।१९७)

प्रज्ञाकरका समय—तिब्बती साहित्यमें उल्लिखित भारतपरंपरा प्रज्ञाकरको धर्मकीर्त्तिके प्रशिष्य तथा देवेन्द्रबुद्धिके शिष्य शाक्यबुद्धिका शिष्य बतलाती है। न्यासकार तथा प्रमाणसमुच्चयटीकाकार जिनेन्द्रबुद्धि भी प्रज्ञाकर गुप्तके गुरुभाई थे। एक दूसरेके खंडनमंडन तथा बौद्ध परंपराके[४] मिलानेसे भारतीय दार्शनिक ईसवी शताब्दियोंमें निम्नप्रकार पाये जाते हैं—

सदी	पाद	बौद्ध	ब्राह्मण	जैन
१	२	अश्वघोष, मातृचेट		
२	३	नागार्जुन		
	४	आर्यदेव, शंकरस्वामी	कणाद	
३	१		अक्षपाद	
	४		बादरायण, जैमिनि	
४	१		ईश्वरकृष्ण	
	२	संघभद्र		
	३	असंग, वसुबंधु	विन्ध्यवासी, वात्स्यायन	
	४	बुद्धघोष	शबर, माठर	
५	१		व्यास, प्रशस्तपाद	

४ देखो वादन्याय (परिशिष्ट)

सदी	पाद	बौद्ध	ब्राह्मण	जैन
५	२	दिङ्नाग	(कालिदास)	
	३		(आर्यभट्ट ४७६)	
६	२	बुद्धपालित	उद्द्योतकर	
	३	चंद्रकीर्त्ति, भाव्य, चंद्रगोमी	कुमारिल, अविद्ध-कर्ण, अध्ययन	
७	१	ईश्वरसेन		सिद्धसेन[S]
	२	धर्मकीर्त्ति, (गुणभद्र)	व्योमशिव, प्रभा-कर, उम्बेक	जिनभद्र[S] (६१०), मल्लवादी[D]
	३	देवेन्द्रबुद्धि	भर्तृहरि	देवनन्दी[D]
	४	शाक्यबुद्धि		
८	१	जिनेन्द्रबुद्धि, प्रज्ञाकरगुप्त, धर्माकर(=अर्चट), कल्याणरक्षित		
	२	रविगुप्त, धर्मोत्तर		
	३	यमारि		
	४	विनीतदेव, शान्तरक्षित	मंडन, जयराशिभट्ट	
९	१	कर्णकगोमी, शंकरानंद, कमलशील, जिनमित्र	शंकराचार्य(७८८-८२०), शालिक-नाथ,त्रिलोचन,शंकर	अकलंक[D], हरिभद्र[S]
	२		वाचस्पति (८४१), जयन्त	विद्यानंद[D], माणिक्यनंदी[D]
१०	१			सिद्धर्षि[S] (९०५)
	२	ज्ञानश्री, जयानन्त		देवसेन[D]
	४	जितारि, रत्नकीर्त्ति, मुक्ताकलश	उदयन (९८४), श्रीधर (९९१)	
११	१	दुर्वेकमिश्र, रत्नाकर-शांति, रत्नवज्र, अशोक	पार्थसारथी	अभयदेव[S], प्रभाचंद्र[D], शांत्याचार्य[S], जिनेश्वर[S]
१२	४	मोक्षाकरगुप्त(११२७-१२२५), शाक्यश्रीभद्र	गंगेश (११७५), श्रीहर्ष	

भोट भाषामें अनुवाद– भोट भाषामें बौद्ध न्यायके ६८ ग्रंथोंके अनुवाद हुये। सबसे पुराने अनुवाद नवीं सदीमें हुये[५], उनकी संख्या १६ है, और ग्रंथ भी छोटे छोटे हैं। अन्तिम अनुवाद तेरहवीं सदीमें अधिकतर स-स्क्य महन्त राजोंके कालमें हुये, और इनकी संख्या चार है, यद्यपि इनमें तीन दिग्नागके ग्रंथ या उनपर टीका होनेसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। न्यायके ग्रंथोंके अनुवादका सुनहला काल है ग्यारहवीं सदीका उत्तरार्ध। इन्हीं पचास वर्षोंमें पश्चिमी तिब्बत (मानसरोवर गूगे) के राजाओंकी संरक्षकतामें न्यायके अधिकांश ग्रंथोंका अनुवाद हुआ। तत्त्वसंग्रह, तत्त्वसंग्रहपंजिका, कितनी ही टीकाओं, भाष्य तथा भाष्य-टीकाओंके साथ प्रमाणवार्त्तिक, प्रमाणविनिश्चय (टीकायें भी) इसी समय भाषान्तरित की गईं। प्रज्ञाकर गुप्तके भाष्यके अनुवादक थे कश्मीरी पंडित भव्यराज और लोचव (तिब्बती पंडित) ङोग्‌निवासी ब्यो-ल्दन्-शेस्-रब्। पीछे इसे पंडित कुमारश्री और लोचव फग्स्-प-शेस्-रब्‌ने फिरसे दुहराया। जहाँतक मूलकी सर्वतोभावेन रक्षा करनेका सवाल है, तिब्बती अनुवाद अपना सानी नहीं रखते। तो भी अनुवादसे संस्कृतकी प्रतिके मिलानेसे दोनोंमें कहीं कहीं कुछ पंक्तियां घटी-बढी मिलती हैं, जो शायद आदर्श प्रतिके कारण हो।

हस्तलेख– इन ग्रंथोंके अनुवादका केन्द्र पश्चिमी तिब्बत रहा है, जहाँपर उस वक्तका विहार थोलिङ्‌ आज भी मौजूद है। ऐसी अवस्थामें अधिक आशा की जा सकती थी, कि संस्कृत प्रतियां वहीं मिलें; मगर जान पडता है, तेरहवीं सदीमें मध्य तिब्बतके भाग जागनेके साथ सभी चीजें उठकर वहीं चली गईं, भाष्यकी दोनों हस्तलिखित प्रतियाँ हमें स-स्क्य विहारमें मिलीं। जिस वक्त भारतसे बौद्धधर्मका सूर्य अस्त हो रहा था, उस वक्त मध्य तिब्बतके स-स्क्य विहारका सितारा बुलन्द हो रहा था। अन्तिम भारतीय संघराज शाक्यश्रीभद्र विक्रमशिलाके ध्वंसके बाद कुछ समय बंगालमें धक्का खाते नेपाल होते १२०३ में स-स्क्य पहुँचे थे। साथमें उनके शिष्योंमें दानशील और विभूतिचंद्र भी थे। भाष्यके तीन परिच्छेदोंमेंसे डेढको विभूतिने स्वयं 'उत्तर' में लिखा था। 'उत्तर'से उनका मतलब भोट (तिब्बत) देशसे है। अभी भारतमें तालपत्रोंका युग था, मगर तिब्बतमें चीनसे कभीका कागज पहुँच चुका था। विभूतिचंद्रने २७ इंच लम्बे ४ इंच चौडे मटमैले कागजके साढे ५८ पत्रोंपर पुस्तकको लिखा है। मागधी प्रभावके कारण अक्सर उन्होंने श-स और न-ण की गलती की है।

दूसरी प्रति दानशीलकी है। इसमें प्रायः २२ इंच लंबे तथा दो इंच चौडे २१८ तालपत्र हैं। यह उन पुस्तकोंमें है, जिन्हें शाक्यश्रीभद्र और उनके साथी नालंदा और विक्रमशिलाके भस्म होते विहारोंसे बचाकर अपने साथ ले गये थे। दानशीलने कई जगह इसमें 'दानशीलस्य पुस्तिका' लिखा है, और अक्षरके भेदसे जान पडता है कि इसे तीन अलग अलग हाथोंने लिखा था। पहिले ४७ पत्रे सुंदर अक्षरोंमें लिखे गये हैं, बीचमें (४८–८३) खंडित अंशको शायद दानशील ही ने स्वयं लिखकर पूरा किया, अन्तिम (८४–२१८) पत्रे दूसरे हाथके हैं।

प्रज्ञाकर गुप्तका भाष्य साढी सात शताब्दियाँ बाहर रहकर अब आजके भारतमें प्रकाशित होनेके लिये आया है। प्रज्ञाकर गुप्तकी एक पुस्तक 'सहालम्बनिर्णय' (स्तन्-ऽग्युर ११२।१९) का भोट भाषानुवाद उपलभ्य है। भाष्यपर भी जयानन्त (१८ हजार) और यमारि (२६ हजार) की विस्तृत टीकायें तिब्बती भाषामें मौजूद हैं, लेकिन वे मूल संस्कृत रूपमें शायद सदाके लिये नष्ट हो गई हैं। 'शायद' ही कहना होगा, क्योंकि तिब्बतके कोने कोने तथा उसके स्तूपों और मूर्त्तियोंके उदरको पूरी तरह ढूँढा नहीं जा चुका है और न हमारे यहाँके जैन भंडारोंकी ही पूरी तौरसे छानबीन हुई है।

[नोट — भारतीय विद्या भवनकी ओरसे इस महान् ग्रंथका प्रकाशन करनेके लिये महापंडित राहुलजीने इसे भवनको समर्पण किया है। हम इसके प्रकाशनका कार्य यथाशक्य शीघ्र ही प्रारंभ करना चाहते हैं। —संपादक।]

*

पावा और काकन्दी

जिस समय (१९३० ई.) मैंने 'बुद्धचर्या' लिखी, उस वक्त ख्याल आया था कि इसी प्रकारकी एक 'वर्धमानचर्या' या 'महावीरचर्या' लिखी जाय, जिसमें महावीरके चरितके साथ जैन आगमोंमें प्राप्य तत्कालीन भूगोल, इतिहास, समाजके बारेमें सभी सामग्रीको जमा कर दिया जाय, मगर अभीतक वैसा कोई ग्रंथ नहीं लिखा गया। पंडित कल्याणविजयजी गणि अपने 'श्रमण भगवान् महावीर' के लिखनेके वास्ते उस सारी सामग्रीसे गुजरे, मगर उन्होंने सिर्फ धार्मिक भक्त पाठकोंका ख्याल कर उसमेंसे अधिक अंशको छोड दिया; और जिसे इस्तिमाल भी किया, उसे अपने शब्दोंमें करके। इससे उसका ऐतिहासिक मूल्य बहुत कम हो गया। बौद्ध पिटकोंकी भाँति जैन आगम भी बुद्ध-महावीर कालीन उत्तरीय भारतके इतिहास, भूगोल, समाजसंबंधी भारी सामग्री अपने

भीतर छिपाये हुये हैं, मगर अभी उन्हें एकत्रित करनेका प्रयत्न नहीं किया गया। पालीकी ऐसी सामग्रीको डाक्टर मलालशेखर और डाक्टर विमलाचरण लाहाने एकत्रित किया है, मगर जैन आगमोंके बारेमें उस तरहका कोई विस्तृत नामकोश (सविवरण) तैयार नहीं हुआ।

पावा – उक्त गणिजीने अपने ग्रंथमें कितने ही तत्कालीन भौगोलिक नामोंका आधुनिक परिचय दिया है। पाली पिटक और जैन आगम अधिकतर एक ही समकालीन भौगोलिक स्थानोंका वर्णन करते हैं, इसलिये उनके तुलनात्मक अध्ययनसे हम ज्यादा सत्यके समीप पहुँच सकते हैं; जैसा कि गणिजीने महावीरकी जन्मभूमिको वैशाली (आधुनिक बलिया-बसाढ, जिला मुजफ्फरपुर) निश्चित करके किया है। किन्तु पावाके बारेमें अब भी उसी मगधकी आजवाली पावापुरीका समर्थन कर रहे हैं। मल्लमण (सारन, गोरखपुर जिले) में ही वह पावा थी, यह बात तो उनके इस वाक्यसे भी साफ हो जाती है 'उस समय [पावाके] राजा हस्तिपालके रज्जुग-सभाभवन [= संस्थागार] में भगवान् महावीरकी अन्तिम उपदेश सभा हुई, जहाँ अनेक गण्यमान्य व्यक्ति सम्मिलित हुये थे, जिनमें काशी-कोशलके नौ लिच्छवी तथा नौ मल्ल एवं अठारह गणराज विशेष उल्लेखनीय हैं।' यदि मगधकी पावामें यह बात हुई होती तो वहाँ मगध या गंगाके दक्षिणके दूसरे राजाओंके आनेका जिक्र होता। काशी-कोशल, मल्ल और लिच्छवी राजाओंका नाम बता रहा है, कि पावा गंगाके दक्षिणमें नहीं उत्तरमें थी, और वह मल्लोंकी ही पावा थी, जिसकी पुष्टि दीर्घनिकायके 'संगीति परियाय–' तथा 'सामगाम-सुत्तों' से होती है। पीछेकी विश्रृंखलित जैनपरंपराने जैसे महावीरकी जन्मभूमिको वैशालीसे हटाकर गंगाके दक्षिणमें भेज दिया, वैसे ही निर्वाण-स्थानके बारेमें भी किया।

काकन्दी – काकन्दीको गणिजी गोरखपुर जिलेके नूनखार स्टेशनके पासका खुँखुंदो[1] गाँव मानते हैं, अर्थात् काकन्दी पुराने मल्लदेशमें थी। किन्तु काकन्दी मुँगेर जिलेका वही काकन गाँव है, जिसे आज भी साधारण जैन गृहस्थ मानते हैं। काकनसे थोडी दूर पूरब नदीके दाहिने तटपर अवस्थित कोहरी लोगोंके गाँवमें काकनसे ले जाई गई एक देवीकी मूर्त्ति है, जिसपर ग्यारहवीं-बारहवीं सदीके अक्षरोंमें काकन्दी लिखा हुआ मौजूद है।

–श्री राहुल सांकृत्यायन।

---

१ श्रमण भगवान् महावीर, पृष्ठ २६१

प्रतिभामूर्ति सिद्धसेन दिवाकर

ले० – श्रीयुत पं. सुखलालजी

*

भारतीय दर्शन अध्यात्मलक्षी हैं। पश्चिमीय दर्शनोंकी तरह वे मात्र बुद्धि-प्रधान नहीं हैं। उनका उद्गम ही आत्मशुद्धिकी दृष्टिसे हुआ है। वे आत्म-तत्त्वको और उसकी शुद्धिको लक्ष्यमें रख कर ही बाह्य जगतका भी विचार करते हैं। इसलिए सभी आस्तिक भारतीय दर्शनोंके मौलिक तत्त्व एकसे ही हैं।

जैन दर्शनका स्रोत भगवान् महावीर और पार्श्वनाथके पहलेसे ही किसी न किसी रूपमें चला आ रहा है यह वस्तु इतिहास सिद्ध है। जैन दर्शनकी दिशा चारित्र-प्रधान है जो कि मूल आधार आत्म-शुद्धिकी दृष्टिसे विशेष संगत है। उसमें ज्ञान, भक्ति आदि तत्त्वोंका स्थान अवश्य है पर वे सभी तत्त्व चारित्र-पर्यवसायी हों तभी जैनत्वके साथ संगत हैं। केवल जैन परं-परामें ही नहीं बल्कि वैदिक, बौद्ध आदि सभी परंपराओंमें जब तक आध्या-त्मिकताका प्राधान्य रहा या वस्तुतः उनमें आध्यात्मिकता जीवित रही तब तक उन दर्शनोंमें तर्क और वादका स्थान होते हुए भी उसका प्राधान्य न रहा। इसीलिए हम सभी परम्पराओंके प्राचीन ग्रन्थोंमें उतना तर्क और वाद-ताण्डव नहीं पाते हैं जितना उत्तरकालीन ग्रन्थोंमें।

आध्यात्मिकता और त्यागकी सर्वसाधारणमें निःसीम प्रतिष्ठा जम चुकी थी। अतएव उस उस आध्यात्मिक पुरुषके आस पास सम्प्रदाय भी अपने आप जमने लगते थे। जहाँ सम्प्रदाय बने कि फिर उनमें मूल तत्त्वमें भेद न होने पर भी छोटी छोटी बातोंमें और अवान्तर प्रश्नोंमें मतभेद और तज्जन्य विवादोंका होता रहना स्वाभाविक है। जैसे जैसे सम्प्रदायोंकी नींव गहरी होती गई और वे फैलने लगे वैसे वैसे उनमें परस्पर विचार-संघर्ष भी बढता चला। जैसे अनेक छोटे बड़े राज्योंके बीच चढ़ा-ऊतरीका संघर्ष होता रहता है। राजकीय संघर्षोंने यदि लोकजीवनमें क्षोभ किया है तो उतना ही क्षोभ बल्कि उससे भी अधिक क्षोभ साम्प्रदायिक संघर्षने किया है। इस संघर्षमें पड़ने के कारण सभी आध्यात्मिक दर्शन तर्कप्रधान बनने लगे। कोई आगे तो कोई पीछे पर सभी दर्शनोंमें तर्क और न्यायका बोलबाला शुरु हुआ। प्राचीन समयमें जो आन्वीक्षिकी एक सर्व साधारण खास विद्या थी उसका आधार लेकर

धीरे धीरे सभी सम्प्रदायोंने अपने दर्शनके अनुकूल आन्वीक्षिकी की रचना की । मूल आन्वीक्षिकी विद्या वैशेषिक दर्शनके साथ घुल मिल गई पर उसके आधारसे कभी बौद्ध-परम्पराने तो कभी मीमांसकोंने, कभी सांख्यने तो कभी जैनोंने, कभी अद्वैत वेदान्तने तो कभी अन्य वेदान्त परम्पराओंने अपनी स्वतन्त्र आन्वीक्षिकी की रचना शुरु कर दी । इस तरह इस देशमें प्रत्येक प्रधान दर्शनके साथ एक या दूसरे रूप में तर्कविद्याका सम्बन्ध अनिवार्य हो गया ।

जब प्राचीन आन्वीक्षिकीका विशेष बल देखा तब बौद्धोंने संभवतः सर्व प्रथम अलग स्वानुकूल आन्वीक्षिकी का खाका तैयार करना शुरु किया । संभवतः फिर मीमांसक ऐसा करने लगे । जैन सम्प्रदाय अपनी मूल प्रकृतिके अनुसार अधिकतर संयम, त्याग, तपस्या आदि पर विशेष भार देता आ रहा था; पर आसपासके वातावरणने उसे भी तर्कविद्याकी ओर झुकाया । जहाँ तक हम जान पाये हैं, उससे माल्रम पड़ता है कि विक्रमकी ५ वीं शताब्दी तक जैन दर्शनका खास झुकाव स्वतन्त्र तर्क विद्याकी ओर न था । उसमें जैसे जैसे संस्कृत भाषाका अध्ययन प्रबल होता गया वैसे वैसे तर्क विद्याका आकर्षण भी बढ़ता गया । पांचवीं शताब्दीके पहलेके जैन वाङ्मय और इसके बादके जैन वाङ्मयमें हम स्पष्ट भेद देखते हैं । अब देखना यह है कि जैन वाङ्मयके इस परिवर्तनका आदि सूत्रधार कौन है ? और उसका स्थान भारतीय विद्वानोंमें कैसा है ?

आदि जैन तार्किक

जहाँ तक मैं जानता हूँ, जैन परम्परामें तर्क विद्याका और तर्कप्रधान संस्कृत वाङ्मयका आदि प्रणेता है सिद्धसेन दिवाकर । मैंनें दिवाकरके जीवन और कार्योंके सम्बन्ध में [1]अन्यत्र विस्तृत ऊहापोह किया है; यहाँ तो यथासंभव संक्षेपमें उनके व्यक्तित्वका सोदाहरण परिचय कराना है ।

सिद्धसेनका सम्बन्ध उनके जीवन कथानकोंके अनुसार उज्जैनी और उसके अधिप विक्रमके साथ अवश्य रहा है, पर वह विक्रम कौन सा यह एक विचारणीय प्रश्न है । अभी तक के निश्चित प्रमाणों से जो सिद्धसेनका

---

१ देखिए गुजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित सन्मतितर्कका गुजराती भाषान्तर, भाग ६, तथा उसीका इंग्लिश भाषान्तर, श्वेताम्बर जैन कोन्फ्रन्स, पायधुनी बोम्बे, द्वारा प्रकाशित ।

समय विक्रमकी पाँचवीं और छट्ठी शताब्दीका मध्य जान पड़ता है, उसे देखते हुए अधिक संभव यह है कि उज्जैनीका वह राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय या उसका पौत्र स्कन्दगुप्त होगा। जो कि विक्रमादित्य रूपसे प्रसिद्ध रहे।

सभी नये पुराने उल्लेख यही कहते हैं कि सिद्धसेन जन्मसे ब्राह्मण थे। यह कथन बिलकुल सत्य जान पड़ता है, क्यों कि उन्होंने प्राकृत जैन वाङ्मयको संस्कृतमें रूपान्तरित करनेका जो विचार निर्भयतासे सर्व प्रथम प्रकट किया वह ब्राह्मण-सुलभ शक्ति और रुचिका ही द्योतक है। उन्होंने उस युगमें जैन दर्शन तथा दूसरे दर्शनोंको लक्ष्य करके जो अत्यन्त चमत्कारपूर्ण संस्कृत पद्यबद्ध कृतियोंकी देन दी है वह भी जन्मसिद्ध ब्राह्मणत्वकी ही द्योतक है। उनकी जो कुछ थोड़ी बहुत कृतियाँ प्राप्य हैं उनका एक एक पद और वाक्य उनकी कवित्व विषयक, तर्क विषयक, और समग्र भारतीय दर्शन विषयक तलस्पर्शी प्रतिभाको व्यक्त करता है।

आदि जैन कवि एवं आदि जैन स्तुतिकार

हम जब उनका कवित्व देखते हैं तब अश्वघोष, कालिदास आदि याद आते हैं। ब्राह्मण-धर्ममें प्रतिष्ठित आश्रम व्यवस्थाके अनुगामी कालिदासने लग्नभावनाका औचित्य बतलानेके लिए लग्नकालीन नगर प्रवेशका प्रसंग लेकर उस प्रसंगसे हर्षोत्सुक स्त्रियोंके अवलोकन कौतुकका जो मार्मिक शब्द-चित्र खींचा है वैसा चित्र अश्वघोषके काव्यमें और सिद्धसेनकी स्तुतिमें भी है। अन्तर केवल इतना ही है कि अश्वघोष और सिद्धसेन दोनों श्रमणधर्ममें प्रतिष्ठित एक मात्र त्यागाश्रमके अनुगामी हैं इसलिए उनका वह चित्र वैराग्य और गृहत्यागके साथ मेल खाए ऐसा है। अतः उसमें बुद्ध और महावीरके गृहत्यागसे खिन्न और उदास स्त्रियोंकी शोकजनित चेष्टाओंका वर्णन है नहीं कि हर्षोत्सुक स्त्रियोंकी चेष्टाओंका। तुलनाके लिए नीचेके पद्योंको देखिए।

अपूर्वशोकोपनतक्लमानि नेत्रोदकक्लिन्नविशेषकाणि।
विविक्तशोभान्यबलाननानि विलापदाक्षिण्यपरायणानि॥
मुग्धोन्मुखाक्षाण्युपदिष्टवाक्यसंदिग्धजल्पानि पुरःसराणि।
बालानि मार्गाचरणक्रियाणि प्रलंबवस्त्रान्तविकर्षणानि॥
अकृत्रिमस्नेहमयप्रदीर्घदीनेक्षणाः साश्रुमुखाश्च पौराः।
संसारसात्म्यज्ञजनैकबन्धो न भावशुद्धं जगृहुर्मनस्ते॥

(सिद्ध० ५-१०,११,१२)

अतिप्रहर्षादथ शोकमूर्छिताः कुमारसंदर्शनलोललोचनाः ।
गृहाद्विनिश्चक्रमुराशया स्त्रियः शरत्पयोदादिव विद्युतश्चलाः ॥
विलम्बकेश्यो मलिनांशुकाम्बरा निरञ्जनैर्बाष्पहतेक्षणैर्मुखैः ।
स्त्रियो न रेजुर्मृजया विनाकृता दिवीव तारा रजनीक्षयारुणाः ॥
अरक्तताम्रैश्चरणैरनूपुरैरकुण्डलैरार्जवकन्धरैर्मुखैः ।
स्वभावपीनैर्जघनैरमेखलैरहारयोक्त्रैर्मुषितैरिव स्तनैः ॥
(अश्व० बुद्ध० सर्ग ८-२०,२१,२२)

तस्मिन् मुहूर्ते पुरसुन्दरीणामीशानसंदर्शनलालसानाम् ।
प्रासादमालासु बभूवुरित्थं त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि ॥ ५६ ॥
विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा ।
तथैव वातायनसंनिकर्षं ययौ शलाकामपरा वहन्ती ॥ ५९ ॥
तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम् ।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन् ॥ ६२ ॥
(कालि० कुमार० सर्ग ७.)

सिद्धसेनने गद्यमें कुछ लिखा हो तो पता नहीं है। उन्होंने संस्कृतमें बत्तीस बत्तीसियाँ रची थीं, जिनमेंसे इक्कीस अभी लभ्य हैं। उनका प्राकृतमें रचा 'सम्मति प्रकरण' जैनदृष्टि और जैन मन्तव्योंको तर्क शैलीसे स्पष्ट करने तथा स्थापित करनेवाला जैन वाङ्मयमें सर्व प्रथम ग्रन्थ है। जिसका आश्रय उत्तरवर्ती सभी श्वेताम्बर दिगम्बर विद्वानोंने लिया है।

संस्कृत बत्तीसियोंमें शुरुकी पांच और ग्यारहवीं स्तुतिरूप है। प्रथमकी पाँचमें महावीरकी स्तुति है जब कि ग्यारहवींमें किसी पराक्रमी और विजेता राजाकी स्तुति है। ये स्तुतियाँ अश्वघोष समकालीन बौद्ध स्तुतिकार मातृचेट के 'अध्यर्धशतक,' 'चतुःशतक' तथा पश्चाद्वर्ती आर्यदेवके चतुःशतककी शैलीकी याद दिलाती हैं। सिद्धसेन ही जैन परम्पराका आद्य संस्कृत स्तुतिकार है। आचार्य हेमचन्द्रने जो कहा है 'क्व सिद्धसेनस्तुतयो महार्था अशिक्षितालापकला क्व चैषा' वह बिलकुल सही है। स्वामी समन्तभद्रका 'स्वयंभूस्तोत्र' जो एक हृदयहारिणी स्तुति है और 'युक्त्यनुशासन' नामक दो दार्शनिक स्तुतियां ये सिद्धसेनकी कृतियोंका अनुकरण जान पड़ती हैं। हेमचन्द्रने भी उन दोनोंका अपनी दो बत्तीसियोंके द्वारा अनुकरण किया है।

बारहवीं शदीके आचार्य हेमचन्द्रने अपने व्याकरणमें उदाहरणरूपसे लिखा है कि 'अनुसिद्धसेनं कवयः'। इसका भाव यदि यह हो कि जैन परम्पराके संस्कृत कवियोंमें सिद्धसेनका स्थान सर्व प्रथम है (समयकी दृष्टिसे

और गुणवत्ताकी दृष्टिसे अन्य सभी जैन कवियोंका स्थान सिद्धसेनके बाद आता है) तो वह कथन आज तकके जैनवाङ्मयकी दृष्टिसे अक्षरशः सत्य है। उनकी स्तुति और कविताके कुछ नमूने देखिये—

स्वयंभुवं भूतसहस्रनेत्रमनेकमेकाक्षरभावलिङ्गम्।
अव्यक्तमव्याहतविश्वलोकमनादिमध्यान्तमपुण्यपापम्॥
समन्तमर्वाक्षगुणं निरक्षं स्वयंप्रभं सर्वगतावभासम्।
अतीतसंख्यानमनंतकल्पमचिन्त्यमाहात्म्यमलोकलोकम्॥
कुहेतुतर्कोपरतप्रपञ्चसद्भावशुद्धाप्रतिवादवादम्।
प्रणम्य सच्छासनवर्धमानं स्तोष्ये यतीन्द्रं जिनवर्धमानम्॥

स्तुति का यह प्रारम्भ उपनिषद्की भाषा और परिभाषामें विरोधालङ्कार-गर्भित है।

एकान्तनिर्गुणभवान्तमुपेत्य सन्तो यत्नार्जितानपि गुणान् जहति क्षणेन।
क्लीवादरस्त्वयि पुनर्व्यसनोल्बणानि भुंक्ते चिरं गुणफलानि हितापनष्टः॥

इसमें सांख्य परिभाषाके द्वारा विरोधाभास गर्भित स्तुति है।

क्वचिन्नियतिपक्षपातगुरु गम्यते ते वचः,
स्वभावनियताः प्रजाः समयतंत्रवृत्ताः क्वचित्।
स्वयं कृतभुजः क्वचित् परकृतोपभोगाः पुन-
र्नवा विषदवाददोषमलिनोऽस्यहो विस्मयः॥

इसमें श्वेताश्वतर उपनिषद्के भिन्न भिन्न कारणवादके समन्वय द्वारा वीरके लोकोत्तरत्वका सूचन है।

कुलिशेन सहस्रलोचनः सविता चांशुसहस्रलोचनः।
न विदारयितुं यदीश्वरो जगतस्तद्भवता हतं तमः॥

इसमें इन्द्र और सूर्यसे उत्कृष्टत्व दिखाकर वीरके लोकोत्तरत्वका व्यंजन किया है।

न सदःसु वदन्नशिक्षितो लभते वक्तृविशेषगौरवम्।
अनुपास्य गुरुं त्वया पुनर्जगदाचार्यकमेव निर्जितम्॥

इसमें व्यतिरेकके द्वारा स्तुतिकी है कि हे भगवन्! आपने गुरुसेवाके विना किये भी जगतका आचार्य पद पाया है जो दूसरोंके लिए संभव नहीं।

उदधाविव सर्वसिन्धवः समुदीर्णास्त्वयि सर्वदृष्टयः।
न च तासु भवानुदीक्ष्यते प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः॥

इसमें सरिता और समुद्रकी उपमाके द्वारा भगवान्में सब दृष्टियोंके अस्तित्वका कथन है जो अनेकान्तवादकी जड़ है।

गतिमानथ चाक्रियः पुमान् कुरुते कर्म फलैर्न युज्यते ।
फलभुक् च न चार्जनक्षमो विदितो यैर्विदितोऽसि तैर्मुने ॥

इसमें विभावना, विशेषोक्तिके द्वारा आत्म-विषयक जैन मन्तव्य प्रकट किया है ।

किसी पराक्रमी और विजेता नृपतिके गुणोंकी समग्र स्तुति लोकोत्तर कवित्व पूर्ण है । एक ही उदाहरण देखिए–

एकां दिशं व्रजति यद्गतिमद्गतं च तत्रस्थमेव च विभाति दिगन्तरेषु ।
यातं कथं दशदिगन्तविभक्तमूर्ति युज्येत वक्तुमुत वा न गतं यशस्ते ॥

*

आद्य जैन वादी

दिवाकर आद्य जैन वादी हैं । वे वादविद्याके संपूर्ण विशारद जान पड़ते हैं, क्यों कि एक तरफसे उन्होंने सातवीं वादोपनिषद् बत्तीसीमें वादकालीन सब नियमोपनियमोंका वर्णन करके कैसे विजय पाना यह बतलाया है तो दूसरी तरफसे आठवीं बत्तीसीमें वादका पुरा परिहास भी किया है ।

दिवाकर आध्यात्मिक पथके त्यागी पथिक थे और वाद कथाके भी रसिक थे । इसलिए उन्हें अपने अनुभवसे जो आध्यात्मिकता और वाद-विवादमें असंगति दिख पड़ी उसका मार्मिक चित्रण खींचा है । वे एक मांस-पिण्डमें लुब्ध और लड़नेवाले दो कुत्तोंमें तो कभी मैत्रीकी संभावना कहते हैं; पर दो सहोदर भी वादियोंमें कभी सख्यका संभव नहीं देखते । इस भावका उनका चमत्कारी उद्गार देखिये

ग्रामान्तरोपगतयोरेकामिषसंगजातमत्सरयोः ।
स्यात् सौख्यमपि शुनोर्भ्रात्रोरपि वादिनोर्न स्यात् ॥ ८, १.

वे स्पष्ट कहते हैं कि कल्याणका मार्ग अन्य है और वादीका मार्ग अन्य; क्यों कि किसी मुनिने वाग्युद्धको शिवका उपाय नहीं कहा है ।

अन्यत एव श्रेयांस्यन्यत एव विचरन्ति वादिवृषाः ।
वाक्संरंभं क्वचिदपि न जगाद मुनिः शिवोपायम् ॥

आद्य जैन दार्शनिक व आद्य सर्वदर्शनसंग्राहक

दिवाकर आद्य जैन दार्शनिक तो है ही, पर साथ ही वे आद्य सर्व भारतीय दर्शनोंके संग्राहक भी हैं । सिद्धसेनके पहले किसी भी अन्य भारतीय विद्वान्ने संक्षेपमें सभी भारतीय दर्शनोंका वास्तविक निरूपण यदि किया हो तो

उसका पता अभीतक इतिहासको नहीं है। एक वार सिद्धसेनके द्वारा सब दर्शनोंके वर्णनकी प्रथा प्रारम्भ हुई कि फिर आगे उसका अनुकरण किया जाने लगा। आठवीं सदीके हरिभद्रने 'षड्दर्शनसमुच्चय' लिखा, चौदहवीं सदीके माधवाचार्यने 'सर्वदर्शनसंग्रह' लिखा; जो सिद्धसेनके द्वारा प्रारम्य की हुई प्रथाका ही विकास है। जान पड़ता है सिद्धसेनने चार्वाक, मीमांसक आदि प्रत्येक दर्शनका वर्णन किया होगा, परन्तु अभी जो बत्तीसियां लभ्य हैं उनमें न्याय, वैशेषिक, सांख्य, बौद्ध, आजीवक और जैन दर्शनकी निरूपक बत्तीसियां ही हैं। जैन दर्शनका निरूपण तो एकाधिक बत्तीसियोंमें हुआ है। पर किसी भी जैन जैनेतर विद्वान् को आश्चर्य चकित करनेवाली सिद्धसेनकी प्रतिभाका स्पष्ट दर्शन तब होता है जब हम उनकी पुरातनत्व समालोचना विषयक और वेदान्त विषयक दो बत्तीसियोंको पढ़ते हैं। यदि स्थान होता तो उन दोनों ही बत्तीसियोंको में यहाँ पूर्ण रूपेण देता। मैं नहीं जानता कि भारतमें ऐसा कोई विद्वान् हुआ हो जिसने पुरातनत्व और नवीनत्वकी इतनी क्रान्तिकारिणी तथा हृदयहारिणी एवं तलस्पर्शिनी निर्भय समालोचना की हो। मैं ऐसे विद्वान् को भी नहीं जानता कि जिस अकेले ने एक बत्तीसीमें प्राचीन सब उपनिषदों तथा गीताका सार वैदिक और औपनिषद भाषामें ही शाब्दिक और आर्थिक अलङ्कार युक्त चमत्कारकारिणी सरणीसे वर्णित किया हो। जैन परम्परामें तो सिद्धसेनके पहले और पीछे आज तक ऐसा कोई विद्वान् हुआ ही नहीं है जो इतना गहरा उपनिषदोंका अभ्यासी रहा हो और औपनिषद भाषामें ही औपनिषद तत्त्वका वर्णन भी कर सके। पर जिस परम्परामें सदा एक मात्र उपनिषदोंकी तथा गीताकी प्रतिष्ठा है उस वेदान्त परम्पराके विद्वान् भी यदि सिद्धसेनकी उक्त बत्तीसीको देखेंगे तब उनकी प्रतिभाके कायल होकर यही कह उठेंगे कि आज तक यह ग्रन्थरत्न दृष्टिपथमें आनेसे क्यों रह गया। मेरा विश्वास है कि प्रस्तुत बत्तीसीकी ओर किसी भी तीक्ष्ण-प्रज्ञ वैदिक विद्वान् का ध्यान जाता तो वह उस पर कुछ न कुछ विना लिखे न रहता। मेरा यह भी विश्वास है कि यदि कोई मूल उपनिषदोंका साम्नाय अध्येता जैन विद्वान् होता तो भी उस पर कुछ न कुछ लिखता। जो कुछ हो, मैं तो यहाँ सिद्धसेन की प्रतिभा के निदर्शक रूपसे प्रथमके कुछ पद्य भाव सहित देता हूँ।

कभी कभी सम्प्रदायाभिनिवेश वश अपढ़ व्यक्ति भी, आजहीकी तरह उस समय भी विद्वानोंके सम्मुख चर्चा करनेकी धृष्टता करते होंगे । इस स्थिति-का मजाक करते हुए सिद्धसेन कहते हैं कि विना ही पढ़े पण्डितंमन्य व्यक्ति विद्वानोंके सामने बोलनेकी इच्छा करता है फिर भी उसी क्षण वह नहीं फट पड़ता तो प्रश्न होता है कि क्या कोई देवताएँ दुनियापर शासन करने वाली हैं भी सही ? अर्थात् यदि कोई न्यायकारी देव होता तो ऐसे व्यक्तिको तत्क्षण ही सीधा क्यों नहीं करता ।

यदशिक्षितपण्डितो जनो विदुषामिच्छति वक्तुमग्रतः ।
न च तत्क्षणमेव शीर्यते जगतः किं प्रभवन्ति देवताः ॥ (६. १)

विरोधी बढ़ जानेके भयसे सच्ची बात भी कहने में बहुत समालोचक हिचकिचाते हैं । इस भीरु मनोदशाका जवाब देते हुए दिवाकर कहते हैं कि पुराने पुरुषोंने जो व्यवस्था स्थिर की है क्या वह सोचने पर वैसी ही सिद्ध होगी ? अर्थात् सोचने पर उसमें भी त्रुटि दिखेगी तब केवल उन मृत पुरु-खोंकी जमी प्रतिष्ठाके कारण हाँ में हाँ मिलानेके लिए मेरा जन्म नहीं हुआ है । यदि विद्वेषी बढ़ते हों तो बढें ।

पुरातनैर्या नियता व्यवस्थितिस्तत्रैव सा किं परिचिन्त्य सेत्स्यति ।
तथेति वक्तुं मृतरूढगौरवादहन्न जातः प्रथयन्तु विद्विषः ॥ (६. २)

हमेशा पुरातन प्रेमी, परस्पर विरुद्ध अनेक व्यवहारोंको देखते हुए भी अपने इष्ट किसी एकको यथार्थ और बाकीको अयथार्थ करार देते हैं । इस दशासे ऊब कर दिवाकर कहते हैं कि–सिद्धान्त और व्यवहार अनेक प्रकार-के हैं, वे परस्पर विरुद्ध भी देखे जाते हैं । फिर उनमेंसे किसी एककी सिद्धिका निर्णय जल्दी कैसे हो सकता है ? तथापि यही मर्यादा है दूसरी नहीं ऐसा एकतरफ़ निर्णय कर लेना यह तो पुरातन प्रेमसे जड़ बने हुए व्यक्तिको ही शोभा देता है, मुझ जैसें को नहीं ।

बहुप्रकाराः स्थितयः परस्परं विरोधयुक्ताः कथमाशु निश्चयः ।
विशेषसिद्धावियमेव नेति वा पुरातनप्रेमजलस्य युज्यते ॥ (६. ४)

जब कोई नई चीज आई तो चटसे सनातन संस्कारी कह देते हैं कि, यह तो पुराना नहीं है । इसी तरह किसी पुरातन बातकी कोई योग्य समीक्षा करे तब भी वे कह देते हैं कि यह तो बहुत पुराना है, इसकी टीका न कीजिए ।

इस अविवेकी मानसको देख कर मालविकाग्निमित्रमें कालिदासको कहना पड़ा है कि—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

ठीक इसी तरह दिवाकरने भी भाष्यरूपसे कहा है कि—यह जीवित वर्तमान् व्यक्ति भी मरने पर आगेकी पिढ़ीकी दृष्टिसे पुराना होगा; तब वह भी पुरातनोंकी ही गिनतीमें आ जायगा। जब इस तरह पुरातनता अनवस्थित है अर्थात् नवीन भी कभी पुरातन है और पुराने भी कभी नवीन रहे; तब फिर अमुक वचन पुरातन कथित है ऐसा मान कर परीक्षा विना किए उस पर कौन विश्वास करेगा ?

जनोऽयमन्यस्य मृतः पुरातनः पुरातनैरेव समो भविष्यति ।
पुरातनेष्वित्यनवस्थितेषु कः पुरातनोक्तान्यपरीक्ष्य रोचयेत् ॥ (६. ५)

पुरातन प्रेमके कारण परीक्षा करनेमें आलसी बन कर कई लोग ज्यों ज्यों सम्यग् निश्चय कर नहीं पाते हैं त्यों त्यों वे उलटे मानों सम्यग् निश्चय कर लिया हो इतने प्रसन्न होते हैं और कहते हैं कि पुराने गुरु जन मिथ्याभाषी थोड़े हो सकते हैं ? मैं खुद मन्दमति हूँ उनका आशय नहीं समझता तो क्या हुआ ? ऐसा सोचने वालोंको लक्ष्यमें रख कर दिवाकर कहते हैं कि वैसे लोग आत्मनाशकी ओर ही दौड़ते हैं ।

विनिश्चयं नैति यथा यथालसस्तथा तथा निश्चितवत्प्रसीदति ।
अवन्ध्यवाक्या गुरवोऽहमल्पधीरिति व्यवस्यन् स्ववधाय धावति ॥

शास्त्र और पुराणोंमें देवी चमत्कारों और असम्बद्ध घटनाओंको देख कर जब कोई उनकी समीक्षा करता है तब अन्धश्रद्धालु कह देते हैं, कि भाई ! हम ठहरे मनुष्य, और शास्त्र तो देव रचित हैं; फिर उनमें हमारी गति ही क्या ? इस सर्व सम्प्रदाय-साधारण अनुभवको लक्ष्यमें रख कर दिवाकर कहते हैं, कि हम जैसे मनुष्यरूप धारियोंने ही, मनुष्योंके ही चरित, मनुष्य अधिकारीके ही निमित्त ग्रथित किये हैं । वे परीक्षामें असमर्थ पुरुषोंके लिए अपार और गहन भले ही हों पर कोई हृदयवान् विद्वान् उन्हें अगाध मान कर कैसे मान लेगा ? वह तो परीक्षापूर्वक ही उनका स्वीकार-अस्वीकार करेगा ।

मनुष्यवृत्तानि मनुष्यलक्षणैर्मनुष्यहेतोर्नियतानि तैः स्वयम् ।
अलब्धपाराण्यलसेषु कर्णवानगाधपाराणि कथं ग्रहीष्यति ॥ (६. ७)

हम सभीका यह अनुभव है कि कोई सुसंगत अद्यतन मानवकृति हुई तो उसे पुराणप्रेमी नहीं छूते जब कि वे ही किसी अस्त-व्यस्त और असंबद्ध तथा समझमें न आ सके ऐसे विचारवाले शास्त्रके प्राचीनोंके द्वारा कहे जानेके कारण प्रशंसा करते नहीं अघाते । इस अनुभवके लिए दिवाकर इतना ही कहते हैं कि वह मात्र स्मृतिमोह है, उसमें कोई विवेकपटुता नहीं ।

यदेव किंचिद्विषमप्रकल्पितं पुरातनैरुक्तमिति प्रशस्यते ।
विनिश्चिताऽप्यद्य मनुष्यवाक्कृतिर्न पठ्यते यत्स्मृतिमोह एव सः ॥ (६-)

हम अंतमें इस परीक्षा-प्रधान बत्तीसीका एक ही पद्य भावसहित देते हैं—

न गौरवाक्रान्तमतिर्विगाहते किमत्र युक्तं किमयुक्तमर्थतः ।
गुणावबोधप्रभवं हि गौरवं कुलांगनावृत्तमतोऽन्यथा भवेत् ॥ (६–२८)

भाव यह है कि लोग किसी न किसी प्रकारके बड़प्पनके आवेशसे, प्रस्तुत में क्या युक्त है और क्या अयुक्त है, इसे तत्त्वतः नहीं देखते। परन्तु सत्य बात तो यह है कि बड़प्पन गुणदृष्टिमें ही है। इसके सिवायका बड़प्पन निरा-कुलाङ्गनाका चरित है । कोई अङ्गना मात्र अपने खानदानके नाम पर सद्वृत्त सिद्ध नहीं हो सकती ।

अन्तमें यहां मैं सारी उस वेदान्त विषयक द्वात्रिंशिकाको मूल मात्र दिए देता हूँ । यद्यपि इसका अर्थ द्वैतसांख्य और वेदान्त उभय दृष्टिसे होता है तथापि इसकी खूबी मुझे यह भी जान पड़ती है कि इसमें औपनिषद भाषामें जैन तत्त्वज्ञान भी अबाधित रूपसे कहा गया है । शब्दोंका सेतु पार करके यदि कोई सूक्ष्म प्रज्ञ अर्थ गाम्भीर्यका स्पर्श करेगा तो इसमेंसे बौद्ध दर्शनका भाव भी पकड़ सकेगा । अतएव इसके अर्थका विचार मैं स्थान-संकोचके कारण पाठकोंके ऊपर ही छोड़ देता हूँ । प्राच्य उपनिषदोंके तथा गीताके विचारों और वाक्योंके साथ इसकी तुलना करनेकी मेरी इच्छा है, पर इसके लिए अन्य स्थान उपयुक्त होगा ।

अजः पतंगः शबलो विश्वमयो धत्ते गर्भमचरं चरं च ।
योऽस्याध्यक्षमकलं सर्वधान्यं वेदातीतं वेदवेद्यं स वेद ॥ १ ॥
स एवैतद्विश्वमधितिष्ठत्येकस्तमेवैनं विश्वमधितिष्ठत्येकम् ।
स एवैतद्वेद यदिहास्ति वेद्यं तमेवैतद्वेद यदिहास्ति वेद्यम् ॥ २ ॥
स एवैतद्भुवनं सृजति विश्वरूपस्तमेवैतत्सृजति भुवनं विश्वरूपम् ।
न चैवैनं सृजति कश्चिन्नित्यजातं न चासौ सृजति भुवनं नित्यजातम् ॥ ३ ॥
एकायनशतात्मानमेकं विश्वात्मानममृतं जायमानम् ।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति यस्तं च वेद किमृचा करिष्यति ॥ ४ ॥

सर्वद्वारानिभृत (ता) मृत्युपाशैः स्वयंप्रभानेकसहस्रपर्वा ।
यस्यां वेदाः शेरते यज्ञगर्भाः सैषा गुहा गूहते सर्वमेतत् ॥ ५ ॥

भावाभावौ निःस्वतत्त्वो [वितत्त्वो] नीरंजनो [रंजनो] यः प्रकारः ।
गुणात्मको निर्गुणो निष्प्रभावो विश्वेश्वरः सर्वमयो न सर्वः ॥ ६ ॥

सृष्ट्वा सृष्ट्वा स्वयमेवोपभुंक्ते सर्वश्चायं भूतसर्गो यतश्च ।
न चास्यान्यत्कारणं सर्गसिद्धौ न चात्मानं सृजते नापि चान्यान् ॥ ७ ॥

निरिन्द्रियचक्षुषा वेत्ति शब्दान् श्रोत्रेण रूपं जिघ्रति जिह्वया च ।
पादैर्ब्रवीति शिरसा याति तिष्ठन् सर्वेण सर्वं कुरुते मन्यते च ॥ ८ ॥

शब्दातीतः कथ्यते वावदूकैर्ज्ञानातीतो ज्ञायते ज्ञानवद्भिः ।
बन्धातीतो बध्यते क्लेशपाशैर्मोक्षातीतो मुच्यते निर्विकल्पः ॥ ९ ॥

नायं ब्रह्मा न कपर्दी न विष्णुर्ब्रह्मा चायं शंकरश्चाच्युतश्च ।
अस्मिन् मूढाः प्रतिमाः कल्पयन्तो (न्ते) ज्ञानश्चायं न च भूयो नमोऽस्ति ॥

आपो वह्निर्मातरिश्वा हुताशः सत्यं मिथ्या वसुधा मेघयानम् ।
ब्रह्मा कीटः शंकरस्तार्क्ष (क्ष्यं) केतुः सर्वः सर्वं सर्वथा सर्वतोऽयम् ॥ ११ ॥

स एवायं निभृता येन सत्त्वाः शश्वद्दुःखं दुःखमेवापि यन्ति ।
स एवायमृषयो यं विदित्वा व्यतीत्य नाकममृतं स्वादयन्ति ॥ १२ ॥

विद्याविद्ये यत्र नो संभवेते यन्नासन्नं नो दवीयो न गम्यम् ।
यस्मिन्मृत्युर्नेहते नोतुकामा (कामः) स सोऽक्षरः परमं ब्रह्मवेद्यम् ॥ १३ ॥

ओतप्रोताः पशवो येन सर्वे ओतप्रोतः पशुभिश्चैष सर्वैः ।
सर्वे चेमे पशवस्तस्य होम्यं तेषां चायमीश्वरः संवरेण्यः ॥ १४ ॥

तस्यैवैता रश्मयः कामधेनोर्याः पाप्मानमदुहानाः क्षरन्ति ।
येनाध्यातः पंच जनाः स्वपन्ति [प्रोद्बुद्धास्ते] स्वं परिवर्तमानाः ॥ १५ ॥

तमेवाश्वत्थमृषयो वामनन्ति हिरण्मयं व्यस्तसहस्रशीर्षम् ।
मनःशयं शतशाखप्रशाखं यस्मिन् बीजं विश्वमोतं प्रजानाम् ॥ १६ ॥

स गीयतेऽधीयते चाध्वरेषु मन्त्रान्तरात्मा ऋग्यजुःसामशाखः ।
अधःशयो विततांगो गुहाध्यक्षः स विश्वयोनिः पुरुषो नैकवर्णः ॥ १७ ॥

तेनैवैतद्विततं ब्रह्मजालं दुराचरं दृष्ट्युपसर्गपाशम् ।
अस्मिन्मग्ना माननामानशल्यैर्विवेष्यन्ते पशवो जायमानाः ॥ १८ ॥

अयमेवान्तश्चरति देवतानामस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः ।
अयमुद्दण्डः प्राणभुक् प्रेतयानैरेष त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति ॥ १९ ॥

अपां गर्भः सविता वह्निरेष हिरण्मयश्चान्तरात्मानसो देवमानः ।
एतेन स्तंभिता सुभगा द्यौर्नभश्च गुर्वी चोर्वी सप्त च भीमयादसः ॥ २० ॥

मनः सोमः सविता चक्षुरस्य प्राणो मुखमस्याद्यपिवं दिशः ।
श्रोत्रनाभिरंध्राभादयानं पादाविलाः सुरसाः सर्वमाप ॥ २१ ॥

विष्णुर्बीजमंभोजगर्भः शंभुश्चायं कारणं लोकसृष्टौ ।
नैनं देवा विन्दते नो मनुष्या देवाश्चैनं विदुरितरेतराश्च ॥ २२ ॥
अस्मिन्नुदेति सविता लोकचक्षुरस्मिन्नस्तं गच्छति चांशुगर्भः ।
एषोऽजस्रं वर्तते कालचक्रमेतेनायं जीवते जीवलोकः ॥ २३ ॥
अस्मिन् प्राणाः प्रतिबद्धाः प्रजानामस्मिन्नस्ता रथनाभाविवाराः ।
अस्मिन् प्रीते शीर्णमूलाः पतन्ति प्राणाशंसाः फलमिव भुक्तवृन्तम् ॥ २४ ॥
अस्मिन्नेकशतं निहितं मस्तकानामस्मिन् सर्वा भूतयश्चेतनश्च ।
महान्तमेनं पुरुषवेदवेद्यं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ २५ ॥
विद्वानज्ञश्चेतनोऽचेतनो वा स्रष्टा निरीहः स ह पुमानात्मतंत्रः ।
क्षराकारः सततं चाक्षरात्मा वीशीर्यन्ते वाचो युक्तयोऽस्मिन् ॥ २६ ॥
बुद्धिर्बोद्धा बोधनीयोऽन्तरात्मा बाह्यश्चायं स परात्मा दुरात्मा ।
नासावेकं नापृथक् नाभितोभौ सर्वं चैतत्पशवो यं द्वीषन्ति ॥ २७ ॥
सर्वात्मकं सर्वगतं परीतमनादिमध्यान्तमपुण्यपापम् ।
बालं कुमारमजरं च वृद्धं य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २८ ॥
नास्मिन् ज्ञाते ब्रह्मणि ब्रह्मचर्यं नह्याजापः स्वस्तयो नो पवित्रम् ।
नाहं नान्यो नो महान्नो कनीयान्निःसामान्यो जायते निर्विशेषः ॥ २९ ॥
नैनं मत्वा शोचते नाभ्युपैति नाप्याशास्ते म्रियते जायते वा ।
नास्मिंल्लोके गृह्यते नो परस्मिंल्लोकातीतो वर्तते लोक एव ॥ ३० ॥
यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् (किञ्चित्)।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ ३१ ॥
नानाकल्पं पश्यतो जीवलोकं नित्यासक्तव्याधयश्चाधयश्च ।
यस्मिन्नेवं सर्वतः सर्वतत्त्वं दृष्टे देवे नो पुनस्तापमेति ॥ ३२ ॥

*

उपसंहारमें सिद्धसेनका एक पद्य उद्धृत करता हूँ जिसमें उन्होंने धार्ष्ट्य-पूर्ण वक्तृत्व या पाण्डित्यका उपहास किया है –

दैवखातं च वदनं आत्मायत्तं च वाङ्मयम् ।
श्रोतारः सन्ति चोक्तस्य निर्लज्जः को न पण्डितः ॥

सारांश यह है, कि मुखका गड्ढा तो दैवने ही खोद रखा है, प्रयत्न यह अपने हाथ की बात है और सुननेवाले सर्वत्र सुलभ हैं; इसलिए वक्ता या पण्डित बननेके निमित्त यदि जरूरत है तो केवल निर्लज्जताकी है । एक बार धृष्ट बन कर बोलिए फिर सब कुछ सरल है ।

*

गूज़रातमां 'नैषधीयचरित'नो प्रचार तथा ते उपर लखायेली टीकाओ*

*

[ले० — श्रीयुत अध्यापक भोगीलाल ज० सांडेसरा. एम्. ए.]

નળ–દમયંતીના સુપ્રસિદ્ધ પુરાણોક્ત પ્રણયપ્રસંગનું લયમધુર, અર્થગર્ભ અને વિલક્ષણ પાંડિત્યપૂર્ણ વાણીમાં નિરૂપણ કરતું શ્રીહર્ષકૃત મહાકાવ્ય 'નૈષધીયચરિત' સંસ્કૃત પંચકાવ્યોમાં મહત્ત્વનું સ્થાન ભોગવે છે. नैषधं विद्वदौषधम् એ ઉક્તિ સંસ્કૃત સાહિત્યના રસિકોમાં કહેવતરૂપ છે. અને–

साहित्ये सुकुमारवस्तुनि दृढन्यायग्रहग्रन्थिले
तर्के वा मयि संविधातरि समं लीलायते भारती ।
शय्या वास्तु मृदूत्तरच्छदवती दर्भाङ्कुरैरास्तृता
भूमिर्वा हृदयंगमो यदि पतिस्तुल्या रतिर्योषिताम् ॥

એ રાજશેખરકૃત 'પ્રબન્ધકોશ'ના 'શ્રીહર્ષ પ્રબંધ'માં શ્રીહર્ષના મુખમાં મુકાયેલો શ્લોક કદાચ તેનો ન હોય તો પણ પાંડિત્ય અને કવિતાનો સંયોગ સાધવાનો સંસ્કૃત સાહિત્યમાંયે અભૂતપૂર્વ એવો જે પ્રયોગ શ્રીહર્ષે કર્યો છે તેનો નિદર્શક છે. 'નૈષધ'ને પોતે ઈરાદાપૂર્વક ખાસ ઉદ્દેશથી કઠિન બનાવ્યું હોવાનો દાવો કવિ ૨૨ મા સર્ગના અંતમાં કરે છે–

ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया
प्राज्ञंमन्यमना हठेन पठिती मास्मिन् खलः खेलतु ।
श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादय-
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः ॥[१]

આ અદ્‌ભુત પાંડિત્યપૂર્ણ કાવ્યગ્રન્થના કર્તા શ્રીહર્ષના જીવનકાળ વિષે વિદ્વાનોમાં ઘણા સમય સુધી મતભેદ પ્રવર્તેલો હતો.[૨] પરન્તુ રાજશેખર કૃત 'પ્રબન્ધકોશ'ના આધારે[૩] એ વસ્તુ તો હવે નિશ્ચિત થઈ ચૂકી છે કે શ્રીહર્ષ એ વિક્રમના તેરમા સૈકામાં

---

* પંદરમા ગૂજરાતી સાહિત્યસંમેલનમાં સ્વીકારાયેલો નિબંધ.

૧. આ શ્લોકને પણ, કેટલાક વિદ્વાનો પ્રક્ષિપ્ત માને છે. જુઓ એમ. કૃષ્ણમાચારીઅરકૃત Classical Sanskrit Literature, p. 180.

૨. આ મતભેદના ઉલ્લેખો માટે જુઓ Classical Sanskrit Literature, p. 178–79; પાદટિપ્પણ તથા 'નૈષધ'ની નિર્ણયસાગરની આવૃત્તિની પં. શિવદત્તની પ્રસ્તાવના, પૃ. ૯–૧૩.

૩. જુઓ 'પ્રબન્ધકોશ'નો શ્રીહર્ષપ્રબન્ધ. શ્રીહર્ષના જીવનની કેટલીક જાણવા જેવી હકીકતો એમાંથી મળે છે.

થઈ ગયેલા કનોજ અને બનારસના રાજા વિજયચંદ્રના પુત્ર જયંતચંદ્ર[૪](જે સામાન્ય રીતે ઇતિહાસમાં જયચંદ્ર નામથી ઓળખાય છે તે) નો આશ્રિત હતો. જયંતચંદ્રનો રાજત્વકાળ સં. ૧૨૨૪થી સં. ૧૨૫૦નો નક્કી થયેલો છે. તેના લેખો પણ સં. ૧૨૨૫ અને સં. ૧૨૪૩ના મળેલા છે. ઈ. સ. ૧૧૯૪ (એટલે કે ૧૨૫૦)માં મુસલમાનોને હાથે જયંતચંદ્રનો પરાજય થયો હતો એ ઇતિહાસપ્રસિદ્ધ છે. એટલે શ્રીહર્ષનું આ મહાકાવ્ય વિક્રમની તેરમી શતાબ્દીના પૂર્વાર્ધમાં રચાયું હતું એમ નિશ્ચિત થાય છે. 'પ્રબંધકોશ'માં વર્ણવાયેલી વિગતોને આધારે પં. શિવદત્ત એ કાવ્ય ઈ. સ. ૧૧૭૪ (અર્થાત્ સં. ૧૨૩૦)ની કંઈક પૂર્વે રચાયું હોવાનું માને છે.

'નૈષધીયચરિત'નો ગૂજરાતમાં પ્રચાર

આમ 'નૈષધીયચરિત' એ પંચ મહાકાવ્યોમાં સૌથી છેલ્લું લખાયેલું છે. છતાં તેની અંતર્ગત વિશિષ્ટતાઓને કારણે થોડા જ કાળમાં સંસ્કૃતના અભ્યાસીઓમાં એ કાવ્યે માનભર્યું સ્થાન પ્રાપ્ત કરી લીધું. એ કાવ્યનો ગૂજરાતમાં પ્રચાર ઘણો વહેલો—એની રચના પછી અર્ધી સદીની અંદર જ થઈ ચૂક્યો હતો. 'નૈષધ'ની સૌથી પ્રાચીન ટીકાઓ ગૂજરાતમાં જ રચાયેલી છે, તથા તેની સૌથી જૂની હાથપ્રતો પણ ગૂજરાતમાં જ મળે છે, એ બન્ને વસ્તુઓ એ રીતે સૂચક છે.

શ્રીહર્ષના વંશમાં જ થયેલો હરિહર નામનો પંડિત 'નૈષધીયચરિત'ની હાથપ્રત પહેલપ્રથમ ગૂજરાતમાં લાવ્યો હતો, એનો ઉલ્લેખ રાજશેખરકૃત 'પ્રબન્ધકોશ'ના 'હરિહરપ્રબંધ'માં મળે છે. એ સમૃદ્ધિશાળી પંડિત ગૌડ દેશમાંથી ૨૦૦ ઘોડાઓ, ૫૦ ઊંટ અને ૫૦૦ માણસોનો રસાલો પોતાની સાથે લઈ મોકળે હાથે અન્નદાન દેતો દેતો ગૂજરાતમાં ધોળકામાં રાણા વીરધવલના દરબારમાં કેવી રીતે પ્રવેશ્યો, ત્યાં વીરધવલના મન્ત્રી વસ્તુપાળે તેનો સત્કાર કર્યો છતાં 'કીર્તિકૌમુદી,' 'સુરથોત્સવ' વગેરેના સુપ્રસિદ્ધ કર્તા પુરોહિત સોમેશ્વરે ઇર્ષ્યાને કારણે તેના તરફ કેમ ઉદાસીનતા બતાવી, હરિહરની યુક્તિથી સોમેશ્વરનો કેવી રીતે માનભંગ થયો તથા છેવટે વસ્તુપાલ અને વીરધવલના પ્રયત્નથી સોમેશ્વર અને હરિહરની કેવી રીતે મૈત્રી થઈ વગેરે પ્રસંગ તેમાં વર્ણવેલો છે. 'નૈષધ'ની હાથપ્રત સંબંધી હકીકત એ પછી આવે છે. હરિહર પંડિત શ્રીહર્ષનો વંશજ હોઈ 'નૈષધ' કાવ્ય તેને સંપૂર્ણ રીતે અવગત હતું. પ્રબન્ધકાર લખે છે—

"સોમેશ્વર અને હરિહર વચ્ચે રોજ ઇષ્ટિગોષ્ટિ થવા લાગી. હરિહર પંડિત 'નૈષધ'માંનાં કાવ્યો સમયાનુસાર બોલતો. આથી વસ્તુપાલ ખુશ થતો કે—'અહો ! આ કાવ્યો અશ્રુતપૂર્વ છે.' એકદા તેણે હરિહર પંડિતને પૂછ્યું—'આ કયો ગ્રન્થ છે?' પંડિતે કહ્યું—'નૈષધ'. વસ્તુપાલે કહ્યું—'કવિ કોણ છે?' 'શ્રીહર્ષ'. વસ્તુપાલે કહ્યું,

---

૪. રાજશેખરે જયંતચંદ્રને વારાણસીના રાજા ગોવિન્દચંદ્રનો પુત્ર બતાવેલો છે, પણ તામ્રપત્રોને આધારે નક્કી થયું છે કે તે ગોવિંદચન્દ્રનો નહીં પણ ગોવિન્દચંદ્રના પુત્ર વિજયચંદ્રનો પુત્ર છે. 'નૈષધ'ના પાંચમા સર્ગના અંતિમ શ્લોકમાં શ્રીહર્ષ तस्य श्रीविजयप्रशस्तिरचनातातस्य नव्ये महाकाव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गोऽगमत्पञ्चमः ॥ એ પ્રમાણે પોતાને 'વિજયપ્રશસ્તિ'ના કર્તા તરીકે ઓળખાવે છે. આ કૃતિ અત્યારે મળતી નથી, પણ તેમાં જયંતચન્દ્રના પિતા વિજયચન્દ્રની પ્રશસ્તિ હશે એ લગભગ નિઃશંક છે.

'તેનો આદર્શ (મૂળ પ્રતિ) મને બતાવો.' પંડિતે કહ્યું – 'અન્યત્ર આ ગ્રન્થ નથી, માટે ચાર પ્રહરને માટે જ હું તમને પુસ્તિકા આપીશ.' એમ કહી તેણે પુસ્તિકા આપી. વસ્તુપાળે રાત્રે લેખકોને રોકીને નવી પુસ્તિકા લખાવી લીધી. જીર્ણ દોરી વડે બાંધી અને વાસના ન્યાસ વડે ધૂસર કરીને મૂકી રાખી. સવારમાં પંડિતને પુસ્તિકા પાછી આપી–'લ્યો આ તમારું નૈષધ'. પંડિતે પુસ્તિકા લીધી મન્ત્રીએ કહ્યું–'અમારા ભંડારમાં પણ આ શાસ્ત્ર છે એવું અમને સ્મરણ થાય છે, માટે ભંડાર જુઓ.' વિલંબપૂર્વક પેલી નવીન પ્રતિ ખોળી કાઢવામાં આવી અને જુએ છે તો निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथाः ઈત્યાદિથી શરૂ થતું 'નૈષધ' નીકળ્યું. આ જોઇને પંડિત હરિહરે કહ્યું–'મન્ત્રી, તમારી આ માયા છે, કેમકે આવાં કાર્યોમાં અન્યની મતિ ચાલી શકે નહીં. તમે પ્રતિપક્ષીઓને યોગ્ય રીતે દંડ્યા છે; જૈન, વૈષ્ણવ અને શૈવ શાસનો સ્થાપ્યાં છે; સ્વામીના વંશનો ઉદ્ધાર કર્યો છે; જેની પ્રજ્ઞા આવી પ્રકાશે છે' (તેને માટે શું બાકી રહે?)"

આ ઉપરથી જણાય છે કે વસ્તુપાલના સમયમાં હરિહર પંડિત 'પ્રબન્ધ'ની પહેલી હાથપ્રત ગૂજરાતમાં લાવ્યો હતો અને તે ઉપરથી વસ્તુપાલે નકલો કરાવી લીધી હતી. એ કાવ્યનો ત્યાર પછી જ બહોળો પ્રચાર થયો હશે. વસ્તુપાલ–તેજપાલે રાણા વીરધવલના મન્ત્રીપદનો સં. ૧૨૭૬ આસપાસમાં સ્વીકાર કર્યો હતો અને સં. ૧૨૯૫ અથવા ૧૨૯૬માં વસ્તુપાલનું અવસાન થયું હતું, એટલે સં. ૧૨૭૬ અને ૧૨૯૫ વચ્ચેનાં વર્ષોમાં ક્યારેક હરિહર પંડિત ગૂજરાતમાં આવ્યો હશે. એ પહેલાં 'નૈષધ' હિન્દનાં બીજા ભાગોમાં પણ ઝાઝી પ્રસિદ્ધિ નહીં પામ્યું હોય એ ચોક્કસ છે. કેમકે વીરધવલના દરબારમાં અને વસ્તુપાલના આશ્રિત તરીકે હિન્દના જુદા જુદા પ્રદેશોના પંડિતો આવતા હતા, વસ્તુપાલ પોતે તથા પુરોહિત સોમેશ્વર સંસ્કૃત ભાષાના સારા કવિઓ હતા, એ કાળનું ગૂજરાત સંસ્કૃત કાવ્યસાહિત્યના અધ્યયન–અધ્યાપન વડે શબ્દાયમાન હતું અને નવા કાવ્યો પણ મોટા પ્રમાણમાં રચાતાં હતાં. સિદ્ધરાજના કાળથી રાજકીય ગ્રન્થભંડારો સ્થાપવામાં આવતા હતા અને વસ્તુપાલે પણ લાખોના ખર્ચે નવા ગ્રન્થભંડારો સ્થાપ્યા હતા. આવી સ્થિતિમાં જો 'નૈષધ' જેવું કાવ્ય ઠીક ઠીક પ્રસિદ્ધિ પામ્યું હોત તો તેની પ્રતો ગૂજરાત સુધી અને તેમાંયે વસ્તુપાલ જેવાના ગ્રન્થભંડારમાં આવ્યા સિવાય રહે એ લગભગ અસંભવિત હતું. એટલે હરિહર પંડિતની પ્રત અહીં આવ્યા પછી 'નૈષધ'નો બહોળો પ્રચાર કરવાનું તથા તે દુર્ગમ કાવ્ય ઉપર ટીકાઓ લખી તેના અધ્યાપનને વેગ આપવાનું માન ગૂજરાતના સાહિત્યરસિકો અને પંડિતોને ઘટે છે.

ગૂજરાતમાં 'નૈષધીયચરિત'ની તાડપત્રીય પ્રતો

વિક્રમના તેરમા શતકના અંતમાં 'નૈષધીયચરિત'ની પોથી હરિહર પંડિત ગૂજરાતમાં લાવ્યો અને તે ઉપરથી વસ્તુપાલે નકલ કરાવી લીધી ત્યાર બાદ એ કાવ્યની નકલો ગૂજરાતમાં મોટા પ્રમાણમાં થઈ હોવી જોઇએ એમ અત્યારે મળતી તાડપત્રીય હાથપ્રતો ઉપરથી જણાય છે. 'નૈષધ'ની જૂનામાં જૂની હાથપ્રતો ગૂજરાતમાં જ મળે છે

એ પણ ખાસ નોંધપાત્ર છે. વસ્તુપાલે 'નૈષધ'ની નકલ કરાવી તે પછી રાજકીય પુસ્તકાલયમાં પણ એની નકલ મુકાઈ હોય એમ એ કાવ્યની 'સાહિત્યવિદ્યાધરી' ટીકાની એક હાથપ્રતમાં મળતા નીચેના ઉલ્લેખ ઉપરથી જણાય છે –

इत्यपरार्जुन – चौलुक्यचूडामणि – राजनारायणावतार – भुजबलमल्ल-महाराजाधिराज – श्रीमद्वीसलदेवस्य भारतीभाण्डागारे नैषधस्य एकादशमोऽध्यायः ।[5]

અર્થાત્ વીરધવલના પુત્ર વીસલદેવના ભારતીભાંડાગારમાં 'નૈષધ'નું પુસ્તક હતું અને 'સાહિત્યવિદ્યાધરી' ટીકા એ પુસ્તકના પાઠને અનુસરતી હોવી જોઈએ. આ પુસ્તકનો અત્યારે કોઈ સ્થળે પત્તો નથી, પણ 'નૈષધ'ની બીજી કેટલીક તાડપત્રીય પ્રતો ગુજરાતમાં લખાયેલી મળે છે.

પાટણમાં સંઘવીના પાડાના ભંડારમાં સં. ૧૩૦૪માં એટલે વીસલદેવ વાઘેલાના રાજ્યકાળમાં લખાયેલી 'નૈષધ'ની એક પ્રત છે, જેમાં ૧૧ થી ૨૨ સુધીના સર્ગ મળે છે. એની પુષ્પિકા નીચે પ્રમાણે છે –

शशांकसंकीर्तनं नाम । संवत् १३०४ आ० शु० ३ शुक्रे ठ० मूंधेन नैषधमलेखि ॥[6]

જેસલમેરના બડા ભંડારમાં 'નૈષધ'ની એક તાડપત્રની હાથપ્રત છે, જેમાં સં. ૧૩૭૮માં જિનકુશલસૂરિના ઉપદેશથી તેમના અનુયાયી એક શ્રાવકે મૂલ્ય આપીને તે ખરીદી હોવાનો ઉલ્લેખ છે. અર્થાત્ સં. ૧૩૭૮ પહેલાં તે લખાયેલી હોવી જોઇએ. એની પુષ્પિકા નીચે પ્રમાણે છે –

संवत् १३७८ वर्षे श्रीश्रीमालकुलोत्तंसश्रीजिनशासनप्रभावनाकरण-प्रवीणेन सा देदापुत्ररत्नेन सा० आनासुश्रावकेण सत्पुत्र उदारचरित सा० राजदेव सा० छज्जल सा० जयंतसिंह सा० अश्वराजप्रमुखपरिवार – परिवृतेन युगप्रवरागम श्रीजिनकुशलसूरिसुगुरूपदेशेन नैषधसूत्रपुस्तिका मूल्येन गृहीता ।[8]

પાટણના સંઘવીના પાડાના ભંડારમાં 'નૈષધ'ની બીજી એક તાડપત્રીય પ્રત છે, જે સં. ૧૩૯૫માં પાટણની ઉત્તરે આવેલા જંઘરાલ ગામના બ્રાહ્મણ કેશવે કોઈ સ્થળેથી પ્રાપ્ત કરેલી છે, એટલે મૂળ પ્રત તો એ પહેલાં લખાયેલી હોવી જોઇએ. 'નૈષધ'ના ૧થી ૧૪ સર્ગ એમાં લખેલા છે. એની પુષ્પિકા નીચે પ્રમાણે છે –

---

૫. ભાંડારકર ઇન્સ્ટીટ્યુટના સંગ્રહમાં સં. ૧૪૪૨માં લખાયેલી 'સાહિત્યવિદ્યાધરી'ની હાથપ્રત છે. તેમાં આ ઉલ્લેખ મળે છે, એટલે એ હાથપ્રત અથવા તેનું મૂળ પ્રતીક વીસલદેવના ભારતીભાંડાગારમાંના આદર્શ ઉપરથી ઉતારેલ હશે.

૬. Descriptive Catalogue of Manuscripts of the Jain Bhandars at Pattan (G. O. S.), p. 64.

૭. જેસલમેરના ભંડારની જૂની હાથપ્રતો મૂળ પાટણમાંથી ત્યાં ગયેલી છે, એટલે એ બધી જ ગૂજરાતમાં લખાયેલી છે. જેસલમેરની હાથપ્રતોની અંતિમ પુષ્પિકાઓમાં મોટે ભાગે ગૂજરાતનાં જ ગામોનો નિર્દેશ છે.

૮ Catalogue of Mss. in Jesalmere Bhandar (G. O. S.), p. 14.

संवत् १२९५ वर्षे कार्तिकशुदि १० शुक्रे श्रीभारतीप्रसादेन जंघरालवास्तव्य उदीच्यज्ञातीय रा० दूदासुत रा० केसव महाकाव्यनैषधपुस्तिका प्राप्ता । मंगलं भवतु ॥[९]

આ સિવાય સંઘવીના પાડાના ભંડારમાં 'નૈષધ'ની ત્રીજી તાડપત્રીય પ્રત પણ છે,[૧૦] પરન્તુ એમાં લખ્યા સંવત્ નથી. જેસલમેરમાં પણ ઉપર નોંધેલી સં. ૧૨૯૫ વાળી હાથપ્રત ઉપરાંત 'નૈષધ'ની બીજી ત્રણ તાડપત્રીય પ્રતો છે, એમાંની બે પ્રતિમાં તો 'સાહિત્યવિદ્યાધરી' ટીકા પણ લખેલી છે.[૧૧] આ ત્રણ પૈકી એક પ્રતમાં લખ્યા સં. નથી, પરંતુ એ સર્વે પ્રતો તાડપત્રો ઉપર લખાયેલી છે, અને સામાન્ય રીતે વિક્રમની પંદરમી સદીના અંત પછી તાડપત્રો ઉપર લખાયેલા ગ્રન્થો મળતા નથી,[૧૨] એ જોતાં એમાંની કોઈ પણ પ્રત પંદરમી સદીથી અર્વાચીન હોઈ શકે નહીં. લિપિના મરોડની દૃષ્ટિએ પરીક્ષા કરવામાં આવે તો એથી ઘણી જૂની પણ માલુમ પડે.

'નૈષધ'ની જૂનામાં જૂની હાથ પ્રતો આમ ગૂજરાતે સાચવી છે, એ વસ્તુ પણ ગૂજરાતના વિદ્વાનોમાં 'નૈષધ'નો જે પ્રચાર થયો હતો તેની સૂચક છે. સંસ્કૃત સાહિત્યના આ અમૂલ્ય રત્નનાં આટલાં પ્રાચીન અને વિશ્વસ્ત પ્રતીકો બીજે ક્યાંય મળતાં હોય એમ મારા જાણવામાં નથી.

ગૂજરાતમાં લખાયેલી 'નૈષધ'ની ટીકાઓ

'નૈષધ'નું વ્યવસ્થિત અધ્યયન—અધ્યાપન પ્રમાણમાં ગૂજરાતમાં જ પહેલું થયું હોય એમ તેની સૌથી પ્રાચીન—તથા સૌથી વિદ્વત્તાપૂર્ણ—ટીકાઓ ગૂજરાતના વિદ્વાનોએ લખી છે તે ઉપરથી લાગે છે.[૧૩] ગૂજરાતમાં લખાયેલી 'નૈષધ'ની નીચે પ્રમાણે ૭ ટીકાઓ અત્યાર સુધીમાં જાણવામાં આવેલી છે.[૧૪]

---

૯. Descriptive Catatogue of Mss. of the Jain Bhandar at Pattan, p. 113.

૧૦. Ibid, p. 170.

૧૧ Catalogue of Mss. in Jesalmere Bhandar, p. 13–16–37.

૧૨. જુઓ—"અમારો અનુભવ છે ત્યાં સુધી પંદરમી સદીના અંત સુધી તાડપત્ર ઉપર લખવાનું ચાલુ રહ્યું છે. પંદરમી સદીના અસ્ત સાથે તાડપત્ર ઉપરનું લેખન પણ આથમી ગયું છે."—પુરાવિદ્ મુનિ શ્રીપુણ્યવિજયજીકૃત 'ભારતીય જૈન શ્રમણસંસ્કૃતિ અને લેખનકળા,' પૃ. ૨૬

૧૩. ગૂજરાતના બે પહેલા ટીકાકારો વિદ્યાધર અને ચંડુ પંડિત બ્રાહ્મણો હતા. બાકીની ટીકાઓ જૈનોને હાથે લખાયેલી છે. ગૂજરાતના જૈનોમાં 'નૈષધ'નું પરિશીલન સારા પ્રમાણમાં થતું હતું. પંદરમા સૈકામાં થઈ ગયેલ 'શાન્તિનાથ ચરિત'ના કર્તા મુનિભદ્રસૂરિ પોતાના એ મહાકાવ્યમાં 'શ્રીહર્ષના અમૃત સૂક્તિવાળા નૈષધ મહાકાવ્ય'નો ઉલ્લેખ કરે છે. સત્તરમા સૈકામાં થઈ ગયેલા, જૈન વિશ્વવિદ્યા (Cosmology)નો સુપ્રસિદ્ધ ગ્રન્થ 'લોકપ્રકાશ' તથા 'કલ્પસૂત્ર' ઉપર 'સુબોધિકા' નામની ટીકા લખનાર પ્રતિભાશાળી વિદ્વાન ઉપાધ્યાય વિનયવિજયજીએ નૈષધાદિ મહાકાવ્યોનો અભ્યાસ કર્યો હતો અને તેમના પોતાના હાથે ૧૬૮૪ના ચૈત્ર વદિ ૧૦ શુક્રને દિને લખાયેલી 'નૈષધ'ની બારમા સર્ગ સુધીની રામચન્દ્ર શેષની ટીકા સાથેની પ્રત મળે છે. અરાઢમા શતકમાં થયેલા મેઘવિજય ઉપાધ્યાયે 'નૈષધીયસમસ્યા' નામથી શાન્તિનાથનું ચરિત્ર લખ્યું છે. તે પાદપૂર્તિનો એક જબરો પ્રયત્ન છે. 'નૈષધ'ના પ્રતિશ્લોકનો એક પાદ લઈ પોતાના નવા ત્રણ પાદ ઉમેરી ૭ સર્ગમાં એ કાવ્ય તેમણે લખ્યું છે. મુનિભદ્રસૂરિએ પોતાના ઉપર્યુક્ત 'શાન્તિનાથચરિત્ર'માં જણાવ્યું છે તેમ "જૈનેતરોએ રચેલાં પંચમહાકાવ્યો જૈનાચાર્યો પ્રથમાભ્યાસીઓને વ્યુત્પત્તિની પ્રાપ્તિ અર્થે સતત ભણાવતા હતા."

૧૪. 'નૈષધ'ની ૩૪ ટીકાઓ Classical Sanskrit Literature (પૃ. ૧૮૨–૮૩)માં કૃષ્ણ-

૩.૧.૪.

વિદ્યાધર[15]–વિદ્યાધરકૃત 'સાહિત્યવિદ્યાધરી' ટીકા એ શ્રીહર્ષના કઠિન કાવ્યની સર્વપ્રથમ ટીકા હોવાનું માન ખાટી જાય છે. 'સાહિત્યવિદ્યાધરી'ની હાથપ્રતો ઉપરથી જણાય છે કે વિદ્યાધર એ રામચન્દ્ર નામે વૈદ્યનો પુત્ર હતો અને તેની માતાનું નામ સીતા હતું. સં. ૧૩૫૩માં 'નૈષધ' ઉપર ટીકા લખનાર ચંડુ પંડિત વિદ્યાધરની ટીકાનો ઉલ્લેખ કરે છે એટલું જ નહીં પણ વિદ્યાધરની ટીકા અનુસારનાં પાઠાન્તરો પણ કેટલેક સ્થળે નોંધે છે, એટલે વિદ્યાધર સં. ૧૩૫૩ પૂર્વે થઈ ગયો છે એ તો નિશ્ચિત છે. આપણે આગળ જોયું તેમ વિદ્યાધર પોતાની ટીકામાં વીસલદેવ વાઘેલાના ભારતી–ભાંડાગારમાંના 'નૈષધીય ચરિત'ના પ્રતીકના પાઠને અનુસર્યો છે, એટલે તે વીસલદેવનો સમકાલીન હોય એ સંભવિત છે. ટીકાની હાથપ્રતમાં વીસલદેવને 'મહારાજાધિરાજ' કહ્યો છે. હવે, વીસલદેવ ધોળકાનો રાણો મટીને સં. ૧૩૦૦માં પાટણનો મહારાજાધિરાજ થયો. તેનો રાજત્વકાળ સં. ૧૩૦૦થી ૧૩૧૮ સુધીનો છે, એટલે ઉપરનું અનુમાન જો સાચું હોય તો 'સાહિત્યવિદ્યાધરી' વિક્રમના ચૌદમા સૈકાના પૂર્વાર્ધમાં રચાયેલી છે, એમ નિશ્ચિત થાય.

'સાહિત્યવિદ્યાધરી' જો કે ચંડુ પંડિતની ટીકા જેવી પાંડિત્યપ્રવણ નથી, પણ 'નૈષધ'ની તે પહેલી જ ટીકા હોઈ પાછળના ટીકાકારોએ તેનો સારો ઉપયોગ કર્યો છે. તે કાળના ગૂજરાતમાં સંસ્કૃત અભ્યાસીઓમાં કાતન્ત્ર વ્યાકરણનું પરિશીલન વ્યાપક હતું, અને વિદ્યાધરે પણ કાતન્ત્રનો હવાલો આપ્યો છે. ૨–૪૦ની ટીકામાં તેણે કુન્તકના 'વક્રોક્તિજીવિત'નો તથા ૨૧–૧૨૬ તથા ૧૨૮ની ટીકામાં 'સંગીતચૂડામણિ' તથા 'સંગીત સાગર' એ બે સંગીતને લગતા ગ્રન્થનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. ૨–૨૪ની ટીકામાં 'પ્રતાપ માર્તંડ'માંથી અવતરણ આપ્યું છે.

ચંડુ પંડિત–ચંડુ પંડિતે પોતાની ટીકા સં. ૧૩૫૩માં લખી છે એમ ટીકાના અંતમાં તેમણે કરેલી નોંધ ઉપરથી જણાય છે. ચંડુ પંડિત પોતાને વિષે ઠીક ઠીક માહિતી તેમાં આપે છે. તે ધોળકાનો વતની નાગર બ્રાહ્મણ હતો. એના પિતાનું નામ આલિગ પંડિત અને માતાનું નામ ગૌરીદેવી હતું. એના ગુરુનું નામ વૈદ્યનાથ હતું, પણ તેણે 'નૈષધ'નો અભ્યાસ મુનિદેવ પાસે અને 'મહાભારત'નો અભ્યાસ નરસિંહ પંડિત પાસે કર્યો હતો. ન્યાસ સાથે કારિકાનો અભ્યાસ પણ તેણે કર્યો હતો. સારંગ (સારંગદેવ વાઘેલો) જ્યારે ગૂજરાતનો રાજા હતો અને માધવ નામે તેનો મહામાત્ય હતો ત્યારે આ ટીકા પૂર્ણ થઈ હોવાનું તેમાં જણાવેલું છે. સં. ૧૩૫૩ એ સારંગદેવ વાઘેલાના રાજ્યકાળનું છેલ્લું જ વર્ષ છે. આમ છતાં એની પછી ગાદીએ આવનાર કર્ણદેવ વાઘેલાના સમયની કેટલીક હકીકત પણ એમાં મળે છે. એમાં જણાવેલું છે કે સાર-

---

માચારીઅરે નોંધી છે, જેમાંની ૨૩નાં નામ Catalogus Catalogorumમાં છે. એ ૩૪માં નહીં નોંધાયેલી રત્નચન્દ્ર અને મુનિચંદ્રની બે ટીકાઓ ઉમેરતાં 'નૈષધ'ની ટીકાઓની કુલ સંખ્યા ૩૬ થાય, જેમાંની ૬ ગૂજરાતમાં લખાયેલી છે.

૧૫. વિદ્યાધર અને ચંડુ પંડિતની ટીકાઓ વિષેની માહિતી 'નૈષધ'ના અંગ્રેજી અનુવાદની પ્રસ્તાવનામાં પ્રો. કૃષ્ણકાંત હિંદીકીએ આપેલી વિગતોને આધારે સંકલિત કરવામાં આવી છે, એ વસ્તુની સાભાર નોંધ લઉં છું.

ગદેવના અવસાન પછી મહામાત્ય માધવદેવે કોઈ ઉદયરાજને રાજ્યગાદીએ લાવવાનો પ્રયત્ન કરતાં દ્વૈરાજ્યને કારણે ગૂજરાતમાં ભારે અંધાધુંધી ચાલી હતી.[૧૬] કર્ણ વાઘેલાના સમયમાં ગૂજરાત ઉપર મુસલમાનોએ ચઢાઈ કરી તેનો ઉલ્લેખ પણ ટીકામાં છે. પહેલા સર્ગને અંતે ટીકામાં જણાવેલું છે કે 'મ્લેચ્છોએ કરેલા ઉપદ્રવને કારણે ટીકાનું પ્રતીક બળી ગયું હતું, તેથી તેની ઉચિત પૂર્ત્તિ ચંડુ પંડિતના વિદ્વાન બંધુ ટાલણે કરી હતી.' (म्लेच्छोपलिङ्गाज्वलितप्रतीकां टीकामिमां पूरयति स्म सम्यक्।) સં. ૧૩૫૩ માં ચંડુ પંડિતે ટીકા પૂરી કરી અને એજ વર્ષમાં સારંગદેવનું અવસાન થયું હતું. તે સમય પછીના જે ઉલ્લેખો દાખલ થયા છે તે ચંડુ પંડિતના ભાઈના હાથે દાખલ થયા હશે એમ માનવું સમુચિત છે.

ચંડુ પંડિતે ઋગ્વેદ ઉપર એક ટીકા લખી હોવાનું જણાય છે. ૯ મા સર્ગની ટીકામાં આ ઋગ્વેદ–ટીકામાંથી એક વિસ્તૃત અવતરણ તેણે આપ્યું છે. સાયણાચાર્ય કરતાં ચંડુ પંડિત અર્ધી સદી જેટલો જૂનો છે, એટલે આ ટીકા ઘણી મહત્વની ગણાય. પરન્તુ અત્યારે તે ઉપલબ્ધ નથી. ચંડુ પંડિત વૈદિક કર્મકાંડનો નિષ્ણાત હતો અને સંસ્કૃત કાવ્યોનો તે એકમાત્ર ટીકાકાર એવો છે જે વારંવાર શ્રૌતસૂત્રોના હવાલા આપે છે. તેણે સોમસત્રો તથા દ્વાદશાહ અને અગ્નિચયન યજ્ઞો કર્યા હતા. વાજપેય યજ્ઞ તથા બૃહસ્પતિસવ કરીને તેણે અનુક્રમે 'સમ્રાટ' અને 'સ્થપતિ'ની પદવી ધારણ કરી હતી.[૧૭] આ ઉલ્લેખો બતાવે છે કે ચંડુ પંડિત ભારે સમૃદ્ધિશાળી હોવો જોઈએ. બીજું એ પણ જાણવા મળે છે કે વિક્રમના ચૌદમા સૈકામાં ગૂજરાતમાં વૈદિક યજ્ઞો થતા હતા. ચંડુ પંડિતે પોતાના પુરોગામી વિદ્યાધરની ટીકાનો નીચે પ્રમાણે ઉલ્લેખ કર્યો છે–

टीकां यद्यपि सोपपत्तिरचनां विद्याधरो निर्ममे
श्रीहर्षस्य तथापि न त्यजति सा गम्भीरतां भारती।
दिक्कूलंकषतां गतैर्जलधरैरुद्गृह्यमाणं मुहुः
पारावारमपारमम्बु किमिह स्याज्जानुदघ्नं क्वचित्॥

'નૈષધ' ઉપર તો શું પણ બીજા કોઈ પણ સંસ્કૃત કાવ્ય ઉપર ચંડુ પંડિતના જેટલી વિદ્વત્તાપૂર્ણ ટીકા બીજી એક પણ લખાઈ નથી. 'નૈષધ' જેવા પાંડિત્યપૂર્ણ કાવ્યના વિવેચકે પોતાની ટીકામાં આપણી પરંપરાગત વિદ્યાના પ્રત્યેક ક્ષેત્રના ગ્રન્થોમાંથી સવિસ્તર અવતરણો આપ્યાં છે અથવા પ્રસ્તુત ઉલ્લેખો કર્યા છે; એટલું જ નહીં પણ તે તે સ્થળે તેણે જે મૂલગામી વિવેચન કર્યું છે તે બતાવે છે કે ચંડુ પંડિત ન્યાય, વ્યાકરણ અને સાહિત્યનો પ્રકાંડ પંડિત હતો.

ચંડુ પંડિતની ટીકામાં દાર્શનિક ગ્રન્થોમાં પ્રશસ્તપાદભાષ્ય શ્રીધરની 'ન્યાયકન્દલી,' કુમારિલનું 'શ્લોકવાર્તિક,' ભાસર્વજ્ઞનો 'ન્યાયસાર,' આનંદબોધકૃત

---

૧૬. ××× यथा इदानीं महामात्यश्रीमाधवदेवेन श्रीउदयराजे राजनि कर्तुमारब्धे सति महाराजश्रीकर्णदेवस्य भूमौ गूर्जरधरित्र्यां सर्वत्र सर्वैर्जनानां वित्तेऽपह्रियमाणे द्वैराज्यात् लोके विरक्तिरजनि। (૮–૫૯ ઉપરની ટીકામાંથી)

૧૭. બાવીસમા સર્ગની ટીકાને અંતે–

यो वाजपेययजनेन बभूव सम्राट् कृत्वा बृहस्पतिसवं स्थपतित्वमाप।
यो द्वादशाहय(ज)नेऽग्निचिदप्यभूत् सः श्रीचण्डुपण्डित इमां विततान टीकाम्॥

'ન્યાયમકરંદ,' તથા 'સાંખ્યકારિકા' અને મીમાંસાસૂત્રોના ઉલ્લેખો છે. વૈદિક સાહિત્યમાં 'બૃહદ્દેવતા,' યાસ્કનું 'નિરુક્ત' તથા તે ઉપર દુર્ગાચાર્યની ટીકા, 'કાત્યાયનશ્રૌતસૂત્ર,' 'શાંખાયનશ્રૌતસૂત્ર,' 'શાંખાયનગૃહ્યસૂત્ર,' 'અનુક્રમણિ,' તથા 'છાંદોગ્ય ઉપનિષદ્'ના ઉલ્લેખો છે. સ્માર્ત સાહિત્યમાં યાજ્ઞવલ્કય ઉપરની વિજ્ઞાનેશ્વરની ટીકા તથા વિશ્વરૂપ,[૧૮] ગોવિન્દરાજ[૧૯] અને હરસ્વામી[૨૦] નામે આચાર્યોનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. પુરાણોમાં 'વિષ્ણુપુરાણ' તથા 'ભાગવત'ના ઉલ્લેખો છે. કોશગ્રન્થોમાં 'પ્રતાપમાર્તણ્ડ,' 'ધન્વન્તરીય નિઘંટુ,' હેમચન્દ્ર, હલાયુધ અને ક્ષીરસ્વામીના ઉલ્લેખો છે. કાવ્યનાટક સાહિત્યમાં કાલિદાસ, માઘ, ભારવિ, મયૂરકૃત 'સૂર્યશતક,' મુરારિકૃત 'અનર્ઘરાઘવ' તથા આનન્દવર્ધનકૃત 'અર્જુનચરિત' (અત્યારે અનુપલબ્ધ)ના ઉલ્લેખો છે. અલંકારગ્રન્થોમાં મમ્મટ, રુદ્રટ, રુય્યક, ભટ્ટેન્દુરાજ, 'દશરૂપક,' 'શ્રૃઙ્ગારતિલક' તથા વામનકૃત 'કાવ્યાલંકાર'ના ઉલ્લેખો છે. પિંગલગ્રન્થોમાં 'વૃત્તરત્નાકર' તથા પિંગલસૂત્રો ઉપર હલાયુધની ટીકાના ઉલ્લેખો છે. કામશાસ્ત્રમાં વાત્સ્યાયન 'કામસૂત્ર' તથા તે ઉપરની જયમંગલા ટીકા અને 'રતિરહસ્ય'ના ઉલ્લેખો છે. વ્યાકરણમાં ચંડુ પંડિત પાણિનિ તેમજ કાતન્ત્ર બન્નેમાંથી અવતરણો આપે છે. કાત્યાયનવાર્તિક, 'કાશિકા' તથા 'પદમંજરી'નો તથા 'ગણકાર' નામે કોઈ ગ્રન્થનો પણ તે ઉલ્લેખ કરે છે.

ચંડુ પંડિતની 'નૈષધ'ની ટીકા એ ગૂજરાતના સંસ્કૃત સાહિત્યનું અમૂલ્ય રત્ન છે. દુર્ભાગ્યે એ ટીકા હજી અખંડિત સ્વરૂપમાં પ્રાપ્ત થઈ નથી. પ્રો. કૃષ્ણકાન્ત હિન્દીકીએ 'નૈષધ'ના અંગ્રેજી અનુવાદનાં ટિપ્પણોમાં એમાંથી કેટલાંક અવતરણો આપ્યાં છે, પરન્તુ 'નૈષધ'ના મૂલગામી અભ્યાસની દૃષ્ટિએ એ ટીકાનો મળ્યો છે તેટલો ભાગ પણ પ્રસિદ્ધ થવાની જરૂર છે.

ચારિત્રવર્ધન–આ જૈન ટીકાકાર ખરતરગચ્છાચાર્ય જિનપ્રભસૂરિસંતાને કલ્યાણરાજના શિષ્ય હતા. તેમણે સં. ૧૫૧૧માં 'નૈષધ'ની ટીકા લખેલી છે, તેની હાથપ્રત બીકાનેર સ્ટેટ લાયબ્રેરીમાં છે.[૨૧] ચારિત્રવર્ધન એક જાણીતા જૈન ટીકાકાર છે. તેમણે 'રઘુવંશ,' 'કુમારસંભવ,' 'મેઘદૂત,' 'શિશુપાલવધ' તથા 'રાઘવપાંડવીય' ઉપર પણ ટીકાઓ લખી છે. ચારિત્રવર્ધનની 'નૈષધ'ટીકા છપાઈ ગઈ છે એમ શ્રી અગરચંદ નાહટા જણાવે છે, પરન્તુ તે મારા જોવામાં આવેલ નથી તેથી એ સંબંધી વિશેષ અહીં લખી શક્યો નથી.

જિનરાજસૂરિ–જિનરાજસૂરિ ખરતરગચ્છના આચાર્ય હતા. તેનો જન્મ સં. ૧૬૪૭માં થયો હતો તથા તેમણે દીક્ષા સં. ૧૬૫૬માં લીધી હતી. સં. ૧૬૬૮ માં

---

૧૮. વિજ્ઞાનેશ્વરે મિતાક્ષરાટીકામાં પોતાના પુરોગામી તરીકે વિશ્વરૂપનો ઉલ્લેખ કર્યો છે.

૧૯. 'મનુસ્મૃતિ'ના ટીકાકાર.

૨૦. આ હરસ્વામી તથા 'શતપથબ્રાહ્મણ'ના ટીકાકાર હરિસ્વામી અભિન્ન હોય એમ સંભવે છે.

૨૧. જુઓ 'ભારતીય વિદ્યા' ભાગ ૨, અંક ૩માં શ્રી અગરચંદ નાહટાનો લેખ 'જૈનેતર ગ્રંથો પર જૈન વિદ્વાનોં કી ટીકાયેં.'

આસાવલમાં જિનચંદ્રસૂરિએ તેમને વાચકપદ તથા સં. ૧૬૭૪ માં મેડતામાં આચાર્ય-પદ પણ આપ્યું હતું. ખરતર ગચ્છના આ એક પ્રભાવશાળી આચાર્ય ગણાય છે. તેમણે સં. ૧૬૭૫ માં અમદાવાદના વતની પોરવાડ જ્ઞાતિના સંઘવી સોમજીપુત્ર રૂપજીએ કરાવેલી ઋષભાદિ જિનોની ૫૦૧ પ્રતિમાઓની શત્રુંજય ઉપર પ્રતિષ્ઠા કરાવી હતી તથા ભાણવડ ગામમાં શાહ ચાંપશીએ કરાવેલા દેવગૃહમાં અમૃતઝરા પાર્શ્વનાથ પ્રમુખ ૮૦ બિમ્બોની પણ પ્રતિષ્ઠા કરાવી હતી. આ પ્રમાણે અમદાવાદ વગેરે નગરોમાં પણ પ્રતિષ્ઠાઓ કરાવી હતી.[૨૨] તેમણે 'નૈષધ' ઉપર વૃત્તિ તથા બીજા કેટલાક નવીન ગ્રન્થો રચ્યા હતા એવો ઉલ્લેખ પણ પટ્ટાવલિઓમાં મળે છે.[૨૩]

જિનરાજની 'નૈષધ' ટીકા 'સુખાવબોધા' નામથી ઓળખાય છે. તેની સં. ૧૭૪૮માં લખાયેલી હાથપ્રત ભાંડારકર ઇન્સ્ટીટ્યુટમાં છે. જિનરાજસૂરિની ટીકા પણ એક વિદ્વત્તાપૂર્ણ ગ્રન્થ છે અને 'નૈષધ'ના ટીકાકારોમાં તેનું એક વિશિષ્ટ સ્થાન છે. જિનરાજે ભટ્ટોજી દીક્ષિતકૃત 'મનોરમા'નાં અવતરણો આપ્યાં છે તથા હેમચન્દ્રના વ્યાકરણ તથા 'અભિધાનચિન્તામણિ'નો હવાલો પણ તે વારંવાર આપે છે. શ્રીધર નામે કોશકારને પણ એક સ્થળે તેણે ટાંક્યો છે. શ્રીહર્ષના વેદાન્તગ્રન્થ 'ખંડનખંડખાદ્ય' ઉપર 'ખંડનપ્રકાશ' નામે ટીકા લખનાર વર્ધમાન મિશ્રના મતનું પણ તેણે એક સ્થળે ખંડન કર્યું છે.

અર્થની બાબતમાં જિનરાજ મોટે ભાગે વિદ્યાર્થીઓમાં સુપ્રસિદ્ધ નારાયણ ભટ્ટની ટીકાને અનુસરે છે એટલું જ નહીં પણ તેમાં ઉચિત સુધારાવધારા કરે છે. પરંતુ વાચના તો તેણે પ્રાયશઃ ગુજરાતના જૂના ટીકાકારો વિદ્યાધર અને ચંડુ પંડિતની સ્વીકારી છે એ યોગ્ય છે, કેમકે 'નૈષધ'ની સૌથી જૂની—અને તેથી વિશ્વાસપાત્ર—વાચના એ ટીકાઓમાં જળવાયેલ છે.

મુનિચંદ્ર—મુનિચંદ્રકૃત 'નૈષધટીકા' અત્યારે ઉપલબ્ધ નથી, પણ કોઈ જૂના ગ્રન્થભંડારની સૂચિમાં તેનો ઉલ્લેખ છે. એ સૂચિમાં મૂળ 'નૈષધ' તથા તે ઉપરની પાંચ ટીકાઓની નીચે પ્રમાણે નોંધ છે, જેમાં મુનિચંદ્રકૃત ટીકાનો પણ ઉલ્લેખ આવે છે—

૮૨—श्रीहर्षकृत नैषधका० ग्रं० ४५००

૮૩—तट्टीका चांडवी २४०००

૮૪—तथा कमलाकरगुप्तेन श्रीहर्षपौत्रेण कृतं भाष्यं ६००००

૮૫—तथा वैद्याधरी टीका २४०००

૮૬—श्रीमुनिचन्द्रसूरिकृतटीका १२०००

૮૭—माथुर पं० गदाधरकृता १२०००

---

૨૨. શ્રીજિનવિજયજી સંપાદિત 'ખરતર ગચ્છ પટ્ટાવલી સંગ્રહ,' પૃ. ૩૫-૩૬

૨૩. एवंविधाः जिनमतोन्नतिकारकाः ××× समस्ततर्कव्याकरणछंदोलंकारकोशकाव्यादिविविधशास्त्रपारिणो नैषधीयकाव्यसंबंधी जिनराजीवृत्त्याद्यनेकनवीनग्रन्थविधायकाः श्रीबृहत्खरतरगच्छनायकाः श्रीजिनराजसूरयः सं. १६९९ आषाढ सु० ९ पत्तने स्वर्गभाजः ।—એજ.

—अन्या अपि बह्व्यष्टीकाः स्वदेश–परदेशप्रसिद्धपण्डिप्रतकाण्डकृताः सन्ति ।[२४]

મુનિચન્દ્ર નામના અનેક જૈન વિદ્વાનો ગ્રન્થકારો થઈ ગયા છે,[૨૫] તેમાંથી ક્યા મુનિચન્દ્રે 'નૈષધ'ની ટીકા લખી તે કહેવું મુશ્કેલ છે. બૃહદ્ (વડ) ગચ્છમાં મુનિચંદ્રસૂરિ નામે એક સુપ્રસિદ્ધ ગ્રન્થકાર થયા છે, પરંતુ તેમનો સ્વર્ગવાસ સં. ૧૧૭૮માં થયો હતો,[૨૬] જ્યારે 'નૈષધ'ની રચના વિક્રમના તેરમા સૈકાના પૂર્વાર્ધમાં થઈ છે, એટલે આ ટીકા તેમની તો ન જ હોઈ શકે. ઉપર્યુક્ત સૂચિની પ્રસ્તાવનામાં શ્રીજિનવિજયજીએ ધ્યાન દોર્યું છે કે વિક્રમના પંદરમા સૈકા પૂર્વે લખાયેલા ગ્રન્થોનાં નામ જ એ સૂચિમાં છે. અર્થાત્ સૂચિ મોડામાં મોડી પંદરમા સૈકામાં લખાયેલી હશે. આ જોતાં મુનિચન્દ્રસૂરિની 'નૈષધ'ટીકાનો સમય પણ ત્યાર પહેલાંનો માનવો જોઇએ.

રત્નચન્દ્ર–વિક્રમના સત્તરમા સૈકામાં થયેલા સુપ્રસિદ્ધ જૈન વિદ્વાન્ 'કૃપારસકોશ'કાર શાન્તિચંદ્રના શિષ્ય રત્નચંદ્રે 'નૈષધ' ઉપર ટીકા લખી છે. આ ટીકાની હાથપ્રત જાણવામાં આવી નથી, પણ તેનો ઉલ્લેખ રત્નચંદ્રે પોતાની 'રઘુવંશ'ટીકામાં કર્યો છે[૨૭] એટલી જ માહિતી તેના વિષે મળે છે. રત્નચંદ્ર એક વિદ્વાન્ ગ્રન્થકાર અને ટીકાકાર હતા. તેમણે સં. ૧૬૭૧માં 'પ્રદ્યુમ્નચરિત' મહાકાવ્ય, સં. ૧૬૭૪માં મુનિસુન્દરસૂરિકૃત 'અધ્યાત્મકલ્પદ્રુમ' ઉપર 'કલ્પલતા' નામની ટીકા, સં. ૧૬૭૬ માં 'સમ્યકત્વસપ્તતિકા' ઉપર ગૂજરાતી બાલાવબોધ તથા સં. ૧૬૭૯ માં ધર્મસાગર ઉપાધ્યાયના મતના ખંડનરૂપે 'કુમતાહિવિષ–જાંગુલિ' નામે ગ્રંથ રચ્યો છે. આ સિવાય તેમણે પોતાના ગુરુના 'કૃપારસકોશ' ઉપર તથા કેટલાક સ્તોત્રો ઉપર પણ ટીકાઓ લખેલી છે.[૨૮]

*

---

૨૪. 'પુરાતત્ત્વ,' પુ. ૨, અંક ૪માં શ્રીજિનવિજયજીનો લેખ, 'સંસ્કૃતાદિ ભાષાના વ્યાકરણ, કોષ, છંદ કાવ્ય અને અલંકારાદિવિષયક કેટલાક પ્રધાન ગ્રંથોની એક ટુંકી યાદી'. ઉપર આપેલા અવતરણમાં ચંડુ પંડિત તથા વિદ્યાધરની ટીકાઓની નોંધ છે. શ્રીહર્ષના પૌત્ર કમલાકરગુપ્તકૃત ભાષ્ય ઉપલબ્ધ નથી, પણ જો તેનું શ્લોકપ્રમાણ સાચું હોય તો એ ટીકા ગ્રંથ કેટલો વિસ્તૃત હશે એની કલ્પના કરવી પણ કઠિન છે.

૨૫. જૈન સાહિત્યનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ, પૃ. ૮૬૩

૨૬. એજ, પૃ. ૨૪૧–૪૩

૨૭. જૈન સાહિત્યનો ઇતિહાસ, પૃ. ૫૯૭

૨૮. એજ, પૃ. ૫૯૭–૯૮

नाणपंचमी कहा–तेना लेखको प्रतिओ अने वस्तुनो परिचय

[ले० – श्रीयुत प्रो० अमृतलाल सवचंद गोपाणी, एम्. ए.]

*

પ્રસ્તુત લેખમાં હું જે અત્યારસુધી અપ્રકટ અને અનેક દૃષ્ટિએ અપૂર્વ એવા અર્થ ગંભીર કથા–ગ્રન્થનો પરિચય આપવા માગું છું તે કથા–ગ્રન્થનું નામ 'પંચમી કથા' છે. આ ગ્રન્થમાં પંચમી–માહાત્મ્યનું વર્ણન પ્રધાનપણે કરવામાં આવેલું છે તેથી તેનું 'પંચમી માહપ્પ' એવું સુસંબદ્ધ બીજું નામ પણ રાખવામાં આવેલ છે.[1] આ કથા–ગ્રન્થ બે હજાર જેટલી ગાથામાં જૈન માહારાષ્ટ્રી પ્રાકૃતમાં લખાએલો છે.[2] ભાષા ઉપર ક્વચિત્ અપભ્રંશની તો ક્વચિત્ અર્ધમાગધીની અસર પડેલી છે પણ એકંદરે જૈન માહારાષ્ટ્રી પ્રાકૃતમાં આ ગ્રન્થ લખાયેલો છે એમ જરૂર કહી શકાય.[3] જ્ઞાન પંચમીના વ્રતને અનુલક્ષી કોઇએ સંસ્કૃતમાં, કોઇએ પ્રાકૃતમાં, કોઇએ અપભ્રંશમાં તો કોઇએ ગૂજરાતીમાં કથાઓ લખેલી છે. તે બધી કથાઓ કાંતો 'જ્ઞાન પંચમી માહાત્મ્ય,' 'પંચમીકહા,' 'ભવિસ્સયત્ત કહા,' 'સૌભાગ્ય પંચમી કથા' વરદત્ત ગુણમંજરી કથા' ઇત્યાદિ નામથી પ્રચલિત છે. પરંતુ તે બધામાં મહેશ્વરસૂરિ રચિત પ્રસ્તુત કથા ઉપલબ્ધ સાહિત્યમાં કદાચ જૂનામાં જૂની હોય એમ લાગે છે.

પંચમી કથાઓ

મારી પાસે મહેશ્વરસૂરિ રચિત 'પંચમી કથા'ની પાટણની હસ્તલિખિત પ્રતિની જે પ્રતિલિપિ છે તે ઉપરથી એમ સ્પષ્ટ દેખાય છે કે તે પ્રતિ જેસલમીર ભંડારની ૧૦૦૯ (વિક્રમ સંવત્) વર્ષમાં લખેલી તાડપત્રીય પ્રતિ ઉપરથી વિ. સં ૧૬૫૧ માં આષાઢ શુક્લ તૃતીયા ને સોમવારને દિવસે પુષ્યનક્ષત્રમાં તપાગચ્છાધિરાજ ભટ્ટારક પંડિત શ્રી આનંદવિજય ગણિ શિષ્ય બુદ્ધિવિમલ ગણીએ પૂરી કરી હતી. પણ જેસલમીર ભાંડાગારીય ગ્રન્થોની સૂચી તપાસતાં માલૂમ પડે છે કે ઉપર્યુક્ત તાડપત્રીય પ્રતિનો લેખન સંવત્ ૧૧૦૯ મુકવામાં આવ્યો છે અને એના વર્ણનમાં સૂચીકાર પંડિત લા. ભ.

---

૧ જુઓ 'જેસલમીર ભાંડાગારીય ગ્રન્થાનાં સૂચી' (જે. ભા. ગ્ર. સૂ.) ગાયકવાડ ઓરીએન્ટલ સીરીઝ (ગા. ઓ. સી) નં. ૨૧. વડોદરા, ૧૯૨૩. પૃ. ૪૪. તેને 'જ્ઞાન પંચમી કથા' તરીકે પણ ઓળખાવેલ છે–જુઓ 'પત્તનસ્થ પ્રાચ્ય જૈન ભાંડાગારીય ગ્રન્થ સૂચી'–પ્રથમ ભાગ (પ. ભા. ગ્ર. સૂ. ભા. ૧) ગા. ઓ. સી. નં. ૭૬. વડોદરા, ૧૯૩૭, પ્રાસ્તાવિક, પૃ. ૫૭.

૨ મારી પાસે જે પ્રતિલિપિ છે તે ઉપરથી તો તેમ લાગે છે. (मिलियाणं च दसाण वि एत्थ कहाणाण होइ विन्नेयं । गाहाणं माणेणं दोण्हिसहस्साइं गंथग्गं ॥ १० । ५००) પરંતુ એક ઠેકાણે ૨૦૦૪ ગાથાનો ઉલ્લેખ પણ મળી આવે છે. તે માટે જુઓ ખાસ કરીને 'બૃહટ્ટિપ્પનિકા' (જૈન સાહિત્ય સંશોધક, વો. ૧, અં. ૨) માંનું નીચેનું વાક્ય:–

'पञ्चमी कथा दशकथानकात्मिका प्रा. महेश्वरसुरीया २००४'

૩ જૈન માહારાષ્ટ્રી પ્રાકૃત એ નામકરણ માટે જુઓ યાકોબી સંપાદિત 'સમરાઇચ્ચ કહા'ની પ્રસ્તાવના (બીબ્લીઓથીકા ઇન્ડિકા સીરીઝ, વોલ્યુમ–૧૬૯) પૃ. ૨૧–૨૨.

ગાંધીએ લખ્યું છે "अस्मादेव आदर्शात सं. १६५१ वर्षलिखिते पत्तनीयपुस्तके 'सं. १००९ वर्षे' लेखनमस्य प्रादर्शि'।"[4] આ ઉપરથી બરાબર એક સૈકાનો તફાવત નીકળે છે. ગમે તેમ પણ ગ્રન્થકાર શ્રી મહેશ્વરસૂરિની પ્રાચીનતા તો સ્પષ્ટ જ દેખાય છે. આજ કથાની બીજી એક તાડપત્રીય પ્રતિ સં. ૧૩૧૩ માં વીસલદેવ રાજ્યે તન્નિયુક્ત નાગડના મહામાત્યપણામાં થયેલી ઉલ્લેખાયેલી છે.[5] પાટણભંડાર (નં. ૧ સંઘવી પાડા) માં તે છે અને એક ત્રીજી તાડપત્રીય પ્રતિ પણ ત્યાં જ છે જે પ્રાંતે કિંચિત અપૂર્ણ છે.[6] આ રીતે જેસલમીરમાં એક અને પાટણમાં બે એમ કુલ્લે ત્રણ તાડપત્રીય પ્રતિઓ જાણવામાં છે.

આ મહેશ્વરસૂરિ રચિત પ્રાકૃત ગાથાબદ્ધ 'પંચમી કહા' પછી ધર્કટવંશ વણિક્ ધનપાળ રચિત અપભ્રંશ ભાષા બદ્ધ "ભવિસ્સયત્ત કહા" આવે છે.[7] આ કથા 'જૈન ગ્રન્થાવલિ' (જૈ. ગ્રં.)માં મહેંદ્રસૂરિ કે મહેશ્વરસૂરિને નામ ખોટી રીતે ચડેલી છે.[8] 'જૈન ગ્રન્થાવલિ'ના પૃ. ૨૫૬ની પાદ નોંદમાં એમ લખ્યું છે કે "આ કથા પંચમી માહાત્મ્ય પર રચેલી છે. જેસલમીરની હિરાલાલે કરેલી પોતાની ટીપમાં તથા લીંબડીની ટીપમાં એના કર્ત્તા મહેશ્વરસૂરિ લખ્યા છે. ખંભાતના શેઠ નગીનદાસના ભંડારમાં મહેંદ્રસૂરિનું નામ આપીને સદરહુ પ્રતિ (ભવિષ્યદત્તાખ્યાનની) લખ્યાનો સંવત ૧૨૧૪ નોંધેલો છે. હાલમાં પં૦ શ્રી આણંદસાગરજી જણાવે છે કે આ સિવાય બીજી એક ધનપાલકૃત પણ છે પણ તે અમોને ઉપલબ્ધ નથી." આ પ્રમાણેના વાક્યો 'જૈન ગ્રન્થાવલિ'ના ઉપર્યુક્ત પૃષ્ઠની પાદનોંધમાં છે. મને એમ લાગે છે કે આ કૃતિ કે જેનું નામ 'જૈન ગ્રન્થાવલિ'માં ભવિષ્યદત્તાખ્યાન છે તથા જેના રચનાર એમાં મહેંદ્રસૂરિ જણાવ્યા છે અને જેની પ્રતિઓ જેસલમીર, લીંબડી તથા ખંભાતમાં છે એમ તેમાં જણાવ્યું છે તેમજ જેની ગાથા સંખ્યા ૨૦૦૦ ગણાવવામાં આવી છે તે બીજો કોઈ ગ્રન્થ નહિ પણ મહેશ્વરસૂરિકૃત 'પંચમી કહા' જ હોવી જોઇએ. મારા આ અનુમાનની પુષ્ટિમાં પં૦ લાલચંદ્ર. ભ. ગાંધીનું નિમ્નોક્ત વાક્ય ખાસ નોંધવા જેવું છે:—"P. P. १६७ इत्यत्र 'महेन्द्रसूरिकृतं भविदत्ताख्यानं' दर्शितं तदप्येतदेव **महेश्वरसूरिरचितं** भविष्यदत्तकथावसानं 'पञ्चमीमाहात्म्यं' सम्भाव्यते । लेखकस्खलनातः प्रेक्षकस्यापि स्खलना परम्परयाऽन्यत्रावतीर्णा प्रेक्ष्यते ।"[9] પીટર્સનના પહેલા રિપોર્ટના ૬૭. નં.માં ઉલ્લેખેલ પુસ્તક અને 'જૈન ગ્રન્થાવલિ' નિર્દિષ્ટ પુસ્તક બન્ને એક જ હોય એમ લાગે છે. એટલે મહેન્દ્ર (કે મહેશ્વર) સૂરિ રચિત ભવિષ્યદત્તાખ્યાન તે બીજું કાંઈ નહિ પણ પં. લા. ભ. ગાંધી જણાવે છે તેમ "महेश्वरसूरिरचितं भविष्यदत्तकथावसानं 'पञ्चमीमा-

૪ ઉપર્યુક્ત જે. ભા. ગ્ર. સૂ. પૃ. ૪૪ તથા પૃ. ૫૨.

૫ જુઓ મોહનલાલ દલીચંદ દેસાઈ કૃત 'જૈન સાહિત્યનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ'-સચિત્ર (જૈ. સા. સં. ઇ.), મુંબઈ, ૧૯૩૩, પૃષ્ઠ-૪૦૮ તથા ઉપર્યુક્ત પ. ભા. ગ્ર. સૂ. નં. ૪૦.

૬ ઉપર્યુક્ત પ. ભા. ગ્ર. સૂ. નં. ૨૯.

૭ આ કથા યાકોબીએ જર્મનીમાં સન. ૧૯૧૮માં સંપાદિત કરી અને ત્યાર બાદ ગા. ઓ. સી. માં નં.-૨૦ મા સ્વ. દલાલે પ્રો. ગુણેની પ્રસ્તાવના અને ટિપ્પણ સહિત સંશોધિત કરી બહાર પાડી.

૮ જુઓ શ્રી જૈન શ્વેતાંબર કોન્ફરન્સ, મુંબઈ તરફથી વિ. સં. ૧૯૬૫માં 'જૈનગ્રંથાવલિ' (જૈ. ગ્ર) પૃ. ૨૨૮ તથા પૃ. ૨૫૬.

૯ ઉપર્યુક્ત જે. ભા. ગ્ર. સૂ. પૃ. ૪૪.

हात्म्यं" 'જૈન ગ્રન્થાવલિ' મહેશ્વરસૂરિ રચિત 'ભવિષ્યદત્તાખ્યાન' (૨૦૦૦ ગાથા–લીંબડી)નો બીજો ઉલ્લેખ પૃ. ૨૨૮ ઉપર કરે છે તે પણ 'પંચમી કહા' વિષેનો જ સમજવો. આ 'ભવિસ્સયત્ત કહા' કે જેનું બીજું નામ 'સુય પંચમી કહા'[૧૦] પણ છે તેનો રચનાર ધનપાલ છે અને તે ધનપાલ ધર્કટ વંશનો હતો. તેની બાવીસ સંધિઓ છે. આ કથા અપભ્રંશમાં લખાયેલી છે અને તેનો નાયક ભવિષ્યદત્ત રાજા છે. જ્ઞાનપંચમીના ફળનું તેમાં વર્ણન કરેલું છે. તેનો લેખક ધનપાલ પોતે જ પોતાનો પરિચય આપતાં કહે છે કે તેના પિતાનું નામ માએસર હતું અને માતાનું નામ ધનશ્રી હતું. તેનું પદ્ય લખાણ ધવલ અને પુષ્પદંત કવિના લખાણ સાથે સરખાવી શકાય તેવું છે. તેની અપભ્રંશ હેમચંદ્રના અપભ્રંશ કરતાં પ્રાચીન લાગે છે પણ તે ઉપરથી તેની અને હેમચંદ્રની વચ્ચે બે સૈકાનું અંતર હોય એમ કલ્પી તેને દશમી સદીમાં મુકવાનું યુક્તિયુક્ત લાગતું નથી.[૧૧] ઉલટું, ઇસવી સનની બારમી સદી આસપાસ થયો હોવાનું સામાન્યપણે સ્વીકારાયું છે.[૧૨]

ધારાધીશ મુંજનો અને ભોજનો પણ અતિ માનીતો, સરસ્વતી બિરૂદને પ્રાપ્ત થયેલ, 'પાઇયલચ્છી'–'તિલક મંજરી' વગેરેનો રચનાર વિપ્ર સર્વદેવનો પુત્ર ધનપાલ ઉપર્યુક્ત ધનપાલ કરતાં બીજો[૧૩] અને તેના પછી થયો હોવાનું મનાય છે.

'ભવિસ્સયત્ત કહા'ના રચનાર ધનપાલને વિન્ટરનિત્ઝ, યાકોબીને અનુસરી, દિગંબર જૈન શ્રાવક કહે છે.[૧૪] ધર્કટવંશ એજ ઉપકેશ–ઊકેશ વંશ[૧૫] અને ઊકેશ એટલે ઓસવાળ વંશ એવું પણ કથન જોવામાં આવે છે.[૧૬] સારાંશ એ કે વિક્રમની અગીઆરમી સદીમાં કે તે પહેલાં થઈ ગયેલા શ્વેતાંબરાચાર્ય શ્રી મહેશ્વરસૂરિ રચિત પ્રાકૃત ગાથામય પંચમી કથાના દસમા કથાનક ભવિષ્યદત્ત ઉપરથી[૧૭] ઇસિવીસનની બારમી-સદીમાં થયેલ મનાતા ધર્કટવંશ વણિક્ દિગંબર જૈન ધનપાલે 'ભવિસ્સયત્ત કહા અથવા સુયપંચમી કહા' અપભ્રંશ ભાષામાં રચી.

---

૧૦ મોહનલાલ દલીચંદ દેસાઈ કૃત 'જૈન ગૂર્જર કવિઓ' (જૈ. ગૂ. ક), પ્રથમભાગ, મુંબઈ, ૧૯૨૬, પૃ. ૩૭.

૧૧ આથી વિરૂદ્ધ અભિપ્રાય માટે જુઓ ઉપર્યુક્ત પુસ્તકનું પૃ. ૩૮. તથા જૈ. સા. સં. ઈ. નું પૃ. ૩૩૦ ઉપરનું વાક્ય "ધનપાળ કવિ લગભગ દસમી સદીમાં થયો." એજ પુસ્તકના પૃ. ૧૮૮ ઉપર "આ પૈકી ભવિષ્ય દત્ત કથા પરથી ધર્કટ વણિક્ ધનપાલે અપભ્રંશમાં ભવિસ્સયત્ત કહા–પંચમી કહા રચી જણાય છે" વાક્ય લખેલું છે. મહેશ્વરસૂરિ ઈ. સ. ના દશમાં સૈકામાં પ્રાયઃ થયા એમ તો શ્રી. દેસાઈ તેજ પુસ્તકના પૃ. ૧૮૭ ઉપર કબુલ કરે છે તો પછી મહેશ્વરસૂરિના 'પંચમી કથાં'તર્ગત ભવિષ્યદત્ત કથાનકનો આધાર લઈ 'ભવિસ્સયત્ત કહા' લખનાર ધનપાલને દશમી સદીમાં ક્યાંથી મુકશે ?

૧૨ જુઓ ઉપર્યુક્ત પ. ભા. ગ્ર. સૂ. ના પ્રાસ્તાવિક (અંગ્રેજી)ના પૃ. ૬૨ ઉપરની પહેલી પાદનોંધ.

૧૩ વિન્ટરનિત્ઝકૃત 'હિસ્ટરી ઑફ ઇન્ડીઅન લિટરેચર,' વૉ. ૨. પૃ. ૫૩૨ ઉપરની ચોથી પાદનોંધ.

૧૪ ઉપર્યુક્ત પુસ્તકનું પૃ. ૫૩૨.

૧૫ ઉપર્યુક્ત. પ. ભા. ગ્ર. સૂ–પૃ. ૩૨૭ તથા પૃ. ૩૩૯

૧૬ ઉપર્યુક્ત જૈ. સા. સં. ઈ. પૃ. ૪૫૩ ઉપરની ૪૪૧ મી પાદનોંધ.

૧૭ સરખાવો ઉપર્યુક્ત જે. ભા. ગ્ર. સૂ. ના પૃ. ૪૪ ઉપરનું નિમ્નોક્ત વાક્યઃ–साम्प्रतं प्रसिद्धा धर्कटवणिग्वंशोद्भवधनपालनिर्मिता........अपभ्रंशा भविस्सयत्त कहा (पञ्चमीकहा) अस्या एव धान्तकथायाः प्रपंचरूपा ॥ અહિંઆ એક વાત ખાસ સ્પષ્ટ કરી લેવા લાયક છે. એક 'પંચમી ચરિઅ'

ધનપાલની 'ભવિસ્સયત્ત કહા' પછી તેરમી અને ચૌદમી સદીમાં કોઇએ સંસ્કૃત–પ્રાકૃતાદિમાં પંચમી કથા વિષે કાંઈ લખ્યું હોય તેવું જાણવામાં નથી. પંદરમી સદીમાં વિબુધ શ્રીધર નામના કોઈ દિગંબર જૈન વિદ્વાને 'ભવિષ્યદત્ત ચરિત' સંસ્કૃતમાં લખ્યું હોવાનું બહાર આવ્યું છે. આ ભવિષ્યદત્ત ચરિત્ર પંચમી વ્રતને અનુલક્ષીને ધનપાલના 'ભવિસ્સયત્ત કહા'ની પેઠે લખવામાં આવ્યું હોય એવો પૂરતો સંભવ છે. ભાષા સંસ્કૃત છે. પત્ર સંખ્યા ૭૯ની છે અને લિપિસંવત્ ૧૪૮૬ નો છે. એ ઉપરથી એમ માની શકાય કે તે સંવત્ ૧૪૮૬ પહેલા થયેલ હશે. દિલ્હીના ધર્મપુરા મહોલ્લામાં આવેલા નયામંદિરના ભંડારમાં આ ગ્રન્થની પ્રતિ છે. જુઓ "અનેકાંત"–જૂન, ૧૯૪૧–પૃષ્ઠ-૩૫૦.

આ પછી વિક્રમની સોળમી સદીમાં સિંહસેન અપરનામ રઈધુએ (દિગંબર જૈન) 'મહેસર ચરિય,' 'ભવિસ્સયત્ત ચરિયાદિ' અપભ્રંશ ભાષામાં રચેલા જણાય છે.[૧૮] આ 'ભવિસ્સયત્ત ચરિય' પંચમી વ્રતના ફળના દૃષ્ટાંત રૂપે મહેશ્વરસૂરિ, ધનપાલ, વિબુધ શ્રીધરની માફક સિંહસેને લખ્યું હોય એ તદ્દન સ્વાભાવિક છે. આ કવિનું નામ 'રઇધુ' છે. તે હરસિંહ સિંઘઇનો પુત્ર અને ગુણકીર્ત્તિ શિષ્ય યશઃકીર્ત્તિનો શિષ્ય હતો. આ યશઃકીર્ત્તિ ગ્વાલિયરમાં ઈ. સ. ૧૪૬૪ (વિ. સં. ૧૫૨૧)માં રાજકર્તા તોમર વંશના કીર્ત્તિસિંહ રાજાના સમયની આસપાસ વિદ્યમાન હોવાનું જણાયું છે તેથી સિંહસેન યા રઇધુએ પણ તે જ સમય આસપાસ આ ગ્રંથો રચ્યા હોવા જોઇએ. પોતાના ગ્રન્થોમાં તેણે ગુણાકર, ધીરસેન, દેવનંદિ, જિનવરસેન, રવિષેણ, જિનસેન, સુરસેન, દિનકરસેન, ચઉમુહ, સ્વયંભૂ, અને પુષ્ફયંતનો ઉલ્લેખ કરેલ છે.[૧૯] આજ કવિના રચેલા 'દહ લકખણુ જયમાળ' નામના ગ્રન્થની પ્રસ્તાવનામાં પંડિત પ્રેમી જણાવે છે કે 'રઈધુ' કવિએ 'ભવિસ્સચરિયાદિ' ગ્રન્થો લખ્યાના ઉલ્લેખ મળી આવે છે. તેઓ એમ પણ જણાવે છે કે તે સર્વ ગ્રંથો અપભ્રંશમાં હોવા સંભવ છે.[૨૦] આ 'ભવિસ્સયત્ત ચરિય' મુદ્રિત થયું જાણવામાં નથી.

વિક્રમની સત્તરમી સદીના લગભગ મધ્યભાગમાં (સં. ૧૬૫૫ માં) તપાગચ્છીય કનકકુશલે સંસ્કૃત ભાષામાં 'જ્ઞાન–પંચમી માહાત્મ્ય' પદ્યમાં લખ્યું.[૨૧] આની એક

ત્રિભુવન સ્વયંભુ નામના આઠમી–નવમી શતાબ્દિમાં (જુઓ ભારતીય વિદ્યા (ત્રૈમાસિક) ભા. ૧; અં. ૨; પૃ. ૧૭૭) થએલ મનાતા કવિએ લખ્યું હોવાનો ઉલ્લેખ મળી આવ્યો છે (જુઓ ભારતીય વિદ્યા (ત્રૈમાસિક) ભા. ૨; અં. ૧; પૃ. ૫૯). તો પછી મહેશ્વરસૂરિ અને ધનપાલ પહેલાં પણ પંચમી વ્રત ઉપર લખાયું હોવાનું માનવું પડે. આ ગ્રન્થ જોવા મળ્યે ઘણી બાબતો ઉપર પ્રકાશ પડવા સંભવ છે.

૧૮ ઉપર્યુક્ત જૈ. સા. સં. ઈ. પૃ. ૫૨૦.

૧૯ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગૂ. ક. પ્રથમ ભાગ, પૃ. ૮૭.

૨૦ જૈન ગ્રન્થ રત્નાકર કાર્યાલય તરફથી પ્રકાશિત આ ગ્રંથની પં. નાથુરામ પ્રેમીની પ્રસ્તાવના.

૨૧ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગ્ર. પૃ. ૨૬૪ તથા લીંબડી જૈન જ્ઞાન ભંડારની હસ્તલિખિત પ્રતિઓનું સૂચીપત્ર (લીં. ભા. ગ્ર. સૂ.)–શ્રી આગમોદય સમિતિ ગ્રન્થોદ્ધાર ગ્રન્થાંક–૫૮–પ્રથમ આવૃત્તિ, મુંબઈ, ઈ. સ. ૧૯૨૮, પૃ. ૬૨ તથા ઉપર્યુક્ત જૈ. સા. સં. ઈ. પૃ. ૬૦૪. આ 'જ્ઞાન પંચમી સાહાત્મ્ય,' શ્રીવિજ્યધર્મસૂરિ જૈન ગ્રન્થમાલાના પુ. ૩૭ના એક ભાગ રૂપે બહાર પડેલ છે. જુઓ 'શ્રીપર્વકથા સંગ્રહ' (પ. ક. સં.) વિજયધર્મસૂરિ જૈન ગ્રન્થમાલા, પુ. ૩૭ સંપાદક–સ્વ. મુનિશ્રી હિમાંશુવિજય, ઉજ્જૈન, વિ. સં. ૧૯૯૩. પૃ. ૩–૧૬.

प्रति पाटणना संघवी पाडाना भंडारमां तथा लींबडीना ज्ञानभंडारमां ए प्रतिओ छे. रचना संवत् (विक्रमीय) १६५५ लखेल छे. 'जैन ग्रन्थावलि' तेनुं श्लोक प्रमाण १५० गणावे छे.[२२] अने लींबडी भंडारनुं सूचीपत्र १५२ श्लोक नोंधे छे[२३] ज्यारे ए कथाना मुद्रित ग्रंथमां १४० श्लोक छे.[२४] श्रीयुत देसाई पोताना 'जैन साहित्यना संक्षिप्त इतिहास'मां लखे छे के तपागच्छीय कनककुशले सं. १६५५ मां 'वरदत्त गुण-मंजरी कथा,' 'सौभाग्य पंचमी कथा' अने 'ज्ञान पंचमी कथा' पर बालावबोध रच्यो छे.[२५] आ वांचतां आपणने सेंज आभास थाय के श्री देसाई आ त्रणेय पुस्तकोने जुदा जुदा समजे छे पण खरीरीते एम नथी. कनककुशले एक ज बालावबोध रच्यो छे अने ते 'ज्ञान पंचमी माहात्म्य' उपर. अने तेमां दृष्टांतरूपे वरदत्त, गुणमंजरीने लीधा छे तेम ज कनककुशल ते ग्रंथमां निम्नोक्त श्लोक[२६] लखे छे

"जायतेऽधिकसौभाग्यं पञ्चम्याराधनात् नृणाम् ।
इत्यस्या अभिधा जज्ञे लोके **सौभाग्यपंचमी** ॥"

जे उपरथी एने 'सौभाग्य पंचमी' पण कही शकाय. अर्थात् कनककुशले त्रण बाला-वबोध नथी रच्या परंतु एक ज बालावबोध रचेल छे.

तपागच्छीय कनककुशल पछी रत्नचंद्र शिष्य माणिक्यचंद्र शिष्य दानचंद्रे विजय-सिंहसूरि राज्ये सं. १७०० मां 'ज्ञानपंचमी कथा' ('वरदत्त–गुणमंजरी कथा') रची.[२७] आ कथा मुद्रित थई नथी. तेनी प्रतिओ वगेरे क्यां छे ते कांई जाणवामां आव्युं नथी.

दानचंद्र पछी 'सप्तसंधान' महाकाव्यना लेखक उपाध्याय मेघविजयजीए (अढा-रमी सदी) पण 'पंचमी कथा' लखी होवानो उल्लेख मळी आवे छे. ते हजु मुद्रित थई जणाती नथी. तेनी प्रति पंन्यास श्रीहंसविजयजी पासे छे एम श्री देसाई पोताना 'जैन साहित्यना संक्षिप्त इतिहासमां' जणावे छे.[२८]

आ पछी ओगणीसमी सदीमां वि. सं. १८२९थी १८६९ना गाळामां खरतर-गच्छीय क्षमाकल्याण उपाध्याये 'सौभाग्य पंचमी' नामे पंचमी व्रतना माहात्म्य उपर संस्कृतमां गद्य पद्य युक्त कथा रची. आ पुस्तक विजयधर्मसूरि जैनग्रन्थ-माळा तरफथी प्रकाशित 'पर्वकथा संग्रह' नामना ग्रन्थथी भिन्न परंतु तेज नाम-धारी एक बीजा 'पर्वकथा संग्रह' नामना पत्राकारे मुद्रित पुस्तकमां प्रथम कथारूपे स्थान पामेली छे. तेना संपादक मणिसागरजी छे अने जैन छापखाना–कोटा (राजपुताना) तरफथी प्रसिद्ध थयेली छे. आ क्षमाकल्याण उपाध्याय खरतरग-

---

२२ जुओ उपर्युक्त जै. ग्र. पृ. २६४.
२३ जुओ उपर्युक्त लीं. भा. ग्र. सू. पृ. ६२.
२४ जुओ उपर्युक्त प. क. सं. पृष्ठो ३–१६.
२५ जुओ उपर्युक्त जै. सा. सं. ई. पृ. ५९१ तथा ६०४.
२६ जुओ उपर्युक्त प. क. सं. पृ. १५. श्लोक. १३६.
२७ जुओ उपर्युक्त जै. सा. सं. ई. पृ. ६०२.
२८ जुओ उपर्युक्त पुस्तकनुं पृ. ६५३.

ચ્છીય જિનલાભસૂરિના શિષ્ય અમૃતધર્મના શિષ્ય હતા. શ્રી. દેસાઈ નોંધે છે કે તેમણે ચાતુર્માસિક હોલિકા આદિ દશ પર્વ કથા રચી હતી.[२९] પરંતુ ત્યાં આગળ તેઓ એ દશ પર્વ કથાઓમાં 'સૌભાગ્ય પંચમી'નો ઉલ્લેખ સ્પષ્ટરીતે કરતા નથી. જો કે ક્ષમાકલ્યાણ ઉપાધ્યાયે 'સૌભાગ્ય પંચમી' રચી હતી એ નિર્વિવાદ છે. લીંબડી ભંડારમાં આની એક પ્રતિ છે.[३०] 'જૈન ગ્રંથાવલિ'માં ક્ષમાકલ્યાણ કૃત 'સૌભાગ્ય પંચમી' વિષે સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ નથી. 'અક્ષયતૃતીયા કથા,' 'અઠ્ઠાઈ વ્યાખ્યા,' 'ચાતુર્માસિક પર્વ કથા,' 'પૌષ દશમી કથા,' 'મેરુ ત્રયોદશી કથા,' 'મૌન એકાદશી કથા (પ્રા),' 'રજઃ પર્વ કથા,' 'હોલિકા કથા' અને 'રોહિણી કથા' વગેરેનો ગ્રન્થ તરીકે 'જૈનગ્રન્થાવલિ'માં ઉલ્લેખ છે પણ કર્ત્તાનું નામ નથી લખેલ. અને એ બધાની પ્રતિઓ અમદાવાદના ડેલાના ભંડારમાં છે એમ ત્યાં લખેલું છે.[३१] આ બધા પર્વોનો સરવાળો કરતાં નવ પર્વ થાય છે. અને શ્રી. દેસાઈ દશ પર્વકથાઓ લખી હોવાનો ઉલ્લેખ કરે છે. તે ઉપરાંત 'જૈન ગ્રંથાવલિ'માં તેજ પૃષ્ઠ ઉપર 'જ્ઞાન પંચમી' કથાનો ઉલ્લેખ છે. કર્ત્તાનું નામ નથી અને પ્રતિ અમદાવાદના ડેલાના ભંડારમાં છે એમ જણાવ્યું છે.[३२] તો કદાચ આ 'જ્ઞાન પંચમી કથા' ક્ષમાકલ્યાણ રચિત હોવા સંભવ છે કારણ કે એ રીતે શ્રીદેસાઇનો ક્ષમાકલ્યાણે દશ પર્વકથાઓ લખી હોવાનો ઉલ્લેખ તેમજ લીંબડી ભંડારમાંથી મળી આવતી ક્ષમાકલ્યાણ રચિત 'જ્ઞાનપંચમી કથા' વાળો ઉલ્લેખ એ બન્ને બાબતો સાચી ઠરે. 'જૈન ગ્રંથાવલિ' ત્રણ જ્ઞાન પંચમી કથાઓ નોંધે છે.[३३] તેમાંથી એક તો સ્પષ્ટરીતે કનકકુશલ રચિત લખેલ છે. બીજી મેં કલ્પના કરી છે તેમ ક્ષમાકલ્યાણ રચિત હોય અને ત્રીજી સૌંદર્યગણિ રચિત પાટણના સંઘવીપાડાના ભંડારમાં છે એમ સૂચવી પાદનોંધમાં શંકા કરી છે કે સૌંદર્યગણિ નામના કોઈ આચાર્ય થયા જાણવામાં નથી. એક જ લેખક રચિત એક જ ગ્રંથની બે પ્રતિઓ હોવા પણ સંભવ છે. સૌંદર્યગણિએ પોતાનું નામ પોતાની માલીકી સૂચવવા ત્યાં લખ્યું હોય અને ભૂલથી એને નામે એ કૃતિ માત્ર ત્યાં લખેલ નામ ઉપરથી ચડાવી દેવામાં આવી હોય એમ પણ બને. ક્ષમાકલ્યાણકૃત 'સૌભાગ્ય પંચમી' (મુદ્રિત) તપાસવાથી માલુમ પડે છે કે એમણે પદ્યો તો કનકકુશલ રચિત 'જ્ઞાન પંચમી માહાત્મ્ય'માંથી લીધા છે અને ગદ્યવિભાગ પોતે રચ્યો હોય એમ દેખાય છે, જો કે આ ગદ્યવિભાગ પણ કનકકુશલ રચિત 'જ્ઞાન પંચમી માહાત્મ્ય'ના ભાવને બરાબર અનુસરે છે.

ત્યાર બાદ વિક્રમની વીસમી સદીમાં આજથી લગભગ ઓગણીશ વર્ષ પહેલાં એટલે વિ. સં. ૧૯૮૨ માં દિગંબર જૈન વિદ્વાન બ્રહ્મચારી રાયમલ્લે સંસ્કૃતમાં 'ભવિષ્યદત્તચરિત' લખ્યાનું વાંચ્યું છે. પત્ર સંખ્યા ૪૫ની ગણાવી છે અને લિપિ સંવત્ ૧૯૮૨

૨૯ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. સા. સં. ઈ. પૃ. ૬૭૬.

૩૦ જુઓ ઉપર્યુક્ત લીં. ભા. ગ્ર. સૂ.નું પરિશિષ્ટ નં. ૧. પૃ. ૪.

૩૧ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગ્ર. પૃ. ૨૬૪.

૩૨ જુઓ ઉપર્યુક્ત ગ્રન્થનું ઉપર્યુક્ત પૃ.

૩૩ જુઓ ઉપર્યુક્ત ગ્રન્થનું ઉપર્યુક્ત પૃ.

મુકેલ છે. હિન્દીમાં તેના ઉપર ભગવતદાસે ટીકા પણ કરેલી છે.[૩૪] આ ગ્રન્થ પણ નામ ઉપરથી તો પંચમી વ્રત ઉપર જ લાગે છે. જોવાથી વધારે માલુમ પડે. હજુ તે પ્રકટ થયો હોય એવું જાણવામાં નથી. ઉપર્યુક્ત દિલ્હીમાં ધર્મપુરા મહોલ્લાના નયા મંદિરના ભંડારમાં તેની પ્રતિ છે.

અહિં સુધી તો આપણે પંચમી માહાત્મ્ય ઉપર સંસ્કૃત, પ્રાકૃત, અપભ્રંશાદિ ભાષામાં કોણે ક્યારે લખ્યું તે સંબંધે ચર્ચા કરી. હવે આપણે તે સંબંધે જૂની ગૂજરાતીમાં કોણે ક્યારે શું લખ્યું છે તેનો પણ વિચાર કરી લઇએ.

સત્તરમી સદીના અંતભાગમાં એટલે કે લગભગ વિ. સં. ૧૬૮૫ માં તપાગચ્છીય હીરવિજયસૂરિ – મેહમુનિ – કલ્યાણકુશલ શિષ્ય દયાકુશલે 'જ્ઞાન પંચમી – નેમિજિનસ્તવન' જૂની ગૂજરાતીમાં લખ્યું.[૩૫] આદિમાં તેમાં લખ્યું છે :–

"શારદમાત પસાઉલે નિજગુરુચરણ નમેવિ
પંચમી તપવિધિ હું ભણું હિઅડે હરષ ધરેવિ."

દયાકુશલે ઉપર્યુક્ત સ્તવન રચ્યું તેજ અરસામાં ખરતરગચ્છીય જિનચંદ્રસૂરિ – સકલચંદ્ર ઉપાધ્યાયના શિષ્ય સમયસુંદર ઉપાધ્યાયે વિ. સં. ૧૬૮૫ આસપાસમાં જેસલમેરમાં 'પંચમી વૃદ્ધ (મોટું) સ્ત૦' (જ્ઞાન પંચમીપર ૩ ઢાળ ૨૫ કડીનું સ્તવન) તથા 'પંચમી લઘુ સ્તવન' ૫ – કડીમાં જૂની ગૂજરાતીમાં લખ્યાં.[૩૬] નમૂના નીચે પ્રમાણે છે :–

'પંચમી વૃદ્ધસ્તવન'ની આદિ :–

પ્રણમું શ્રી ગુરુપાય નિર્મલજ્ઞાન ઉપાય,
પંચમી તપ ભણું એ, જનમ સફળ ગિણું એ.

'પંચમી લઘુસ્તવન'ની આદિ

પંચમી તપ તુમે કરોરે પ્રાણિ, નિર્મળ પામો જ્ઞાન.

અંત

પાર્શ્વનાથ પ્રસાદ કરીને, મ્હારી પૂરો ઉમેદ રે,
સમયસુંદર કહે હું પણ પામું, જ્ઞાનનો પંચમો ભેદરે.

લગભગ આજ સમયે તપાગચ્છીય સકલચંદ્ર ઉપાધ્યાય શિષ્ય સૂરચંદ્ર શિષ્ય ભાનુચંદ્ર શિષ્ય દેવચંદ્ર બીજાએ પણ 'સૌભાગ્ય પંચમી સ્તુતિ' લખી છે.[૩૭]

અઢારમી સદીના પહેલા દસકામાં તપાગચ્છીય વિજયસિંહ – વિજય દેવ – સંજમ હર્ષ – ગુણહર્ષ શિષ્ય લબ્ધિવિજયે 'મૌન એકાદશી સ્તવન' ઉપરાંત 'સૌભાગ્ય પંચમી – જ્ઞાન પંચમી સ્તવન' જૂની ગૂજરાતીમાં રચ્યાનો દાખલો મળે છે :–[૩૮]

---

૩૪ જુઓ "અનેકાંત" – ૧૯૪૧, જૂન – પૃ. ૩૫૦.
૩૫ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગૂ. ક. પ્રથમ ભાગ, પૃ. ૨૯૯.
૩૬ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ, ગૂ. ક. પ્રથમ ભાગ, પૃ. ૩૮૦.
૩૭ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગૂ. ક. પ્રથમ ભાગ, પૃ. ૫૭૯.
૩૮ જુઓ જૈ. ગૂ. ક. બીજો ભાગ, પૃ. ૧૨૩.

આદિ

આદિ જિણાવર (૨) સયલ જગજંત
વંછિઅ સુહંકર પયકમલ નમવિ દેવ સારદા સમરિઅ,
તિમ નિઅ સહગુરુ નામનઇં મુઝ મન્નિ કજિ કરિઅ ભમરિઅ,
કહિસ્યું **સોહગ પંચમી નાણપંચમી** તિમ્મ
આરાહતઈં દૂરિ હોઈ નાણાવરણી કમ્મ. ૧

વિ. સં. ૧૭૩૧ લગભગ ખરતરગચ્છીય જિનરંગે 'સૌભાગ્ય પંચમી' ઉપર સજ્ઝાય લખ્યાનું નોંધાયું છે.[૩૯]

વિ. સં. ૧૭૪૮ (?) કાર્તિક સુદ ૫ સોમવારે આગ્રામાં તપાગચ્છીય ચારિત્ર સાગર–કલ્યાણસાગર–ઋદ્ધિસાગર શિષ્ય ઋષભસાગરે 'ગુણમંજરી વરદત્ત ચોપાઈ' જૂની ગૂજરાતીમાં લખ્યાનું ઉલ્લેખાયું છે:[૪૦]–

આદિ

"ભાવિક જીવ ઉપકાર ભણિ, જયૂં કહ્યો પૂરવસૂરિ,
કાતિ સૂદિ **પંચમિ** તણો, કહિસ્યું મહિમાપૂર.". ૬

× × ×

અંત

"ઋષભસાગર નિજમતિ અનુસારૈં, એ કહી ઈણિ પ્રકારૈં,
ભણૈં ગુણૈં એ ચરિત પવિત ઈ, આનંદ હુવૈં તસ ચિત્તઈજી ॥ ૨૦ ॥

વિ. સં. ૧૭૯૯ના શ્રાવણસુદ ૫ રવિવારે પાલણપુરમાં તપાગચ્છીય વિજયપ્રભ-સૂરિ–પ્રેમવિજય શિષ્ય કાંતિવિજયે જૂની ગૂજરાતીમાં સૌભાગ્ય પંચમી માહાત્મ્ય–ગર્ભિત શ્રી 'નેમિજિન સ્તવન' રચ્યું:–[૪૧]

આદિ

"પણમૂં પવયણ દેવીરે સૂર બહુ સેવિત પાસ,
પંચમી તપ મહીમા કહું, દેજ્યો વચન પ્રકાશ. ૧
જે સુણતાં દુઃખ નિકસૈંરે વિકસે સંપદ હેજ,
આતમ સાખિ આરાધતાં સાધતાં વાધે તેજ." ૨

આ સિવાય જ્ઞાન પંચમી ઉપર અથવા તેને લગતાં વિષય ઉપર ગૂજરાતીમાં બણારસી કૃત 'જ્ઞાન પંચમી ચૈત્યવંદન,' 'જ્ઞાન પંચમી ઉદ્યાપન વિધિ સ્વાધ્યાય,' વિજયલક્ષ્મી સૂરિ કૃત 'જ્ઞાન પંચમી દેવવંદન,' 'જ્ઞાન પંચમી સ્વાધ્યાય' અને ગુણવિજય કૃત 'જ્ઞાન પંચમી સ્તવન' વગેરે વગેરે લખાયા છે.[૪૨]

---

૩૯ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગૂ. ક. બીજો ભાગ, પૃ. ૨૭૩.
૪૦ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગૂ. ક. બીજો ભાગ, પૃ. ૩૮૦.
૪૧ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગૂ. ક. બીજો ભાગ, પૃ. ૫૩૧.
૪૨ જુઓ ઉપર્યુક્ત લીં. ભા. ગ્ર. સૂ.

મહેશ્વર સૂરિઓ

'જ્ઞાન પંચમી કથા' અથવા 'પંચમી માહાત્મ્ય'ના રચનાર સજ્જન ઉપાધ્યાયના શિષ્ય મહેશ્વર સૂરિ વિ. સં. ૧૧૦૯ પછી તો નથી જ થયા એ વાત નિર્વિવાદ છે કારણ કે જ્ઞાન પંચમી કથાની જૂનામાં જૂની તાડપત્રીય પ્રતિનો લેખન સંવત ૧૧૦૯ છે તે આપણે આજ લેખમાં આગળ જોઈ ગયા.[૪૩] આના અનુસંધાનમાં એ પણ જણાવવું આવશ્યક છે કે 'જૈન ગ્રન્થાવલિ'માં ઉલ્લેખેલ ભવિદત્તાખ્યાન કે ભવિષ્યદત્તાખ્યાનકાર મહેશ્વરસૂરિ તે બીજા કોઈ નહિ પણ 'જ્ઞાન પંચમી'ના લેખક મહેશ્વરસૂરિ. તે પણ આજ લેખમાં આગળ આપણે તપાસી ગયા.[૪૪]

અપભ્રંશભાષામાં પાંત્રીશ ગાથામાં 'સંયમમંજરી'ના લખનાર એક બીજા મહેશ્વરસૂરિનો ઉલ્લેખ અહિં કરી લેવો જોઇએ.[૪૫]

ત્યાર બાદ એક ત્રીજા મહેશ્વરસૂરિ તે થઈ ગયા કે જેણે 'પાક્ષિક અથવા આવશ્યક સપ્તતિ' ઉપર ૧૦૪૦ ગાથા પ્રમાણ ટીકા લખી છે.[૪૬] આ મહેશ્વરસૂરિ વાદિદેવસૂરિના શિષ્ય હતા અને એ હિસાબે તેમનો અસ્તિત્વકાળ વિક્રમીય તેરમી સદીનો લગભગ મધ્યભાગ સંભવે. તેમણે રચેલી વૃત્તિનું નામ 'સુખ પ્રબોધિની' છે. એ વૃત્તિ રચવામાં તેમને વજ્રસેન ગણિએ સહાય પણ કરી હતી[૪૭] (જુઓ કાંતિવિજયજી પ્રવર્તકનો પુસ્તકર ભંડાર, વડોદરા, નં. ૧૦).

ચોથા મહેશ્વરસૂરિ તે થઈ ગયા કે જેમણે 'કાલિકાચાર્ય કથા' આવન પ્રાકૃત ગાથામાં લખી છે.[૪૮] 'જૈન ગ્રન્થાવલિ' પૃ. ૨૫૦ની નોટમાં ઉમેરે છે કે "આ મહેશ્વર સૂરિ તે કયા તે બાબત કાંઈ ચોક્કસ પૂરાવો મળી શકતો નથી. પણ તે પ્રાચીન વખતમાં થયેલા હોવા જોઇએ. તેમના સંબંધમાં પીટર્સનના બીજા રિપોર્ટમાં ('જૈન સાહિત્યના સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ'માં બીજો નહિ પણ પહેલો રિપોર્ટ લખ્યો છે) પૃ. ૨૯માં સદરહુ કથાની નોંધ લેતાં પ્રાન્તે "ઇતિ શ્રી પલ્લીલ ('જૈન સાહિત્યના સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ'માં આ ગચ્છને પલ્લીવાલ ગચ્છ તરીકે ઓળખાવેલ છે અને તે સાચું છે)[૪૯] ગચ્છે મહે-

---

૪૩ જુઓ પાદનોંધ ૪. તેઓ સજ્જન ઉપાધ્યાયના શિષ્ય હતા તે માટે જુઓ 'જ્ઞાન પંચમી કથા'ના પ્રશસ્તિગત નિમ્નોક્ત શ્લોકો :–

दोपक्खुज्जोयकरो दोसासंगेण वज्जिओ अमओ ।
सिरिसज्जणउज्झाओ अउव्वचंदुव्व अक्खत्थो ॥
सीसेण तस्स रइया दस वि कहाणाइ इमे उ **पंचमिए** ।
सूरिमहेसरएणं भवियाणं बोहणट्ठाए ॥

૪૪ જુઓ પાદનોંધ ૯.

૪૫ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગ્ર. પૃ. ૧૯૨; ઉપર્યુક્ત જૈ. સા. સં. ઈ. પૃ.૩૩૧; લીં. ભા. ગ્ર. સૂ. પૃ. ૧૭૬; ઉપર્યુક્ત ૫. ભા. ગ્ર. સૂ. (અંગ્રેજી પ્રાસ્તાવિક) પૃ. ૬૩; Printed in the introduction of भविस्सयत्तकहा (ગા. ઓ. સી. નં. ૨૦).

૪૬ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગ્ર. પૃ. ૧૪૩.

૪૭ ઉપર્યુક્ત જૈ. સા. સં. ઈ. પૃ. ૩૩૬.

૪૮ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગ્ર. પૃ. ૨૫૦.

૪૯ ઉપર્યુક્ત જૈ. સા. સં. ઈ. પૃ. ૪૩૧.

શ્વરસૂરિભિર્વિરચિતે કાલિકાચાર્ય કથા સમાપ્તા" આવો ઉલ્લેખ છે. સંવત્ ૧૩૬૫ નો નોંધ્યો છે પણ અમારા ધારવા મુજબ તે પ્રતિ લખ્યાનો હોવો જોઇએ. આ બાબત 'સંયમમંજરી'માં પણ વિશેષ ખુલાસો જોવામાં આવતો નથી."

પાંચમા મહેશ્વરસૂરિ એ થઈ ગયા કે જેમણે 'વિચાર રસાયન પ્રકરણ' (અમદાવાદના ડેલાના ઉપાશ્રયની ટીપમાં આનું નામ 'વિચારણ પ્રકરણ' જોવામાં આવે છે પણ તે 'વિચાર રસાયન પ્રકરણ' જ હોય એમ સંભવે છે) ૮૭ ગાથામાં સંવત્ ૧૫૭૩માં રચ્યું.[૫૦]

છઠ્ઠા મહેશ્વરસૂરિ તે દેવાનંદ ગચ્છના મહેશ્વરસૂરિ કે જેઓ સંવત્ ૧૬૩૦ માં થઈ ગયા.[૫૧]

સાતમા મહેશ્વરસૂરિનો ઉલ્લેખ લીંબડીની સૂચીમાં મળી આવે છે. તેમણે 'શબ્દ ભેદ પ્રકાશ' રચ્યો હતો જેનો લેખન સંવત્ વિ. સ. ૧૬૪૪ લીંબડી ભંડારવાળી પ્રતિમાં નોંધેલો છે. નવ પત્ર છે અને ૩૬૬ શ્લોક સંસ્કૃતમાં છે.[૫૨]

આઠમા મહેશ્વરસૂરિ સંબંધેની થોડીક વિગત 'જૈન ગ્રન્થાવલિ'માં મળી આવે છે. તેઓ વર્ધમાન સૂરિના શિષ્ય હતા અને ૧૨૩ ગાથામાં 'સિદ્ધાંતોદ્ધાર પ્રકરણ' રચ્યું હતું એવો ઉલ્લેખ તેમાં છે.[૫૩] 'જૈન સાહિત્યના સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ'માં એમ જણાવ્યું છે કે 'સિદ્ધાંત–વિચાર' અથવા 'સિદ્ધાંતોદ્ધાર' (પી. ૧,૩૩) વિમલસૂરિના શિષ્ય ચંદ્રકીર્ત્તિ ગણિએ રચ્યો હતો.[૫૪]

'જૈન ગ્રન્થાવલિ' તો બીજા બે મહેશ્વરસૂરિઓ પણ જણાવે છે જેમાંના એકે 'લિંગભેદ નામમાળા'[૫૫] અને બીજાએ ૩૦૦૦ શ્લોક પ્રમાણ 'વિશ્વકોષ' રચ્યો હતો.[૫૬] આ રીતે દશ મહેશ્વરસૂરિઓ થયા.

અને અગીઆરમાં મહેશ્વરસૂરિ લીંબડી ભંડારની સૂચિ પ્રમાણે એ થયા કે જેમણે સંસ્કૃતમાં 'શબ્દ પ્રભેદ' નામનો ૨૦૦ શ્લોક પ્રમાણ ગ્રંથ લખ્યો. તેના સાત પૃષ્ઠ છે.[૫૭]

આ અગીઆર મહેશ્વરસૂરિઓ પૈકી 'જ્ઞાન પંચમી કથા'ના લખનાર મહેશ્વરસૂરિએ બીજો કોઈ ગ્રંથ લખ્યો છે કે નહિ તે તપાસવાથી કયા મહેશ્વરસૂરિ ભેળવડાણા છે તેની ખબર પડશે. 'પંચમી કથા'ના લખનાર મહેશ્વરસૂરિએ પોતાને માટે સજ્જન ઉપાધ્યાયના પોતે શિષ્ય હતા તે સિવાય કશું જ પ્રશસ્તિમાં જણાવ્યું નથી. છતાં પોતે વિક્રમીય અગીઆરમી સદીના પ્રથમ દશકા પહેલાં થયા હતા એતો આપણે આગળ

---

૫૦ ઉપર્યુક્ત જૈ. સા. સં. ઈ. પૃ. ૫૧૮; ઉપર્યુક્ત જૈ. ગ્ર. પૃ. ૧૩૫.
૫૧ ઉપર્યુક્ત જૈ. સા. સં. ઈ. પૃ. ૬૦૬.
૫૨ જુઓ ઉપર્યુક્ત લી. ભા. ગ્ર. સૂ. પૃ. ૧૪૦.
૫૩ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગ્ર. પૃ. ૧૩૬.
૫૪ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. સા. સં. ઈ. પૃ. ૨૭૬.
૫૫ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગ્ર. પૃ. ૩૧૨.
૫૬ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. ગ્ર. પૃ. ૩૧૩.
૫૭ જુઓ ઉપર્યુક્ત લીં. ભા. ગ્ર. સૂ. પૃ. ૧૪૦.

જોઈ ગયા. એટલે જ્યાં ગુરુભેદ અને સમયભેદ સ્પષ્ટપણે બતાવવામાં આવ્યો હશે ત્યાં તો પંચમી કથાના રચનાર મહેશ્વરસૂરિ તે તે મહેશ્વર સૂરિથી જુદા એમ બેધડકપણે કહી શકાશે.

'આવશ્યક સપ્તતિ' ઉપર ટીકા લખનાર મહેશ્વરસૂરિ વાદિદેવ સૂરિના શિષ્ય હતા તેથી, 'કાલિકાચાર્ય કથા' પ્રાકૃતમાં લખનાર મહેશ્વરસૂરિ પલ્લિવાલ ગચ્છમાં થઈ ગયા તેથી, 'વિચાર રસાયન પ્રકરણ'ના રચનાર મહેશ્વરસૂરિ સં. ૧૫૭૩ માં વિદ્યમાન હતા તેથી, દેવાનંદ ગચ્છના મહેશ્વરસૂરિ ગચ્છભેદે તથા સં. ૧૬૩૦ માં થઈ ગયા તેથી, 'સિદ્ધાંતોદ્ધાર પ્રકરણ'ના રચનાર મહેશ્વરસૂરિ વર્ધમાનસૂરિના શિષ્ય હતા તેથી, અને 'શબ્દ ભેદ પ્રકાશ,' 'લિંગભેદ નામ માળા,' 'વિશ્વકોષ,' અને 'શબ્દ પ્રભેદ'ના લખનાર ચારેય મહેશ્વરસૂરિઓ અર્વાચીન દેખાય છે તેથી એ નવેય મહેશ્વરસૂરિઓ 'જ્ઞાન પંચમી' કથાના લેખક મહેશ્વરસૂરિ કરતાં ભિન્ન છે એ નિર્વિવાદ છે. હવે રહ્યા એક 'સંયમ મંજરી'ના લખનાર મહેશ્વરસૂરિ જે પ્રસ્તુત 'જ્ઞાન પંચમી કથા'ના લેખક મહેશ્વરસૂરિ હોય એવી સંભાવના રહે છે. અપભ્રંશ ભાષામાં 'સંયમ મંજરી' નામનો પ્રકરણ ગ્રન્થ લખનાર મહેશ્વરસૂરિએ તે ગ્રંથમાં પણ પોતાના સમય વગેરે વિષે કશો ઉલ્લેખ કર્યો નથી. પોતાના 'હિસ્ટરી ઑફ ઈન્ડીઅન લિટરેચર' ભાગ. ૨. માં[૫૮] વિન્ટરનિત્ઝ 'સંયમ મંજરી'ના લખનાર મહેશ્વરસૂરિને હેમહંસસૂરિના શિષ્ય ભૂલથી માનીને હેમચંદ્રસૂરિના સમસામયિક અથવા ૧૩૦૯ પહેલાં તો અવશ્ય થયેલા માને છે. 'કાલકાચાર્ય કથાનક'ના કર્ત્તા મહેશ્વરસૂરિ અને સંયમમંજરીના મહેશ્વરસૂરિ બન્ને એક છે એમ કલ્પી, 'કાલકાચાર્ય કથાનક'ની તાડપત્રીય પ્રતિ ઈ. સ. ૧૩૦૯ માં લખાયેલી મળી આવેલ છે તે ઉપરથી સંયમમંજરીના રચનાર મહેશ્વરસૂરિ ૧૩૦૯ પહેલાં મોડામાં મોડા થયા હોવા જોઇએ એમ ગણી તેઓ હેમહંસસૂરિના શિષ્ય છે એમ આગળ કહ્યું તેમ ભૂલથી માની તેમને હેમચંદ્રસૂરિના સમસામયિક બનાવે છે. આ આખી વિચારસરણિ ભૂલ ભરેલી દેખાય છે. પહેલાં તો એ કે 'કાલકાચાર્ય કથાનક'ના રચનાર મહેશ્વરસૂરિ તેજ 'સંયમમંજરી'ના રચનાર મહેશ્વરસૂરિ, મેં આગળ કહ્યું તેમ, માનવાનું ખાસ કાંઈ કારણ નથી. તે ઉપરાંત, મહેશ્વરસૂરિ હેમહંસસૂરિના શિષ્ય હતા એ ખોટું છે કારણ કે ઉલટું હેમહંસસૂરિ (પૂર્ણચંદ્રસૂરિ શિષ્ય)ના શિષ્યે 'સંયમમંજરી' નામના પ્રકરણ ગ્રન્થ ઉપર પ્રાકૃત–સંસ્કૃત કથાઓથી અલંકૃત વિસ્તીર્ણ વ્યાખ્યા રચી પ્રકરણકાર તરફનો પોતાનો આદરભાવ વ્યક્ત કર્યો છે. એટલે પૂર્ણચંદ્રસૂરિ શિષ્ય હેમહંસસૂરિ શિષ્ય તો વૃત્તિકાર થયા, નહિ કે પ્રકરણકાર; અલબત્ત, પોતાની એ વ્યાખ્યામાં વ્યાખ્યાકાર હેમહંસસૂરિ શિષ્ય પણ પ્રકરણકાર મહેશ્વરસૂરિ સંબંધે કશુંજ લખતા નથી. મહેશ્વરસૂરિ 'સંયમમંજરી'ના રચનાર હતા એ પણ કદાચ વ્યાખ્યાકાર જાણતા નો'તા કારણ કે મહેશ્વરસૂરિ શબ્દ પ્રયોગને બદલે તેઓ પ્રકરણકાર કહીનેજ લેખકને ઓળખાવે છે. આ હેમહંસસૂરિ શિષ્ય તે કદાચ હેમસમુદ્ર

---

૫૮ જુઓ પૃ. ૫૮૯ની સાતમી પાદનોંધ.

હોય.[૫૯] પૂર્ણચંદ્રસૂરિ – હેમહંસસૂરિ – હેમસમુદ્રસૂરિ નાગોરી તપાગચ્છના હતા કે ચંદ્ર-ગચ્છના હતા તે વિષે મતભેદ છે.[૬૦]

આ 'સંયમમંજરી'ની ત્રણ તાડપત્રીય પ્રતિઓ પાટણ ભંડારમાં છે.[૬૧] જેસલમેરના બૃહદ્ભંડારમાં પણ એક તાડપત્રીય પ્રતિ છે[૬૨] અને લીંબડી ભંડારમાં પણ એક હસ્તલિખિત પ્રતિ છે.[૬૩] ભાષા અપભ્રંશ છે અને કુલ ગાથા ૩૫ છે. તેના ઉપર વિસ્તીર્ણ વ્યાખ્યા પૂર્ણચંદ્રસૂરિ શિષ્ય હેમહંસસૂરિના શિષ્યે લખેલી છે. આ ગ્રંથ મુદ્રિત થયેલ છે.[૬૪] 'સંયમમંજરી'ના રચનાર મહેશ્વરસૂરિ અગીઆરમી સદી (વિક્રમીય) માં થઈ ગયા[૬૫] તેથી 'જ્ઞાન પંચમી કથા'ના લેખક મહેશ્વરસૂરિ અને આ મહેશ્વરસૂરિ એક હોય એમ સંભવે છે.

*

---

૫૯ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. સા. સં. ઈ. પૃ. ૫૮૫.

૬૦ જુઓ ઉપર્યુક્ત પુસ્તકનું ઉપર્યુક્ત પૃ. તથા–ઉપર્યુક્ત પ. ભા. ગ્ર. સૂ. પૃ. ૧૧૩.

૬૧ જુઓ ઉપર્યુક્ત. પ. ભા. ગ્ર. સૂ. પૃ. ૬૮, ૧૬૨ તથા ૧૯૩.

૬૨ જુઓ ઉપર્યુક્ત જે. ભા. ગ્ર. સૂ. પૃ. ૩૮.

૬૩ જુઓ ઉપર્યુક્ત લીં. ભા. ગ્ર. સૂ. પૃ. ૧૭૬.

૬૪ જુઓ ગા. ઓ. સી. નં. ૨૦.

૬૫ જુઓ ઉપર્યુક્ત જૈ. સા. સં. ઈ. પૃ. ૩૩૧.

શું વિક્રમાદિત્ય મહાન્ સમ્રાટ્ હતો ?

લે૦ — શ્રીયુત ડુંગરસી ધરમસી સંપટ.

*

સંવતકાર સમ્રાટ્ વિક્રમાદિત્ય કોણ હતો? ક્યારે થયો? એણે કેવા મોટા વિજયો મેળવ્યા? તે સંબંધી ઇતિહાસવેત્તાઓની વચ્ચે મોટા મતભેદો છે; આ સંબંધી ઇતિહાસ હજી કાંઈ ચોકસ નિર્ણય લાવી શક્યો નથી. ઇતિહાસજ્ઞો આ સંબંધી જુદા જુદા મતો ધરાવે છે. હમણાં શ્રી વિક્રમાદિત્યની ૨૦૦૦ની સંવત્સરી ઉજવવાની હીલચાલ ચાલે છે. આ સમયે જુદા જુદા પ્રાચીન ઇતિહાસવેત્તાઓ અને પુરાતત્ત્વજ્ઞોના મતો સંક્ષિપ્તમાં અત્રે દર્શાવ્યા છે.

યુરોપિયન ઇતિહાસવેત્તાઓ ગુપ્તવંશના મહાન સમ્રાટ ચંદ્રગુપ્ત વિક્રમાદિત્યને (ઇસુની ચોથી સદી) ખરા વિક્રમાદિત્ય તરીકે ગણે છે. કાલિદાસ કવિને પણ એના જ સમયમાં મુકે છે. આપણા સનાતની વિદ્વાનો વિક્રમાદિત્યને ઉજ્જયિનીના મહાપરાક્રમી સમ્રાટ્ અને પરોપકારી નૃપતિ તરીકેનું ચક્રવર્તિપણું આપીને મહત્તા દર્શાવે છે. પરંતુ એ માન્યતાને ટેકો આપનાર સિક્કા, સ્મરણસ્થંભો, પ્રાચીન ગ્રન્થોના પુરાવા કે પ્રાચીન પરદેશી પ્રવાસીઓના ઉલ્લેખો દેખાડી શકતા નથી. વિક્રમાદિત્ય મહાન સમ્રાટ્ હતો એવો એકેય ઐતિહાસિક પુરાવો નથી. ગ્રીક લેખકો, ચીના પ્રવાસીઓ પણ વિક્રમાદિત્ય સંબંધી કોઈ પ્રકાશ પાડતા નથી. વિક્રમાદિત્યના સમયનો અને મહત્તાનો ચોકસ નિર્ણય આપનારા શિલાલેખો વિગેરે કાંઈ મળતા નથી.

આપણા આધુનિક વિદ્વાનો પણ વિક્રમાદિત્ય સંબંધી જૂદા જૂદા અભિપ્રાયો ધરાવે છે. એ સમ્રાટ્ કોણ હતો? ક્યારે થયો? અને શા તેના મહાન પરાક્રમો હતા? તે સંબંધી ઇતિહાસજ્ઞો જુદા જુદા મતો ધરાવે છે. એ હિંદુ આર્ય હતો કે પરદેશી વંશનો હતો તે માટે પણ જૂદા જૂદા અભિપ્રાયોના અનુમાનો આપણી સમક્ષ મુકાયા છે. વિક્રમાદિત્યના પરોપકાર સંબંધી 'વૈતાળ પંચવિંશતી,' 'સિંહાસન બત્રીસી,' કથાસરિત્સાગર,' 'ભોજ પ્રબંધ' અને જૈન રાસાઓમાં અનેક કથાઓ છે. પરંતુ 'ભવિષ્ય પુરાણ'ની અનૈતિહાસિક કથાઓની પેઠે એ સર્વનો ઐતિહાસિક પાયો નથી. માત્ર લોકરંજનકથા સિવાય કોઈ પણ રીતે એના ઉપર આધાર મુકાય તેમ નથી. 'વાયુ,' 'વિષ્ણુ પુરાણ' અને 'શ્રીમદ્ ભાગવત'માં ઘણી શ્રદ્ધા આવે એવી ઐતિહાસીક વંશાવળીઓ છે. પરંતુ એ કોઈમાં પણ વિક્રમાદિત્ય સંબંધી ઉલ્લેખ મળતો નથી. એના માટે મૌન સેવવામાં આવ્યું છે.

સમ્રાટ્ વિક્રમાદિત્ય સંબંધી જૂનામાં જૂનો ઉલ્લેખ જૈનોના 'કાલિકા કથાનક'માં મળે છે. ઉજ્જયિનીના ગર્દભીલવંશનો રાજા ગંધર્વસેન એક જૈન સાધ્વીને પોતાના અંતઃપુરમાં ઉપાડી ગયો. એ આર્યાના ભાઈ કાલકાચાર્ય ઇરાન જઈ ત્યાંના શકોના સરદારોને સમજાવીને હિંદ તેડી લાવ્યા. એમણે મળીને ગંધર્વસેનને હરાવ્યો. સાત વરસ સુધી આ શકોનું રાજ્ય અવંતિ ઉપર રહ્યું (બુદ્ધિપ્રકાશ પુ. ૭૬ પૃ. ૮૮, દ્વિ. આ.

કેશવલાલ ભાઇનો લેખ). એ ગંધર્વસેનના રાજકુમાર વિક્રમાદિત્યે પેઠણના અરિષ્ટ-કર્ણ–સાતકર્ણી આંધ્રપતિની મદદ મેળવી શકોને હરાવ્યા. વિક્રમાદિત્યે શકારિનું બિરૂદ ધારીને સંવતનો આરંભ કર્યો હોય એમ જૈનો માને છે. જૈનો વિક્રમાદિત્યને જૈન માને છે. જૈનો એના સંવતને પણ સ્વીકારે છે. પાછળથી આંધ્રોએ માળવા લઈ લીધું હતું પરંતુ આ સર્વને સ્વતંત્ર ઇતિહાસનો કોઈ ટેકો નથી. જૈનોની માન્યતા મુજબ ઉજ્જેનનું રાજ્ય મોટું સામ્રાજ્ય નહોતું. એ ટક્યું લાગતું પણ નથી.

પ્રસિદ્ધ વિદ્વાન્ સર જૉન માર્શલની શોધખોળ મુજબ તક્ષશિલા ખાતે એક ખરોષ્ઠી ભાષામાં લેખ મળ્યો છે. તે પ્રમાણે અઝીજ પહેલાના સંવતનો એ લેખ હોવાના ચિહ્નો તેમાં છે. એમાં અઝીજ સંવતનું ૧૩૬ મું વરસ હોવાનો ઉલ્લેખ છે. એના પહેલાના સમ્રાટ્ મૌઝનો સમય ખ્રિસ્ત પહેલાં ૭૫ નો બરાબર બંધ બેસતો મળે છે. અઝીજના પછીનો ત્રીજો રાજા ગોન્ડોફરસ ઈ. સ. ૧૯માં રાજ્ય કરતો હતો. ગ્રીક સિક્કાઓના સહકારથી બનાવેલી વંશાવળી એમાં બરાબર મળી જાય છે. આથી અઝીજ પહેલો બરાબર વિક્રમ સંવતની શરૂઆતના સમયમાં આવી જાય છે. ખ્રિસ્ત પહેલાનું ૫૮ મું વરસ વિક્રમ સંવતનું ગણાય છે. ઉપલા લેખમાં કોઈ રાજાનું નામ નથી. આથી આ અનુમાન બરાબર નથી એમ ઘણાં વિદ્વાનો માને છે. આ લેખમાં "મહાન સમ્રાટ્, રાજાધિરાજ ઈશ્વરપુત્ર કુશાન" એટલાં શબ્દો ખરોષ્ઠી લિપિમાં છે. આ મહાન સમ્રાટ્ કડફીસસ હોવાનું સર જૉન માર્શલ ધારે છે. આ અનુમાનને હિંદના ઇતિહાસજ્ઞોનો ટેકો નથી.

પ્રોફેસર કે. એમ. શૅમ્બાવનેકર M. A. પોતાના જર્નલ ઑફ ધી યુનિવર્સીટી ઑફ બૉમ્બે (વો. ૧ પાર્ટ, ૬ May 1933)ના લેખમાં વિક્રમાદિત્યને ઈ. સ. પહેલા ૫૭–૫૮ વરસોમાં થયાનું માને છે. એઓ 'કથાસરિત્સાગર'નો આશ્રય લે છે. પિશાચ ભાષામાં રચાયલી 'શ્રી બૃહત્કથા'નું 'કથાસરિત્સાગર' રૂપાંતર છે. 'કથાસરિત્સાગર'માં વિક્રમાદિત્ય અને તેના પિતા મહેન્દ્રાદિત્ય બન્ને મોટા શિવ ભક્તો હતા. શંકરના મલ-યાવત ગણના અવતાર તરીકે વિક્રમાદિત્યને ત્યાં ગણવામાં આવ્યો છે. જૈનો વિક્રમા-દિત્યને જૈન તરીકે ઓળખાવે છે. એના પિતાનું નામ ગંધર્વસેન બતાવે છે. પ્રોફેસર શૅમ્બાવનેકર 'મેઘદૂત' અને 'વિક્રમોર્વશીય' નાટકમાં ઇન્દ્ર માટે વાપરેલી મહેન્દ્ર ઉપાધિ ઉપર બહુ ભાર રાખતા જણાય છે. એઓના મંતવ્ય પ્રમાણે યુરોપિયન વિદ્વાનોની માન્યતા જે વિક્રમાદિત્યને ચોથા સૈકાના ચંદ્રગુપ્ત વિક્રમાદિત્ય તરીકે જણાવે છે તે પાયા વગરની છે.

શ્રી કાશીપ્રસાદ જાયસ્વાલ વિક્રમ બરાબર થયાનું માને છે. એમની ગણતરી પ્રમાણે ઈ. સ. ૫૭–૫૮ માં વિક્રમ માળવામાં થયા હતા. પરંતુ એઓ ચક્રવર્તિ ન-હતા. એઓ જૈન ગણતરી પ્રમાણે બરાબર સમય મેળવી આપે છે. જૈનોના સરસ્વતી ગચ્છની પટ્ટાવલીઓમાં શ્રી મહાવીરસ્વામીનો આ જગતમાંથી ઈ. સ. પૂર્વે ૫૪૬ વરસમાં ઉત્સર્ગ માને છે. એ પટ્ટાવલીઓ પ્રમાણે વિક્રમાદિત્ય પહેલાં ૪૯૦ વરસે એમનું નિર્વાણ મનાયું છે. એ ગણતરી પ્રમાણે –

૩૫૩ વરસો શ્રીમહાવિરના નિર્વાણ પૂર્વેના વ્યતીત થયા ત્યારે પાલક રાજા અવન્તીની ગાદી ઉપર હતો. એ રાજા બુદ્ધ ભગવાનના સમયાનુયાયી પ્રદ્યોત રાજાનો પુત્ર હતો. પાલક રાજા મૌર્યો અને શૂંગ સમ્રાટ્ પુષ્યમિત્રના સમયમાં હતો.
૬૦ વરસો પુષ્યમિત્રથી તે શૂંગ રાજા ભાનુમિત્ર સુધી પસાર થયા હતા (ભાનુમિત્રના સિક્કાઓ મળ્યા છે).
૪૦ વરસો પછી સમ્રાટ્ નહવાન અથવા નહપાન થયો.
૧૩ વરસો ગર્દભિલ્લ રાજા જે વિક્રમનો પિતા હતો તેનું રાજ્ય ચાલ્યું (શ્રી જાયસ્વાલ એ રાજાને ગૉન્ડોફરસ સમ્રાટ્‌ની સાથે એક જ હોવાનું માને છે).
૪ વરસો સંવતકારના સંવત શરૂ કરવાના વરસો.

વિક્રમ એમની માન્યતા પ્રમાણે ૧૮મે વરસે રાજ્ય સિંહાસને બેઠો હતો. વિક્રમનો સંવત જૈન મત પ્રમાણે શ્રીમહાવીરના નિર્વાણ પછી ૪૮૮ મા વરસે શરૂ થયો હતો. (૪૭૦+૧૮) આ ૪૮૮ વરસોમાં ૫૭–૫૮ ઉમેરતાં ૫૪૫–૫૪૬ ખ્રિસ્ત પહેલાના વરસો બરાબર આવે છે.

શ્રી વિક્રમાદિત્યના સંવત સંબંધી ક્યાંયે કોઈ સિક્કા મલ્યા નથી. એ સમયના ગ્રીક ઇતિહાસકારોએ કાંઈ ઉલ્લેખ કર્યો નથી. બૌદ્ધ સમયના સાહિત્યમાં પણ વિક્રમાદિત્ય સંબંધી મૌન સેવાયું છે. એના સમયમાં અથવા એ સમયની ૩૦૦–૪૦૦ વરસની મર્યાદામાં કોઈ શિલાલેખ કે તામ્રપત્ર પણ વિક્રમના સંબંધમાં પ્રાપ્ત થયું નથી. પુરાણોની વંશાવલીમાં પણ વિક્રમ સંબંધી કાંઈ ઈશારો માત્ર નથી. માત્ર જૈનોનું 'કાલિકા કથાનક' જ એના સંબંધી ઉલ્લેખ કરે છે. વિક્રમાદિત્યના પરોપકાર, મહત્તા, પરદુઃખભંજકતા સંબંધી બહોળું દંતકથા સાહિત્ય હિંદની કેટલીક ભાષાઓમાં છે. એ સર્વ માત્ર રસીલી વાર્તારૂપે કહેવાયું છે. એની ઐતિહાસિક કિંમત કાંઈ નથી. વિક્રમ સંવતનો સૌથી પ્રથમ ઐતિહાસિક ઉલ્લેખ મંદસોરના લેખો (ચોથી કે પાંચમી સદીના જ) કરે છે. જૈનો અને માલવો આ સંવતને ઈ. સ. ૫૭–૫૮ થી શરૂ થતું હતું એમ માન્યતા ધરાવતા આવ્યા છે. વિક્રમની પહેલાં ૩૫૯ વરસો ઉપર પ્રદ્યોતનો કુમાર પાલક અવન્તિનો રાજા હતો પછી પાટલીપુત્રના મહાન સમ્રાટો એ પ્રદેશના માલીક થયા. એમના પછી નહપાન, વિક્રમ વગેરે સાધારણ નાના રાજાઓ થયાનું જૈનો માને છે.

શ્રી વિક્રમાદિત્ય મોટો ચક્રવર્ત્તિ સમ્રાટ્ હોવાની એકેય સાબીતી કે લેખ હજી સુધી પુરાતત્ત્વજ્ઞોને મળી શક્યો નથી. મૌર્યવંશના મહાન્ સમ્રાટ્ પ્રિયદર્શી અશોક (ઇસુની ત્રીજી સદી)થી તે ઠેઠ ગુપ્તવંશના ચંદ્રગુપ્ત વિક્રમાદિત્ય સુધીના સાતસો વરસોની લાંબી મુદતમાં કોઈ મહાન્ ચક્રવર્ત્તિ ભૂપતિ હિંદમાં થયો નથી. અલબત્ત, શૂંગવંશનો અગ્નિમિત્ર, પૈઠણનો સાતકર્ણી પહેલો અને સાતકર્ણી બીજો (સાતવાહન કે, શાલીવાહનના નામે ઓળખાય છે), કુશાન વંશનો કનિષ્ક એ વિજયી મોટા રાજાઓ હતા. પરંતુ એમાંથી કોઈ પણ હિંદના ચક્રવર્ત્તિપણાનું બિરૂદ મેળવી શકે તેવું ન હતું. વિક્રમાદિત્ય ચક્રવર્ત્તિ કે મહાન પુરૂષ થઈ ગયા તેની એકેય ઐતિહાસિક સાબીતી અલભ્ય-

છે. અલબત્ત, એ અવન્તિનો સાધારણ રાજા હોવાની માન્યતાને જૈન સાધનો બરાબર ટેકો આપે છે. વિક્રમાદિત્ય જરૂર થઈ ગયો હોવો જોઈએ નહિ તો એનો સંવત કેમ ચાલે ?

હવે જે જે ઐતિહાસિક પુરાવા મળ્યા છે તે પુરાવાઓ પ્રમાણે હિંદમાં એ સમયે કોણ કોણ રાજ્યો હતા તે આપણે અવલોકીએ. એ સમયે શકો અને માલવોની શક્તિ ઉત્તરહિંદના પંજાબ વિભાગમાં વધતી જતી હતી. આ શકોએ ઉજ્જયિનીના ગર્દભિલ્લ રાજાને કાઢી મુક્યો હોય તે તદ્દન બનવા જોગ છે. પૈઠણરાજ સાતકર્ણી બીજાનો (સાતવાહન અથવા શાલિવાહનનો) સહકાર મેળવીને વિક્રમાદિત્યે એમને (શકોને) કાઢી મુક્યા હોય તે તદ્દન સંભવિત છે. આ પરદેશી શકોએ બાકટ્રીઆના ગ્રીક યવનોના રાજ્યનો અંત આણ્યો હતો. આ બનાવ ઇસુ પહેલાં ૧૩૫ વરસે બન્યાનું અનુમાન છે. શકોનું રાજ્ય મથુરા ઉપર ઈ. સ. અગાઉના પ્રથમ સૈકામાં હતું તે એમના સિક્કાઓની પ્રાપ્તિથી સાબીત થાય છે. શક સમ્રાટ્ રજુબુલા અને એના ઉત્તરાધિકારી સોડાસના સિક્કાઓ મળ્યા છે. પંજાબથી તે જમના નદી સુધીના પ્રદેશમાં એનું રાજ્ય ઈ. સ. પહેલાની સદીમાં હતું એ જણાય છે. શકોને તદ્દન મારી કાઢવા માટે તો ઇસુની ચોથી સદીનો ચંદ્રગુપ્ત વિક્રમાદિત્ય જ જવાબદાર હતો.

શૂંગવંશનો બ્રાહ્મણરાજા પુષ્યમિત્ર ઈ. સ. પૂર્વે ૧૮૫–૧૪૪ માં થઈ ગયો છે. મૌર્ય સમ્રાટોમાંથી છેલ્લા રાજા બૃહદ્રથને મારીને એ સિંહાસન ઉપર આવ્યો હતો. યવનો (ગ્રીકો) ને હરાવી એણે કચ્છ, સૌરાષ્ટ્ર અને પંજાબ જીતી લીધાં હતાં. એનો પુત્ર અગ્નિમિત્ર મહાન વિજેતા હતો. કાલિદાસના 'માલવિકાગ્નિમિત્ર'નો એ નાયક છે. તેણે અશ્વમેધ યજ્ઞ કર્યો હતો. ઈ. સ. ૭૩ માં છેલ્લા શૂંગરાજા દેવભૂતિને મારીને એના કાણ્વવંશના બ્રાહ્મણ પ્રધાને રાજ્ય લઈ લીધું હતું. એઓનું રાજ્ય માળવા પાસે જ વિદિશામાં હતું. એ વંશ. ઈ. સ. પૂર્વે ૭૩ થી ૨૮ સુધી ચાલ્યો જણાય છે. વિક્રમાદિત્ય એ વંશના રાજાઓનો સમકાલીન હતો. કોઈ ચક્રવર્ત્તિ ન હતું.

આંધ્ર અથવા શાલિવાહન વંશ ખૂબ લાંબો ચાલ્યો જણાય છે (ઈ. સ. પૂર્વે ૩૨૦ થી ઈ. સ. ૨૨૫). એ વંશ પૈઠણમાંથી આવ્યો હતો. એના પહેલા રાજા સાતકર્ણીએ પુષ્યમિત્રને હરાવ્યાની સંભાવના છે. ઉજ્જયિની એણે જીતી લીધું હોવાનો સંભવ છે. સાતકર્ણી પહેલાના પૌત્રે માળવા તથા મહારાષ્ટ્ર જીતી લીધા હતા. સાતકર્ણી બીજો વિક્રમાદિત્યના સમયમાં સૌથી મોટો સમ્રાટ્ હતો. એણે વિક્રમાદિત્યને મદદ આપી માળવા અપાવ્યું હોય એવો સંભવ છે. ઐતિહાસિક પુરાવો કાંઈ નથી. પાછળથી એજ રાજાએ વિક્રમ કે તેના વંશજ પાસેથી ઉજ્જયિની લઈ લીધું હતું. માળવામાંથી શકોને હાંકી કાઢનાર સાતકર્ણી બીજો હતો. ભીલસાના ટીંબા ઉપરથી સાતકર્ણીનો નં૦ ૩૪૬ વાળો શિલાલેખ મળ્યો છે. ઠેઠ ઈ. સ. ૨૨૫ સુધી આંધ્રોનું મહાન્ સામ્રાજ્ય ચાલ્યું હતું. એનો શકો ઉપરનો વિજય છેવટે ચંદ્રગુપ્ત વિક્રમાદિત્યે સંપૂર્ણતાએ ઇસુની ચોથી સદીમાં પહોંચાડ્યો.

મહાન્ અશોકે કલિંગ (ઓરીસા) દેશ (ઈ. સ. પૂર્વે ૨૬૨) જીતી લીધો હતો. પરંતુ મૌર્યવંશના પતન પછી એ દેશ સ્વતંત્ર થયો હતો. એ કલિંગ વંશમાં જૈન ધર્મ

પાળનાર ચેતવંશનો સમ્રાટ્ ખારવેલ ઉદયગિરીની ગુફાના લેખો (૧૩૪૫ થી ૧૩૫૦) ના લેખોથી અને હાથીગુમ્ફાના લેખથી એ મોટો રાજા હતો તે સાબીત થાય છે. એ વંશના રાજાઓ વિક્રમાદિત્યના સમયમાં બળવાન હોવાનો સંભવ છે.

મથુરામાં એ સમયે કૃષ્ણભક્તિ અને જૈનધર્મ બંને પ્રચલિત હતા. એમાં શરૂઆતમાં સુરસેનોનું રાજ્ય હતું. શૂંગ સમયના બાર રાજાઓના નામો પુરાણોમાંથી મળે છે. ઈ. સ. ના પહેલા સૈકામાં છેલ્લા રાજા બ્રહ્મમિત્રનું નામ અહિચ્છત્રના રાજા ઇન્દ્રમિત્ર સાથે મળે છે. શૂંગવંશના રાજાઓ એમના ચક્રવર્ત્તિ હતા. શકોએ મથુરા જીતી લીધું હતું. શકો પણ વૈષ્ણવો બન્યા હોય એમ એમના સિક્કાઓ સૂચિત કરે છે.

કૌસંબી (અવધ), વિદેહ (ઉત્તર બિહાર), કાશી, મગધ (દક્ષિણ બિહાર), અંગ (મોંગીર અને ભાગલપુર) ના રાજાઓના સિક્કા મળે છે. પરંતુ નામ સિવાય બીજી હકીકત મળી શકી નથી.

ઈ. સ. પૂર્વે પહેલા સૈકામાં મહારાષ્ટ્ર, નાસીક અને પુના જીલ્લાઓ, ગૂજરાત, સુરાષ્ટ્ર તથા માળવાના થોડા ભાગમાં પરદેશી ક્ષત્રપોનો અધિકાર હતો. એઓ શકજાતિના હતા. પંજાબમાં યવનો (ગ્રીકો)ની સત્તા આ શકોએ તોડી હતી.

ભારશૈવોના નાગ (બ્રાહ્મણ) રાજાઓ પાછળથી સાતવાહન વંશના રાજાના ખંડીઆ થયા હતા. તેઓ બુંદેલ ખંડના હતા.

આ સિવાય આ સમયમાં હિંદમાં અનેક રાજાઓ નાના નાના વિસ્તારમાં રાજ્ય કરતા હતા જેમાં કેટલાક સ્વતંત્ર અને કેટલાક ખંડીઆ હતા. રાજપૂત વંશોના એ મૂળ પુરૂષો હતા. આમાંના કેટલાકના સિક્કાઓ પણ મળ્યા છે. આ રાજાઓ કોઈ મોટા સમ્રાટ્ની સામે નમી પડતા હતા. પરંતુ સાધારણ રીતે સ્વતંત્ર રહેતા હતા. પંજાબમાં યૌદ્ધેય અને રાજપૂતાનામાં અર્જુન નામના રાજપૂતોના સમૂહો હતા.

આ રીતે વિક્રમાદિત્યના સંવતકારના મહત્ત્વ અને પરાક્રમો સંબંધી કાંઈ પાયાદાર હકીકત મળતી નથી. એ સાધારણ રાજા હોય એમ ઘણા માને છે. કારણ કે મોટો ચક્રવર્ત્તિ અને વિજેતા હોવાનું એકેય પ્રમાણ ઇતિહાસ કે પુરાતત્ત્વ બતાવતું નથી.

* *
*

ગુજરાતમાં બૌદ્ધધર્મનો પ્રચાર

લે૦ – શ્રીયુત ધનપ્રસાદ ચંદાલાલ મુનશી.

*

સૌરાષ્ટ્ર–જૂનાગઢમાં મૌર્ય સમ્રાટ્ અશોકના શિલાલેખથી ફ્લે છે કે મૌર્યોના શાસનકાળમાં વર્તમાન ગુજરાત–કાઠિયાવાડમાં બૌદ્ધ ધર્મ પ્રવર્તમાન થઈ ચૂક્યો હતો. મૌર્યોના ઉદય પૂર્વે અને બુદ્ધ ભગવાન નિબ્બાણ–નિર્વાણ પામ્યા તે વખતે વર્તમાન ગુજરાતમાં બૌદ્ધ ધર્મ પ્રચારમાં આવી ચૂક્યો હતો એમ બૌદ્ધોની સાહિત્ય ગૂંથણીથી ખબર પડે છે. આ લેખમાં બુદ્ધના સમયનો અને કૈંક તે પહેલાંનો વર્તમાન ગુજરાતનો ઐતિહાસિક, ભૌગોલિક ચિતાર અને બુદ્ધ ધર્મ કયારે પ્રચારમાં આવ્યો એ આપવા અલ્પ પ્રયાસ કર્યો છે.

ઈસિવી સન પૂર્વે ૮૦૦–એ સમય મહાજનપદ યુગ કહેવાય છે. મહાભારતના દારૂણ યુદ્ધ પછી અને મહાજનપદ યુગ સુધીનો સંકલિત ઇતિહાસ જોઇએ તેવો પ્રાપ્ત થતો નથી. બૌદ્ધોના 'અંગુત્તર નિકાય'માં[1], મજ્જિમ દેશ–મધ્ય ભારતમાં[2] સોળ મહાજનપદ હોવાનો ઉલ્લેખ છે. બુદ્ધદેવના સમયમાં પણ આ સોળ જનપદ અસ્તિત્વમાં હતા. 'અંગુત્તર નિકાય'માં સોળ મહાજનપદની નામાવલી આ પ્રમાણે છે. (૧–૨) કાશી–કોશલ, (૩–૪) અંગ–મગધ, (૫–૬) વૃજિ–મલ્લ, (૭–૮) ચેદી–વત્સ, (૯–૧૦) કુરૂ–પાંચાલ, (૧૧–૧૨) મત્સ્ય–શૂરસેન, (૧૩–૧૪) અશ્મક–અવન્તિ, (૧૫–૧૬) ગાંધાર–કમ્બોજ: આમાંના ચૌદ જનપદ મધ્ય ભારતમાં આવેલા હતા. બૌદ્ધોના 'અંગુત્તર નિકાય' પ્રમાણે જૈનોના 'ભગવતી સૂત્ર'માં સોળ મહાજનપદના નામ ઉપરાંત કેટલાક બીજા દેશોની નામાવલી વિશેષ મળે છે ('અંગુત્તર નિકાય' કરતાં 'ભગવતી સૂત્ર' કેટલાક સૈકા પછીનો ગ્રન્થ હોવાનું મનાય છે). મહાભારતના કર્ણપર્વમાં જનપદ અથવા પ્રજાના સ્થળ નિવાસનો નિર્દેશ છે.

જૂના બૌદ્ધ સાહિત્યમાં ઉત્તરાપથ અને દક્ષિણાપથનો ઉલ્લેખ મળે છે. ડૉ. રાઈસ ડેવીડ્સ જણાવે છે કે સોળ મહાજનપદ સિવાય બીજા નાના નાના ગણ રાજ્યો અને જનપદો ભારતવર્ષમાં પથરાયેલા હતા. આ સાહિત્યમાં પાશ્ચાત્ય દેશ–અપરાન્તનો ઉલ્લેખ મળતો નથી; પણ પશ્ચિમ સાગર તટના પ્રાચીન નગરો સિન્ધુ–સૌવીરનું પાટ-

---

૧ અંગુત્તર નિકાય પુ. ૧, પૃષ્ઠ ૨૧૩; પુ. ૪, પૃષ્ઠ ૨૫૨, ૨૫૬, ૨૬૦.

૨ મજ્જિમદેશ–મધ્ય ભારત એ પ્રાચીન આર્યાવર્ત. બૌદ્ધ અને બ્રાહ્મણ સાહિત્યમાં આ પ્રદેશની સીમા મળે છે. પ્રાચીન સૂત્ર યુગમાં–બૌદ્ધાયનના ધર્મસૂત્રમાં આર્યાવર્તની–મધ્યદેશની પૂર્વસીમા જ્યાં સરસ્વતી નદી અદ્રશ્ય થઈ તે સ્થળ, પશ્ચિમે કાલકવન (પ્રયાગ આગળનો કેટલોક વિભાગ–કનિંગહામની હિંદની પ્રાચીન ભૂગોળ–એસ. એન. મજુમદાર કૃત. પ્રસ્તાવના નોંધ–૧ પૃષ્ઠ ૬૦) ઉત્તરે પારિયાત્ર અને દક્ષિણે હિમાલય [બૌદ્ધાયન ધર્મસૂત્ર ૧,૧–૨–૯ : અને વશિષ્ઠ ૧–૮]. મનુ ભગવાનના ધર્મશાસ્ત્રમાં આર્યાવર્તની દક્ષિણે વિન્ધ્યાથી ઉત્તરે હિમાલય, પશ્ચિમે વિનશન અથવા અંદશ (જ્યાં સરસ્વતી અદ્રશ્ય થઈ તે સુધીનું સ્થળ), અને પ્રયાગ પૂર્વસીમાડો. પુરાણમાં મધ્યદેશની સીમા મનુના ધર્મશાસ્ત્ર પ્રમાણે જ આલેખેલી મળેછે.

નગર, રૈરૂક, અપરાન્તનું ભરૂચ – ભૃગુકચ્છ અને સુપ્પારક – સોપારાના નામ ઉપલબ્ધ થાય છે. બૌદ્ધ સાહિત્યમાં અવન્તિના રાજનગર ઉજ્જનને પશ્ચિમ દેશમાં ગણ્યો છે. એ જોતાં અવન્તિના પાટનગર ઉજ્જન અને રેવાતટના ભરૂચના પુરાતન ઐતિહાસિક દોહનમાંથી આધુનિક ગુજરાતની ભૂમિકાના ઇતિહાસની ઘટનાનું સર્જન થઈ શકે છે.

ધાર્મિક ઉત્થાન મજ્ઝિમ દેશ – મધ્યદેશ અને મગધમાં હતું. જ્યારે ભારતના ઉદ્યોગ અને વ્યાપારનું કેન્દ્ર હતું બનારસ – કાશી. ઉત્તરાપથના ગાંધારના પાટનગર તક્ષશિલાથી ખુશકી માર્ગે – જમીન રસ્તે બધા સોદાગરી વાહનો અને વણઝારાની પોઠો કાશીએ આવતા હતા. કાશીથી વત્સદેશની રાજધાની કૌશામ્બીએ આવી રાજમાર્ગ ઉજ્જનને મળતો હતો. ઉજ્જનથી ધોરી રસ્તો ભરૂચ બંદરે અને શૂપારક – સોપારા આવી મળતો હતો. ઉજ્જનથી દક્ષિણાપથના ગોદાવરી તટના પૈઠણ (પ્રતિષ્ઠાન) સુધી વ્યાપારી વહેવાર હતો. જનપદમાં કાશીનું નામ મળે છે.

સાગર અને નદી તરફનો વેપારી વહેવાર કાંઠાના સમૃદ્ધ નગરોએથી ચાલતો હતો. ગંગા, જમના, સિન્ધુ અને નર્મદા નદીઓ વાટે દરિયે થઇને સુવર્ણભૂમિ (વર્તમાન બર્મા) અને ઠેઠ રાતા સમુદ્ર અને ભૂમધ્ય સાગર સુધી સોદાગરી વહાણો સફરે જતા હતા. 'સમુદ્રવાણીજ્ય જાતક', 'બવેરૂ' અને 'સુપ્પારક જાતક' કથાનકોથી ફળે છે કે એ યુગમાં પશ્ચિમની દુનિયા જોડે વ્યાપારી વહેવાર ધમધોકાર ચાલતો હતો. સૌવીરના રૈરૂક બંદરના અસ્ત પછી ભરૂચનું બંદર વધારે પ્રગતિમાન અને વિખ્યાતિ પામ્યું એમ ડૉ. રાઇસ ડેવીડ્સ જણાવે છે.[3]

ઉત્તરાપથમાં આ સમયે સાર્વભૌમ સત્તા ન હતી, પણ 'અંગુત્તર નિકાય'માં વર્ણવેલા મહાજનપદ મગધ, કૌશલ, અવન્તિ અને વત્સ સમૃદ્ધ અને શક્તિશાલી હતા. બિંબિસાર, પ્રસેનદી (પ્રસેનજિત), પજ્જોત (ચંડપ્રદ્યોત) અને ઉદયી – ઉદયન આ ચાર રાજ્યોના સ્વામી હતા. તેઓ શાક્ય ગૌતમના સમકાલીન હતા; અને ગૌરવ અને કીર્તિથી રાજ્ય કરતા હતા. આ રાજેન્દ્રોની ઇતિહાસ ગાથા અને ધાર્મિક ભાવના બૌદ્ધ, જૈન ગ્રંથોમાં અને પુરાણોમાં મળે છે. તેઓ એક અથવા બીજી રીતે વૈવાહિક સંબંધે જોડાયેલા હતા; અનેઉત્તરની સાર્વભૌમ સત્તાસારૂ પરસ્પર વિગ્રહ ખેલતા હતા.

આ ચાર શક્તિસંપન્ન રાજ્યો યુગધર્મ પ્રમાણે શાસન કરતા હતા, એ સમયે યુવાન ગૌતમે મહાભિનિષ્ક્રમણ કર્યું – શાક્ય ગૌતમે ઘર ત્યાગ કર્યો. નિરંજરા તટે બૌદ્ધો જેને બોધિ કહે છે તે સિદ્ધાર્થે પ્રાપ્ત કર્યું. ગૌતમ બુદ્ધ થયા.

---

૩ Buddhist India by T. W. Rhys Davids, p. 38. રૈરૂક નગરના સ્થળ વિષે ઘણો મતભેદ છે. કેટલાક પ્રમાણે તે નગર હિંદની ઉત્તર પશ્ચિમે અથવા પશ્ચિમ તરફનો એક દેશ હોવાનું માને છે. કનિંગહામે ખંભાતના અખાતના મથાળે ઇડર અથવા બંદરી પ્રાન્ત હોવાનો અભિપ્રાય વ્યક્ત કર્યો છે. ડૉ. રાઈસ ડેવીડ્સ કાઠિયાવાડની ઉત્તરે કચ્છના અખાત તરફ મૂકે છે. જયચંદ્ર વિદ્યાલંકાર સૌવીરની રાજધાની રૈરૂકને વર્તમાન રોરી કહે છે. Cunningham's Ancient Geo. p. 569. Buddhist India by R. Davids, p. 330, 'ભારતીય ઇતિહાસકી રૂપરેખા', પુ. ૧; પૃ. ૩૨૮.

બોધિવૃક્ષ નીચે ગૌતમને જે બોધ થયો એ કંઈ નવો દાર્શનિક સિદ્ધાન્ત ન હતો; એમના શબ્દોમાં કહીએ તો એ પૌરાણિક પન્ડિતતા (પુરાતન પન્ડિતોનો)નો ધર્મ હતો. એ જમાનામાં ઇષ્ટ ધર્મ આડંબર અને ઢોંગના આવરણમાં દબાઈ ગયો હતો. બુદ્ધે જોયું કે ધર્મ નથી બનાવટી કર્મકાંડમાં, કે નથી વિતંડાવાદમાં કે નથી શરીરસંપત્તિ કે વ્યર્થ સુખમાં. આ જમાનામાં બ્રાહ્મણ માત્ર કર્મકાંડમાંજ રચ્યા પચ્યા હતા. બીજા ઘણા નવા પંથો (તિત્થિયા) નીકલી પડ્યા હતા, જે માત્ર વાદવિવાદમાં ઝમકતા હતા. બુદ્ધનું કહેવું હતું કે જે મનુષ્યનું જીવન સરલ, સાચું અને સીધું છે એ પૂરો ધાર્મિક છે. આ સરલ ધર્મમાર્ગ જેને બુદ્ધે આર્ય અષ્ટાંગી માર્ગ કહ્યો છે તે જનતા સમક્ષ મૂક્યો. એના આઠ અંગ છે. સમ્યક્ (સાચી) દૃષ્ટિ, સમ્યક્ સંકલ્પ, સમ્યક્ વાણી, સમ્યક્ કર્મ, સમ્યક્ આજીવિકા, સમ્યક્ વ્યાયામ (ઉદ્યોગ), સમ્યક્ સ્મૃતિ (વિચાર) અને સમ્યક્ સમાધિ (ધ્યાન). આ પ્રકારે જે આદમીનું જીવન ઠીક છે તે ચાહે ગરીબ હોય કે અભણ હોય પણ યજ્ઞયાગી કે શાસ્ત્રાર્થ કરવા વાલા કરતાં ધર્માત્મા છે. 'સુત્તનિપાત'માં બુદ્ધના આ ધર્મને સર્વ માર્ગોમાં નિપુણ અને સુખનો માર્ગ કહ્યો છે.[૪] 'ધમ્મપદ'માં સંયમ સહિત આવરણને ધર્મનો સાર કહ્યો છે.[૪*] ગૌતમની પ્રતિભામાં એવું બલ હતું કે એમના જીવનકાલમાં ધાર્મિક ક્રાન્તિ એવી પ્રગટી કે શતાબ્દીઓના ઢોંગ, આડંબર અને અંધ વિશ્વાસના તરંગોનો નાશ થયો. પ્રજા સીધી દૃષ્ટિ અને સરલ બુદ્ધિથી જીવનના પ્રત્યેક પ્રશ્ન જોવા અને વિચારવા લાગી.

બૌદ્ધ ધર્મનું ક્ષેત્ર મજ્ઝિમ દેશ અને મગધ હતું.[૫] તથાગત (બુદ્ધ)નો ધર્મ આજ પ્રદેશમાં ઉછર્યો, પોષાયો અને સતત ચાલીશ વર્ષે બુદ્ધ–નિયમ સંઘે (Buddha–the Law and the Order) ત્રિરત્નોનું પ્રબલ વ્યક્તિત્વ પ્રગટાવ્યું. અનેક ધર્મના, વાદના–બ્રાહ્મણ, જટીલ, આજીવક અને જૈન જેવાના–પ્રતિકૂલ આક્રમણો હોવા છતાં બુદ્ધે પોતાના પ્રબલ શાંતિવાદના સિદ્ધાન્તના સંસ્કાર પ્રસાર્યા. નિકાય ગ્રન્થોથી ફળે છે કે બૌદ્ધ ધર્મ મજ્ઝિમ દેશની સીમાની મર્યાદા વટાવી અવન્તિ, અપરાન્ત અને એ પ્રદેશના નાકાના બંદર સુપ્પારક સુધી તથાગતના જીવન કાળમાં ધાર્મિક ભાવનાની આંચ પ્રગટેલી લાગે છે.

બૌદ્ધ સાહિત્યમાં મગધ અને મધ્ય દેશના નગરોનો ઉલ્લેખ ઘણો મળે છે. મગધનો રાજા શૈશુનાગ બિંબિસાર[૬] શ્રેણિક (સેણિક) અને તેનો પુત્ર અજાતશત્રુ કુણિક બુદ્ધના

---

૪ 'સુત્તનિપાત' ૩૮૧,૩૮૬. (૪*) 'ધમ્મપદ' ૨૪–૨૫. 'જાતક' ૪,૩૦૦. ભા. ઈ. રૂ. પુ. ૧, પૃ. ૩૫૮.

૫ મગધ=વર્તમાન પટણા અને બિહારના ગયાનો પ્રદેશ એ પ્રાચીન મગધ.

૬ જનપદ યુગમાં મગધમાં બાર્હદ્રથ વંશનું રાજ્ય હતું, તે વંશનો નાશ કરી કાશીના શિશુનાક–શૈશુનાગ (ઇ. સ. પૂ. ૭૨૭–૬૮૭) નું શાસન મગધમાં શરૂ થયું. સંસ્કૃત શેવાશિનાગનું પ્રાકૃત રૂપાંતર શિશુનાક–શૈશુનાગ છે; પ્રસિદ્ધ જ્યોતિષી ગ્રંથ 'ગર્ગસંહિતા'ના યુગ પુરાણ અધ્યાયમાં બિંબિસારના પ્રપૌત્ર અજ ઉદયીને શૈશુનાગનો આલેખ્યો છે. એ જોતાં બિંબિસારનો પૂર્વજ શૈશુનાગ હતો. તેઓ ક્ષાત્ર–બન્ધુ–વ્રાત્ય (પ્રજા) ક્ષત્રિય કહેવાતા. ભા. ઈ. રૂ. પુ. ૧, પૃ. ૪૯૯ અને ૫૦૬. સીતાનાથ પ્રધાન Chronology of Ancient India ('પ્રાચીન હિંદની રાજવંશાવલી') મગધમાં બાર્હદ્રથ વંશનો છેલ્લો રાજા રિપુંજય હતો જેનો નાશ તેના મંત્રી પુનિકે–પજ્જોતના પિતાએ–કર્યો હતો એમ જણાવે છે.

સમકાલીન હતા. બન્ને પિતા પુત્રે બુદ્ધ દેવનો ઉપદેશ સ્વીકારેલો. મગધનું પાટનગર ગિરિવ્રજ અથવા રાજગૃહ હતું. બિંબિસારના પ્રપૌત્ર અજ ઉદયીના સમયમાં મગધ સામ્રાજ્યનું આધિપત્ય ગુજરાતે સ્વીકારેલું એમ ઐતિહાસિક સાધનોથી જાણવા મળે છે.

અવન્તિ: સોળ મહાજનપદમાં–મહાદેશોમાં અવન્તિનું સ્થાન મળે છે. વર્તમાન માળવા, નિમાર અને મધ્ય પ્રાંતનો કેટલોક હિસ્સો મલી પ્રાચીન અવન્તિ જનપદ ગણાતું હતું. જનપદ નામાવલીમાં અવન્તિ અને દક્ષિણાપથના અશ્મક[૭] પ્રદેશનું સંયુક્ત નામ મળે છે, એ ઉપરથી કેટલાક વિદ્વાનો અવન્તિની ગણતરી દક્ષિણાપથમાં કરે છે. અવન્તિ જનપદની સીમા પણ વિશાળ હતી. ઈસુની પૂર્વે–જનપદ યુગમાં, બુદ્ધના સમયમાં અને નન્દ યુગમાં ગુજરાતની રાજકીય સત્તા અવન્તિ જનપદ જોડે સંધાયેલી હતી. એના સંસ્કાર પણ ગુજરાતમાં પ્રસર્યા હતા.

અવન્તિ જનપદ એ સમયમાં બે વિભાગમાં ઉત્તર અને દક્ષિણે વહેંચાયેલું હતું એમ ડૉ. ભાંડારકર જણાવે છે. ઉત્તર અવન્તિનું રાજધાનીનું નગર ઉજ્જન–ઉજ્જયિની અને દક્ષિણનું પાટ નગર માહિષ્મતી હતું. અચ્યુતગામીએ ઉજ્જન વસાવ્યું એમ 'દીપવંશ'માં ઉલ્લેખ મળે છે[૮] (દીપવંશનો રચના કાળ ઈસુની ત્રીજી અથવા ચોથી સદીનો મનાય છે). અશોકના લઘુ શિલાલેખમાં ઉજ્જૈન નામ છે. બધા ધર્મ સાહિત્યમાં ઉજ્જનની કથા આલેખેલી મલે છે. ઉજ્જનનો સત્તાધીશ ચંડપ્રદ્યોત હતો અને બુદ્ધનો તે સમકાલીન હતો.

દક્ષિણાપથના અવન્તિની રાજધાનીનું નગર માહિષ્મતી હતું. 'દીઘનિકાય'ના મહાગોવિંદસુત્તમાં માહિષ્મતીમાં વેશાભુ નામનો રાજા શાસન કરતો હતો એમ ઉલ્લેખ છે. માહિષ્મતી રાજધાનીના નગરની જોડે વ્યાપારનું કેન્દ્ર હતું અને નર્મદાને કાંઠે કાંઠેથી ભરૂચ અને માહિષ્મતી જોડે વ્યાપારી વહેવાર ચાલતો હતો.

'મત્સ્યપુરાણ' પ્રમાણે મગધ–અવન્તિ–ઉજ્જનમાં સુધનુકુલોત્પન્ન જરાસંધ વંશમાંના છેલ્લા રાજા વિશ્વજિતના પુત્ર રિપુંજયનું શાસન હતું. પુરાણમાં એનો રાજ્યકાળ ૫૦ વર્ષનો આપ્યો છે. ઈ. સ. પૂ. ૫૬૩–૫૧૩ એનો અમાત્ય પુનિક ('ભાગવત' ૧૨ મા સ્કંધમાં શુનક નામ છે) હતો. એણે, વૃદ્ધ રિપુંજયનો વધ કરી પોતાના પુત્ર પજ્જોત–પ્રદ્યોતને ઉજ્જનની ગાદીએ બેસાડ્યો. સીતાનાથ પ્રધાન 'પ્રાચીન હિંદની રાજવંશાવલી'માં પ્રદ્યોતના રાજ્યાભિષેકનું વર્ષ ઈસુની પૂર્વે ૫૧૩ આપે છે. જાયસ્વાલ અવન્તિના વીતિહોત્ર વંશનો અંત આણી પ્રદ્યોતના રાજતિલકનું વર્ષ ઇસવી સન પૂર્વે ૫૬૮ કહે છે.[૯] પ્રદ્યોત વીર અને પરાક્રમી રાજા હતો. એક મહાન સૈન્યના અધિપતિનો

---

૭ 'સુત્તનિપાત્ત'માં અશ્મકનો ઉલ્લેખ મળે છે. ગોદાવરી તટે અશ્મકની રાજધાનીનું નગર પૌદન્ય–પોતલી હતું. તેની ઉત્તરે મૂળક જેનું રાજનગર પ્રતિષ્ઠાન–પૈઠણ હતું. પુરાતન કાળમાં–બૌદ્ધ સમયમાં પ્રતિષ્ઠાન–પૈઠણ અને ભરૂચ વચ્ચે વ્યાપારી વહેવાર હતો. શાતકર્ણીના રાજકીય ઇતિહાસથી (ઈ. સ. પૂર્વે), તેમજ 'પેરીપ્લસ ઓફ ધી ઇરેથ્રીયન સી'માં (ઈ. સ. ૮૦) અને ટોલેમીની ભૂગોળથી (ઈ. સ. ૧૫૦) આ વાતની સાક્ષિ મળે છે.

૮ 'દીપવંશ', ઓલ્ડનબર્ગ પ્રતિ, પૃ. ૫૭.

૯ 'ભારતીય ઇતિહાસની રૂપ રેખા', પુ. ૧, ઘટનાવલીકી તાલિકાયેં ઔર તિથિયાં, પૃ. ૪૬૩, જ. બિ. ઓ. સો. સન ૧૯૧૫ અને ૧૯૧૯.

તે ગર્વ ધરાવતો હતો, એથી ઇતિહાસમાં એને મહાસેન બિરૂદ મળેલ છે. ઐતિહાસિક લોકકથા પ્રમાણે વત્સ દેશના રાજનગર કૌશામ્બી (અલ્હાબાદ જીલ્લાનું કોસમ-ગામ)ના રાજા ઉદયનના શ્વસુર તરીકે તે જાણીતો છે. એની પુત્રી વાસુલદત્તા – વાસવ-દત્તા ઉદયન વેરે પરણી હતી. મહાસેન પ્રદ્યોતથી પાડોસી રાજ્યો બ્હીતા હતા. મગધનો અજાતશત્રુ કુણિક (The crooked-armed) ચંડ પ્રદ્યોત (ચંડ= ભયંકર)થી ગભરાતો હતો. મહાસેન ચંડ પ્રદ્યોતનો અધિકાર – રાજ્યસીમા – અવન્તિ, અપરાન્ત – પશ્ચિમ ભારત સુધી લંબાયેલો હતો એમ પૌરાણિક કથાથી તેઓ ઇતિ-હાસની મર્યાદા બાંધતા જણાય છે. પૂર્વ ભારત, મધ્ય દેશ અને અપરાન્તનું સંગમ સ્થાન ઉજ્જન હતું. શૂરા ચંડપ્રદ્યોતે સ્થાપેલી મહત્તા ગુજરાતમાં લગભગ એક સૈકા સુધી રહી હતી.

અપરાન્ત એ પશ્ચિમ ભારત યાને પશ્ચિમ સાગર તટ પ્રદેશ એમ ગેઝેટિયર[10] વગેરે ગ્રંથોથી ફલે છે. ભારત વર્ષમાં જ્યાં પ્રજા સ્થિર થઈ વ્યક્તિત્વ જમાવ્યું એ સ્થળો ધીમે ધીમે જનપદ કહેવાયા. પુરાણોમાં અપરાન્તા, ભૃગુકચ્છા જનતાના સ્થળ નિવાસનો ઉલ્લેખ છે. મહાજન પદમાં અથવા બુદ્ધદેવના જમાનામાં અપરાન્તની સીમાવર્તુલ અંકિત કરવાના જોઇએ એવા સાધન મળતા નથી. જયચંદ્ર વિદ્યાલંકાર[11] પોતાના ગ્રંથમાં અપરાન્તની સીમામાં, મારવાડ, સિન્ધ, ગુજરાત અને કોંકણ સુધી અપરાન્ત પ્રદેશની મર્યાદા હોવાનું કહે છે. ઇસુની છટ્ઠી સાતમી સદીમાં ચીની પ્રવાસી હ્યુએન સંગની યાત્રાના આધારે કનિંગહામની 'ભારતની પ્રાચીન ભૂગોળ'માં શ્રી મજૂમદાર સિન્ધ, પશ્ચિમ રજપૂતાના, કચ્છ, ગુજરાત અને નર્મદા નદીના નિચાણ પ્રદેશનો સમાવેશ અપરાન્તની સીમામાં થતો હતો એમ કહે છે. કેટલાક સાહિત્યમાં ઉજ્જનને પશ્ચિમ દેશમાં ગણ્યો છે. પ્રાચીન કાળમાં ભરત ખંડના પાંચ વિભાગો હોવાનો ઉલ્લેખ મળે છે. ભરત નાટ્યશાસ્ત્રમાં ચાર પ્રવૃત્તિઓનો નિર્દેશ છેઃ–[12] ઔડ-માગધી પ્રાચ્ય, અવન્તિ પાશ્ચાત્ય, દાક્ષિણાત્ય, તથા પાંચાલી અર્થાત્ પાંચાલ, મધ્યમાં મધ્ય દેશ અને ઉત્તરાપથ. આ ગ્રંથમાં અવન્તિને પશ્ચિમ દેશમાં ગણ્યો છે. 'નિકાય'માં અને 'વિનય'માં મજ્ઝિમ દેશની સીમા ઉપરના દેશોની નામાવલીથી મલે છે. તેમાં અવન્તિ જનપદને પશ્ચિમ દેશમાં ગણ્યો છે, નિકાય ગ્રન્થોમાં અપરાન્ત – પશ્ચિમ હિંદનો ઉલ્લેખ નથી પણ અપરાન્તના કેટલાક નગરોનો અને અવન્તિ જનપદનો ઉલ્લેખ મળે છે. 'વિનય'માં અને 'દિવ્યાવદાન'માં અપરાન્ત નામનું દિગ્દર્શન થાય છે. આ સાહિત્યદોહનથી ફલે છે કે બુદ્ધ ભગવાનના સમયમાં પશ્ચિમ ભારતની સીમામાં અવન્તિ – ઉજ્જન, સિન્ધુ-સૌવીર, અપરાન્ત, રેવાતટનું ભારૂકચ્છ અને સોપારાનો સમાવેશ થતો હતો.

---

૧૦ Bombay Gazetteer, Part 1, p. 36, note 6. અપરાન્ત વાસ્તે જુઓ લેખકનો લેખ 'વર્તમાન ગુજરાતે ગુજરાત નામ ક્યારે ધારણ કર્યું?' અગિયારમું સાહિત્ય પરિષદ્ સંમેલન, લાઠી.

૧૧ અપરાન્તઃ आडावला और सह्याद्रिको एक रेखा मान लें तो उस रेखा के पच्छिम के प्रदेश, अर्थात्, मारवाड, सिन्ध, गुजरात और कोकण, अपरान्त या पच्छिमी आँचलमें गिन जावे। 'ભારતીય ઇતિહાસ કી રૂપરેખા', પુ. ૧, ખંડ ૧, પ્ર. ૧, પૃ. ૩૯ મા ઉપર भारतकी भूमि.

૧૨ 'ભારત નાટ્યશાસ્ત્ર', કાવ્યમાલા, ૪૨ (નિર્ણયસાગર), અંક. ૧૩, શ્લોક ૨૫.

બૌદ્ધોના પુરાતન સાહિત્યમાં સૌરાષ્ટ્ર નામનો ઉલ્લેખ મલતો નથી. મધ્ય દેશથી અપરાન્ત–સૌરાષ્ટ્ર ઘણા દૂર હતાં. એ જમાનો બુદ્ધિવાદનો અને પરિવર્તનનો હતો. મધ્ય ભારત એનું કેન્દ્ર હતું. પૂર્વ પ્રદેશની સંસ્કૃતિ, સંસ્કારિતા અને સભ્યતા, ગુજરાત–કાઠિયાવાડમાં પહોચ્યા હોય એમ જણાતું નથી. સ્થિતિચુસ્ત બ્રાહ્મણોનો અધિકાર સમાજ ઉપર હોય એમ જણાય છે. માનવ જાતના વર્ગીકરણ થયા હતા પણ વિશાળ સમૂહ નાગ જાતિનો હતો. પશ્ચિમ સાગર તટના એક બેટમાં વૃષ્ણિઓએ સભ્યતા પ્રગટાવી હતી,[૧૩] પણ 'પેરીપ્લસ ઓફ ધી યુરેથ્રીયન સી' પ્રમાણે સૌરાષ્ટ્રમાં કદાવર શરીરવાલા કાલા રંગના માનવી–કેટલાક વિદ્વાનો પ્રમાણે આહીરની–આભીરજાતિ નિવાસ કરતી હતી (ઈ. સ. ૮૦).[૧૪] અપરાન્ત અથવા મધ્ય દેશના વહેવારથી સૌરાષ્ટ્ર સંધાયેલું હોય એમ જણાતું નથી. મૌર્યોના સમયમાં સૌરાષ્ટ્ર પ્રગતિમાન બન્યું એમ અશોકના શિલાલેખથી, ઉપરકોટના ગુફાવિહારોથી ફળે છે. જાતક કથામાં–'ઇન્દ્રીય જાતક'માં સુરઠ્ઠ જનપદનો ઉલ્લેખ છે. 'સારભંગ જાતક'માં સોરઠને સીમાડે સતોદીક નદી વહેતી હતી એમ નિર્દેશ મળે છે. પૂર્વ નન્દ યુગમાં પંજાબથી સૌરાષ્ટ્ર અને વિદર્ભ સુધી સ્વતંત્ર સંઘરાષ્ટ્રોનું વર્તુલ હતું એમ જયચંદ્ર વિદ્યાલંકાર જણાવે છે.[૧૫] આ સંજોગો જોતાં અપરાન્તથી સૌરાષ્ટ્ર જૂદું હોય એમ સંભવે છે. બુદ્ધ ભગવાનના નિર્વાણ પહેલાં બુદ્ધના ઉપદેશનો પ્રચાર સૌરાષ્ટ્રમાં પહોચ્યો ન હતો એમ નિકાય ગ્રન્થોથી ફળે છે.

નિકાય ગ્રન્થમાં[૧૬] અવન્તિ જનપદનું નામ મળે છે. જાતકની પ્રાચીન સંગ્રહીત ગાથામાં ભારૂકચ્છ[૧૭]–ભરૂચની હકીકત મળે છે. પાલી વાઙ્મયમાં જાતક કથા એક જૂદું સાહિત્ય છે અને તેમાં બુદ્ધ ભગવાનના અર્થાત્ બોધિસત્ત્વ સાથે સંબંધ ધરાવતી, બુદ્ધના જન્મ જન્માંતરની કથાઓ આપેલી છે. હિંદુઓમાં અવતારની માન્યતા છે તેમ બૌદ્ધોમાં બોધિસત્ત્વની માન્યતા છે. જાતક કથાઓની સંખ્યા ઘણી છે અને તેમાંની બધી કથા બુદ્ધના પૂર્વ જન્મ કે જીવન જોડે સંબંધ ધરાવતી નથી, પણ અતિ જૂના કાળમાં જૂદી જૂદી જાતની લોક કથા કે લોક વાર્તા લોકોમાં પ્રચલિત હતી; તેમાંથી બુદ્ધના જીવન જોડે કોઇને કોઈ રીતે સંપર્ક સાધી કથાકારોએ અને સંગ્રહકારોએ સંકલિત

---

૧૩ વાહિકની દક્ષિણે સૌરાષ્ટ્રમાં અન્ધક–વૃષ્ણિઓનું (સાત્વત–યાદવોનું) દ્વિરાજન્ય હતું. (વાહીક=વર્તમાન પંજાબ–સિન્ધ), સાત્વત રાષ્ટ્ર–સંઘમાં એક સાથે બે રાજન્ય (મૂખિયા) ચુંટવાની પ્રથા હતી; અને પ્રત્યેક રાજન્ય એક એક વર્ગ (શાખા)નો પ્રતિનિધિ ગણાતો. મગધ સામ્રાજ્યની પશ્ચિમે પંજાબથી સૌરાષ્ટ્ર અને વિદર્ભ સુધી સ્વતંત્ર સ્વરાજ્યોનો એક ઘેરાવો હતો. 'પૂર્વનન્દ યુગમેં વાહિક (પંજાબ–સિન્ધ) ઔર સુરાષ્ટ્ર કે સંઘરાષ્ટ્ર' 'ભારતીય ઇતિહાસકી રૂપરેખા', પુ. ૧, ખંડ ૩, પ્ર. ૧૨, પૃ. ૪૧૪–૪૧૬.

૧૪ જુઓ લેખકનો લેખ 'ગુજરાતના પ્રાચીન કિનારાની ભૂગોળ' બારમું સાહિત્ય સંમેલન, ઇતિહાસ વિભાગ, પૃ. ૫૬.

૧૫ ભા. ઇ. રૂ. પુ. ૧, પૃ. ૪૧૬.

૧૬ 'અંગુત્તર નિકાય'.

૧૭ 'ભારૂજાતક સુસ્સોન્દીજાતક', ૩૬૦. 'સુપ્પારક જાતક', ૪૬૩. 'જાતક', પુ. ૩, ૧૮૯,૧૯૦, ગાથા ૫૭. પુ. ૪, ૧૩૭,૧૩૮,૧૩૯; ગાથા ૧૦૬,૧૪૦,૧૦૮,૧૧૦,૧૧૪,૧૧૬,૧૪૨.

કરી છે. આમાં ઘણી ઘણી કથાઓ પ્રાચીન છે. તેમાંની કેટલીક બુદ્ધના સમયની અને કેટલીક તો તેથીયે ઘણી પ્રાચીન છે. જાતકમાં ગાથા કે સૂત્ર રૂપે છે તે પ્રાચીન છે. ઈસુની પૂર્વેના પહેલા સૈકામાં સિંહલના રાજા વટગામીએ જાતક કથાનો સંગ્રહ લેખનમાં ઘટાવ્યો એમ સિંહલ ઇતિહાસથી ફળે છે.

ભૌગોલિક:

આ જાતક સંગ્રહમાં પ્રાચીન ભારૂ જાતક નામની કથા મળે છે. 'પ્રી બુદ્ધિસ્ટ ઇન્ડિયા' યાને 'પ્રાગ્બૌદ્ધ કાલીન ભારત' ગ્રન્થમાં શ્રી. રતિલાલ મહેતાએ જાતક કથાનકના યુગના અંદાજ બાંધ્યા છે. તેમાં ઈ. સ. પૂ. ૨૦૦૦ થી ૧૪૦૦ના અંદાજી યુગમાં 'ભારૂ જાતકની' કથાનો યુગ આલેખ્યો છે. ભૃગુ શબ્દનું પાલી રૂપાન્તર ભારૂ થાય છે. તેમાં ભારૂ રાજાની કથા છે.[૧૮] અને એ ભારૂકચ્છ કથામાં ભરૂચ નગરના અસ્તિત્વ અને લયની હકીકત આપેલી છે. ભારૂ જાતક કથાનો અંદાજી યુગ સ્વીકારી લઇએ તો એ યુગમાં ભરૂચ નગર અસ્તિત્વમાં હતું એમ માનવાને કારણ મળે છે.

આવી જ બીજી એક પુરાતન 'સુપ્પારક જાતકકથા' છે જેમાં આપણા પૂર્વજ આર્ય મહાજનોના ભૌગોલિક જ્ઞાનનું દિગ્દર્શન થાય છે. તદુપરાંત ભરૂચ નગરની પ્રાચીનતાની હકીકત પણ પ્રાપ્ત થાય છે. ઋગ્વેદ કાળમાં, ઉત્તર વૈદિક કાળમાં અને ઉપનિષદ યુગમાં આર્યાવર્તને દુનિયાના બીજા દેશો જોડે વ્યાપારી અને રાજકીય સંબંધ કેવો હતો એના કેટલાંક પ્રામાણિક દૃષ્ટાંતો અને બીજા દેશોના પ્રાચીન અવશેષોથી ફળે છે. ભૌગોલિક વહેવાર બાબત 'સુપ્પારક કથા'ની ઇતિ વત્તુ આ પ્રમાણે મળે છે :– "ભરૂચ બંદરેથી સાત સો વેપારીઓ એક વહાણમાં અંધ સુપ્પારક (અંધ બોધિસત્ત્વ)ને પોતાનો નિયામક નિયુક્ત કરી મહાસમુદ્રોના પર્યટને નીકળ્યા. તેઓ (૧) ખૂરમાલ સમુદ્રમાં આવી પહોચ્યા. આ સાગરમાં 'સી' નાકવાલી મોટા આદમીના કદ જેવડી માછલીઓ ડૂબકીઓ મારતી હતી, જ્યાંના જળમાં હીરા હતા; (૨) પછી અગ્નિમાલ સમુદ્રમાં આવ્યા, જ્યાં આગની જ્વાલા અને મધ્યાન્હના સૂર્ય જેવા નીર ચમકતાં હતાં અને જળ સોને ભરેલાં હતાં; (૩) એ છોડી દધિમાલ સમુદ્રમાં આવ્યા, જ્યાં દૂધ અને દહીં જેવા જળ અને ગર્ભમાં ચાંદી હતી; (૪) પછી કુશમાલ સમુદ્ર આવ્યો જેના પાણીમાં નીલ આસ્માની પુષ્કળ નીલમ પાકતા હતા; (૫) પછી આવ્યો નળમાલ સાગર જ્યાંના પાણી માણેક જેવા ચમકતા અને જેમાં માણેક ભરેલા હતા; (૬) અંતે તેઓ વલભા સમુદ્રમાં આવી પહોચ્યા જ્યાંનો સાગર અતિ તોફાની, ગંભીર અને તેના પાણી ઘોર સ્વર કરતા હતા; પાણીની છોળો સપાટીથી ગગને ઉછલતી હતી. સમુદ્રમાં પ્રવાસ કરવાનું એટલું જોખમી અને અસહ્ય હોવાથી સોદાગરો ગભરાઈ ગયા. બોધિસત્ત્વની સચ્ચ કિરિયાથી – સત્યક્રિયાથી તેઓ પાછા સહી સલામત ભરૂચ બંદરે આવી પહોચ્યા (જાતક કથા ૪૬૩).

આ કથાનક સંબંધમાં સ્વ. પંડિત જાયસ્વાલે 'સુપ્પારક કથા'માં વર્ણવેલા સાગરોની ઓળખ અને પ્રાચીન ભારતનો વિદેશ જોડેનો સંપર્ક કેવો વિશાળ હતો એ વિષે સુંદર

---

૧૮ 'દિવ્યાવદાન'માં રૈરૂક નગરનું પતન અને ભીરૂ – ભિરૂ – ભરૂ – કચ્છ નગર વસાવ્યાની હકીકત છે. દી. વ.

અને સપ્રમાણ નિબંધ આલેખન કર્યો છે.[૧૯] પંડિતજીના મત પ્રમાણે ખૂરમાલ સમુદ્ર એ વર્તમાન ફારસની ખાડી યાને ઇરાનનો અખાત છે. એના તટ ઉપર બાબુલી–બેબિલોનિયન–પ્રજાનો નિવાસ હતો. એ લોક પોતાના દેવ–સંસ્કૃતિના વિધાતા મત્સ્ય માણસને માનતા અને પૂજતા હતા. ખૂર એક બાબુલી દેવતા કહેવાતો, જેનું નામ અભિલેખોમાં રાજા ખમ્મુરાબી મળે છે (ઈ. સ. પૂ. ૨૨૦૦ અંદાજ). દધિમાલ એ રાતો સમુદ્ર જેના નીરમાં મોટી ચીકાશ વાલી ચીજ તરતી હોવાને કારણે અને તેના રંગીત પ્રકાશ ઉપરથી આ નામ ઉદ્‌ભવ્યું લાગે છે. અગ્નિમાલ એ રાતા સમુદ્ર અને એડન વચ્ચેનો સોમાલી તટ આગળનો સમુદ્ર. જાતક કથામાં કુશમાલીનો નિર્દેશ છે તે નીલકુશતિન નામ યોગ્ય હોય એમ લાગે છે. આ ઉપરથી નીલ નદી (વર્તમાન નાઈલ નદી)નો નિકાસનો દેશ અને કુશ દ્વીપનો તટ સમુદ્ર માનવાનું કારણ મળે છે. પુરાણોમાં કુશ દ્વીપમાંથી નીલનદીની ઉત્પત્તિ માનેલી છે, એ આધારે વર્તમાન નૂબિયાને કુશ દ્વીપ માનવો જોઇએ. પુરાણોના વર્ણન અનુસાર કપ્તાન સ્પીકે નીલ (નાઇલ) નદીના નિકાસ યાને મુખની શોધ ખોળ કર્યાની હકીકત જાણીતી છે. આ પ્રદેશમાં કુશ લોક રાજ્ય કરતા હતા. આ વિગતો જોતાં નૂબિયાનું પુરાતન નામ કુશદ્વીપ હોવાનું સંભવે છે. કુશ પ્રજાનો રાજ્ય કાળ ઈ. સ. પૂર્વે ૨૨૦૦–૧૮૦૦ માં હતો એમ તેઓના અભિલેખોથી સિદ્ધ થયું છે. એ ઉપરથી કુશમાલી તે કુશદ્વીપ કહી શકાય. નળમાલ એ નહેરોની પરંપરાનો પ્રદેશ અથવા સાગર તટ. પ્રાચીન કાળમાં સ્વેજની નહેરની માફક એક નહેર રાતા સમુદ્ર અને નાઇલ નદીને જોડતી હતી. આ નહેર ઇસુની પૂર્વે ૧૩૯૦ સુધી અસ્તિત્વમાં હતી. ઇસવી સન પૂર્વેની પહેલી સદીથી ઈ. સ. પૂર્વે ૬૦૯ સુધીની તવારીખ તપાસતાં આ નહેર અદ્રશ્ય થઈ હોવાની ખબર પડે છે. વલભા મુખ એ જ્વાલામુખી સમુદ્ર. જાયસ્વાલના અભિપ્રાય પ્રમાણે એનો અર્થ ભૂમધ્યસાગર નો પૂર્વ વિભાગ કહી શકાય.

લિપિ નિષ્ણાત પંડિતોની શોધ ખોળના પરિણામે પ્રાચીન ભારતવર્ષ અને બીજા દેશોની લિપિનો ઉદ્‌ભવ કેમ થવા પામ્યો એ બાબતના તેઓના અભિપ્રાયના દોહન-માંથી પં. જાયસ્વાલ ભારતીય અને શેબાઈ (શેબા=વર્તમાન યેમનનું પ્રાચીન નામ જ્યાંની લિપિ દક્ષિણ સેમેટિક=સામીનો એક ભેદ ગણાય છે) લિપિઓની સામ્યતા ઉપરથી બન્ને દેશો વચ્ચે પ્રાચીન કાળમાં સંપર્ક હોવાનું માને છે. ઘણા વિદ્વાનો આ લિપિ ઉલટા સ્વરૂપમાં લિપિ બદ્ધ થઈ હોવાનું માને છે. કનિંગહામના કથન[૨૦] પ્રમાણે

---

૧૯ Journal of Bihar and Orissa Reserch Society, 1920, pp. 139 ff. ભા. ઇ. રૂ. પુ. ૧, ખંડ ૩, ટિ. ૧૮, પૃ. ૪૮૪–૪૮૫ 'પ્રાગ્બુદ્ધ ભારતનો પશ્ચિમી જગત જોડેનો સંપર્ક'.

૨૦ 'કોઇન્સ ઓફ એન્શયન્ટ ઇન્ડિયા' (પ્રાચીન ભારતના સિક્કા), પૃ. ૩૯, ૪૧. ઇ. સ. પૂ. ૧૪૦૦ સુધી સેમેટિક લિપિનું અસ્તિત્વ ન હતું પણ ઈ. સ. પૂ. ૯૦૦માં આ લિપિ અસ્તિત્વમાં હતી એમ ખબર પડે છે, એ જોતાં ઈ. સ. પૂ. ૧૨૦૦–૧૧૦૦માં આ લિપિની શરૂઆત થઈ. કાના (ઉત્તર સેમેટિકનો એક ભેદ)ની લિપિથી શેબાઈ લિપિ અધિક પુરાતન છે. શેબાના પાડોશી હબ્શ–એબિસિનિયા–ઇથિઓપિયાની ગીય લિપિ શેબાઇને મળતી છે. આ લિપિના ઐતિહાસિક અને પ્રામાણિક નિષ્ણાત લેપ્સિયસે ચોક્કસ અભિપ્રાય આપ્યો છે કે આ લિપિઓ ભારતીય પદ્ધતિની છે. ટેલરે ('આલ્ફાબેટ', પુ. ૨, પૃ. ૩૧૫) જેઓ સેમેટિકમાંથી બ્રાહ્મી લિપિ ઉદ્‌ભવી છે તે માનનારના અભિપ્રાયના જવાબમાં

શેબાઈ લિપિ ભારતીય લિપિમાંથી અવતરણ પામી છે અને વધુમાં કહે છે. કે ભારત નિવાસીઓ પોતાની લિપિ સોળ સો માઈલ દૂર પૂર્વમાં જાવામાં લઈ ગયા એજ પ્રકારે પશ્ચિમમાં લઈ ગયા છે. મીસર અને શેબાનો પરસ્પર સંબંધ ઈ. સ. પૂ. ૨૦૦૦ થી તથા ભારત વર્ષનો અને શેબાનો ઈ. સ. પૂ. ૧૦૦૦ થી નિશ્ચિતરૂપથી માનવાને કારણ મળે છે એમ પંડિત જાયસ્વાલ જણાવે છે.

'વિનય', 'દિવ્યાવદાન' અને 'જાતક કથાઓ'ના ઉલ્લેખથી ફળે છે કે ભરૂચ બંદરની વ્યક્તિગત પ્રાચીનતા અને વ્યવસ્થા—વ્યાપારી વહેવાર—જનપદ યુગમાં ચાલુ હતો. ભરૂકચ્છ પટ્ટણ—તીર્થ—વ્યાપારનું કેન્દ્ર હતું. વારાણસી—કાશી, સાવત્થી વગેરેથી વ્યાપારી કાફલાનો રાજમાર્ગ સળંગ હોવાથી સોદાગરો ઉજ્જન થઈ ભરૂચ બંદરે આવતા હતા.[૨૧] પશ્ચિમના બંદરેથી બાવેરૂ—બેબિલોન[૨૨], રાતા સમુદ્ર અને નાઇલ (નીલ) દ્વારા ભૂમધ્ય સુધી સોદાગરી વહાણો સફર કરતા હતા. સુવર્ણ ભૂમિ અને ભરૂચ વચ્ચે પણ સાગર વહેવાર ચાલુ હતો.[૨૩] તામ્રપર્ણિ—સિંહલ (લંકા) એ યુગમાં પ્રગતિમાન અથવા સમૃદ્ધિવાન થયું હોય એમ જણાતું નથી. ઉજ્જન અને ભરૂચ રાજકીય અને વ્યાપારિક દૃષ્ટિએ સંધાયેલા હતા. પ્રથમ બૌદ્ધ ધર્મનો ઉપદેશ ઉજ્જને સ્વીકાર્યો; એ પછી અપરાન્ત, ભરૂચ અને સોપારામાં ધર્મ ચક્ર પ્રવર્તનની જ્યોત કેમ પ્રગટી તે જોઇએ.

ગુજરાતમાં બૌદ્ધ ધર્મ: બૌદ્ધ ધર્મનું કેન્દ્ર મગધ હતું. સંઘનો વિશાળ ભિખ્ખુ સમુદાય પ્રાચ્ય દેશમાંનો હતો. 'દીઘનિકાય'ના પરિનિબ્બાણ સુત્ત (સૂત્ર) વગેરે ગ્રંથોમાં પ્રાચ્ય દેશની હકીકત મળે છે. આ સાહિત્ય સંપત્તિના આધાર ઉપરથી બૌદ્ધ ધર્મના અભ્યાસી ડૉ. ઓલ્ડનબર્ગે બુદ્ધ ધર્મનું ક્ષેત્ર પ્રાચ્ય દેશ હોવાનો અભિપ્રાય અંકિત કર્યો હતો. જ્યારે નિકાય ગ્રન્થોના બારીક અભ્યાસી નલિનાક્ષ દત્ત જણાવે છે કે બુદ્ધ ભગવાને પ્રાચ્યદેશની સીમાની મર્યાદા વટાવી પશ્ચિમમાં વેરંજા (Vera-nja), મધુરા[૨૪] (Madhura = મહોલી) અને ઉત્તર કુરૂના નગરો સુધી વિહાર કર્યો હતો એમ નિકાય ગ્રન્થોથી ફળે છે. આ હકીકતના સાધનમાં તેઓ લખે છે કે બૌદ્ધ સંઘમાં પ્રાચ્ય દેશના સાધુ સમુદાય ઉપરાંત પચ્ચંતિમ જનપદ (Paccantim Janapada or Border Countries)—સીમાંત જન પદના ભિક્ષુઓ પ્રવિષ્ટ થયેલા હતા.

બૌદ્ધોના મજ્ઝિમદેશની સીમાંત ઉપરના દેશો પચ્ચંતિમ જનપદ કહેવાતા એમ બૌદ્ધ સાહિત્યમાં નિર્દેશ છે. સંકસ્સ, અવન્તિ, ગાંધાર જેવા દેશો પચ્ચંતિમ જનપદમાં

કનિંગહામે ચોખ્ખું લખ્યું છે કે શેબાઈ લિપિ બ્રાહ્મીલિપિમાંથી જ નીકલી છે ('પ્રાચીન ભારતના સિક્કા' પૃ. ૪૦). જાયસ્વાલ અને ઓઝા આ મત સ્વીકારે છે કે બ્રાહ્મી લિપિમાંથી સામી અક્ષરોની ઉત્પત્તિ હોવાનો સંભવ છે. ભા. ઈ. રૂ. પુ. ૧, ખંડ ૨, ટિ. ૧૪, પૃ. ૨૭૬।૭. 'ભારતીય વર્ણમાલાનો ઉદ્ભવ'. આ અભિપ્રાય હજુ મતભેદનો છે એમ જયચંદ્ર વિદ્યાલંકાર જણાવે છે.

૨૧ 'મહાજનક જાતક', ૫૨૯.

૨૨ 'બવેરૂ જાતક', ૩૩૯.

૨૩ 'સુસ્સેન્દી જાતક મજ્ઝિમ નિકાય ૧, પૃ. ૫૫.

૨૪ મધુરા = મથુરાની દક્ષિણ—પશ્ચિમે પાંચ માઈલ મહોલી છે તે. (Maholi) C. E. B. By Law pp. 20-21.

ગણાતા એમ ઉલ્લેખ મળે છે. બુદ્ધે જે નીતિ-નિયમ પોતાના બૌદ્ધ સંઘ વાસ્તે ઘડ્યા છે તે મજ્જિમ દેશ – મધ્ય ભારતના સાધુ સંઘને લગતા જ ઘડ્યા છે. આ આચાર-પદ્ધતિ ગ્રન્થ તે વિનય ગ્રન્થ કહેવાય છે. આ ગ્રન્થથી ફળે છે કે સંઘ સમુદાયમાં મધ્ય ભારત સિવાય પચ્ચંતિમ જનપદનો સાધુ સમુદાય પણ હતો.

ભગવાનના પ્રેમ ધર્મની પ્રેરણા અને ઉપદેશના પ્રચાર અર્થે ભિખ્ખુઓ મગધમાં વિહાર કરતા હતા તે જ પ્રમાણે કેટલાક ભિખ્ખુઓ પચ્ચંતિમ જનપદમાં વિહારે જતા હતા. અવન્તિ જનપદ દૂર હોવાથી ત્યાં બૌદ્ધ ધર્મના અનુયાયી અને ઉપાસકોની સંખ્યા ઘણી ઓછી હતી. ઉપદેશ અને પ્રેરણાની પ્રવૃત્તિ જાગૃત રાખવા સાધુઓ ઉજ્જને પગદંડો કરતા એમ નિકાય સાહિત્યથી ફળે છે. ઉજ્જને આવવાનો રાજમાર્ગ વિકટ અને મરડીયાવાલો હતો. સાધુઓને માર્ગની વિટંબણા ઘણી વેઠવી પડતી હતી. ભગવાને દૂર દેશ જતા સાધુઓની વિટંબણા ધ્યાનમાં લઈ, મજ્જિમ દેશમાં ભિખ્ખુઓને જોડા પહેરવાનો જે પ્રતિબંધ કર્યો હતો તે ઉજ્જને વિહારે આવતા સાધુઓને તે પ્રતિબંધમાંથી મુક્તિ આપ્યાનો ઉલ્લેખ વિનય ગ્રન્થથી જાણવા મળે છે.[૨૫] અપરાન્તના ભિખ્ખુ મત્તાનીપુત્તની વિનંતિ સ્વીકારી નવીન ઉપાસકો અર્થે સંઘના નીતિ-નિયમમાં કેટલોક હળવો ફેરફાર કર્યાની હકીકત બૌદ્ધોના ગ્રન્થમાં છે. અવન્તિ – ઉજ્જનમાં ધર્મની પ્રવૃત્તિ જાગૃત કરનાર બૌદ્ધ ધર્મની પ્રચંડ પ્રેરણા રેલાવનાર ઉજ્જન નિવાસી – ધર્મનો પ્રતિનિધિ થેર મહાકચ્ચાયન હતો.

મહાકચ્ચાયનનું પૂર્વ નામ નાલક હતું. વિન્ધ્યાચળના ઋષિ કાલા દેવળ–અસિતનો ભત્રીજો અને અવન્તિ–ઉજ્જનના ચંડપ્રદ્યોતના પુરોહિતનો તે પુત્ર થતો હતો. ઋષિ અસિતની આજ્ઞા સ્વીકારી નાલક બુદ્ધનું પ્રવચન સાંભળવા કાશી ગયેલો. નાલકે[૨૬] બુદ્ધનો ઉપદેશ શ્રવણ કરી કાશીમાં જ બૌદ્ધ ધર્મની દીક્ષા લીધી. એના સાથીઓ પણ બૌદ્ધ ધર્મમાં પ્રવિષ્ટ થયા. અવન્તિનો વેદપારંગત બ્રાહ્મણ નાલક બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં થેર મહાકચ્ચાયન નામે પ્રસિદ્ધ છે. બુદ્ધ ભગવાનનો ઉપાસક નાલક–કચ્ચાયન અવન્તિ આવ્યો, અને બૌદ્ધ મઠની[૨૭] સ્થાપના કરી. આ વિહારમાં અપરાન્તના પુન્ન મત્તાનીપુત્ત અને સોન્ન કુટિકન્નને અને વેલુ ગ્રામના સોદાગર ઇસીદત્તને કચ્ચાયને બૌદ્ધ ધર્મના ઉપાસક બનાવ્યા. બુદ્ધ ભગવાનના દશ જ્યોતિર્ધરોમાં – યાને શ્રેષ્ઠ સ્થવિરોમાં મહાકચ્ચાયનનું સ્થાન ધર્મભાસીતકારનું હતું એમ બૌદ્ધોના ધર્મ-ગ્રન્થોથી ફળે છે.

મહાકચ્ચાયન અને અપરાન્તાના સોન્ન કુટિકન્નની પ્રબલ પ્રેરણા અને પ્રયાસે અવન્તિ બૌદ્ધ ધર્મનું કેન્દ્ર બન્યું. મગધ – મધ્યદેશમાં ભગવાનને ધર્મચક્ર પ્રવર્તમાન કરવા જૈન, જટીલ, આજીવક, વેદ પારંગત બ્રાહ્મણો વગેરે ધર્મોના પ્રતિકૂળ આક્રમણ સામે ઝઝુમવું પડયું હતું. તેવા આક્રમણો સામે મહાકચ્ચાયનને ઉજ્જનથી સોપારા

---

૨૫ 'વિનય', ૧, પૃ. ૧૯૮. 'દિવ્યાવદાન', પૃ. ૨૧.

૨૬ મહાવસ્તુ ૨, પૃ. ૩૦. ૩, પૃ. ૩૮૨.

૨૭ કુરરગૃહ-પપાત-પબ્બત (Kurura-graha-papat-pabbata)પર મક્કરકત (Makkara kata) નામના વિહાર સ્થાપ્યાનો ઉલ્લેખ છે.

સુધી ધર્મભાવનાની જ્યોતિ પ્રગટાવવા કટીબદ્ધ થવું પડયું હતું. ઉજ્જનના સંસર્ગે ગુજરાતમાં બૌદ્ધ ધર્મ વ્યાપક બન્યો.

વિનયમાં નિર્દેશેલા મજ્જિમદેશની સીમાથી પશ્ચિમ ભારત દેશ દૂર હતો, પણ રાજકીય, વ્યાપારી અને ધાર્મિક સંસ્કૃતિએ સંધાયેલો હતો એમ ઇતિહાસ અને ભૂગોળ તવારીખનો સમન્વય કરતાં જણાય છે. ડૉ. ઓલ્ડનબર્ગે કેટલાક ધાર્મિક ગ્રન્થોને આધારે બૌદ્ધ ધર્મ પ્રાચ્યદેશની સીમામાં જ પ્રવર્તમાન થયો હોવાની મર્યાદા બાંધી હતી પણ નલીનાક્ષ દત્તના અભિપ્રાયને માન્ય રાખતાં બૌદ્ધ ધર્મ પ્રાચ્ય દેશની સીમા વટાવી પચ્ચંતિમ જનપદોમાં ઉજ્જન, અપરાન્ત,–ભરૂચથી સોપારા–સુધી બુદ્ધના ઉપદેશનો સંચાર થયો હતો એમ નિકાય ગ્રન્થોથી ફ્લે છે. આમાંના ઘણા નગરોમાં ચૈત્ય અને વિહારોની સ્થાપના અને ભિખ્ખુ સમુદાય સ્થાયી થયો હોવાનો ઉલ્લેખ મળે છે; ઈ. સ. પૂ. ૫૪૪.

અપરાન્તમાં યાને ગુજરાતમાં બૌદ્ધ ધર્મના ઉપદેશનો પ્રચાર કરનાર અપરાન્તનો સોન્ન કુટિકન્ન હતો. પ્રેરણા મહાકચ્ચાયનની હતી. અપરાન્તનો સાધુ સમુદાય ધૂત વાદીન–આરન્નક ભિખ્ખુવાદનો અનુયાયી હતો. ધૂતવાદનો પ્રણેતા મહાકસ્સપ હતો. ધાર્મિક ગ્રંથોની સાંકળ ગૂંથતા ફ્લે છે કે ગુજરાતે બૌદ્ધ ધર્મનો ઉપદેશ સ્વીકાર્યો હતો પણ તે સંદેશ સૌરાષ્ટ્રે પહોંચ્યો હોય એમ જણાતું નથી. સાત્વત વૃષ્ણિઓનું એ જનપદ સ્વતંત્ર હતું. મૌર્યયુગમાં લાટ, સૌરાષ્ટ્ર અને આનર્ત એમ ત્રણ વિભાગે ઓળખાતું પ્રાચીન ગુજરાત, બુદ્ધના સમયમાં સૌરાષ્ટ્ર અને ગુજરાત (લાટ અને આનર્ત)માં વિભક્ત હોય એમ જણાય છે. લાટ, સૌરાષ્ટ્ર અને આનર્ત એ મૌર્ય યુગમાં પુરાતન ગુજરાતના નામનો ઉદ્ભવ થયો હોય એમ સંભવે છે. મૌર્યોના શાસનયુગમાં અથવા સમ્રાટ્ અશોકના સમયમાં વર્તમાન ગુજરાતમાં બૌદ્ધ ધર્મ વ્યાપક બન્યો હતો એમ અશોકના જૂનાગઢના શિલાલેખથી અને બાવાપ્યારાની જૂની બૌદ્ધ ગુફાથી ફ્લે છે. કાઠિયાવાડ સિવાય ગુજરાત તળમાં બૌદ્ધ ધર્મના અવશેષ–એ ધર્મ કેવા સ્વરૂપમાં પ્રચારમાં હતો તેવા અવશેષ મળ્યા નથી. પ્રીયદર્શી અશોકના સમયમાં ભરૂચ ભૃગુકચ્છના સંઘારામનો અધિષ્ઠાતા સુદર્શન હતો.[૨૮] ભગવાન બુદ્ધના જીવન કાળમાં પ્રગતિમાન થયેલો ધર્મ, ઇશુના આઠમા–નવમા સૈકા સુધી ગુજરાતના રાષ્ટ્રકૂટોના અમલ દરમ્યાન એક યા બીજા સ્વરૂપે પ્રચારમાં હતો એમ કક્ક સુવર્ણવર્ષ અને ધ્રુવરાજ બીજાના શક સંવત ૭૪૬ અને ૮૦૬ ના તામ્રપત્રોથી ફ્લે છે.† ચીની પ્રવાસી હ્યુએન સંગના પ્રવાસ ગ્રન્થ સી-યૂ-કી થી ફ્લે છે કે સૌરઠ, લાટ અને સિંધમાં થેરવાદ સંપ્રદાયના અનુયાયી હતા.

ઇતિહાસની પૂર્તિ: અવન્તિ–ઉજ્જનનો ચંડપ્રદ્યોત મૃત્યુ પામ્યો; ઈ. સ. પૂ. ૫૪૪. (શ્રી. પ્રધાન પ્રાચીન હિંદની વંશાવલી–Chronology of Ancient India માં પ્રદ્યોતના રાજવર્ષ ઇ. સ. પૂ. ૫૧૪–૪૯૦ વાયુ અને મત્સ્ય પ્રમાણે આપે છે.) એ

---

૨૮ ઇન્દ્રિય અને સારભંગ જાતક. સારભંગ જાતકમાં સૌરાષ્ટ્રનો ઉલ્લેખ છે, આ કથા ઘણું કરીને મૌર્ય યુગની હોય એમ મનાય છે. † જુઓ લેખકનો–'ગુજરાતના રાષ્ટ્રકૂટો' નામનો લેખ, ગુજરાતી પત્ર સં. ૧૯૯૨ નો દીવાલી અંક પૃ. ૧૩૪, તેમજ પ્રસ્થાન–પુ. ૧૯ અંક ૫ સં. ૧૯૯૧ પૃ. ૪૦૫, માં લેખકનો 'ગુજરાતનાં ધ્રુવરાજ બીજાનું દાનપત્ર' એ નામનો લેખ.

સમયે મગધના અજાત શત્રુના શાસનનું છઠ્ઠું વર્ષ હતું. જૈન સાહિત્ય પ્રમાણે જે રાત્રિએ ભગવાન મહાવીર નિર્વાણ પામ્યા તે રાત્રિએ ચંડપ્રદ્યોતના ઉત્તરાધિકારી પાલકનો અવન્તિ–ઉજ્જનમાં રાજ્યાભિષેક થયેલો એમ ઉલ્લેખ છે. પુરાણો પ્રદ્યોતનો રાજકાલ ત્રેવીશ વર્ષનો આંકે છે. (વાયુ ૯૯, ૩૧૧. મત્સ્ય ૨૭૨, ૩.) પ્રદ્યોતના ધર્મ વિશે સ્પષ્ટતા નથી. જૈન, બૌદ્ધ અને બ્રાહ્મણ ત્રણે ધર્મો પ્રદ્યોતને પોતાના ધર્મનો અનુરાગી હોવાનો ઉલ્લેખ છે. મહાસેન પજ્જોતે બૌદ્ધ ધર્મનો ઉપદેશ સ્વીકારેલો કે નહીં એ વિશે બૌદ્ધ ગ્રન્થોમાં અલ્પ નિર્દેશ મળે છે. એટલું નક્કી છે કે એનો રાજ્ય વિસ્તાર ઘણો વિસ્તૃત હતો અને મગધ, કૌશમ્બી જેવા શક્તિસંપન્ન રાજ્યો તેનાથી બ્હીતાં હતાં. એના બે પુત્ર ગોપાળ અને પાલક.

પૌરાણિક ઘટના પ્રમાણે અવન્તિ વંશમાં પ્રદ્યોત તેનો ઉત્તરાધિકારી પાલક અને તે પછી વિશાખ યૂપ–ગોપાળ દારક થયો. કેટલાક પાઠમાં વિશાખ યૂપ પછી ઉજ્જનના સત્તાધીશ અવન્તિવર્ધનનું નામ મળે છે. પાલકનો રાજ્યકાલ ચોવીશ વર્ષનો કહે છે. સીતાનાથ પ્રધાન પ્રમાણે પ્રદ્યોતનો પુત્ર ગોપાળ કૌશમ્બીના ઉદયનના રાજદરબારમાં રહેતો હતો. ઉદયનના મૃત્યુ પછી ગોપાળ અસિતગિરિમાં જઈ સાધુજીવન ગાળવા લાગ્યો. તેના પુત્ર અજકને પાલકે બંદીવાન કર્યો હતો. કથાસરિત્સાગરની કથા અનુસાર પાલક પછી તેનો ભાઈ ગોપાળ દારક (બાલક) ઉજ્જનની ગાદીએ આવ્યો એમ ઉલ્લેખ છે. મૃચ્છકટિક પ્રમાણે પાલક પ્રજાપીડક હોવાથી પ્રજાએ પાલકને રાજગાદીએથી ઉઠાડી મૂકી ગોપાળને આર્યક (અજક) નામ આપી રાજતિલક કર્યું. પટણામાંથી અજ ઉદયીની જે પ્રતિમા મળી છે તેના પ્રતિલેખ અને અનુશ્રુતિનું અનુસંધાન કરી પંડિત જાયસ્વાલ[29] આર્યક–અજક તે મગધનો અજ ઉદયી અજાત શત્રુનો પૌત્ર હોવાનું જણાવે છે. આર્યક ઉજ્જનના ગોપાળ દારક યાને વિશાખ યૂપને હરાવી મગધ અને અવન્તિનો સત્તાધીશ થયો હતો. પ્રદ્યોતનું અવન્તિ જનપદ–અવન્તિનું વિસ્તૃત સામ્રાજ્ય પાલકે ટકાવી રાખ્યું. વિશાખયૂપના શાસનના થોડા વર્ષ પછી અવન્તિ જનપદની સ્વતંત્રતા મગધે છીનવી લીધી. વિશાખ યૂપનો રાજ્યકાલ ઘણો લાંબો હતો એમ પુરાણો વદે છે.

મગધનો અજાતશત્રુ મરણ પામ્યો. ઈ. સ. પૂ. ૫૧૮. કુણિકનો રાજ્યકાલ બત્રીશ વર્ષનો કહેવાય છે.[30] મહાવંશ[31] પ્રમાણે અજાતશત્રુના શાસનના આઠમા વર્ષમાં બુદ્ધ ભગવાન નિર્વાણ પામ્યા. વિષ્ણુ પુરાણ પ્રમાણે મગધની ગાદીએ શૈશુનાગ દર્શક આવ્યો. (જાયસ્વાલ પ્રમાણે રાજ્યકાળ ઈ.સ.પૂ. ૫૧૮–૪૮૩) બૌદ્ધ અનુશ્રુતિ પ્રમાણે દર્શકનાં નામ દર્શક શૈશુનાગ, નાગદાસક, કાકવર્ણી વગેરે મળે છે. એની બેન કૌશમ્બીના વૃદ્ધ ઉદયીન જોડે પરણી હતી.[32] જૈન સાહિત્યમાં[33] મગધના ગાદીવારસ

૨૯ મેરૂતુંગ 'વિચાર શ્રેણી.' 'જૈન કાલગણના' કલ્યાણવિજયજી.

૩૦ મત્સ્ય. ૨, ૩૧.

૩૧ મહાવંશ ૨, ૩૦.

૩૨ ભારતીય ઇતિહાસ કી રૂપ રેખા પુ. ૧. પૃ. ૪૯૬–૪૯૭.

૩૩ સ્થવિરાવલિ ૬, ૨૨, ૧૮૮. રોય ચૌધરી પુરાણને આધારે અજાતશત્રુનો ઉત્તરાધિકારી દર્શક હતો એમ ઉલ્લેખે છે. જાયસ્વાલની માન્યતા પણ આ પ્રમાણે છે. Raychandhari p. 130. Prgiter: Dynasties of Kaliage pp. 21–63. Jayaswal J. B. ORS. 1919. ભાસના સ્વપ્નવાસવદત્તામાં મગધના રાજા દર્શકનો સ્વીકાર કર્યો છે.

દર્શકનું નામ મળતું નથી, પણ જૈન સ્થવિરાવલિ પ્રમાણે અજાત શત્રુ પછી ઉદયન-અજ ઉદયી મગધ સામ્રાજ્યનો સ્વામી થયો એમ ઉલ્લેખ છે. જાયસ્વાલ મગધની ગાદીએ દર્શક પછી તેનો ઉત્તરાધિકારી તેનો પુત્ર અજ ઉદયી ગાદીએ આવ્યો એમ જણાવે છે.

અજ ઉદયી તેના પિતામહ અજાત શત્રુ જેવો પરાક્રમી હતો. એણે બિંબિસારના મગધ સામ્રાજ્યની સીમા વધારવાની જિજ્ઞાસા ઘણી જ હતી. એનો રાજ્યકાલ તેર અથવા સોળ વર્ષનો કહેવાય છે; ઈ.સ.પૂ. ૪૮૩-૪૬૭ (જાયસ્વાલ પ્રમાણે). બૌદ્ધ અને જૈન સાહિત્ય પ્રમાણે અજ ઉદયીએ નવું રાજનગર પાટલિપુત્ર (વર્તમાન પટણા) વસાવ્યું.[૩૪] ઇતિહાસથી ફળે છે કે કેટલાક સૈકા સુધી ભારતવર્ષના અસ્ત અને ઉદયનું કેન્દ્ર પાટલિપુત્ર હતું.

ઇસિવીસનના ઓગણીસમા સૈકામાં ભારત વર્ષના પ્રાચીન ઇતિહાસના ગર્ભને પ્રકાશ આપનાર કનિંગહામ સાહેબને પટણા નજીકના બસ્તી ગામમાંથી કેટલીક પ્રતિમાઓ મલી હતી. આ પ્રતિમાઓ યક્ષની હોવાનો નિર્દેશ તેમના ગ્રંથમાં મળે છે. આ પ્રતિમાઓ કલકત્તા મ્યુઝીયમમાં સુરક્ષિત પડી છે. ઇશુની વીસમી સદીમાં જાયસ્વાલે આ પ્રતિમાઓમાંથી એક પ્રતિમાના પ્રતિલેખનું વાંચન કરી તે પ્રતિમા મગધના અજ ઉદયીની હોવાનું જાહેર કર્યું હતું.[૩૫] આ વિષયમાં દરેક ઐતિહાસિક પંડિતોએ, લિપિ અને સ્થાપત્યના નિષ્ણાતોએ પોતપોતાની કળાની મહત્તાનો ભાગ ભજવ્યો છે, અને ઇતિહાસપટ ઉપર આ પ્રતિમા વિશે અનેક લેખોદ્વારા અનેરો પ્રકાશ પાડ્યો છે. પંડિત જાયસ્વાલનો અભિપ્રાય સ્વીકારી લઇએ તો, મગધ સામ્રાજ્યના સમ્રાટ્‌ની પ્રતિમા-જે સમયે ગુજરાત એવા ભૂમિ પ્રદેશનું નામ નિશાન ન હોતું-એ પ્રદેશના ઇતિહાસના સાધનના આલેખનમાં ગુજરાતના રાજાધિરાજની પ્રથમ પ્રતિમા મલી એમ કહી શકાય.

અવન્તિ અને મગધે પોણા સૈકા સુધી શાંતિ ભોગવી. શૂરા અજ ઉદયીએ અવન્તિની મહત્તા તોડવા સંકલ્પ કર્યો. અજ ઉદયીનો સમકાલીન ઉજ્જનમાં વિશાખ યૂપ શાસન કરતો હતો. મગધરાજ અવન્તિ ઉપર સવારી લઈ ગયો અને વિશાખ યૂપને રણ મેદાનમાં નમાવ્યો. પ્રધાન પ્રમાણે અવન્તિને મગધ સામ્રાજ્યમાં જોડનાર અજ ઉદયીનો ઉત્તરાધિકારી શૈશુનાગ-નન્દિવર્ધન હતો.[૩૬] કલ્કિપુરાણ પ્રમાણે વિશાખ

---

૩૪ વાયુ પુરાણ પ્રમાણે ઉદયીએ પોતાના રાજ્યના ચોથા વર્ષમાં કુસુમપુર-પાટલિપુત્ર વસાવ્યું. રોય ચૌધરી. હિન્દનો પ્રાચીન ઇતિહાસ પૃ. ૧૩૧ પાર્જીટર પૃ. ૬૯. પ્રધાન પૃ. ૨૧૬.

૩૫ બસ્તી પ્રતિમા ઉપર મગે अचो છીધીશે=ભગવાન અજઃ ક્ષોણ્યધીશ=અજ પૃથ્વીપતિ. અને બીજી પ્રતિમા બેસીવાલીના લેખમાં स्वप स्वते वटनन्दि। સર્વક્ષેત્રેવર્તનન્દિઃ સંપૂર્ણ સામ્રાજ્યવાલા વર્તં નન્દિ. જાયસ્વાલના વાચન ઉપર લિપિ અને પ્રાકૃતના નિષ્ણાતોએ, અને ભાષા વિશારદો અને પ્રતિમાનિરીક્ષકોએ અનેક નિબંધો લખી જુદા જુદા મત પ્રદર્શિત કર્યા છે. કેટલાક પંડિતો પં. જાયસ્વાલના મતને સહમત થયા છે જ્યારે કેટલાકે આ વાંચનમાં મતભેદ જાહેર કર્યો છે. ભા. ઈ. રૂ. રેખા.

૩૬ રૉય ચૌધરી જણાવે છે કે પુરાણો અને સીલોનના બૌદ્ધોના ગ્રંથોના ઉલ્લેખો એકજ નન્દ વંશનું અસ્તિત્વ સ્વીકારે છે. આ ગ્રંથો નન્દિવર્ધનને શૈશુનાગ વંશના રાજા તરીકે ઓળખે છે અને તેને નન્દવંશથી તદ્દન જુદોજ હોવાનું જણાવે છે. રૉ. ચૌ. પૃ. ૧૩૩.

યૂપે ઉદયી જોડે સંધી કરી પોતાની રાજગાદી ઉજ્જનથી માહિષ્મતી ખસેડી. માહિષ્મતીમાં એણે દશ વર્ષ રાજ્ય કર્યું. એકંદરે વિશાખ યૂપનો રાજ્યકાલ પચાસ વર્ષનો પુરાણોમાં આપ્યો છે. કથાસરિત્સાગર પ્રમાણે વિશાખ યૂપ પછી અવન્તિનો રાજા અવન્તિવર્ધન થયો.[૩૭] એનો રાજ્યકાલ ત્રીશ વર્ષનો કહેવાય છે. અવન્તિ જનપદના રાજકીય પતન પછી ભારત વર્ષમાં મગધનું પ્રતિદ્વન્દ્વિ રાજ્ય કોઈ રહ્યું નહીં. અજ ઉદયી પછી શૈશુનાગ નન્દિવર્ધન મગધનો સ્વામિ થયો.

નન્દિવર્ધન (નન્દ) એક દિગ્વિજયી સમ્રાટ્ હતો. (ઈ.સ.પૂ. ૪૫૮) એણે ઉજ્જનના અવન્તિવર્ધનના મૃત્યુ પછી અવન્તિજનપદ મગધ સામ્રાજ્યમાં ભેળવી દીધું. એ સમયથી પાટલિપુત્રના રાજકુમાર મગધના પ્રતિનિધિ તરીકે ઉજ્જનમાં શાસન કરતા હતા. નન્દિવર્ધન મગધના દક્ષિણ પૂર્વ સમુદ્ર તટ ઉપરનો કલિંગ દેશ જીતી વિજયના ચિહ્ન તરીકે જૈન પ્રતિમા મગધ લઈ આવ્યો હતો એમ શિલાલેખથી ફળે છે.[૩૮]

બૌદ્ધ સાહિત્યના દોહનમાંથી – મહાવંશમાં વર્ણવેલો કાલાશોક – તારાનાથે સંબોધેલો કામાશોક અને પુરાણોએ આલેખેલો નન્દિવર્ધન એકજ વ્યક્તિ હતી એમ પં. જાયસ્વાલ માને છે.[૩૯] સીતાનાથ પ્રધાન પુરાણોએ નિર્દેશેલો શૈશુનાગ – નન્દિવર્ધન અને મહાવંશનો કાલાશોક બન્ને ભિન્ન વ્યક્તિઓ મગધ સામ્રાજ્યના શાસક હોવાનું જણાવે છે. અજ ઉદયી પછી શૈશુનાગ – નન્દિવર્ધન તે પછી મહાનન્દિ અને તેના પછી મહાપદ્મ અનુક્રમે મગધની પાટે આવ્યા. પુરાણોમાં જે મહાપદ્મનું વર્ણન છે તે અને બૌદ્ધ ગ્રંથનો કાલાશોક બન્ને એકજ વ્યક્તિ હોવાનું પ્રધાન માને છે. પંડિત જયચંદ્ર વિદ્યાલંકાર 'ભારતીય ઇતિહાસકી રૂપરેખા' ગ્રંથમાં 'નન્દિવર્ધન (નન્દ) અને શૈશુનાગ' સમસ્યા લેખમાં આ પ્રમાણે જણાવે છે, "નન્દિવર્ધને અવન્તિનો પરાજય કરેલો એ હકીકત નિશ્ચિત છે. ખારવેલના લેખ પ્રમાણે નન્દદ્વારા કલિંગ દેશ ઉપર વિજય પ્રાપ્ત થયેલો એ પણ સ્પષ્ટ છે. પાટલિપુત્રમાં નન્દરાજા દ્વારા બ્રાહ્મણોની મળેલી સભામાં વ્યાકરણકાર પાણિની હાજર હતા એ પ્રસિદ્ધ છે. આ બધી ઐતિહાસિક હકીકત તારવતાં પંડિત જાયસ્વાલે નિર્દેશેલો નન્દિવર્ધન – કાલાશોક બન્ને એક જ વ્યક્તિ હોવાનું નિશ્ચિતરૂપે માનવાનું કારણ મળે છે."[૪૦] કાલાશોક – નન્દિવર્ધનના શાસન કાળમાં બુદ્ધ ભગવાનના નિર્વાણના એક સૈકા પછી કાલાશોકના નેતૃત્વ તળે વૈશાલીમાં બૌધોની બીજી સંગીતિ (સંઘ) મળી હતી. આ પરાક્રમી રાજાનો રાજ્ય વિસ્તાર દક્ષિણ, પૂર્વ તથા પશ્ચિમ સાગર તટ સુધીનો હતો. એણે હિમાલયના દેશોમાં

---

૩૭ सुनामावन्तिवर्धनः ॥ કથા–સ–સા. ૧૧૨, ૧૩. પ્રધાન પૃ. ૨૩૪ વંશાવલી પૃ. ૨૩૫.

૩૮ જાયસ્વાલ. જ. બિ. ઓ. રિ. સો. પુ. ૨૩ પૃ. ૨૪૫ સ્મીથ, જ. રો. એ. સો. ૧૯૧૮ પૃ. ૫૪૬. ચંદા: Memoirs of the Archaeological Survey of India No. 1 pp. 11–12. Raychaudhari p. 138.

૩૯ જાયસ્વાલ. જ. બિ. ઓ. રિ. સો. વર્ષ ૧૯૧૫. પૃ. ૭૭.

૪૦ ભારતીય ઇતિહાસકી રૂપરેખા. પુ. ૧ પૃ. ૭૪, મહાવંશ, દિવ્યાવદાન, બી. સી. લો. Buddhist Studies p. 15 ff.

વિજય પ્રાપ્ત કર્યો હતો. કાશ્મીર અને તેનાં પાડોશી રાજ્યો નન્દને આધીન હતાં. આ ઐતિહાસિક ઘટના પ્રમાણે કાલાશોક—નન્દિવર્ધનના સામ્રાજ્યની સીમામાં અપરાન્ત—ગુજરાતનો સમાવેશ થતો હતો.

કાલાશોક—નન્દિવર્ધન પછી તેનો પ્રતાપી પુત્ર મહાનન્દિ[૪૧] મગધની ગાદીએ આવ્યો. (ઈ. સ. પૂ. ૪૦૬—૩૭૪ અંદાજી) એનો વારસદાર પુત્ર નિર્બળ હતો. એ પછી અભિભાવક મહાપદ્મ મગધ સામ્રાજ્યનો સત્તાધીશ થયો. પુરાણો એને ક્ષત્રિયોનો ઘાતક અથવા બીજો પરશુરામ કહે છે. એ પછી નવનન્દ (નવા નન્દો) થયા. આ નવા નન્દોના છેલ્લા નન્દની સત્તાનું પતન કરી મૌર્ય (મોરિય) ચંદ્રગુપ્ત મગધ સામ્રાજ્યનો સ્વામિ થયો. મૌર્ય સત્તાના ઉદયે ગુજરાત પણ મૌર્ય સામ્રાજ્યની છત્રછાયામાં ગણાયું.

મગધની સંસ્કૃતિ અવન્તિ જનપદે સ્વીકારી, અવન્તિ ઉજ્જનની સંસ્કૃતિ—સંસ્કારિતા અપરાન્ત—ગુજરાતમાં પ્રસરી. એ પ્રમાણે ઈશુની પૂર્વેના પાંચમા છઠ્ઠા સૈકાના પ્રાચીન ગુજરાતના ઇતિહાસની ભૂમિકાનું સર્જન ઉજ્જન—અવન્તિ જનપદ પુરૂ પાડે છે.

* *
*

૪૧ Pargiter 'Dynasties of the Kali age' pp. 25, 69. Smith : Early His. of India. p. 41. Raychaudhari p. 40.

सादृश्य (ANALOGY) नुं स्वरूप*

ले० – श्रीयुत हरिवल्लभ भायाणी, एम्. ए.

*

ભાષાનું સંકુલ સ્વરૂપ

વાણી અને વિચાર વચ્ચે રહેલા સંબંધની તપાસ કરતાં એક વસ્તુ તરતજ આપણી નજરમાં આવશે કે આપણું ચિત્તંત્ર અસંખ્ય અને અનેકવિધ વ્યાપારો અને વૃત્તિઓના ભંડાર જેવું છે, જ્યારે જેની દ્વારા આ ચિત્તંત્રના વ્યાપારો વ્યક્ત કરવાના છે, તે ભાષા પાસે પ્રમાણમાં ઘણાં પરિમિત સાધનો હોય છે. આ અસમાનતાને પહોંચી વળવા માટે—મનોવ્યાપારોની સંકુલતા ઉચિતપણે વ્યક્ત કરવા માટે—સ્વાભાવિક રીતે જ ભાષાને પોતાના ઝીણામાં ઝીણાં તત્ત્વોનો પણ અર્થસૂચકપણે ઉપયોગ કરવો પડે છે. પરિણામે મનોવ્યાપારોમાં જે સંકુલતા રહેલી છે તે ભાષાકીય ઘટનાઓમાં પણ અમુક પ્રમાણમાં પ્રતિબિંબિત થાય છે. આ હકીકત બતાવે છે કે પહેલી નજરે પણ કંઈક અટપટી દેખાતી ભાષાકીય ઘટનાઓ તેમના ખરા સ્વરૂપમાં તો ખૂબ જ ગૂંચવણભરી હોવી જોઇએ અને આપણે કોઈ પણ ભાષાના અર્વાચીન સ્વરૂપને ભાષાસામગ્રીનાં જુદી જુદી ભૂમિકામાં થયેલા રૂપાંતરોની તુલના કરી ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ છણીએ છીએ ત્યારે તો આપણને ભાષાના સ્વભાવમાં રહેલી આ સંકુલતાની પૂરી પીછાણ થાય છે. આથી આપણે સમજી શકીએ કે પ્રાચીન ભાષાઓના અભ્યાસીને આ દૃષ્ટિએ કેટલા જાગ્રત રહેવાની જરૂર છે. મૂળ ભાષાના બોલાતા સ્વરૂપના માત્ર ગણતર લિખિત અવશેષો સાથે તેને કામ કરવાનું હોય છે, અને આ અવશેષોની દરિદ્રતા, કોઈ પણ વર્તમાન બોલાતી ભાષાની અનર્ગળ સમૃદ્ધિની સરખામણીમાં તદ્દન ઉઘાડી છે. બીજીરીતે કહીએ તો, પ્રાચીન ભાષાના અભ્યાસીને ઝીણી-મોટી અસંખ્ય ભાષાકીય ઘટનાઓથી ઊછળતા, જીવન્ત બોલચાલની ભાષાના મહાસાગરને બદલે લિપિના કાંઠાથી મર્યાદિત, મૃત વાઙ્મયિક ભાષાનું બંધિયાર ખાબોચિયું તપાસવાનું હોય છે. તેથી તેને આધારે તે જે નિર્ણયો બાંધે છે, તેમાં ખાસ સાવચેતીની જરૂર રહે છે.

ભાષાશાસ્ત્રમાં સાદૃશ્યના સિદ્ધાન્તનો પ્રવેશ

અને એક રીતે અર્વાચીન ભાષાશાસ્ત્રના ઇતિહાસમાં સાદૃશ્યના તત્ત્વની ઓળખ અને સ્વીકાર આ હકીકતની સાખ પૂરે છે. ઈસવી ઓગણીશમી સદીનો આરંભ એ અર્વાચીન ભાષાશાસ્ત્રીય અભ્યાસનો ઉષઃકાળ. ભાષાના સ્વભાવની હજી ઉપરછલ્લી જ પીછાન થઈ હતી. ભાષા પર અસર કરતાં બળોની હજી માત્ર થોડી થોડી ઝાંખી થઈ હતી. સંસ્કૃત, અવેસ્તા, ગ્રીક, લેટીન, સેલ્ટી, ટ્યુટોની, સ્લાવોની વગેરેના તુલનાત્મક અને ઐતિહાસિક અભ્યાસને પરિણામે, ભાષાઓનું સ્વરૂપ બદલવામાં ધ્વનि-

---

* ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ સંમેલનના ચૌદમા અધિવેશનના ભાષાશાસ્ત્ર વિભાગ માટે રજૂ કરાયેલો નિબંધ.

વ્યાપારો (Phonetic processes) કેવી રીતે પ્રવર્તે છે તેનો કંઈક ખ્યાલ આવ્યો હતો. અભ્યાસ વધતાં તેમના પરિબળની વધારે ને વધારે પીછાણ થતી ગઈ. પણ હજી જોઇતી ચોક્કસાઇનો અભાવ હતો. જેમ જેમ અભ્યાસનું ક્ષેત્ર વિસ્તરતું ગયું, બીજાં ભાષાકુળોનાં બંધારણ અને ઇતિહાસ તપાસાવા લાગ્યાં, તેમ તેમ, ફલિત થતા નિર્ણયોમાં પ્રથમ જે અસ્પષ્ટતા હતી, તે દૂર થવા લાગી. બીજાં શાસ્ત્રોમાં જે ઝીણવટ અને ચોક્કસાઈ જરૂરી ગણાતી તેમનો ભાષાશાસ્ત્રીય અભ્યાસમાં પણ આગ્રહ રખાવા લાગ્યો. એક ભાષાની બે પૂર્વાપર ભૂમિકાઓની તપાસણીદ્વારા ધ્વનિઓમાં થયેલા વિકારોનો સમાવેશ કરતા જે ધ્વનિનિયમો (Phonetic laws) તારવવામાં આવતા, તે પહેલાં તો 'સગવડિયા' કહી શકાય તેવા હતા; કેમ કે માત્ર મુખ્ય મુખ્ય ઘટનાઓની સમાનતા ધ્યાનમાં લઈ તેમને આધારે અનુમાનો દોરાતાં. જે કેટલીક ખૂંચતી હકીકતો આ નિયમોનો છડેચોક ભંગ કરતી દેખાતી તેમની તરફ નજીવા અપવાદો, અનિયમિતતાઓ તરીકે દુર્લક્ષ કરવામાં આવતું પણ હવે તો આવા અપવાદોનેય આવરી લેતા બીજા પેટા-નિયમોની તપાસ કરવામાં આવતી. હતી આમ ધ્વનિ–નિયમોની સાર્વત્રિકતા પર વધુ ને વધુ ભાર મૂકાતો ગયો. પરિણામે ઓગણીશમી સદીના છેલ્લા ચરણમાં "ધ્વનિ-નિયમો જાણે કે આંખો મીચીને જ – અન્યનિરપેક્ષપણે – એક પ્રકારની અબાધિત અનિવાર્યતાથી પ્રવર્તે છે" એવો, ધ્વનિવ્યાપારોને અણઘટતું અતિમહત્ત્વ આપી દેતો અને તેથી અતિ-ગણનાની કોટિમાં મૂકી શકાય તેવો વાદ ઉભો થયો. આનું એક અગત્યનું પરિણામ એ આવ્યું કે ધ્વનિ-નિયમોના અપવાદોને શાસ્ત્રીયપણે સમજાવવામાં સાદૃશ્યનું તત્ત્વ કેવું કામ કરી રહ્યું છે એ સ્પષ્ટ થતું ગયું; અને ભાષાના વિકારક બળોની થએલી તલસ્પર્શી તપાસને લીધે ધ્વન્યાત્મક બળો (Phonetic forces) નો પણ ભાષા-વિકાસમાં કેટલો અસામાન્ય ફાળો છે, એ લક્ષમાં આવ્યું. પહેલાં જેની "આભાસી સાદૃશ્ય" (false analogy) કહી કુત્સા કરાતી, જેની તરફ ધ્વનિ-નિયમોના વિરોધી અને અનિયમિતતાઓના ઉત્પાદક તરીકે કરડી નજરે જોવામાં આવતું, તે સાદૃશ્યનો સ્વભાવ ખરા રૂપમાં જણાતાં એ પ્રકારના ખ્યાલો દૂર થયા, અને ધ્વનિ-નિયમોના અગત્યના સહયોગી અને પૂરક તરીકે તેને ઉચિત સ્થાન અપાયું.

આથી ભાષાકીય અભ્યાસની પદ્ધતિમાં પણ દૂરગામી પરિવર્તન થયું. શરૂઆતમાં જ્યારે થોડા સીધાસાદા ધ્વનિ નિયમોની અસર નીચે, ઉપરછલ્લી સમાનતાને અણઘટતું મહત્ત્વ આપી, ઝીણી ઝીણી વિગતોની કડાકૂટ કર્યા વિના ઝટ દઇને શબ્દોની વ્યુત્પત્તિ રજૂ કરવામાં આવતી, ત્યારે ભાષાદેહનો રૂપ-પલટો સમજાવવો એ રમતવાત લાગતી. એથી ઉલટું ધ્વનિ-નિયમોનું ધોરણ કડક થયું ત્યારે કેટલીક વાર તો એવી સ્થિતિ આવીને ઉભી રહેલી કે મૂળ નિયમને વશ વર્તતા શબ્દો કરતાં અપવાદો અને અનિયમિતતાઓ વધી પડે. સાદૃશ્યના સિદ્ધાન્તે જ આવીને ઘટતી વ્યવસ્થા આણી અને સમજાવ્યું કે જેમ કેટલાક શબ્દો આડું–અવળું પગલું ભર્યાવિના સરળ રસ્તે ઉતરી આવે છે તેમ બીજા કેટલાક શબ્દો એવી અતકર્ય અટપટી ગલીકૂંચીઓમાંથી પસાર થઇને આવે છે, કે તેમની રખડપટ્ટીના પ્રેરક બળો તદ્દન

અસમંજસ હોવાની આપણને ખાતરી થયા વિના ન રહે. વળી, સાથે એ પણ સ્પષ્ટ થયું કે શબ્દોને (અથવા તો બીજી ભાષાસામગ્રીને) તેમના વાતાવરણથી છૂટા પાડીને તેમનો ઇતિહાસ તપાસવો એ તદ્દન અશાસ્ત્રીય છે. કારણ, કોઈ પણ શબ્દનો ઇતિહાસ ઘડવામાં તેનાં ધ્વનિદેહ અને અર્થસામગ્રી સાથે એક યા બીજી દૃષ્ટિએ સાદૃશ્ય ધરાવતા શબ્દોનો ખૂબ જ અગત્યનો ફાળો હોય છે. આમ, ભાષાકીય ઘટનાઓના સંકુલ સ્વરૂપનો ખરેખરો ખ્યાલ સાદૃશ્યના તત્ત્વે જ આપ્યો. અહીં આપણે આ સાદૃશ્યના સ્વરૂપનાં કેટલાંક પાસાંની ઝાંખી કરીશું.

સાદૃશ્યનું સ્વરૂપ

સાદૃશ્યનું સ્વરૂપ પાઉલે આ પ્રમાણે સ્પષ્ટ કર્યું છે[૧]: "(૧) જનનીભાષા ભારત-યુરોપીય વિભક્તદશાને પામી તે પહેલાંના દૂરદૂરના કાળની ભાષાભૂમિકામાં પણ પૂર્ણસ્વરૂપે તૈયાર થએલા શબ્દો જ હતા, નહિ કે છૂટકરૂપે રહેલા ધાતુઓ, અંગો ને પ્રત્યયો: અને એ શબ્દો જુદાજુદા અંશોની મેળવણીરૂપ છે, એવી વાપરનારને ગંધ પણ ન હતી—આ સાદી હકીકત કદી લક્ષ બહાર ન જવી જોઇએ. અને બોલનાર બોલતી વેળા, સ્મૃતિમાં સંઘરેલા જે ભંડાર પર આધાર રાખે છે તે ભંડાર આવા પૂર્ણસ્વરૂપે તૈયાર શબ્દોનો બનેલો હોય છે: તેની પાસે કાંઈ છૂટક પ્રકૃતિ અને પ્રત્યયોનો જથ્થો નથી હોતો કે જેમાંથી તે તે પ્રસંગે જરૂરનું રૂપ તેમની (એટલે કે પ્રકૃતિ અને પ્રત્યયની) મેળવણીદ્વારા ઘડી કાઢે. (૨) આમાં એવું કહેવાનો આશય નથી કે બોલનાર જે જે રૂપ વાપરે છે તે દરેક તેનું સાંભળેલું અને સ્મૃતિસ્થ કરેલું હોય છે. એ વાત જ અસંભવિત છે. ઊલટું, તેણે કદી ન સાંભળ્યા હોય કે કાંઈ ખાસ ધ્યાન આપ્યું ન હોય તેવા વિભક્તિરૂપો, આખ્યાતિક રૂપો, વગેરે ઘડવાની પણ તેનામાં શક્તિ હોય છે. (૩) પણ આવું ઘડતર, તેના મગજમાં છૂટક પ્રકૃતિ ને પ્રત્યયોનું અસ્તિત્વ જ ન હોવાથી, તેમની મેળવણીદ્વારા કરવું અશક્ય, એટલે તેવા દરેક ઘડતર માટે, આસપાસની બીજી વ્યક્તિઓ પાસેથી પહેલેથી શીખી લીધેલા તૈયાર ઘડતરના શબ્દબીબાંનો જ આધાર લેવાતો હોય છે. એ પહેલેથી શીખી લીધેલા તૈયાર ઘડતરના શબ્દો મૂળ તો તેણે એક એક કરીને જાણ્યા હોય છે અને (૪) પછીથી વ્યાકરણી વિભાગો (Grammatical catagories)ને મળતી તેમની વર્ગણી કરી દીધી હોય છે; પણ પોતાની સ્મૃતિમાં રહેલી શબ્દમંડળીઓ વ્યાકરણના વિભાગોને મળતી આવે છે એવો તે શબ્દમંડળીઓની સ્વરૂપસ્થિતિનો સ્પષ્ટ ખ્યાલ ખાસ કેળવણી સિવાય આવતો નથી. આ પ્રકારની ટોળાબંધી—જુદા જુદા શબ્દોની અમુક સાદૃશ્યને આધારે કરેલી વિવિધ વર્ગણી—સ્મરણશક્તિને ઘણી સહાયક બને છે, એટલું જ નહિ, પણ તેને માટે એવા બીજા નવીન રૂપો ઘડવાનું સંભવિત બનાવે છે. 'સાદૃશ્ય' તરીકે જે સિદ્ધાંત જાણીતો છે તે આ જ."

---

૧. મૂળ પાઉલ (Paul) ના "Prinzipien der Sprachgeschichte" (૧૯૦૯)માંથી અંગ્રેજીમાં અનુવાદિત ટાંચણ સ્વીટ (Sweet): Collected Papers (૧૯૧૩), પા. ૧૧૨ ઉપર; યેસ્પર્સન (Jespersen): Language, પા. ૯૪.

આમ, દરેક બોલનાર બોલતો હોય છે ત્યારે સાદૃશ્યમૂલક રૂપો સતત સરજ્યે જતો હોય છે એ સ્પષ્ટ છે. તેથી [૧] સ્મૃતિ દ્વારા પુનઃસર્જન અને [૨] સાહચર્ય દ્વારા અભિનવ ઘડતર : આ બે સાદૃશ્યના અનિવાર્ય ઘટકો છે.

અને ઉચ્ચારણઅવયવો (vocal organs) દ્વારા ભાષાનું ઉત્પાદન અને આ ઉત્પાદનના મૂળમાં પ્રવર્તી રહેલા માનસિક વ્યાપારો : એ બે વચ્ચેનો પરસ્પર સંબંધ—અર્થાત્ ભાષાની પાછળ રહેલું માનસશાસ્ત્ર (psychology of speech)—જરા ધ્યાનપૂર્વક તપાસીએ તો આ સાદૃશ્યના તત્ત્વનું આવું સ્વરૂપ અને વર્ચસ્વ શા કારણોને લીધે છે તે આપણાથી સારી રીતે સમજી શકાય. પ્રથમ આપણે પાઉલના પૃથક્કરણે આપેલાં બીજકોનો જ વિસ્તાર કરવાનો છે, અને પછી તેને આધારે આગળ વિચાર કરીશું.

શબ્દઉત્પાદનના પૂર્વવ્યાપારો

શબ્દોનો ઉત્પાદનવ્યાપાર તપાસતાં બે અગત્યની ઘટનાઓ તરફ આપણું લક્ષ ખેંચાય છે. પ્રથમ તો જે શબ્દો આપણા ઉચ્ચારણવ્યાપારને લીધે વ્યક્ત થાય છે, તે શબ્દો કોઈ પણ જાતના પૂર્વ સંબંધ વિના, તદ્દન અદ્ધરથી જ નવા સરજાઈને બહાર પડે છે, એવું નથી. સામાન્યરીતે આપણી નાની વયથી આસપાસના સમાજમાં જે ભાષા પ્રચલિત હોય તેને આપણે આંતરિક અનુકરણશક્તિ દ્વારા સ્વભાષા તરીકે અપનાવતા આવીએ છીએ. જે જે શબ્દોના વપરાશથી આપણે જાણીતા થઈએ છીએ, તેમને આપણી સ્મૃતિમાં સંઘરીએ છીએ. સાંભળવામાં આવતા શબ્દોનાં બિંબ કે આકૃતિ (verbal image) તેમની ધ્વનિસામગ્રી અને અર્થસામગ્રી સાથે આપણી સ્મૃતિ પર અંકિત થઈ જાય છે. એટલે આપણે વિચારોને વાણીદ્વારા વ્યક્ત કરવા હોય છે, ત્યારે સામાન્ય સંજોગોમાં શબ્દબિંબોના ભંડારમાંથી અનુકૂળ બિંબોની વીણણી કરી તેમને આપણે મૂર્ત સ્વરૂપ આપીએ છીએ.[૨]

---

૨ જુઓ વાંદ્રૃયે (Vendryes): Language, પા. ૬૫ અને પછીનાં.

અર્વાચીન ભાષાશાસ્ત્રના આ વિચારોની ઝાંખી આપણે અઢી હજારથીયે વધારે વરસ પહેલાનાં ભારતવર્ષના ભાષાશાસ્ત્રીઓનાં લખાણોમાં કરી શકીએ છીએ. નિરુક્તકાર યાસ્ક (ઈસુપૂર્વે ૬ઠ્ઠી–૭મી સદી) પોતાના કોઈ પૂર્વાચાર્ય ઔદુમ્બરાયણનો મત નોંધે છે : " વચન માત્ર (ઉચ્ચારણના) અવયવોમાં જ શાશ્વત છે એમ ઔદુમ્બરાયણ (માને છે)." એટલે કે ભાષાધ્વનિઓ ઉચ્ચારણઅવયવોથી છૂટા પડી શ્રવણેન્દ્રિયનો સ્પર્શ કરે અને અર્થબોધ થાય એટલા પૂરતા જ અસ્તિત્વમાં હોય છે, તેમની અંતઃકરણ ઉપર કોઈ શાશ્વત છાપ પડતી નથી. આ મત તે સમયથી જાણીતી થએલી શબ્દના નિત્યત્વ–અનિત્યત્વને લગતી ચર્ચાનો એક પક્ષ છે. શબ્દનું ખરૂં સ્વરૂપ શાશ્વત માનતો બીજો પક્ષ સમય જતાં વૈયાકરણોના સ્ફોટવાદ તરીકે પ્રસિદ્ધ થાય છે. વૈયાકરણોમાં પતંજલિ વગેરેએ, મીમાંસકોમાં જૈમિનિ વગેરેએ, અને આલંકારિકોમાં આનંદવર્ધન, મમ્મટ વગેરેએ આ વિષય સારી રીતે ચર્ચ્યો છે (જુઓ, લક્ષ્મણ સરૂપકૃત 'નિરુક્ત'નું અંગ્રેજી ભાષાન્તર પા. ૬ ઉપરના ઉલ્લેખો અને પા. ૨૦૩ ઉપરનાં ટાંચણ). એ ધ્યાનમાં રાખવા જેવું છે કે વૃત્તિકાર દુર્ગાચાર્ય (આ. ઈસવી ૧૩મી સદી) વર્ણદ્વારા વ્યક્ત થતો વિનાશી શબ્દ અને તેની બુદ્ધિ પર પડતી અવિનાશી છાપ એ બે વચ્ચે સ્પષ્ટપણે ભેદ પાડે છે. અને તેમને માટે અનુક્રમે 'શબ્દવ્યક્તિ' અને 'શબ્દાકૃતિ' (સરખાવો અંગ્રેજી સંજ્ઞા verbal image) એવી સંજ્ઞાઓ યોજે છે. પ્રાચીન ભારતના વિદ્વાનોના ભાષા વિશેના વિચારો(શબ્દની વૃત્તિઓ, અભિહિતાન્વયવાદ, અન્વિતાભિધાનવાદ, વગેરે) ની અર્વાચીન ભાષાશાસ્ત્રની દૃષ્ટિએ મુલવણી થવાની ઘણી જરૂર છે.

શબ્દનું અનેકરંગી અર્થવર્તુળ

હવે આ શબ્દબિંબો કે શબ્દો આપણા મનમાં એકલાઅટૂલા નથી રહેતા. એક તો આપણે જે અનેકરંગી પ્રસંગો અને પરિસ્થિતિઓમાં અમુક શબ્દ વપરાતો જોયો જાણ્યો હોય છે, તે બધાનો પાસ એ શબ્દને લાગે છે; અને સૂક્ષ્મ અર્થોના ઝીણા-જાડા તાંતણાઓનું જાળું શબ્દની ચોતરફ બંધાય જાય છે. એક દાખલો લઈએ. "એ માતા અને બાલક", "બાળકબુદ્ધિ", "માનવી મૂળ તો પ્રકૃતિનું બાળક", "કુટુંબ જીવનની અને જાહેર જીવનની આટઆટલી જવાબદારીઓ સ્વીકારવા છતાં તેના હૃદયનો બાળકભાવ હજી જરા પણ ઓછો નથી થયો", "શ્રી બાળકરામની સેવાની જોઈતી કદર હજી થઈ નથી", વગેરે પ્રયોગોમાંના બાળક શબ્દની વિવિધ અર્થસૂચકતા તે શબ્દનો ઉપયોગ કરનાર જાણતો હોય છે. ઉપરાંત તે શબ્દના અર્થની ચિત્રવિચિત્ર રંગોળીમાં વ્યક્તિગત અનુભવની પણ ભાત પડે છે. સૂતિકાગૃહની પરિચારિકા, અનાથાશ્રમનો સંચાલક, સંતતિનિયમનનો અભ્યાસક, કવિ, માતા, કેળવણીકાર એ સૌના 'બાળક' શબ્દ સાથે જડાયલા સંસ્કારો કંઈક અંશે એકબીજાથી નિરાળા અને વિશિષ્ટ પ્રકારના હોય છે. વળી કોઈના જીવનમાં કોઈ બાળક સાથે એવો પ્રસંગ બન્યો હોય કે તેની સ્મૃતિની સાથે તે સદાને માટે જડાઈ ગયો હોય, તેવી વ્યક્તિને કાને 'બાળક' શબ્દ પડતાં જ તેનો ભૂતકાળનો અનુભવ પાંગરી ઊઠે છે. એટલે તેના માનસે રચેલા 'બાળક' શબ્દના અર્થવર્તુળમાં આ વિશિષ્ટ તત્ત્વનો પણ સમાસ થએલો હોય છે. દરેક શબ્દનું આ પ્રમાણે જ સમજવાનું.

શબ્દબિંબોનો શ્રેણીબંધ

પણ બીજું વધારે ધ્યાન ખેંચે તેવું તો એ છે કે આપણા ચિત્તપર છપાયેલા શબ્દો સમાજપ્રેમી માનવીની માફક પોતાના ધ્વનિ, રૂપ અને અર્થ સાથે થોડી ઘણી સગાઈ ધરાવતા બીજા શબ્દો સાથે મળીને અલાયદી ટોળીઓ જમાવતા હોય છે.

લીધું, દીધું, પીધું, કીધું, ખાધું.
ચડવું, પડવું, લડવું, રડવું, દડવું, જડવું.
ચડસાચડસી, મારામારી, ગાળાગાળી, કાપાકાપી, મુક્કામુક્કી.
દેવ-દેવો, માણસ-માણસો, સમાજ-સમાજો, ગુલાબ-ગુલાબો.
ચડવું-ચડ-ચડાણ, ઊતરવું-ઊતર-ઉતરાણ, માંડવું-માંડ-મંડાણ.

આમ સમાનરૂપ અને સમાનધ્વનિ શબ્દોની ટોળીઓ બંધાય છે. કોઈ વ્યક્તિએ અમુક રૂપ કદી ન સાંભળ્યું હોય છતાં બીજા તેવા સંબંધોને આધારે તે તેને તરત ઘડી કાઢે છે. દાખલા તરીકે કોઈએ 'દીધું' એવું રૂપ 'દેવું'ના ભૂતકાળ માટે યોજ્યું, તો કાં તો તેણે 'દેવું' ના ભૂતકાળ તરી કે 'દીધુ' વપરાયલો સાંભળ્યો હોય, તેનું બિંબ તેની સ્મૃતિમાં સંઘરાયું હોય અને આ પ્રસંગ આવતાં તેનો ઉપયોગ તેણે કર્યો હોય; (૨) કાં તો પહેલાં સાંભળેલું હોય છતાં તેની સ્મૃતિમાં એટલા ઝાંખા સ્વરૂપમાં રહ્યું હોય કે જો તેના મનમાં આ 'દીધું' રૂપને સરખા સ્વરૂપવાળાં બીજાં રૂપો ('લીધુ', 'પીધું', વગેરે)નો સહયોગ ન થયો હોત તો તેને આ પ્રસંગે 'દીધું' યાદ કરવામાં

કંઈ પણ સહાય ન મળી હોત અને તો તેને ભૂલી જવાથી વાપરી શક્યો ન હોત. (૩) અથવા તો વાપરનારે 'દીધું' કદી સાંભળ્યો જ ન હોય. માત્ર 'દે છે', 'દેશે', 'દેવું' વગેરે સાંભળ્યા હોય. પણ આ ઉપરાંત તેણે "લેવું–લીધું : પીવું–પીધું : કહેવું–કીધું" આ જાણીતા રૂપોની આવી વર્ગણી કરી રાખી હોવાથી, તેને આધારે તત્ક્ષણ 'દેવું'ના સંબંધે 'દીધું' ઘડી કાઢયું હોય. આમ આવી દરેક બાબતમાં સ્મૃતિ અને સર્જનલક્ષી તરંગ (fancy) નો—સ્મૃતિદ્વારા પુનઃસર્જન અને સાહચર્યદ્વારા અભિનવ ઘડતરનો—કેટકેટલો ફાળો છે તેનો નિર્ણય કરવો ઘણીવાર મુશ્કેલ હોય છે.

આમાંથી એક સત્ય એ ફલિત થાય છે કે અમુક બોલાયેલા રૂપની વાસ્તવિક સ્વરૂપઓળખ માટે "ભાષામાં તે પ્રચલિત છે?" અથવા "વ્યાકરણીઓએ તારવેલા ભાષાના નિયમોની સાથે એની સંગતિ છે ખરી?" એવો પ્રશ્ન નહીં પણ "આ હમણાં વપરાયું તે રૂપ વાપરનારની સ્મૃતિમાં પહેલેથી જ હતું કે તેણે પહેલી જ વાર ઘડી કાઢયું છે, અને જો પહેલી જ વાર ઘડી કાઢયું હોય તો કયા સાદૃશ્યે?" એવો પ્રશ્ન પુછાવો જોઇએ. કારણ, વાસ્તવિક ભાષા માત્ર બોલનાર વ્યક્તિમાં જ જીવંતરૂપે રહે છે, અને શાસ્ત્રીય અન્વેષણમાં પણ ભાષાને બોલનાર વ્યક્તિથી છૂટી પાડી શકાય નહિ. વ્યાકરણ અને કોષમાં વ્યક્ત થતી ભાષાને—એટલે કે શક્ય હોય તેવા બધા શબ્દો અને રૂપોના સમૂહને—નગદ વાસ્તવિકતા ધરાવતી માની લેવી—એ માત્ર એક ભાવાત્મક અમૂર્તતા (abstraction) છે એ વિસરી જવું—એ મોટી ભૂલ છે.[3]

રૂપતંત્રના પરિવર્તક બળ તરીકે સાદૃશ્ય

પણ આપણે વિષયાન્તર છોડી સાદૃશ્યના કાર્યક્ષેત્ર પર જ આવીએ. ભાષા સમય જતાં જે ભૂમિકાઓ બદલે છે, તેમાં ધ્વનિવ્યાપારોની સાથે સાથે સાદૃશ્યનું તત્ત્વ પણ પોતાનો પ્રભાવ પાડી રહ્યું હોય છે. રૂપતંત્ર(morphology)ની કાયાપલટ મુખ્યત્વે સાદૃશ્યને આભારી હોય છે. વૈદિક સમયની બોલીઓના સંકુલ વ્યાકરણી બંધારણની સરખામણીમાં પ્રાકૃતોનું બંધારણ ઘણું સાદું છે; પ્રાકૃતોની સાથે સરખાવતાં અર્વાચીન ઉત્તર ભારતીય ભાષાઓ વ્યાકરણદૃષ્ટિએ વધારે સરળ ગણી શકાય તેવી છે. ભાષામાં વિપુલપણે વપરાતાં અંગોનાં રૂપોના સાદૃશ્યે તેથી જુદા પ્રકારનાં અંગોનાં રૂપ ઘડાય છે, ને તેથી અપવાદો, વિવિધતા અને વિશિષ્ટતા દૂર થઈ એકરૂપતા પ્રવર્તે છે. સંસ્કૃતના મૂળમાં રહેલા બોલચાલના ભાષાસ્વરૂપમાં નામિક અકારાન્ત અંગોના બાહુલ્યને લીધે ઇતરસ્વરાન્ત અને વ્યંજનાન્ત અંગોનાં વધુ વપરાશમાં આવતાં રૂપો પણ અકારાન્ત અંગોના રૂપ પ્રમાણે થવા લાગ્યા. વિકરણ અ અને અય્ લેતા આખ્યાતોની મોટી સંખ્યાને લીધે, ગણભેદ લુપ્ત થવા લાગ્યા. કાળ અને અર્થ ઉપર પણ સાદૃશ્યનો પ્રભાવ પડ્યો અને રૂપતંત્રમાં પૃથક્ક્રિયાનું (analytical) તત્ત્વ વધ્યે જતાં ઉત્તરોત્તર સરળતા આવતી ગઈ: પ્રાચીન ભારતીય–આર્યમાંથી મધ્ય ભારતીય–આર્યનું અને તેમાંથી અર્વાચીન ભારતીય–આર્યનું રૂપતંત્ર આ રીતે વિકસ્યું. દરેક ભાષાના ઇતિહાસમાં સાદૃશ્યનો આવો પ્રભાવ નજરે પડે છે.

---

૩ યેસ્પર્સન: Language, પા. ૯૪–૯૫.

પ્રાસ અને અનુપ્રાસ

આપણે ઉપર જોયું તેમ એક શબ્દ બીજા અનેક શબ્દ સાથે વિવિધ સંબંધથી સંકળાએલો હોય છે. આથી એક શબ્દનો પ્રયોગ થતો હોય ત્યારે તેના કેટલાક સાથીઓ તેની પાછળ જ સ્મૃતિપટ પર તરી આવે છે. પ્રાસ અને અનુપ્રાસ પાછળ આવું ધ્વનિસાદૃશ્ય કામ કરી રહ્યું છે. આવું સાદૃશ્ય સ્મૃતિને જાળવી રાખવું બહુ સરળ પડે છે. એટલે તેના પ્રયોગનાં અનેક ઉદાહરણો આપણને મળી આવે. શાક્તોના પંચ મકાર (માંસ, મત્સ્ય, મુદ્રા, મદિરા, મૈથુન) લાલ, બાલ ને પાલ, સુરતના ત્રણ નન્ના, વગેરેમાં આ જોઈ શકાય.

કહેવતો

કંઠસ્થ રાખવાની હોવાને લીધે કહેવતોમાં તો ધ્વનિસાદૃશ્યનું તત્ત્વ ખૂબ ઉપયોગમાં લેવાયું છે. સામાન્ય લોકમાનસને પ્રાસ–અનુપ્રાસનો સારો શોખ હોય છે, એ પણ આમાં વધારેના કારણ તરીકે ગણાવી શકાય. "શિરા માટે શ્રાવક થવું" એ કહેવતમાં શ્રાવકોમાં સામાન્ય વપરાશનાં અને તેથી તરત યાદ આવે તેવાં 'શિરા' ઉપરાંત બીજાં બેચાર મિષ્ટાન્નો હોય છે, છતાં શિરો જ કહેવત માટે યોગ્ય ગણાયાનું કારણ એટલું જ કે 'શ્રાવક'ના શકાર સાથે અનુપ્રાસ સાધે તેવો 'શિરો'જ છે. 'છોકરાંની ટાઢ બકરાં ચરી જાય' એમાં ઈતર પશુઓ કરતાં 'બકરાં'ની પસંદગી થઈ તેની પાછળ બકરાઓમાં ટાઢ ચરી જવાનો કોઈ ખાસ ગુણ છે એવું નથી, પણ બીજા કોઈ સામાન્યરીતે જાણીતા પશુના નામ કરતાં "બકરાં"ના ધ્વનિ 'છોકરાં' એ ધ્વનિસમૂહ સાથે બરાબર પ્રાસ મેળવવાનું કાર્ય સાધી શકે છે, એજ કારણ છે. "ભેંસ આગળ ભાગવત"માં બીજા પ્રાણીઓ અને પુરાણો કરતાં "ભેંસ" અને "ભાગવત" કહેવતકારની દૃષ્ટિએ એટલા માટે ચઢિયાતાં છે કે તેઓ 'ભ–ભ'નો પ્રાસ આપી શકે છે. આવા અનેક દાખલા ટાંકી શકાય. એ દરેકમાં શબ્દપસંદગી પાછળનાં નિર્ણાયક ધોરણમાં ધ્વનિસાદૃશ્ય એ પ્રાથમિક અગત્યનું ધોરણ છે.

શબ્દશ્લેષ

પ્રાસ–અનુપ્રાસ ઉપરાંત શ્લેષ જેવા શબ્દાલંકારો પણ સાદૃશ્યને લીધે જ સંભવિત બને છે. પ્રસ્તુત વિષયને વ્યક્ત કરવાને યોજાયેલો શબ્દ જો ધ્વનિ, રૂપ કે અર્થના સાદૃશ્ય કે સાહચર્યથી બીજા કોઈ શબ્દ કે અર્થ સાથે સંકળાએલો ન હોય તો પ્રસ્તુત ઉપરાંત અપ્રસ્તુતનું સૂચન થવાનો સંભવ જ ન રહે અને પરિણામે ચમત્કૃતિ પણ ન ઉપજે. "શકુન્તલાવી"માં 'શકુન્તલા'ના કેટલાક ધ્વનિ સાથે 'શકુન્ત' એ ધ્વનિસમૂહનું સાદૃશ્ય હોવાથી જ 'શકુન્તલાવી' ને 'શકુન્તલા આવી' આપણને સ્ફુરે. "ફરીયાદ" સાથે 'ફરી' અને 'યાદ' આપણા શબ્દબિંબોના ભંડારમાં વર્ગબંધુઓ તરીકે સંઘરાએલા હોય તોજ એ અર્થની શક્યતા.

લૌકિક વ્યુત્પત્તિ

અને અહીં આપણે લૌકિક વ્યુત્પત્તિ(folk-etymology)ના પ્રદેશ પાસે આવી પહોંચીએ છીએ. જેમ શ્લેષના એક પ્રકાર સભંગ શ્લેષ ('શકુન્તલા'વી')માં

એક જ ધ્વનિસમુદાયના જુદી જુદી બે રીતે કરાતા વિશ્લેષને અવલંબી જુદા જુદા બે અર્થ સુચવાય છે, તેમ લૌકિક વ્યુત્પત્તિઓમાં અમુક શબ્દ કે સમાસના ખરા ઘડતરના અજ્ઞાનને લીધે ભળતી જ વ્યુત્પત્તિ આપવામાં આવે છે. અમુક શબ્દ, તેના વાસ્તવિક ઘટકોને બદલે સાદૃશ્યને આધારે કોઈ જુદા જ ઘટકોનો બનેલો લાગે છે, અને તેથી એ નવા કલ્પેલા ઘટકોના અર્થમાંથી મૂળ શબ્દનો અર્થ તાણીતૂશીને કાઢવામાં આવે છે. દરેક સમયની અને દરેક દેશની ભાષામાં આનાં ઉદાહરણો મળી આવશે. વૈદિક યુગની ભાષામાં આવાં પુષ્કળ ઉદાહરણો મળે છે. અથર્વવેદની યાતુ-વિદ્યા અને અભિચારને લગતી ક્રિયા માટે વપરાતા મંત્રોના શ્લિષ્ટ શબ્દોમાં લૌકિક વ્યુત્પત્તિની સ્પષ્ટ ગંધ આવે છે.[4] આ ઉપરાંત બ્રાહ્મણગ્રંથો તો આ પ્રકારના "વ્યુત્પત્તિવેડા"થી ઉભરાય છે. અમુક યજ્ઞક્રિયામાં જે મંત્ર યોજાતો હોય તે મંત્રના પદોમાંથી મારીમચડીને પ્રસ્તુત પ્રસંગને અનુરૂપ અર્થ કાઢવામાં આવે છે: 'આહુતિઓ' એ ખરેખર તો 'આહુતિ'ઓ છે કારણ કે એમના વડે યજમાન દેવોનું 'આહ્વાન' કરે છે. (ઐતરેય બ્રાહ્મણ, ૧૨). કારણ કે હોતા 'આનું આવાહન કર, પેલાનું આવાહન કર' એમ યથાસ્થાન દેવતાઓનું 'આવાહન' કરાવે છે, તેથી તે 'હોતા' છે." (ઐત૦ બ્રા૦, ૧૨) "કારણ કે (વેચાતા લીધેલા સોમનાં ચાલ્યાં ગયેલાં બળ અને વીર્ય) આઠ (अष्ट) ઋચાનું પઠણ કરવાથી (પાછા) મેળવ્યા (अश्नुवत) તેથી अष्ट એ अष्ट કહેવાય છે." (ઐત૦ બ્રા૦, ૩૧). આખા બ્રાહ્મણ સાહિત્યમાં આવી વ્યુત્પત્તિઓ વેરાયલી છે. યાસ્કનું 'निरुक्त' પણ આવી લૌકિક વ્યુત્પત્તિઓથી ભરપૂર છે. પછીના સાહિત્યમાં પણ લૌકિક વ્યુત્પત્તિઓનો તોટો નથી. नार એટલે પાણી, તે જેનું अयन (આશ્રયસ્થાન) છે તે नारायण (મનુસ્મૃતિ, ૧૧૦). "'જેનું માંસ હું અહીં ખાઉં છું, મને (मां) તે (स) પરલોકમાં ખાશે' આજ માંસનું માંસ-પણું છે." (મનુ૦ ૫।૫૫) કુમારસંભવમાં કાલિદાસ उ (પાદપૂરક) અને मा (નિષેધાર્થ) [='તપ કર નહિ'] એ બંનેના સંયોગ વડે હિમાલયની પુત્રી उमानुं નામ સાધે છે, તેમાં સોંઘી વ્યુત્પત્તિનો જ આશરો લેવાયો છે. સંસ્કૃત કાવ્યો અને નાટકો પરની ટીકાઓમાં આવી સંખ્યાબંધ વ્યુત્પત્તિઓ મળી આવે છે. પ્રાકૃત 'કુમારપાલ-પ્રતિબોધ' (પા. ૨૧૯) સંસ્કૃત ब्राह्मणना પ્રાકૃત સ્વરૂપ माहण ની વ્યુત્પત્તિ આપે છે કે मा એટલે 'નહિ' हण એટલે 'હિંસા કર'—તેથી હિંસા ન કરે તે ખરો माहण (બ્રાહ્મણ) છે. અને આ વ્યુત્પત્તિ મૂળના વિમલસૂરિના पउमचरियમાંથી છે. ગુજ-રાતીમાં પણ લૌકિક વ્યુત્પત્તિઓ શોધવા જવું પડે તેવું નથી. 'કલા'ને 'પી' ગયો તે 'કલાપી', 'ઉરે' જે 'વસી' તે 'ઉર્વશી', 'વાણિયા' એટલે 'વહાણિઆ' કારણ કે તે વહાણ ઉપર બેસીને આવ્યા. તરમાં તર તે 'ભણતર'. વૈષ્ણવોમાં આ વ્યુત્પત્તિ જાણીતી છે.: 'કૃષ્ણાવળી' (=ડુંગળી) એટલે 'કૃષ્ણ' પાસેથી પાછી 'વળી'.[5]

---

૪ જુઓ બ્લુમફીલ્ડ (Bloomfield): Hymns of the Atharvaveda, સૂક્ત ૪।૩૬।૭, ૫।૧૩।૫, ૫।૧૮।૮, ૬।૮૫, ૭।૧૨।૩, વગેરે પરનું ટિપ્પણ.

૫ કોઈ વેળા આમાં બુદ્ધિચાતુર્ય દેખાડવાનો પ્રયાસ પણ જોઈ શકાય. મેં ગીતાના એક શ્રદ્ધાળુ વાચક પાસેથી જાણેલું કે 'ગીતા' એટલે 'તાગી' 'તાગી' બરાબર 'ત્યાગી', એટલે કે ગીતા ત્યાગનો ઉપદેશ કરે છે, વાચન કરનારને ત્યાગી બનાવે છે!

લોકકથા અને દેવકથા

આ ઉદાહરણોને ઝીણવટથી તપાસતાં એક વસ્તુ છૂપી નહિ રહે. આવી લૌકિક વ્યુત્પત્તિમાંથી કોઈ કોઈ વાર લોકકથાઓ કે દેવકથાઓ પણ ઘડી કાઢવામાં આવે છે. બ્રાહ્મણ ગ્રન્થોમાંથી આપેલા ઉદાહરણોમાં આ વધારે સ્પષ્ટપણે દેખાશે. 'શચીપતિ' (='બળનો સ્વામી' ઈન્દ્ર) એ શબ્દમાંથી 'શચી' (ઇન્દ્રાણી) આ રીતે જ ઘડાણી[૬]. સંસ્કૃત કોશોમાં कुशीलव શબ્દ 'નટ' એ અર્થમાં આપ્યો છે. શબ્દની વ્યુત્પત્તિ ચર્ચાસ્પદ છે. આ શબ્દનો રામાયણમાં આવતા કુશ અને લવ સાથે બેશક સંબંધ છે. પણ કોઈ એમ માને છે કે કુશ અને લવ રામાયણમાં આવા પ્રકારના વીરચરિત કાવ્યના પહેલા પાઠક તરીકે રજૂ થયા છે, તેથી તેમને આધારે થોડાઘણા અભિનય સહિત આખ્યાન કરનાર દરેકને માટે અને છેવટે નટ માટે, 'કુશ' અને 'લવ' જોડાઈ બનેલો 'કુશીલવ' શબ્દ પ્રચલિત થયો. પણ મને બીજો મત[૭] ખરો લાગે છે. માણભટ કે ચારણને કંઈક મળતા સૂત અને માગધોમાંથી કોઈ વિશિષ્ટ વર્ગને માટે મૂળ कुशीलव શબ્દ પ્રચલિત હશે. પછીથી રામાયણ જ્યારે આદિકાવ્ય ગણાવા લાગ્યું હોય ત્યારે કે તે પહેલાં આખ્યાનરૂપ કાવ્યના સૌથી પહેલા પાઠક તરીકે कुशीलव માંથી कुश અને लव ઉપજાવી કાઢવામાં આવ્યા હોય. રામાયણના 'ઉત્તરકાંડ'ની પ્રક્ષિપ્તતા અને કુશ અને લવના કૃત્રિમરીતે થએલા જન્મની કથા આ અનુમાનને ટેકો આપે છે. તેવી જ રીતે, અથર્વવેદનાં એક સૂક્ત(૧–૧૧–૩)માં પ્રસવના અધિષ્ઠાતા તરી કે सूषन् (સર૦ √ सू० 'જન્મ આપવો') દેવનો ઉલ્લેખ છે. ખરી રીતે सूषन् જેવો કોઈ શબ્દ જ નથી; પણ પુષ્ટિના દેવ पूषन् ના ધ્વનિસાદૃશ્યથી એ સૂક્તકારે ક્ષણિક તરંગમાં सूषन् દેવ ઘડી કાઢેલ છે.

કેટલીક લોકકથા કે દેવકથાના સર્જનમાં આદિ ઉદ્‌ભવસ્થાન તરીકે આવી છોકરમતિયા કે અસમંજસ લાગતી લૌકિક વ્યુત્પત્તિઓ હોય છે એ બીના ઘણી અચરજ પમાડે તેવી લાગે પણ તેનાં કારણો તપાસતાં તેમાં નવાઈનું તત્ત્વ જરા પણ નહિ દેખાય. સામાન્ય જનતાનું માનસ હમેશાં સરળતાપ્રેમી અને ધોકાપંથી વૃત્તિવાળું હોય છે. તેમાં તેને કંઈક કંઈક સાદૃશ્યને આધારે શબ્દબિંબોની ટોળાબંધી કરી દેવાની ખાસિયતનો આધાર મળે છે. એટલે જ્યારે તે શબ્દો પર વ્યાપૃત થાય છે ત્યારે તે લાકડે માંકડું વળગાડવા જેવું જ કરે છે. દેખાતી રીતે મોંમાથા વિનાના લાગતા ગમે તેવા એ શબ્દોને તોડી ફોડી કંઈક નવું ઉપજાવે છે કે એ અર્થોનો ખીચડો કરે છે. અનુકૂળ સંજોગો મળતાં આવા શબ્દાંશો કે સંકરશબ્દો ભાષામાં સ્થાન પામે છે. આમાં કથાસર્જક કલ્પનાનું બળ કામ કરી રહ્યું હોય તો માત્ર વ્યુત્પત્તિ આગળ ન અટકતાં લોકમાનસ કથાસર્જન સુધી પણ પહોંચી જાય છે.

ધ્વનિઓની ગરબડ

આથી શબ્દના ધ્વનિદેહમાં થતી ગરબડ કે તેના અર્થમાં ઉભા થતા ગૂંચવાડા પર પણ પ્રકાશ પડે છે. પરભાષાનો વિશિષ્ટ ધ્વનિરચનાવાળો શબ્દ કાને પડતાં

---

૬ આ માટે જુઓ "દેવકથાસૃષ્ટિ: તેનાં સર્જક બળો, સર્જન અને વિકાસ", પ્રસ્થાન: આષાઢ, ૧૯૯૬.

૭ સરખાવો મેકડોનલ (Macdonell): Sanskrit Dictionary, कुशीलव શબ્દ નીચે.

આપણે તેને મળતા સ્વભાષાના કોઈ શબ્દ સાથે તેને જોડવા પ્રેરાઇએ છીએ. મુંબઈના ઉપનગર 'વાંદરા'નું નામકરણ મૂળમાં કોઈ શ્રી ઐન્દ્રે પરથી થયું હોય એ સંભવિત છે, પણ લોક માનસે તેનો જાણીતા અભિધાન (vocable) 'વાંદરા' સાથે મેળ બેસાડી દીધો છે. 'સાન્તાક્રુઝ'ને બદલે 'શાન્તાપુરુષ' બોલાતું મારા સાંભળવામાં આવ્યું છે. આમાં પરદેશી અર્થવિહીન લાગતા ધ્વનિસમુદાયને સ્થાને સાર્થ (સાર્થ એ રીતે કે 'શાન્તા' શબ્દ ગુજરાતીમાં છે અને 'પુરુષ' પણ ગુજરાતીમાં છે) શબ્દોનો સહઉપન્યાસ કરવામાં આવ્યો છે.

સાદૃશ્યમૂલક ધ્વનિવિકારની લાક્ષણિકતા

એ લક્ષમાં રહે કે આ ઉદાહરણો ધ્વનિસાદૃશ્ય (phonetic analogy)નાં છે. જ્યારે આગળ ટાંકેલાં ઘણાંખરાં રૂપસાદૃશ્ય (formal analogy)નાં હતાં. રૂપસાદશ્યને લીધે અમુક શબ્દ કોઈ વિશિષ્ટ રૂપ માટે પહેલાં અમુક પ્રત્યયો લેતો હોય પણ પછીથી તેવા જ રૂપ માટે તેનાથી જુદા પ્રકારના પ્રત્યયો લેતા બીજા શબ્દ-સમૂહની અસર નીચે પોતાના પ્રત્યયોને બદલે તે શબ્દસમૂહને માટે વપરાતા પ્રત્યયો લેવા માંડે છે. જ્યારે ધ્વનિસાદૃશ્યને લીધે એક શબ્દના ધ્વનિઓમાંથી અમુકને સ્થાને, બીજા શબ્દોના ધ્વનિઓની અસર તળે બીજા જ ધ્વનિ ઘુસી જાય છે.

અને શબ્દના ધ્વનિદેહમાં પલટો થવાનાં કારણોમાં ધ્વનિનિયમો અને સાદૃશ્ય બંને વચ્ચે જે સ્પષ્ટ ભેદ છે તે આજ છે. ધ્વનિબળોની અસર નીચે થતા ફેરફારોમાં અમુક ધ્વનિની ઉત્તરોત્તર શ્રેણીદ્વારા કાયાપલટ થાય છે—ધ્વનિનો ક્રમબદ્ધ વિકાસ થાય છે; જ્યારે સાદૃશ્યમૂલક ધ્વનિપરિવર્તનમાં અમુક ધ્વનિનું સ્થાન બીજો જુદા પ્રકારનો ધ્વનિ સીધેસીધું જ લઈ લે છે; તેમાં નિયમિત વિકાસ નથી હોતો. તેમાં તો એકને સ્થાને બીજાનો આદેશ (substitution) જ થાય છે. દાખલો લઇએ તો **પ્રાચીન ભારતીય-આર્ય** આંતરસ્વરીય અઘોષ સ્પર્શો **મધ્ય ભારતીય-આર્ય**માં લુપ્ત થાય છે, તે અઘોષસ્પર્શ > ઘોષ સ્પર્શ > ઘર્ષ (fricative) > લોપ—એ ક્રમે જ; પણ 'સાન્તાક્રુઝ' > 'શાન્તાપુરુષ' એમાં જે '૦ક્રુ૦' ને સ્થાને '૦પુ૦' આવે છે, તેમાં કોઈ અવાન્તર ધ્વનિભૂમિકાઓએ ભાગ ભજવ્યો નથી; '૦ક્રુ૦' ને સ્થાને સીધેસીધો જ '૦પુ૦' મુકાયો છે. આથી એ પણ સ્પષ્ટ થશે કે ધ્વનિબળોની અસર નીચે થતા ફેરફારો, તે ધ્વનિ ધરાવતા ભાષાના બધાય શબ્દોને લાગુ પડે છે—એટલે કે આખુંય ધ્વનિતંત્ર તેમનું આલંબન હોય છે; જ્યારે સાદૃશ્યમૂલક ફેરફારો વ્યક્તિગત—અમુક એક શબ્દ પૂરતા જ મર્યાદિત હોય છે.

અર્થસંકર

અર્થગૂંચવાડાનાં મૂળ પણ આમાં જ રહેલાં છે. સાદૃશ્યને આધારે અમુક શબ્દમાં મૂળથી ઘટક તરીકે ન હોય તેવા ધ્વનિસમૂહને ઘટક તરીકે કલ્પવામાં આવે ત્યારે સ્વભાવિક રીતે જ નવા કલ્પેલા ઘટકોનાં મૂળ અર્થ અને તે શબ્દના મૂળ અર્થ વચ્ચે મેળ બેસારવાના પ્રયત્નમાં એક અથવા તો બન્ને અર્થવિકાર પામે, તો કોઈ વાર નવા શબ્દો જ ઘડી કાઢવામાં આવે. વિધવામાં વિયુક્તિવાચક વિ૰ આદિ ઘટક તરીકે

રહેલો છે એવો ભ્રમ પ્રચલિત થતાં એ શબ્દ એકાત્મક હોવા છતાં વિ+ધવા એ રીતે એનો વિભાગ કરવામાં આવ્યો અને મૂળ શબ્દના અર્થને અવલંબીને ધવ શબ્દ 'પતિ' એ અર્થમાં નવો ઘડી કાઢવામાં આવ્યો. આની અસર નીચે 'મધુનો વંશજ' તે 'માધવ' (=કૃષ્ણ), આ ને બદલે माया: धव: "લક્ષ્મીનો પતિ" (='વિષ્ણુ' એટલે પછી 'કૃષ્ણ') તે 'માધવ' એવો વિગ્રહ કરવામાં આવ્યો. અસુર √अस्० અને ०उर०ने બદલે નઞર્થ અ૦ અને સુરનો બનેલો લાગે એટલે સુર૦ જેવો નવો શબ્દ જ ઘડાય. वट्ट० 'વડલો', वाटिका० 'વાડ' 'વાડી', વગેરેના મૂળમાં રહેલું √वृ० 'ઘેરવું'નું કોઈ રૂપ वृत ભૂલાઈ જતાં √वट्० 'ઘેરવું' એવો નવો ધાતુ જ કલ્પાય. વળી બોલાતી ભાષામાં સળંગ વાક્યો જ બોલાતાં હોવાથી, ખોટા શબ્દવિભાગને લીધે અર્થગૂંચવાડો ઘણી વાર ઊભો થતો હોય છે; દેશી રાજ્યના એક રાજવી 'જર્મન કાઉન્ટ'ને બદલે 'જર્મન કા ઊંટ' સમજ્યાથી થએલી ધમાલ અહીં ઉદાહરી શકાય.

સાદૃશ્યનો કાર્યપ્રદેશ

આ પ્રમાણે શબ્દોનો ધ્વનિદેહ અને તેમનું અર્થવર્તુળ, ભાષાનું વ્યાકરણી બંધારણ કે રૂપતંત્ર, પ્રાસ, અનુપ્રાસ ને શ્લેષ જેવા શબ્દાલંકારો, કહેવતો, લૌકિક વ્યુત્પત્તિ, લોકકથા ને દેવકથા—આટલા વિશાળ ક્ષેત્ર પર સાદૃશ્યનું તત્ત્વ પોતાની કારીગરી ચલવતું હોય છે, અને એ હકીકત ભાષાશાસ્ત્રમાં તેનું સ્થાન પ્રથમ કોટીની અગત્યનાં તત્ત્વોમાં છે એ સ્પષ્ટપણે દેખાડી આપે છે.

*

धर्माभ्युदय महाकाव्य अने महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल

*

लेॱ — श्रीयुत कनैयालाल भाॱ दवे

अन्नदानैः पयःपानैर्धर्मस्थानैश्च भूतलम् ।
यशसा वस्तुपालेन रुद्धमाकाशमण्डलम् ॥ १ ॥

उपदेशतरङ्गिणी

ઇતિહાસ શબ્દનો વાચ્યાર્થ પ્રાચીન ઇતિવૃત્ત એવો થાય છે. પરંતુ વ્યાપક દૃષ્ટિએ તપાસતાં તે શબ્દના ભિન્ન ભિન્ન પર્યાયો માલુમ પડે છે. તેમાં એકલાં ચરિત્રો જ ગુંથવામાં આવે છે એવી રૂઢ ભાવના આજે જનસમાજમાં પ્રચલિત છે પણ તેના કરતાં ઇતિહાસ બીજી કેટલીયે વિશિષ્ટ બાબતો જેવી કે ધર્મ, ન્યાય, દાન, ઔદાર્ય, રાજધર્મ, સચ્ચરિત્ર, શીલ, તપ, વિવેક, દાક્ષિણ્ય વગેરે લોકોત્તર ધર્મોનું શિક્ષણ આપે છે. જે ઇતિહાસ જનસમાજને કર્તવ્યના પાઠ ન શીખવે તેને સાચો ઇતિહાસ કહી શકાય નહિ. તેવા નિઃસત્ત્વ ઇતિવૃત્તોની ગણના ઇતિહાસ ગ્રન્થોમાં કરવાથી ઉલટું ઇતિહાસનું ગૌરવ ઘટે છે. ગુજરાતનો મધ્યકાલીન ઇતિહાસ પહેલ પાડેલા કાચ જેવો છે. તેના દરેક પાસાનું નિરીક્ષણ કરતાં તેમાં જુદા જુદા રંગો ભાસે છે. સાદા શબ્દોમાં કહીએ તો તે એક જ્ઞાનકોષ છે. ઇતિહાસનાં કેટલાંક વિશિષ્ટ લક્ષણો તેમાં જોવામાં આવે છે. રાજા અને પ્રજાના ગૌરવાન્વિત સંસ્મરણોથી તે સભર છે. તેમાંથી એક નરશાર્દૂલના ચરિત્રની યશગાથાનું વર્ણન કરવાનો અહીં પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો છે.

તે ચરિત્ર નાયક કોણ? જેણે સમસ્ત ગુજરાતને દેવાલય મંડિત કરી હતી. પોતાનું સમસ્ત જીવન જે મહાનુભાવે લોકકલ્યાણ માટે જ નિયોજ્યું હતું. એ દાનેશ્વરીમાં કર્ણ અને બલિના અવતારરૂપ હતો. જ્ઞાતિએ વૈશ્ય હોવા છતાં યુદ્ધ કલામાં તે સમરકેસરી ગણાતો. રાજખટપટમાં ચાણક્ય સમાન મુત્સદ્દી હોવા છતાં વિદ્વત્તામાં તેણે મહાકવિની ઉપાધિ મેળવી હતી. તે હતો પ્રાગ્વાટકુલભૂષણ ધર્મધુરંધર સચિવેન્દ્ર વસ્તુપાલ — જેણે એકલા જૈન ધર્મના જ નહિ પણ શૈવ, વૈષ્ણવ, શાક્ત અને મુસ્લીમ ધર્મોનાં પણ છૂટા હાથે ધર્મકાર્યો કર્યાં હતાં. તેનું ચરિત્ર એક જ્ઞાનસંહિતા જેવું છે જેનું અનુશીલન અને શ્રવણ શ્રોતા, વક્તા ઉભયનું કલ્યાણ સાધે છે એટલું જ નહિ પણ માનવજન્મના સાફલ્યનું સાધન કરવાની પ્રેરણા કરી સાચો રાહ સૂચવે છે. તેના સારાય જીવનમાં ધર્મ, દાન, શીલ, તપ, વિવેક, સચ્ચરિત્ર, વિનય વગેરે ઉત્તમ ગુણોની સુવાસ પ્રસરી રહી છે. આવા લોકોત્તર ગુણોને લઈ તેઓ જૈન અને જૈનેતર સમાજમાં વધુ સન્માનનીય બન્યા હતા. તેમણે રાજા અને પ્રજાની અનન્ય પ્રીતિ મેળવી પોતાનું જીવન ધન્ય કર્યું છે એટલું જ નહિ પણ તેમનાં પ્રાતઃસ્મરણીય નામોએ આજે જનસમાજમાં અમરતા પ્રાપ્ત કરી છે.

वस्तुपालविषयक ऐतिहासिक साहित्य

આ મહાનુભાવનું ચરિત્ર અને તેના સુકૃત કાર્યો નિરૂપિત કરતા કેટલાય ગ્રન્થો આજે ઉપલબ્ધ થાય છે. તેમાં ઘણાખરા સંસ્કૃતમાં અને બાકીના બીજા ગૂર્જર ભાષામાં રચાયા છે. આ ચરિત્રગ્રન્થો પૈકી કેટલાક તેમની હયાતીમાંજ રચાયા છે જે તેમના આશ્રિત કવિવરો દ્વારા તેમણે કરેલા સત્કાર્યોની પ્રશંસા કરવા લખાયા હતા એમ જણાય છે.

પ્રખ્યાત કવિ સોમેશ્વરે कीर्तिकौमुदी ગ્રન્થ તેમના જીવન અને કવનનું સ્તવન કરવા રચ્યો છે. આ સિવાય सुरथोत्सव અને उल्लाघराघवना છેલ્લા સર્ગોમાં પોતાની પ્રશસ્તિ સાથે વસ્તુપાળના જીવનને લગતી ટૂંક હકીકત આપી છે. તેણે બંધાવેલા ગિરનાર અને આબૂ ઉપરનાં મંદિરોની प्रशस्ति રચનાર આજ કવિ હતો. તેમાં પણ વસ્તુપાલના ચરિત્ર અને સત્કર્મો માટે ટૂંક નોંધ કરી છે. બીજા એક અરિસિંહ નામક કવિએ વસ્તુપાળના જીવન સાથે તેણે કરેલાં સુકૃત કાર્યોનું વિવેચન કરવા सुकृतसंकीर्तन નામક ગ્રન્થ રચ્યો છે જેમાંથી ચાવડા અને ચૌલુક્યોનો પણ કેટલીક ઇતિહાસ મળી આવે છે. જયસિંહ સૂરિએ हम्मीरमदमर्दन નાટક અને वस्तुपाल प्रशस्ति કાવ્યો રચ્યાં છે. તેમાં વસ્તુપાલની યુદ્ધ કુશળતા અને હમ્મીર સાથે થયેલ યુદ્ધ પ્રસંગને નાટકના રૂપમાં યોજ્યા છે. આ બધામાં નવીન ભાત પાડતાં તેમના ગુરૂ ઉદયપ્રભસૂરિ વિરચિત धर्माभ्युदय અને सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी કાવ્યો છે. એમાંના धर्माभ्युदय કાવ્યનું વિસ્તૃત વિવેચન પ્રસ્તુત લેખમાં કરવાનું હોવાથી તેનો પરિચય આગળ ઉપર વિસ્તારથી આપવામાં આવ્યો છે જ. कीर्तिकल्लोलिनी ગ્રન્થ એક સર્વોત્કૃષ્ટ કાવ્ય છે. તેની પ્રાસાદિકતા, આલંકારિકતા અને પદ્યરચના ઉત્કૃષ્ટ પ્રકારના જોવામાં આવે છે. सुकृतसंकीर्तनની માફક તેની શરૂઆત વનરાજથી કરવામાં આવી છે. તેમાં ચાવડા અને ચૌલુક્યોનો ક્રમબદ્ધ ઇતિહાસ આપ્યા પછી વસ્તુપાલવંશવર્ણન, વસ્તુપાળ ચરિત્ર અને તેનાં ધર્મકાર્યોની ટૂંક નોંધ આલંકારિક ભાષામાં રજુ કરી છે. આ બધા કાવ્યોની રચના વસ્તુપાળના સમકાલીન થએલી છે એટલે તેમની ઐતિહાસિકતાના વિષયમાં શંકાને અવકાશ નથી. કદાચ પ્રશંસાત્મક વર્ણનોમાં અલંકારયુક્ત હકીકતો મૂકી હોય તે સ્વાભાવિક છે.

બાલચંદ્ર સૂરિએ वसंतविलास કાવ્ય રચ્યું છે જેમાં વસ્તુપાળનું જીવનવૃત્ત અને તેના સત્કાર્યોનું વિસ્તૃત વર્ણન સંસ્કારી ભાષામાં આપ્યું છે. વસ્તુપાળના જીવન બાદ તરત જ રચાએલા ગ્રન્થોમાં આ મુખ્ય છે. કારણ કે તે વસ્તુપાળના મરણબાદ થોડાંક જ વર્ષોમાં રચાયો છે. આ સિવાય મેરૂતુંગકૃત प्रबंधचिंतामणि, જિનપ્રભ રચિત तीर्थकल्प, રાજશેખરકૃત चतुर्विंशति प्रबंधમાં પણ વસ્તુપાલના જીવનને સ્પર્શ કરતી કેટલીક હકીકત નોંધાઈ છે. છેલ્લામાં છેલ્લું વ્યવસ્થિતરીતે રચાયેલું જિનહર્ષકૃત वस्तुपाल चरित्र છે જેમાં કેટલીક અનન્ય હકીકતો સચવાઈ છે. તે મોટે ભાગે कीर्तिकौमुदी અને चतुर्विंशति प्रबंधના આધાર ઉપર રચવામાં આવ્યું છે.

ગૂર્જર ભાષામાં હીરાનંદ સૂરિ, લક્ષ્મીસાગર સૂરિ, પાર્શ્વચંદ્ર અને સમયસુંદર વગેરેએ वस्तुपाल रासाઓ રચ્યા છે જે લગભગ સંસ્કૃત કાવ્ય ગ્રંથોને અનુરૂપ છે. વર્તમાન-

યુગમાં કેટલાક વિદ્વાનોએ તેમના ચરિત્રને ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ અવલોક્યું છે. સ્વ. ચીમનલાલ ડાહ્યાભાઈ દલાલે સુકૃતસંકીર્તન, વસંત વિલાસ, હમ્મીરમદમર્દન અને નરનારાયણાનંદની પ્રસ્તાવનામાં તત્સંબંધી વિદ્વત્તાપૂર્ણ સંશોધનો કર્યાં છે. આ સિવાય-સ્વ. વલ્લભજી આચાર્યે કીર્તિકૌમુદીના ગુજરાતી ભાષાંતરની પ્રસ્તાવનામાં, શ્રી. ઝવેરી જીવણચંદ સાકરચંદે જૈનપત્રના અંકમાં અને શ્રી નરહરિભાઈ પરિખે મધપૂડામાં વસ્તુપાળના જીવન સંબંધી લેખો લખ્યા છે. નાગરી પ્રચારિણી પત્રિકા ભા. ૪ના અંક પહેલામાં શ્રી. શિવરામ શર્માએ "સોમેશ્વરદેવ ઔર કીર્તિકૌમુદી" નામક વિવેચન પૂર્ણ નિબંધ લખ્યો છે. આ બધાનો સમન્વય સાધી શ્રી મોહનલાલ દલીચંદ દેશાઈએ જૈન સાહિત્યના સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસમાં વસ્તુપાલ ચરિત્ર અને તેના સાહિત્યની સુંદર સમાલોચના કરી છે. આ બધા ગ્રંથોની હકીકત લગભગ એક બીજાને મળતી આવે છે. કેટલાકમાં તેનાં સુકૃત કાર્યો અને વર્ણનોની વધઘટ જોવામાં આવે છે. ઉપર્યુક્ત ગ્રંથો પૈકી ઘણાખરા અલ્કે ધર્માભ્યુદય કાવ્ય સિવાયના બધા ગ્રન્થો પ્રકાશિત થયા છે. હવે આ ઐતિહાસિક અને ધાર્મિક દૃષ્ટિબિંદુ રજુ કરતો ધર્માભ્યુદય ગ્રંથ પરમપૂજ્ય મુનિવર શ્રી પ્રવર્તક કાંતિવિજયજીના સુશિષ્ય–પ્રશિષ્ય મુનિ શ્રી ચતુરવિજયજી અને મુનિ શ્રી પુણ્યવિજયજી જેવા વિદ્વાન્ સાધુ પુરૂષો દ્વારા સંપાદિત થઈ सिंघीजैनग्रन्थमालाના એક મૂલ્યવાન મણિ તરીકે પ્રકાશમાં મૂકાય છે જે અભિનંદનાર્હ છે. એમાંથી વસ્તુપાળના જીવન ઉપરાંત કેટલીક અનન્ય હકીકતો પણ જાણવા જેવી મળી શકે છે. વસ્તુપાળનાં અનેક સત્કાર્યોમાં શત્રુંજય અને રૈવતકની સંઘયાત્રા એ મહત્ત્વનું ધર્મકાર્ય હતું. આ યાત્રાની કેટલીક વિશિષ્ટ હકીકતો ધર્માભ્યુદય પૂરી પાડે છે.

धर्माभ्युदय યાને संघपतिचरित्र महाकाव्य

આ મહાકાવ્ય તેના અભિધાન અનુસાર સંઘાધિપતિઓનાં કર્તવ્યને લગતાં ચરિત્રો રજુ કરે છે જેથી સમાજના માનસ ઉપર ધર્માભ્યુદયની છાપ પડે છે. તેની બીજી વિશિષ્ટતા તેમાંથી વસ્તુપાલ ચરિત્રની સહેજ ઝાંખી થવા ઉપરાંત સંઘપતિ વસ્તુપાળે સંઘસહિત કરેલ શત્રુંજયતીર્થની મહાયાત્રાનું વ્યવસ્થિત વર્ણન છે. આ આખોય ગ્રન્થ શુદ્ધ સંસ્કૃત ભાષામાં રચાયો છે. તેના કુળ પંદર સર્ગ અને ૫૨૦૦ શ્લોક છે.[1]

તેની રચના મહાકાવ્યની પદ્ધતિએ કરવામાં આવી છે. તેનો પહેલો અને પંદરમો સર્ગ ઇતિહાસલક્ષી છે. તેમાં વસ્તુપાળવંશવર્ણન, વસ્તુપાળના કુલગુરૂઓનો પરિચય, વસ્તુપાલે કરેલ સંઘ યાત્રાનું વર્ણન અને વસ્તુપાળના ગુરૂ વિજયસેન સૂરિના નાગેન્દ્ર ગચ્છમાં થયેલ પૂર્વાચાર્યોની રસિક હકીકત નોંધાઈ છે. બાકીના સર્ગોમાં પુણ્ય-પવિત્ર મહાપુરૂષોનાં પૌરાણિક વર્ણનો છે. આ ગ્રંથનો પહેલો અને પંદરમો સર્ગ વિવિધ વૃત્તોમાં રચાયો છે. તદુપરાંત દરેક સર્ગના અંતમાં મૂકાયેલા વસ્તુપાળના પ્રશંસાત્મક શ્લોકો પણ જુદા જુદા છંદોમાં છે, જ્યારે પૌરાણિક હકીકતો રજુ કરતા બાકીના સર્ગો મોટે ભાગે અનુષ્ટુપમાં લખાયા છે. આ બધા છંદોમાં શાર્દૂલવિક્રીડિત, સ્રગ્ધરા, ઇંદ્રવજ્રા, વસંતતિલકા અને મંદાક્રાંતા મુખ્ય છે. કાવ્યની ભાષા પ્રાસાદિક અને સાલંકાર

१ प्रत्येकमत्र अन्याग्रं विगणय्य विनिश्चितम् । द्वात्रिंशदक्षरश्लोकद्विपञ्चाशच्छतीमितम् ॥

છે. આખો ગ્રંથ અર્થગાંભીર્ય અને પદલાલિત્યની ઝમક વાળો છે. દરેક સર્ગના અંતે વસ્તુપાળની પ્રશંસા કરતા એક બે શ્લોકો મુકવામાં આવ્યા છે જે વસ્તુપાળનું અપ્રતિમ ગૌરવ પ્રદર્શિત કરે છે. આ પદ્ધતિ सुकृतसंकीर्तन, नरनारायणानन्द અને वसंतविलासકારે પણ અખત્યાર કરી છે. આ મહાકાવ્યના કેટલાક શ્લોકો नरनारायणानन्द, उपदेशतरंगिणी અને चतुर्विंशति प्रबंधમાં ઉદ્ધૃત થયા છે.[2] વસ્તુપાળ જેવા કવિવરે પોતાના જ કાવ્યમાં ધર્માભ્યુદયના કેટલાક શ્લોકોને સ્થાન આપી તે ગ્રંથનું મહત્ત્વ અદ્વિતીય હોવાનું જાહેર કર્યું છે. આથી વસ્તુપાલના હૃદયમાં આ ગ્રન્થ માટે અનન્ય સદ્ભાવ હતો એમ પણ જણાય છે. સત્પુરૂષ પોતાની શ્લાઘા સ્વમુખે કરે તે અયોગ્ય લેખાય તે ન્યાયે વસ્તુપાલે ગુરૂની ઉક્તિઓ મૂકી હશે એમ સાધારણ અનુમાન થાય છે. બીજા કોઈ કવિની તેવી ઉક્તિઓ નહિ ગ્રહણ કરતાં ગુરૂના જ શ્લોકો કેમ દાખલ કર્યા તે પ્રશ્નના સમર્થનમાં એમ કહી શકાય કે આ ગ્રન્થોક્ત ગુરૂદેવની ઉક્તિઓએ વસ્તુપાળના માનસ ઉપર વધુ પ્રભાવ પડયો હતો જેનો સચોટ પુરાવો धर्माभ्युदयकाव्यમાંથી ઉદ્ધૃત કરેલ ગુરૂપ્રોક્ત ઉક્તિઓ આપે છે. આ ગ્રન્થનું મુખ્યનામ संघपतिचरित्र છે પણ તેમાં ધર્મનો અભ્યુદય સાધનારાં, ધર્મ ઉપર પ્રકાશ વેરનારાં વસ્તુપાળનાં ધાર્મિક સત્કર્મોનું વિવરણ રજુ કરાયું હોઈ તેનું અપર નામ "धर्माभ्युदय महाकाव्य" છે એવો અભિપ્રાય ગ્રંથકાર ધરાવે છે.[3]

ग्रंथ प्रयोजन

આ ગ્રંથનું સમુત્થાન કેવા કારણને લઈ થયું હતું તે માટેના સ્વતંત્ર ઉલ્લેખો કર્તાએ રજુ કર્યા નથી. વસ્તુપાળનો અનન્ય ધર્મપ્રેમ સુપ્રસિદ્ધ છે. જગતની વ્યામોહ ભાવનાનું ભાન તેને જીવનની શરૂઆતમાં જ થયું હતું. અસાર સંસારની પ્રલોભનજનક અને વંચક ભાવનાઓથી દૂર રહેવા તેનું હૃદય હંમેશાં પ્રયત્ન કરતુ. મનુષ્યજન્મનું સાચું શ્રેય જગકલ્યાણ અને ધર્માચરણમાં જ છે એવો ગુરૂદ્વારા મળેલો અમૂલ્ય ઉપદેશ તેની રગેરગમાં વહેતો હતો. સત્ત્વશુદ્ધ ભાવનાઓના પ્રતાપે તેઓ સદાકાળ જીવન સાફલ્યનો સર્વોત્કૃષ્ટ માર્ગ શ્રવણ, મનન, સત્સમાગમ અને અનુશીલન દ્વારા મેળવવા પ્રયત્ન કરતા હતા. એક વખત વસ્તુપાળે પોતાના કુલગુરૂ વિજયસેન સૂરિને જિજ્ઞાસાપૂર્વક મનુષ્યજન્મની સાર્થકતાનું સાધન પૂછયું હતું.[4] ગુરૂએ તેનો જવાબ

---

૨ જુઓ નરનારાયણાનંદ મહાકાવ્યના સર્ગ. ૨-૮-૧૦ના અંત્ય શ્લોકો તથા ચતુર્વિંશતિ પ્રબંધ અને ઉપદેશતરંગિણીમાં સંગ્રહાયેલા ધર્માભ્યુદય કાવ્યના શ્લોકો.

३ सङ्घपतिचरितमेतत्, कृतिनः कर्णावतंसतां नयत ।
श्रीवस्तुपालधर्माभ्युदयमहो महितमाहात्म्यम् ॥
धर्माभ्युदयकाव्य. स. १, श्लो. १७.

४ कदाचिदेषमन्त्रीशः, कृतप्राभातिकक्रियः ।
गत्वा पुरो गुरोस्तस्य, नत्वा विज्ञो व्यजिज्ञपत् ॥
....
....
तदत्र कारणं किञ्चिदभिरूपं निरूप्यताम् ।
कारणानां हि नानात्वं, कार्यभेदाय जायते ॥
धर्माभ्युदय. सर्ग. १. श्लो. २६-२९

ટૂંકમાં જ આપતાં ધર્મનાં ગૂઢ તત્ત્વો દાન, શીલ, તપ અને ભાવના (પ્રભાવના)માં સમાયેલા હોવાનું નિદર્શન કરતાં ભાવનાની પ્રધાનતા દર્શાવી. પરંતુ વસ્તુપાળના હૃદયનું સમાધાન થયું નહિ. મંત્રીશ્વરના હૃદયમાં છૂપાયેલી આત્મકલ્યાણની ઉત્કટ ભાવના જોતાં ગુરૂ શ્રી વિજયસેનસૂરિએ ફરીથી તે જ હકીકતને પૂરતા વિવેચન સહ વસ્તુપાળને સમજાવતાં કહ્યું કે, પુણ્યકાર્યો કરનાર મનુષ્ય સ્વચ્છ બુદ્ધિ અને પરોપકાર દ્વારા પોતાનું જીવન ધન્ય બનાવે છે. કલ્યાણકારી ઉન્નત ભાવના દ્વારા જગકલ્યાણકારી પ્રભાવના સાધી શકાય છે. વધુમાં ઋષિપ્રણીત ભાવનાનાં પ્રશસ્ય અંગો નિરૂપિત કરતાં અષ્ટાહ્નિકા મહોત્સવ, રથયાત્રા અને તીર્થયાત્રાનો ઉલ્લેખ કરી સર્વ સુકૃત કાર્યોમાં સસંઘ તીર્થયાત્રા કરવાનું ભાર પૂર્વક જણાવ્યું. ત્યાર બાદ તીર્થયાત્રાવિધિ, તેના નિયમો, સંઘપતિએ પાળવાનાં વ્રતો અને ધર્મકર્મોનું સશાસ્ત્ર વર્ણન કરતાં સંઘપતિ બની તીર્થયાત્રા કરવાનો આદેશ આપ્યો. એટલું જ નહિ પણ પૂર્વકાળમાં જે ધર્મદ્રષ્ટા મહાપુરૂષોએ યાત્રાઓ અને ધર્મકાર્યો કર્યા હતા તેના યથાસ્થિત વિવેચનો કર્યાં અને તે જ પ્રમાણે ધર્મશાસ્ત્રકારોએ નિર્દિષ્ટ કરેલ તીર્થયાત્રા વિધિસહ સસંઘયાત્રા કરી સમાજમાં નવીન આદર્શ પેદા કરવા વસ્તુપાળને ખાસ ઉપદેશ આપ્યો.

આથી ગ્રન્થ પ્રયોજનનું મુખ્ય કારણ જનસમાજમાં ધર્માચરણની શુદ્ધ ભાવના પેદા કરવા માટેનું જ હતું જેને આ જ ગ્રંથના કેટલાક શ્લોકોથી પુષ્ટિ મળે છે.[५] આ જ ગ્રન્થકારે વસ્તુપાળનું વંશવર્ણન અને સુકૃત કાર્યોની ભવ્યનોંધ રજુ કરતું सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी નામક કાવ્ય સર્વોત્કૃષ્ટ ભાષામાં રચ્યું છે, છતાં ફરીથી તે જ ચરિત્રને વિશિષ્ટ કારણ સિવાય કર્તા પુનઃ પ્રતિપાદિત કરે તેમ માની શકાય નહી. વળી ધર્માભ્યુદયકાવ્ય, તેનું કથાસાહિત્ય, અને તેમાં સમાએલા ધાર્મિક ઝોક વગેરેનો વિચાર કરતાં આ ગ્રન્થ ધર્મપ્રચારના શુભ ઉદ્દેશના કારણે અને વસ્તુપાલની તીર્થયાત્રાનું ઐતિહાસિક વર્ણન કરવા માટે રચવામાં આવ્યો હતો એ સ્પષ્ટ છે. ગ્રંથની ફળશ્રુતિ પણ તેવો જ અભિપ્રાય વ્યક્ત કરે છે. કર્તા પોતે જ આ મહાકાવ્યને યશ અને ધર્મરૂપ શરીરવાળું તેમ જ વિશ્વાનંદ લક્ષ્મીનો પ્રકાશ કરનારૂં સૂચવે છે,[६] તેથી ગ્રંથકારનો ઉદ્દેશ ઐતિહાસિક હકીકતોને ધાર્મિક દૃષ્ટિએ પ્રતિપાદિત કરવાનો પણ જણાય છે. તેના ઐતિહાસિક વિધાનો કેટલીક નક્કર હકીકતો પૂરી પાડે છે. આશ્રિત કવિઓ કેટલીક વખત પોતાના આશ્રયદાતાની પ્રશંસા કરતાં અતિશયોક્તિ વાપરે છે. પરંતુ આ કાવ્યમાં તેવા પ્રયોગો મૂકવામાં આવ્યા હોવાનું લાગતું નથી. તેથી ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ પણ આ ગ્રન્થ મહત્ત્વ ધરાવે છે.

वस्तुपाल वंशवर्णन

ગ્રન્થની શરૂઆતમાં કર્તા દેવગુરૂનું મંગલ સ્તવન કરી ગ્રન્થનું નામાભિધાન વ્યક્ત

---

५ एतत् सुवर्णरचितं, विश्वालंकरणमनणुगुणरत्नम् ।
संघाधीश्वरचरितं, एतदुरितं कुरुत हृदि सन्तः ॥

धर्माभ्युदय. सर्ग. १५. ४७

६ आकल्पस्थायि धर्माभ्युदयनवमहाकाव्यनाम्ना यदीयम् ।
विश्वस्याऽऽनन्दलक्ष्मीमिति दिशति यशो-धर्मरूपं शरीरम् ॥

॥ पंचदशसर्गान्ते

કર્યા બાદ પોતાના પૂર્ણ ભક્ત અને જિનશાસનના પરમ અનુરાગી વસ્તુપાલની ઓળખાણ આપતાં તેમના પૂર્વજોનો ટૂંક પરિચય નોંધે છે. આ જ કર્તાયે પોતાના सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी કાવ્યમાં વસ્તુપાલ અને તેના પુરોગામી વંશધરોનું ભવ્ય વર્ણન કરતા અઢાર શ્લોકો રચ્યા છે; જ્યારે આ મહાકાવ્યમાં તે પાંચ જ શ્લોકોમાં સમેટી દે છે. ગ્રંથકાર આ ગ્રન્થને મહાકાવ્ય તરીકે જાહેર કરે છે અને મહાકાવ્યના નિયમ મુજબ ચરિત્ર નાયકનું વિવેચન વિસ્તારથી કરવું જોઇયે છતાં સૂરિશ્રીયે તેને સંક્ષેપમાં મૂકવું ઉચિતમાન્યું છે. તેનું કારણ એમ લાગે છે કે આ મહાકાવ્ય વસ્તુપાલની કીર્તિ અમર કરવાના કારણથી રચવાનો ગ્રન્થકારનો ઉદ્દેશ ન હતો, પણ જન સમાજને તે દ્વારા ઉપદેશ આપી તેના જેવાં સત્કર્મો કરવાની પ્રેરણા ઉત્પન્ન કરવાનો જ હતો. આથી સૂરિશ્રીએ ધાર્મિક વસ્તુનું પ્રધાન વિવેચન કરવાના આશયને લઈ વસ્તુપાલના પૂર્વજોનું કીર્તિગાન વિસ્તૃત રીતે આ ગ્રન્થમાં નહિ નિયોજ્યું હોય એમ માનું છું. છતાં તેના આદિપુરૂષથી વસ્તુપાલ સુધીના મહાનુભાવોની યોગ્ય પિછાન થોડા શબ્દોમાં પણ સંપૂર્ણતઃ આપી છે. વસ્તુપાલ ચરિત્ર વર્ણન અને તેનાં સુકૃત કાર્યોની આલોચના કરવા લખાયેલા सुकृतसंकीर्तन, सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी, कीर्तिकौमुदी, અને वसंतविलास વગેરે કાવ્યોમાં તેમનું વંશવર્ણન ભભકદાર ભાષામાં રજુ કરાયું છે જ્યારે અહીંઆ ગ્રંથકાર એક જ શ્લોકમાં તે બધી હકીકત જાહેર કરતાં કહે છે કે "પ્રાગ્વાટ્ ગોત્રમાં અણહિલપુર નામક નગરને વિષે ચંડપનો પુત્ર ચંડપ્રસાદ થયો. જેનાથી સોમ અને તેનાથી આસરાજ પુત્ર થયો, જે કાલકૂટને ભક્ષણ કરનાર શ્રી કંઠ (રૂદ્ર)ના કંઠસ્થળ વિષે રહેલ વિષજ મળના નાશકર્તા નવીન અમૃત જેવા યશવાળો થયો."[૭] કવિ ટૂંકમાં પોતાને કહેવાનું બધું સમજાવી દે છે. "તે આસરાજથી લક્ષ્મીના ધામરૂપ કુમારદેવીના કુક્ષિસરમાં વસ્તુપાલ નામક પુત્ર થયો. તેમના અગ્રજ (મોટાભાઈ) મલ્લદેવ અને અનુજ (નાનાભાઈ) તેજપાલ નામક ભ્રાતૃઓ થયા."[૮] ત્યાર બાદ તેઓએ મંત્રીશ્વરની મુદ્રા કેવીરીતે પ્રાપ્ત કરી તેનો પૂર્વ પરિચય આપતાં કવિ લખે છે કે તે સમયમાં ચૌલુક્યકુલચંદ્ર લવણપ્રસાદના કુલને ઉજ્જવલ કરનાર વીરધવલ દેવ રાજ્ય ધુરાને ધારણ કરતા હતા. ગુજરાતના પ્રાચીન પાટનગર અણહિલપુરનો સંસ્થાપક વનરાજ હતો તે આખ્યાયિકાને અનુસરી આ ગ્રંથકારે પણ અણહિલપુરને આદિરાજ વનરાજની કીર્તિપ્રભા જેવું જણાવ્યું છે. વસ્તુપાલમાં ઉત્તમ પ્રકારના સાત વિ-કારો હતા તેની નોંધ લેતાં સૂરિશ્રી કહે છે કે "વિભૂતિ, વિક્રમ, વિદ્યા, વિદગ્ધતા, વિત્ત, વિતરણ (દાન), વિવેક વગેરે વિ-કારો, ગુણો વસ્તુપાળમાં હોવા

---

७ श्रीमत्प्राग्वाटगोत्रेऽणहिल्पुरभुवश्चण्डपस्याङ्गजन्मा
जज्ञे चण्डप्रसादः सदनमुरुधियामङ्गभूस्तस्य सोमः ।
आसाराजोऽस्य सूनुः किल नवममृतं कालकूटोपभुक्त-
श्रीकश्रीकण्ठकण्ठस्थलमलविपदुच्छेदकं यद्यशोऽभूत् ॥ १८ ॥

८ सोऽयं कुमारदेवीकुक्षिसरः सरसिजं श्रियः सदनम् ।
श्रीवस्तुपालसचिवोऽजनि तनयस्तस्य जनितनयः ॥ १९ ॥
यस्याग्रजो मल्लदेव, उतथ्य इव वाक्पतेः ।
उपेन्द्र इव चेन्द्रस्य, तेजःपालोऽनुजः पुनः ॥ २० ॥ सर्ग. १.

છતાં તેનામાં વિકાર (દુષ્ટભાવ) ન હતો.[૯] વસ્તુપાલ નામ 'વ'થી શરૂ થાય છે તે આદિ શબ્દનો સુમેળ સાધી કર્તા તેજ શબ્દમાં જુદા જુદા ગુણોનું દિગ્દર્શન કરાવે છે. આવી જ અલ્કે આને મળતી એક ઉક્તિ વસ્તુપાલના કવિ **સોમેશ્વરે આબુ** પ્રશસ્તિમાં રચી છે. જેમાં કવિ કહે છે કે વંશ, વિનય, વિદ્યા, વિક્રમ અને સુકૃતકાર્યોમાં વસ્તુપાલ સમાન કોઈ પણ પુરૂષ ક્યાંય મારી દૃષ્ટિયે આવતો નથી.[૧૦] આ પ્રમાણે ગ્રંથ રચયિતા ધર્મગ્રન્થને અનુકૂળ વસ્તુપાલનું વંશવર્ણન ટૂંકમાં પણ અલંકારસંયોજન સાથે નોંધી તેની મુખ્ય મુખ્ય હકીકતોને આલેખે છે.

સંઘપતિ અને તેના ધર્મો

ધર્માચરણના મુખ્ય અંગોમાં તીર્થયાત્રા એ આવશ્યક અંગ મનાય છે. દરેક ધર્મમાં તીર્થયાત્રાનું મહત્ત્વ દર્શાવેલું છે. હિંદુધર્મનાં ઘણાં ખરાં પુરાણોમાં તીર્થમાહાત્મ્યનાં ભારોભાર વર્ણનો જોવામાં આવે છે. આ સિવાય મુસ્લીમ, પારસી, ક્રિશ્ચિયન વગેરે બીનહિન્દુ ધર્મોમાં પણ તીર્થયાત્રાનાં વિવેચનો લખાયા છે. જૈન ધર્મશાસ્ત્રકારોએ પણ તીર્થયાત્રાનું અપૂર્વ મહત્ત્વ પોતાના ધર્મગ્રન્થોમાં નોંધ્યું છે એટલું જ નહિ પણ ધર્મનાં સર્વોત્કૃષ્ટ સાધનોમાંનું તે એક હોવાનું ભારપૂર્વક સૂચવ્યું છે. ધર્મદ્રષ્ટા **વિજય**સેન સૂરિએ વસ્તુપાલને ધર્મોપદેશ આપતાં તીર્થયાત્રા કરવાનો અપ્રતિમ આદેશ આપ્યો હતો એમ આગળ જણાવી ગયા છીએ. કેવળ મોજશોખ અને વિવિધ શહેરોની શોભા નિહાળવામાં જ તીર્થયાત્રાનું કર્તવ્ય પૂર્ણ થાય છે એવો ભ્રામક વ્યવહાર આજના સમયમાં જોવામાં આવે છે પણ સાચીરીતે તે માન્યતા બરાબર નથી. જૈન અને હિન્દુધર્મોમાં યાત્રાવિધિનાં સ્વતંત્ર પ્રકરણો લખાયાં છે, જેમાં યાત્રિકે પાળવાના નિયમો, વ્રતો, દાનો અને આચાર ધર્મોનું ખાસ શિક્ષણ આપવામાં આવ્યું છે. પણ જૈન ધર્મશાસ્ત્ર તો તેથી પણ આગળ વધી તીર્થયાત્રા કરવા જતાં પોતાની સાથે હજારો મનુષ્યોને લઈ મોટો સંઘ કાઢી સસંઘ યાત્રા કરવાનું અદ્વિતીય માહાત્મ્ય રજુ કરે છે. આવી ઉદાત્ત ભાવનાનું દર્શન જૈન ધર્મના જનકલ્યાણકારી ઉન્નત વિચારોને યશ કલગી અપાવે છે. કારણ તેમાં સંઘપતિ પોતાના ખર્ચે હજારો માનવોને તીર્થયાત્રાનો અમૂલ્ય લ્હાવો લેવરાવી અક્ષય પુણ્યની લ્હાણ આપે છે. આ ઉપરાંત આવી સસમૂહ સંઘયાત્રાના વિધાયકે પાળવાના નિયમો, વ્રતો, દાનો અને આચારધર્મોને અસિધારા વ્રતની માફક ચુસ્તપણે પાળવાનો આદેશ જૈન શાસ્ત્રો આપે છે. અને તે પ્રમાણે વ્રતાચરણ કરનારને જ સંઘપતિ બિરૂદ આપવાનું ધર્મશાસ્ત્રો કહે છે. તેમાં જણાવેલા સંઘપતિના ધર્મો એક સાચા આત્મસંન્યાસ ગ્રહણ કરનાર યોગીને અનુરૂપ છે. એમાં લોકકલ્યાણની ઉદાત્ત ભાવનાઓ ઠેર ઠેર જોવામાં આવે છે.

વિજયસેન સૂરિએ તીર્થયાત્રાવિધિ અને સંઘપતિનાં કર્તવ્યોને વિસ્તૃત રીતે આ ગ્રન્થમાં આલેખતાં કહ્યું છે કે:–સંઘપતિપણું અત્યંત દુર્લભ છે. જે મનુષ્ય સંઘ-

---

९ विभुताविक्रमविद्याविदग्धतावित्तवितरणविवेकैः ।
यः सप्तभिर्वि-कारैः कलितोऽपि बभार न विकारम् ॥ २२ सर्ग. १

१० अन्वयेन विनयेन विद्यया विक्रमेण सुकृतक्रमेण च ।
क्वापि कोऽपि न पुमानुपैति मे वस्तुपालसदृशो दृशोः पथि ॥
सोमेश्वरकृतअर्बुदप्रशस्ति ।

પતિ બની તીર્થાભિવંદન કરે છે તેને ધન્ય છે. પૂર્વના પુણ્યયોગે આત્મઉદ્ધારક સંઘપતિપણું પ્રાપ્ત થાય છે. સંઘપતિએ સૌથી પ્રથમ ગુરૂની આજ્ઞા લઈ પૂર્ણ ઉત્સાહ સાથે સંઘપ્રસ્થાનનું મુહૂર્ત નક્કી કરવું. પોતાની સાથે સંઘયાત્રામાં આવવા માટે સાધર્મિકોને બહુમાનપુરઃસર આમંત્રણ પત્રિકાઓ મોકલવી. તેમને વાહન વગેરેની વ્યવસ્થા કરી આપવી. જલોપકરણ, છત્ર, દીપધારણ કરનારા (મશાલચીયો) ધાન્ય, વૈદ્ય, દવાખાનું, ચંદન, અગર, કર્પૂર, કેસર, વસ્ત્ર વગેરે માર્ગમાં ઉપયોગી તેમજ જિનાર્ચનાદિમાં ઉપયોગી સામગ્રી તૈયાર કરી સાથે લેવી. શુભ મુહૂર્તે પોતાના ઇષ્ટદેવને પુણ્યપવિત્ર તીર્થ જળવડે સ્નાન કરાવી તેમની વિવિધ ઉપચારોવડે પૂજા રચવી. તેમની સામે બેસી ગુરૂપદેશ પ્રમાણે સંઘપતિ દીક્ષાને ગ્રહણ કરવી. દિક્પાળોને મંત્ર સાથે બલિપ્રદાન કરવું અને પુષ્પ, વસ્ત્રો, તથા મંત્રાદિકવડે પૂજિત રથમાં પ્રભુને પોતે પધરાવવા. ગુરૂને આગળ કરી સસંઘ ચૈત્યવંદન કરવું. ક્ષુદ્રોપદ્રવોનો નાશ કરવા કવચ, મંત્ર, અસ્ત્રપ્રયોગો વગેરેને ગુરૂ સન્નિધ અભિમંત્રણ કરી સાથે રાખવા અને જયધ્વનિ–મંગલધ્વનિ કરતા વાજતે ગાજતે શહેરમાંથી નીકલી નગરની નજદીકમાં જ મંગલપ્રસ્થાન કરવું. પછી વિવિધ સ્થાનોથી યાત્રા કરવા માટે આવતા સાધર્મિકોને ધન, વાહન, વગેરેની સહાય આપી સત્કાર કરવો. સાથે આવેલા બંદી (ભાટ, ચારણ વ.), ગાયક (ગાયન–સ્તવન કરનારા) અને મહાત્માઓને વસ્ત્ર, ભોજ્ય, દ્રવ્ય વગેરેથી સત્કારવા. માર્ગમાં આવતાં ચૈત્યોનું પૂજન કરવું અને ખંડિત હોય તેનો જીર્ણોદ્ધાર કરાવવો. ચૈત્યવગેરેનો વહીવટ કરનાર સાધર્મિકોનું વાત્સલ્ય અને વહીવટની તપાસ કરવી. દીનોને દાન અને ભયવાળાઓને અભય પ્રદાન આપી બંદી (કેદી) મનુષ્યોને બંધન મૂક્ત કરવા. પંકમગ્ન (કાદવમાં ખુંચી ગએલાં) શકટો (ગાડાઓ)ને બહાર કઢાવવા, ભાંગી ગયા હોય તેને પોતાના શિલ્પીઓ પાસે તૈયાર કરાવવા. ક્ષુધિતોને અન્ન, તૃષિતોને જળ, વ્યાધિગ્રસ્તોને ઔષધ, અને શ્રમનિઃસહોને વાહન વગેરેનો બંદોબસ્ત કરી આપવો. પોતે બ્રહ્મચર્ય, તપ, શમ વગેરે ધર્મોનું યથોક્ત પાલન કરવું. ક્રમ પ્રમાણે આવતાં તીર્થોમાંથી પુષ્પાધિવાસિત પવિત્ર જળના ઘડાઓ ભરી લેવા અને ત્રૈલોક્યપતિ જિન ભગવાનનો સ્નાત્ર પૂજા મહોત્સવ રચવો. તેવા મહોત્સવોમાં દૂધ, દહિં, કર્પૂર વડે પંચામૃત સ્નાત્ર અવશ્ય કરવું. પ્રભુને ચંદન, કર્પૂર, કસ્તૂરી વગેરેનું વિલેપન કરવું. સ્વર્ણાભરણ, પુષ્પમાળા અને વસ્ત્રાદિક પદાર્થો અર્પણ કરી અગરૂ, ચંદન આદિ સુગંધિ દ્રવ્યોનો ધૂપ આપવો. કર્પૂરની આરાત્રિક કરી પુષ્પાંજલિ અર્પવી અને વિવિધ સાધન સામગ્રીસાથે ચૈત્યવંદન–દેવવંદન કરવું.

માલાધારણ અને મુખોદ્‌ઘાટન મહોત્સવ વખતે દેવ-દ્રવ્યની વૃદ્ધિ માટે તેમાં સ્વશક્ત્યનુસાર દ્રવ્ય કોષાગારમાં અર્પણ કરવું અને ગદ્‌ગદ્‌વાણી વડે દીનતા દર્શાવી પ્રભુનું અંતઃકરણ પૂર્વક શુદ્ધ ભાવથી સ્તવન કરવું. આમ પ્રભુના પૂજન અર્ચન કાર્યો કરતાં તીર્થયાત્રા કરી તીર્થાધિરાજનું ધ્યાન કરતા કરતા શુભ મુહૂર્તે નગર પ્રવેશ કરવો અને પ્રભુને ઘેર પધરાવવા. ઘેર આવીને ધર્મબંધુઓ, મિત્રવર્યો, પૌરજનો સહિત શ્રીસંઘનું ભોજનાદિ વડે સામિવાત્સલ્ય કરવું. સૂરિશ્રી વધુમાં કહે છે કે સંઘપૂજા એ મહાદાન છે અને એ ભાવયજ્ઞ ગણાય છે. પરોપકાર, બ્રહ્મવ્રતાચરણ,

યથાશક્તિ તપ અને અનાથોને દાન એ ચાર મહાસ્થાનોની પુણ્યાનુબંધી પુણ્યલક્ષ્મીને સંઘપતિએ આરાધવા જોઇએ. જે ભવ્ય મનુષ્ય ઉપર્યુક્ત પ્રકારે વ્રત નિયમસહિત સસંઘ તીર્થ યાત્રા કરે છે તે સૌભાગ્ય અને ભાગ્યવાનને સંઘપતિત્વરૂપ લક્ષ્મી પોતે જ વરે છે. તીર્થયાત્રાનું આવું અદ્‌ભૂત વર્ણન પુણ્યયશોભિવૃદ્ધિ માટે કોને આકર્ષતું નથી? આવા જ વર્ણનો જ્ઞાતાધર્મકથા, વ્યવહાર સૂત્ર અને બીજા અનેક જૈન ધર્મશાસ્ત્રોમાં લખાયા છે. તેમાંથી મનુષ્ય સ્વકર્તવ્યના પાઠ શીખી શકે છે. એટલું જ નહીં પણ જનકલ્યાણકારી ઉદાત્ત ભાવનાના સચોટ પુરાવાઓ પૂરા પાડે છે. વસ્તુપાળે આવું જ સંઘપતિવ્રત ધારણ કર્યું હતું જેની સવિસ્તર આલોચના હવે પછી કરવામાં આવનાર છે.

प्राक्कालीन संघपतिओ अने यात्रिको

સસંઘ યાત્રા કરવી, તેને ઉચિત ધર્મો આચરવા, પોતાની સલ્લક્ષ્મી ઉપરનો મિથ્યામોહ ત્યાગ કરી તેને આવા સત્કાર્યોમાં નિયોજવી એ એક દુષ્કર કાર્ય છે. તેમાં તપ, દાન, દયા, ઔદાર્ય, શ્રદ્ધા અને દીનતા વગેરે ઉત્તમ ગુણોને ખાસ કરીને પચાવવા પડે છે. આપણા પંચમહાભૌતિક શરીરમાં રહેલા ષડ્‌રિપુઓ (કામ, ક્રોધ, લોભ, મોહ, મદ અને મત્સર) ઉપર્યુક્ત ગણાવેલા સાત્વિક ગુણોના દુશ્મનો છે. આજના ભૌતિક વાદમાં તે ષડ્‌રિપુઓને પરાસ્ત કરવા એ સાધારણ કાર્ય નથી. જો કે સાત્વિક ગુણોનો પ્રાદુર્ભાવ થતાં આ મહારિપુઓ આપો આપ ચાલ્યા જાય છે પણ તેવા દૈવી ગુણોને હૃદયમાં સ્થિર કરવા તે અસાધારણ કાર્ય છે. સદાચરણ, સત્સમાગમ, પૂર્વ કર્મ અને પ્રભુની સંપૂર્ણ સહાય હોય તોજ મનુષ્ય તે કાર્યમાં સફળતા મેળવે છે. વિજયસેનસૂરિએ તે સત્યને સુંદરરીતે સમજાવતાં વસ્તુપાળને અમૂલ્ય ઉપદેશ આપ્યો હતો. જેમાં સંઘપતિ અને તેના ધર્મોની પ્રતરણા કરતાં પ્રાક્‌ કાળમાં આવા સત્કર્મો કરનારા જે જે દૈવી પુરૂષો થયા છે તેમનાં યથોચિત વૃત્તાંતો રસિક ભાષામાં સૂરિશ્રીએ રજુ કર્યા છે. તે બધી હકીકત સવિસ્તરરીતે આપતાં તો આખું એક સ્વતંત્ર પુસ્તક થવા સંભવે તેથી તેઓનો ટૂંક પરિચય આપીનેજ અહીં સંતોષ માનવો પડે છે.

શત્રુંજય તીર્થની ઐતિહાસિકતા ઠેઠ પુરાણકાળ સુધી લઈ જવામાં આવે છે. તેનાં જુદા જુદા એકવીસ નામો છે. ત્યાં અનેક દૈવી પુરુષો, ચક્રવર્તિઓ, સિદ્ધો, મુનિઓ અને નૃપતિઓએ આવી તીર્થયાત્રાનું મહત્પુણ્ય સંપાદન કર્યું હતું. અહીં યુગાદીશે તપ કર્યું હતું. ઋષભ, નેમીશ્વર વગરે અર્હતોએ અહીં નિવાસ કર્યો હતો. ભરતેશ્વરે આ પુણ્યગિરિ ઉપર તીર્થાધિરોહણ કરી જિનાધીશનું ચૈત્ય બંધાવ્યું હતું. તેજ રીતે ઇશ્વાકુ વંશીય સગર રાજાએ પોતાના પૂર્વજોના ઉદ્ધાર માટે આ મહાતીર્થની યાત્રા કરી તેનો જીર્ણોદ્ધાર કરાવ્યો હતો. ત્યાર બાદ તેજ વંશમાં થયેલ રઘુકુળતિલક રામચંદ્રે રાવણનો સંહાર કરી આ સર્વશ્રેષ્ઠ તીર્થની યાત્રાએ આવતાં જિન પ્રભુનું ચૈત્ય બંધાવ્યું અને તેનો સમુદ્ધાર કર્યો. કુરુકુલનો વિનાશ કરનાર પાંડવોએ પણ વિમલાચલની યાત્રાનો પરમ લાભ પ્રાપ્ત કર્યો હતો. આ સિવાય આ ભવ્યતીર્થના સુપ્રસિદ્ધ યાત્રિકોમાં નમિ–વિનમિ વગેરે મહર્ષિઓ, દ્રાવિડ, વાલખિલ્યાદિ નૃપો,

જયરામાદિ રાજર્ષિઓ, નારદાદિ મુનિવરો, પ્રદ્યુમ્ન, સાંબ પ્રમુખ કુમારો, આદિત્ય-યશા તથા સગરાદિ રાજવિઓ, અને ભરતના પુત્ર શૈલક, શુક વગેરે મુખ્ય હતા. આ તીર્થનો અનેક વખત ઉદ્ધાર થયો છે. વિવિધ તીર્થકલ્પ અને સુકૃત કીર્તિકલ્લો-લિનીમાં તે બધા તીર્થોદ્ધારકોની નોંધ લેતાં સંપ્રતિ, વિક્રમાદિત્ય, સાતવાહન, પાદ-લિપ્ત, આમદત્ત, ભરત, સગર, દાશરથી, જાવડિ, શીલાદિત્ય, અને વાગ્ભટનાં નામો જણાવ્યાં છે.[11] મધુમતી (મહુવા)માં જન્મ લેનાર મહાનુભાવ શ્રેષ્ઠી જાવડે અહીં ઘણુંજ દ્રવ્ય ધર્મકાર્યોમાં વાપરી જ્યોતીરૂપ જિનબિંબની પ્રતિષ્ઠા કરી હતી. તે વિક્રમાદિત્ય પછી ૧૦૮ વર્ષ બાદ થયો હતો એમ જિનપ્રભસૂરિએ ઉલ્લેખ કરી ત્યાં જિનબિંબની પ્રતિષ્ઠા કર્યાની નોંધ લીધી છે.[12] વલ્લભિપતિ શીલાદિત્યે આ ગિરિરાજ ઉપર જિનાલય બંધાવ્યું હતું. ગૂર્જરેશ્વર સિદ્ધરાજના મંત્રિવર્ય આશુકે આ પવિત્ર નગાધિરાજ તીર્થની યાત્રા કરી પોતાની અનન્ય ભક્તિ પ્રદર્શિત કરવા નેમિનાથનું મંદિર બંધાવ્યું એટલુંજ નહિ પણ ત્યાં આવનારા યાત્રિકોની તૃષા શાંત કરવા એક ભવ્ય વાપિકા (વાવ)નું સ્થાપત્ય કરાવ્યું હતું.

ગુર્જરેશ્વર સિદ્ધરાજે આ તીર્થના પૂજન, અર્ચન માટે બાર ગામો આપ્યા હતા. સિદ્ધરાજ પછી ગાદી ઉપર આવનાર સોલંકીકુલભૂપાલ કુમારપાળે તથા તેના મંત્રી ઉદયને આ તીર્થની યાત્રા કરી અહીં અનેક ધર્મકાર્યો કર્યાં હતા. ઉદયન પુત્ર વાગ્ભટે આ મહાન્ વિમલાચલ ઉપર નાભિ પ્રભુનું નૂતન મંદિર વિશાલ શિલા અને કપિ-શીર્ષકોથી શોભતા કોટ સહ બંધાવ્યું હતું. અને તે પવિત્ર મહાતીર્થની નજદીકમાં કુમારપુર વસાવ્યું જેની મધ્યમાં નીલમણિયુક્ત પાર્શ્વજિનબિંબની સ્થાપના કરાયેલ ત્રિભુવન વિહાર બંધાવ્યો તેમ જ તે નગરની પાસે પ્રભુના પૂજન, અર્ચન માટે પુષ્પ વાટિકા કરાવી હતી. આ પ્રમાણે આ પુણ્યપાવિત તીર્થની યાત્રાનો અમૂલ્ય લાભ દેવો, મહર્ષિઓ, ચક્રવર્તિઓ, નૃપતિઓ, મંત્રિઓ, અને લક્ષ્મીધરો વગેરે અનેક મહાપુરૂષોએ પ્રાપ્ત કર્યો હતો એમ ગ્રન્થકારે વિસ્તારથી નોંધ્યું છે.[13] આની સંક્ષિપ્ત નોંધ આજ ગ્રન્થકારે પોતાના સુકૃતકીર્તિકલ્લોલિની માં લીધી હોવાનું આગળ જણાવી ગયા છીયે. એ વસ્તુપાલના પિતા આશરાજે આ તીર્થાધિરાજની યાત્રા કરી હતી એમ વસંત-

---

११ (१) सम्प्रतिर्विक्रमादित्यः, सातवाहनवाग्भटौ ।
पादलिप्ताऽऽमदत्ताश्च तस्योद्धारकृतः स्मृताः ॥ ३५ ॥
शत्रुंजय तीर्थकल्प

(२) अस्मिन्नाभिभुवः प्रभोस्तनुभवश्चक्री स चक्रे पुरा
चैत्यं श्रीभरतः परे तु सगरक्ष्मापालमुख्या व्यधुः ।
देवो दाशरथिः प्रथासुतपतिः प्राग्वाटभूर्जावडिः
शैलादित्यनृपः स वाग्भटमहामन्त्री च तस्योद्धृतिम् ॥ १६६ ॥
सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी

१२ अष्टोत्तरवर्षशतेऽतीते श्रीविक्रमादिह ।
बहुद्रव्यव्ययाद् बिम्बं जावडिः स न्यवीविशत् ॥ ७१ ॥
विविधतीर्थकल्पे-शत्रुंजयतीर्थकल्प.

૧૩ જુઓ આજ ગ્રન્થનો સર્ગ. ૭, શ્લોક. ૬૭ થી ૮૩. વિશેષ માટે જુઓ પુરાતન પ્રબંધ સંગ્રહમાં પાન. ૫૮ ઉપર શ્લોક ૧૫૮ થી ૧૬૧.

વિલાસમાં બાલચંદ્રસૂરિએ જણાવ્યું છે. તે સમયે વસ્તુપાલ પણ સાથે હતા. આવા મહાન તીર્થાધિરાજની સસંઘ યાત્રા કરવાની અદ્વિતીય પ્રેરણા વસ્તુપાલને **વિજયસેનસૂરિ**એ કરી હતી જેથી તેમણે ધર્મશાસ્ત્રના નિયમાનુસાર સંઘપતિની દીક્ષા ગુરૂપાસેથી ગ્રહણ કરી **વિમલાદ્રિતીર્થ**ની પવિત્ર યાત્રાનું સૌભાગ્ય પ્રાપ્ત કર્યું હતું. વસ્તુપાળ પછી પણ **સમરાશાહ** અને પેથડશાહે આ ભવ્ય તીર્થની યાત્રા અને જીર્ણોદ્ધાર કર્યાના ઉલ્લેખો **સમરરાસુ**, **નાભિનંદનજિનોદ્ધાર પ્રબંધ** અને **પેથડરાસ** ઉપરથી જણાય છે.[૧૪]

વસ્તુપાલની સસંઘ યાત્રા

ગુરૂના આદેશ મુજબ વસ્તુપાલે **સંઘાધિપતિ** બની શત્રુંજયની મહાયાત્રા કરી હતી. તેણે કુલ એકંદર તેર યાત્રાઓ કરી હતી એમ અનેક પ્રમાણોથી જણાયું છે.[૧૫] તેમાં પોતાના પિતા **આસરાજ** સાથે સંવત ૧૨૪૯ અને ૧૨૫૦ માં તથા પોતે સંઘપતિ દીક્ષા ધારણ કરી સં. ૧૨૭૭–૧૨૯૦–૧૨૯૧–૧૨૯૨ અને ૧૨૯૩ માં શત્રુંજય તથા **ગિરનાર** બન્નેની યાત્રાઓ કરી હતી. જ્યારે એકલા **વિમલાચળ** (શત્રુંજય)ની પરિવાર સાથે સાત યાત્રાઓ સં. ૧૨૮૩-૮૪-૮૫-૮૬-૮૭-૮૮-૮૯ માં અનુક્રમે નિયોજી હતી.

આ બધા યાત્રામહોત્સવોના જુદા જુદા વિવેચનો તેમનું જીવનચરિત્ર આલેખતા ગ્રંથોમાં વ્યવસ્થિત રીતે નોંધાયા નથી. આ ગ્રન્થ ઉપરાંત सुकृतसंकीर्तन, कीर्तिकौमुदी અને वसंतविलास કાવ્યમાં તીર્થયાત્રાનાં વર્ણનો આપેલા છે.[૧૬] પણ તે કઈ કઈ યાત્રાનાં વર્ણનો છે તેનો સ્પષ્ટ નિર્દેશ કર્યો નથી. वसंतविलासમાં વર્ણન કરેલ યાત્રાવર્ણન તેની છેલ્લી સં. ૧૨૯૩ ની યાત્રાનું વર્ણન હોવાનું લાગે છે; જ્યારે धर्माभ्युदय, सुकृतसंकीर्तन અને कीर्तिकौमुदीનાં વર્ણનો સંવત્ ૧૨૯૦ પહેલાંની કોઈ યાત્રાના હોવા જોઈએ એમ લાગે છે. કારણ धर्माभ्युदयનો રચનાકાળ સંવત ૧૨૯૦ પહેલાં આવે છે જેની પર્યાલોચના "રચનાકાળ"ના શિરોલેખ નીચે હવે પછી કરવામાં આવનાર છે. તેજ પ્રમાણે सुकृतसंकीर्तन પણ તેના સમકાળમાં રચાયું હોવાનું સ્વ. **ચીમનલાલ** દલાલે

---

૧૪ સમરરાસ (ગા. ઓ. સી. માં છપાયેલ પ્રાચીન ગુર્જરકાવ્ય સંગ્રહ), મંડલીકકૃત પેથડરાસ તથા નાભીનંદન જિનોદ્ધાર પ્રબંધ વ.

૧૫ (१) सं. १२४९ वर्षे संघपतिस्वपितृ ठ. श्रीआशाराजेन समं महं श्रीवस्तुपालेन श्रीविमलाद्रौ रैवते च यात्रा कृता। सं. ५० वर्षे तेनैव समं स्थानद्वये यात्रा कृता। सं. ७७ वर्षे स्वयं संघपतिना भूत्वा सपरिवारयुतं ९० वर्षे सं. ९१ वर्षे सं. ९२ वर्षे सं. ९३ वर्षे महाविस्तरेण स्थानद्वये यात्रा कृता । श्री शत्रुंजये अमून्येव पंच वर्षाणि तेन सं. ८३ वर्षे सं. ८४ सं. ८५,८६,८७,८८,८९ सप्त यात्राः सपरिवारेण तेन तेने ...श्री नेमिनाथाम्बिकाप्रसादाद्याः...भूता भविष्यति ।

(२) त्रयोदश तीर्थयात्राः संघपतिभूय: कृताः। तीर्थकल्प पा. ८०

વૉટસન મ્યુઝીયમ રાજકોટનો શિલાલેખ.

(३) अथ स मरुवृद्धो देवी भवतः सार्धत्रयोदशसंख्या यात्रा अभिहितवती। दु. के. शास्त्री संपादित प्रबंधचिंतामणि पा. १६३

૧૬ જુઓ सुकृतसंकीर्तन, સર્ગ ૫-૭-૮-૯; कीर्तिकौमुदी, સર્ગ ૯; वसंतविलास, સર્ગ ૧૦-૧૧-૧૨.

તેની પ્રસ્તાવનામાં જણાવ્યું છે. તદુપરાંત, ધર્માભ્યુદય કાવ્ય ના યાત્રાવર્ણનને સુકૃતસંકીર્તન તથા કીર્તિકૌમુદી કેટલેક અંશે અનુસરે છે; જ્યારે વસંતવિલાસનું વર્ણન તેથી જુદું પડે છે. આથી વસંતવિલાસ અને ધર્માભ્યુદય કાવ્યનાં યાત્રાવર્ણનો જુદી જુદી તીર્થયાત્રાઓનાં હશે એવું અનુમાન થાય છે. સુકૃતસંકીર્તન અને કીર્તિકૌમુદીનાં યાત્રાવર્ણનો કરતાં ધર્માભ્યુદયનું યાત્રાવિવરણ અનેક દૃષ્ટિએ ઉત્કૃષ્ટતા જાહેર કરે છે તેટલું જ નહિ પણ બધા યાત્રામહોત્સવ સ્તોત્રોમાં ઉદયપ્રભનું આ યાત્રાવર્ણન નવીન આદર્શ પેદા કરે છે. તે જેટલું રસિક છે તેટલું જ ભાવવાહી છે. તેમાં અતિશયોક્તિને બીલકુલ અવકાશ નથી. તેના શબ્દે શબ્દમાં નિસર્ગતા અને ધર્મભાવનાનો અપ્રતિમ રસ ટપકતો જોવામાં આવે છે. તેમણે આલેખેલ યાત્રાવર્ણન અને તેની રોચક શૈલી ગ્રન્થકારને એક સાચા વિવેચક તરીકે જાહેર કરે છે. તેની ટુંક આલોચના અહીં આપવામાં આવે તો અસ્થાને નહિ ગણાય એમ માની તત્સંબંધી કેટલુંક વિવરણ અત્રે રજુ કરવા પ્રયત્ન કર્યો છે.

વસ્તુપાલના હૃદયમાં રહેલી ધર્મની ઉદાત્ત ભાવનાના પરિણામે પોતાના ગુરૂ શ્રી વિજયસેનસૂરિના ઉપદેશામૃતથી પ્રેરણા મેળવી તેમણે મહાયાત્રાનો અદ્વિતીય પ્રસંગ ધર્મશાસ્ત્રના નિયમ મુજબ યોજ્યો હતો. શુભ મુહૂર્તે આ યાત્રાનું સંઘપ્રસ્થાન શરૂ થયું. ધોળકાથી નીકળી સંઘે કાસહૃદ (કાસીંદ્રા)માં પડાવ નાખ્યો. રસ્તામાં આવતાં દરેક ગામ અને શહેરનાં દેવમંદિરો, તીર્થો અને ઉપાશ્રયોના પૂજન, અર્ચન તથા જીર્ણોદ્ધાર કરી સંઘપતિ તેમને સત્કારતા. ઠેર ઠેર સાધર્મિકવાત્સલ્યો થતા. આ પ્રમાણે ધર્માચરણ કરતાં તીર્થધ્યાનમાં દત્તચિત્ત વસ્તુપાલ સંઘ સાથે શત્રુંજય પહોંચ્યો. તીર્થયાત્રાની પ્રેરણા વસ્તુપાલને ગુરૂ દ્વારા થઈ હતી તે હકીકતને પ્રામાણિક માની દરેક યાત્રાવર્ણન લખનારાએ અપનાવી છે.[૧૭] ઉદયપ્રભસૂરિ આ યાત્રામાં પ્રખ્યાત ધર્માચાર્યો કે બીજા મુખ્ય મુખ્ય યાત્રિકો માટે કંઈ પણ નિર્દેશ કરતા નથી જ્યારે સુકૃતસંકીર્તનકાર વિજયધર્મસૂરિ સાથે મલધારીગચ્છીય નરચંદ્રસૂરિ, વાયડગચ્છીય જિનદત્તસૂરિ, સંડેરકગચ્છના શાંતિસૂરિ અને ગલ્લક લોકોના વર્ધમાનસૂરિ વગેરે પ્રખ્યાત ધર્માચાર્યો હતા એમ નોંધે છે.[૧૮] વસંતવિલાસનું યાત્રા વર્ણન આથી જુદું છે. પણ તેમાં કેટલીક હકીકતો વિસ્તારપૂર્વક સંગ્રહવામાં આવી છે. તેણે તો જુદા જુદા

---

૧૭ नागेन्द्रगच्छमुकुटस्य मुनेरनूनमाकर्ण्यकर्ण्यमिति मन्त्रिपतिर्विचारम् ।
नत्वा स्वधामनि जगाम जिनेन्द्रयात्रानिर्माणनिर्मलमनोऽतिमनोरथश्रीः ॥ ४४ ॥

सुकृतसंकीर्तन, सर्ग, ४

વિશેષમાં જુઓ નરનારાયણાનંદ, સર્ગ. ૧૬ શ્લો. ૩૨-૩૩.

૧૮ अथाचलन् वायटगच्छवत्सलाः कलास्पदं श्रीजिनदत्तसूरयः ।
निराकृतश्रीषु न येषु मन्मथः चकार केलिं जननीविरोधतः ॥ ११ ॥
भवाभिभूतेन मनोभुवा भयादनीक्षितैः कृत्स्नभवाभिभूतिभिः ।
अचालि सण्डेरकगच्छसूरिभिः प्रशान्तसूरैरथ शान्तिसूरिभिः ॥ १२ ॥
शरीरभासैव पराभवं स्मरः स्मरन्ननश्यत्किल यस्य दूरतः ।
सवर्धमानाभिधसूरिशेखरस्ततोऽचलद्गल्लकलोकभास्करः ॥ १३ ॥

सुकृतसंकीर्तन, सर्गः ५

શહેરોમાંથી તે યાત્રામાં આવેલ સંઘપતિઓનો નિર્દેશ કરતાં લખ્યું છે કે ચારમંડલાધિપતિઓ, લાટ, ગૌડ, મરૂ, ડાહલ, અવંતિ અને અંગ દેશના સંઘપતિઓ પોતાના સંઘ સહ આ યાત્રામાં આવ્યા હતા જેમનું યોગ્ય સમ્માન ઉપાયનો-ભેટણાં વડે વસ્તુપાલે કર્યું હતું.[૧૯] સંઘે પ્રસ્થાન કરી નાભેય પ્રભુની ભક્તિ અને કીર્તિ પ્રદર્શિત કરતાં કાસહૃદમાં પડાવ નાખ્યો જ્યાં વસ્તુપાળે જિનાર્ચાઓ કરી હતી, એ ઉદયપ્રભના કથનને સુકૃતસંકીર્તનથી ટેકો મળે છે. વધૂમાં તે ઉમેરે છે કે વસ્તુપાળે અહીં નાભિતનુજ (ઋષભદેવ)ના મહાપ્રાસાદમાં મહોત્સવ રચ્યો હતો.[૨૦] જ્યારે વસંતવિલાસનો કર્તા સંઘે કાસહૃદના બદલે વલભિપુરમાં મેલાણ કર્યું હોવાનું કહે છે[૨૧] જ્યાંથી વિજયસેનસૂરિએ શત્રુંજય પર્વતને બતાવ્યો. વસ્તુપાળે અહીં સ્વામિ વાત્સલ્ય કર્યું હતું. આ સ્પષ્ટરીતે જણાય કે ધર્માભ્યુદયના યાત્રાવર્ણનથી વસંતવિલાસનું યાત્રાવિવરણ જુદું છે. આ સિવાય પણ બીજાં કેટલાંક સૂચનો મળી આવે છે જેથી બન્ને ગ્રંથકારોએ જુદી જુદી યાત્રાની નોંધ લીધી હતી તે હકીકતને વધુ પુષ્ટિ આપે છે જેનું તુલનાત્મક વિવેચન હવે પછી કરવામાં આવ્યું છે.

ત્યાંથી સંઘે પ્રયાણ કરી વિમલાદ્રિ ઉપર આરોહણ કર્યું. ત્યાં જઈ નાભિજિનેશના ઉત્કટ દર્શનાભિલાષી વસ્તુપાલે પૂર્ણ પ્રેમભક્તિવડે સ્નાત્રમહોત્સવ કર્યો. વિઘ્નોચ્છેદક કપર્દીયક્ષનું પૂજન, અર્ચન સારીરીતે કરી તેમને પ્રસન્ન કર્યા. સંઘમાં આવેલ યાત્રિકોને શ્રમાન્વિત થયેલા જોઈ મંત્રીવર્યનું હૃદય સ્નેહાર્દ્ર બન્યું. ત્યાં તેમણે ભગવાન આદિનાથના મંદિર પાસે ઇંદ્રમંડપ બંધાવવાનો પ્રારંભ કર્યો એમ ઉદયપ્રભસૂરિ જણાવે છે[૨૨] જ્યારે વસંતવિલાસનો કર્તા સંઘ પાલીતાણા ગયો ત્યાં વસ્તુપાલે પાર્શ્વપ્રભુનું પૂજન કર્યું અને ત્યારબાદ સંઘે વિમલાચલ ઉપર પ્રસ્થાન કર્યું. વિમલાદ્રિ ઉપર જઈ સૌથી પ્રથમ કપર્દિયક્ષની વિવિધ ઉપચારો વડે પૂજા કર્યા પછી ભગવાન

---

१९ लाटगौडमरुकच्छडाहलावन्तिवङ्गविषयाः समन्ततः।
तत्र संघपतयः समाययुस्तोयधाविव समस्तसिन्धवः॥ २५॥
आगतां विविधदेशतस्ततः सैष सङ्घजनतां प्रमोदभाक्।
वस्तुपालसचिवः शुचिक्रियः सच्चकार विविधैरुपायनैः॥ २६॥

वसन्तविलास, सर्ग १०

२० वितन्वतः कासहृदाख्यपत्तने महोत्सवं नाभितनूजसद्मनि।
सहायतां प्रत्यशृणोन्महामतेरमुष्य द्राग्वर्त्मनि देवताम्बिका॥ १६॥

सुकृतसंकीर्तन, सर्ग. ५

२१ उत्प्रयाणकमचीकरत्कृती संघलोकसुखदप्रयाणकः।
संघराट् वलभिपत्तनावनीमण्डलेऽतिसुरमण्डलेश्वरः॥ ४२॥
तत्र सङ्घपतये नवेन्दुवत्पावनो विमलसंज्ञितो गिरिः।
अंगुलीकिसलयाग्रसंज्ञया दर्शितो विजयसेनसूरिभिः॥ ४३॥

वसन्तविलास, सर्गः १०

२२ तत्र स्नात्रमहोत्सवव्यसनिनं मार्तण्डचण्डद्युति,
क्लान्तं सङ्घजनं निरीक्ष्य निखिलं सार्द्रीभवन्मानसः।
सद्यो माद्यदमन्दमेदुरतरश्रद्धानिधिः शुद्धधी-
र्मंत्रीन्द्रः स्वयमिन्द्रमण्डपमयं प्रारम्भयामासिवान्॥ ८॥

धर्माभ्युदय, सर्गः १०

આદિનાથની અષ્ટપ્રકારી પૂજા રચી પ્રશંસનીય ચીનવસ્ત્ર (ચીની રેશમ)નું ધ્વજા-રોપણ કર્યું હતું એમ નોંધે છે.[२३] પરંતુ અરિસિંહ તો ધર્માભ્યુદયના કથન મુજબ વસ્તુપાલે શત્રુંજય ઉપર જઈ કપર્દિયક્ષનું પૂજન કરીને ભગવાન આદિનાથનો મહામહોત્સવ કર્યો હતો એમ કહે છે.[२४] તેમાં વસંતવિલાસ પ્રમાણે પાદલિપ્તપુરની હકીકત જોવામાં આવતી નથી. આથી પણ ઉદયપ્રભ અને અરિસિંહનાં યાત્રાવર્ણનો એક જ સંઘના વિવેચનો હોવાનું સ્પષ્ટ જણાય છે. મંત્રીશ્વરે અહીં વિવિધપ્રકારી સ્નાત્રમહોત્સવ ભવ્યરીતે કર્યો હતો તેનું રસિક વર્ણન ધર્માભ્યુદયકારે અહીં ત્રણ શ્લોકોમાં વિસ્તારવડે રચ્યું છે. તે દાનવીરે ત્યાં અનેક પ્રકારે દાનધર્મો અને પૂજામહોત્સવો રચ્યા હતા. સંઘ આઠ દિવસ રહ્યો ત્યાં સુધી અષ્ટાહ્નિકા મહોત્સવ ભારે દબદબા સાથે કર્યો. આદિનાથ ભગવાનના મંદિરપાસે નૃત્ય ગાન કરવા માટે મંત્રીવરે ઇંદ્રમંડપ બંધાવ્યો હતો તેની નોંધ વસંતવિલાસમાં પણ લેવાઈ છે.[२५] અનન્યભક્તિવડે જિનેશનાં પૂજન, અર્ચન કરી વસ્તુપાળે સંઘ સહ પર્વત ઉપરથી અવરોહણ કરી અજાહરા (અજારા) તરફ પ્રયાણ આદર્યું. ત્યાંના અજયપાલ નૃપતિએ સંઘનો સુંદર સત્કાર કર્યો અને તે રાજવીથી વંદ્યમાન ત્યાંના પાર્શ્વપ્રભુનું પૂજન કરી સંઘ કોડીનાર ગયો એમ ઉદયપ્રભસૂરિએ જણાવ્યું છે.[२६] જ્યારે વસંતવિલાસનો કર્તા સંઘને શત્રુંજયથી એકદમ પ્રભાસમાં લાવે છે જો કે ઉદયપ્રભનું સંઘયાત્રાવર્ણન વસંતવિલાસના કરતાં ટુંકમાં છે પણ તેમાં જે હકીકતો નોંધાઈ છે તે પ્રામાણિકતાની પરાકાષ્ઠા રજુ કરે છે તેટલુંજ નહીં પણ કેટલીક નક્કર હકીકતો પૂરી પાડે છે. કોડીનારથી સંઘ દેવપાટણ (પ્રભાસ) ગયો ત્યાં ઇંદ્રાદિદેવોથી સંસ્તૂયમાન (સ્તવન કરાયેલા) અમૃતાંશુલાંછનવાળા કાલારિ ભગવાન પિનાકપાણિ સોમનાથ મહાદેવનું વસ્તુપાળે સારીરીતે યજન કર્યું. સર્વ ધર્મ ઉપર સહિષ્ણુભાવવાળા અને વાડાબંધીના મિથ્યાભેદોને નહીં માનનારા તે મહાનુભાવે જિનેશના યાત્રા માર્ગમાં આવનાર સોમનાથ ભગવાનનું વિના સંકોચે યજન કરી જૈન અને જૈનેતરોને સાંપ્રદાયિક અસહિષ્ણુ માનસનો ત્યાગ કરવા આદર્શ દ્રષ્ટાંત રજુ કર્યું. તેજ હકીકત સુકૃતસંકીર્તનમાં પણ આપી છે. વસંતવિલાસનો કર્તા વધુમાં અહીં વસ્તુપાળે પ્રિયમેલક તીર્થમાં સ્નાન કરી સુવર્ણ અને જવાહીરનાં દાનો બ્રાહ્મણોને આપ્યાં હતા તેમજ ચંદ્રપ્રભ પ્રભુનું પૂર્ણ ભક્તિવડે યજન કર્યું હતું એટલી નવીન હકીકત મુકે છે.[२७] આ હકીકત બીજા કોઈ યાત્રાવર્ણન કરનાર ગ્રંથકારે લીધી નથી. આથી પણ વસંતવિલાસમાં આલેખાયેલ યાત્રાવર્ણન ધર્માભ્યુદય વગેરે ગ્રન્થમાં જણા-

---

૨૩ જુઓ વસંત વિલાસ, સર્ગ ૧૦, શ્લોક ૫૮ થી ૮૩

૨૪ સુકૃત સંકીર્તન, શ્લોક ૧૨ થી ૪૨

૨૫ प्रेक्षणक्षणमथो विचक्षणस्तीर्थभर्तुरयमग्रतो व्यधात् ।
नर्तकीकुचतटत्रुटन्मणिस्रग्मणिप्रकरपुञ्जितावनी ॥ ८४ ॥
वसन्तविलास महाकाव्य, सर्ग. १०

२६ अंजाहराख्ये नगरे च पार्श्वपादानजापालनृपालपूज्यान् ।
अभ्यर्चयन्नेष पुरे च कोडीनारे स्फुरत्कीर्तिकदम्बमम्बाम् ॥ १२ ॥
धर्माभ्युदयमहाकाव्य, सर्ग १५

२७ वसंतविलास काव्य, सर्ग ११, श्लोक ७० थी ७२

વેલી યાત્રા કરતાં બીજી યાત્રાનું હોવાનું સૂચવે છે. ત્યાંથી સંઘ વામનસ્થલી (વંથળી) થઈ રૈવત (ગિરનાર) ગયો. બીજા કોઈ ગ્રન્થકારે પ્રભાસથી વામનસ્થળી સંઘ ગયાની હકીકત મુકી નથી જ્યારે ઉદયપ્રભે તેને વ્યવસ્થિતરીતે નોંધી છે. આથી ઉદયપ્રભનું વર્ણન કેટલું ચોકસાઈવાળું છે તે જોઈ શકાય છે.

સંઘાધિપતિ વસ્તુપાળે રૈવતકારોહણ કરી પોતાના પાપકલ્મષનો નાશ કરવા ગજેન્દ્રપદકુંડમાં સ્નાન કર્યું અને નેમિનાથ ભગવાનની વિવિધપ્રકારી પૂજા કરી અષ્ટાહ્નિકા મહોત્સવ રચ્યો. આ પ્રમાણે આઠ દિવસ સુધી સંઘેશ વસ્તુપાળે ગિરનાર ઉપર રહી પ્રસન્ન મનવડે પુષ્કળ દાનધર્મો કર્યા અને અંબા, પ્રદ્યુમ્ન, સાંબ વગેરે ટૂંકોની યાત્રા કરી ત્યાંના તીર્થદેવતાઓનો પૂજન, અર્ચન કરી સત્કાર કર્યો. પછી પોતે સંઘ સહ નીચે ઉતર્યા. પ્રભાસથી ગિરનાર તરફ આવતાં રૈવતકની તલેટીમાં તેજપાલે વસાવેલ તેજપાલપુરનું, કુમાર સરોવર, જે તેમણે જ બંધાવ્યું હતું ત્યાં વસ્તુપાળે આદિશ્વર ભગવાનનું પૂજન કર્યું એમ વસંતવિલાસ કાવ્યનો કર્તા જણાવે છે.[૨૮] ઉદયપ્રભસૂરિએ મહાધાર્મિક વસ્તુપાળની તીર્થયાત્રા અને તેના દાનપ્રવાહની શ્લાઘા કરતાં તેનું રસિક વર્ણન અહીં સર્વોત્કૃષ્ટ ભાષામાં ગુંથ્યું છે. તેમાં યાત્રાને એક પવિત્ર નદી સાથે તુલના કરતાં જેમ નદી પોતાના પ્રવાહ માર્ગમાં આવતાં પ્રાણીમાત્રનું કલ્યાણ સાધે છે તેમ આ મહાપુરૂષે પોતાના દાનપ્રવાહને અખંડરીતે ચાલુ રાખી જનસમાજનું પરમ કલ્યાણ સાધ્યું હતું એવો આશય વ્યક્ત કર્યો છે.[૨૯] યાત્રિકવર્ગને અનેક પ્રકારે સુખસાધનો આપતા અને આનંદ પ્રમોદ આપતા વસ્તુપાળ સંઘ સહ ધોળકા ગયા. ત્યાં તેમનું સન્માન કરવા તેજપાળ અને પૌરજનોની સાથે વિરધવલદેવે સામા જઈ જિનપ્રભુને નમસ્કાર કર્યા. વસ્તુપાળે ત્યાં જિનપ્રભુને રથમાંથી નીચે પધરાવી ભક્તિવડે પૂજન કર્યું અને સંઘને ભોજન, વસ્ત્રાદિકવડે સંતોષ આપ્યો.

વીરધવલે વસ્તુપાળને કુશળ વર્તમાન પુછી વિવેક દર્શાવ્યો. ઉદયપ્રભસૂરિયે આ યાત્રાનું વર્ણન થોડાક શબ્દોમાં સંપૂર્ણતઃ આપ્યું છે. તેમની લેખનશૈલી વિદ્વાન મનુષ્યોને પણ મોહ પમાડે છે, કારણ તેમાં કર્ણકટુતા કે શબ્દાડંબરની છાયા કોઈ પણ ઠેકાણે જોવામાં આવતી નથી. જે હકીકત રજુ કરાઈ છે તેમાં પૂરતી ચોકસાઈ અને પ્રામાણિકતા ઉપર ખાસ લક્ષ્ય આપ્યું છે. તેથી જ બીજા બધા યાત્રાવર્ણનો કરતાં ઉદયપ્રભનું યાત્રાવિવેચન વધુ પ્રામાણિક અને સન્માન્ય છે. આ ગ્રંથનું ધાર્મિક મહત્ત્વ અનેકગણું હશે પરંતુ ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ પણ તેનું મહત્ત્વ ઓછું નથી એમ કહેવું પડે છે.

આ તીર્થયાત્રાઓમાં કેટલાં મનુષ્યો, રથો, ગાડાંઓ, રક્ષકો, સુખાસનો અને ઈતિર જન સમુદાય વગેરે હતા તેની કેટલીક નોંધ જુદા જુદા ગ્રન્થોમાં જોવામાં આવે છે. યાત્રા વર્ણન આલેખનારા कीर्तिकौमुदी, सुकृतसंकीर्तन, वसंतविलास કે धर्माभ्युदय

---

૨૮ वसंतविलास काव्य, સર્ગ ૧૧, શ્લોક, ૭૩ થી ૭૬

૨૯ पुरः पुरः पूरयता पयांसि घनेन सान्निध्यकृता कृतीन्दुः।
स्वकीर्तिवन्नव्यनदी ददर्श ग्रीष्मेऽतिभीष्मेऽपि पदे पदेऽसौ ॥ २१ ॥
धर्माभ्युदय काव्य, सर्ग १५

ગ્રન્થના રચયિતાઓએ તે સંબંધી કાંઈ પણ નિર્દેશ કર્યો નથી પણ જિનપ્રભના તીર્થકલ્પમાં તથા પ્રબંધચિંતામણિ અને વસ્તુપાલ તેજપાલ રાસામાંથી તત્સંબંધી કેટલીક માહિતી ઉપલબ્ધ થશે. જો કે તેમાં કેટલું સત્ય સમાયેલું હશે તેનું પૃથક્કરણ કરવા પૂરતાં પ્રમાણો નથી છતાં તેમાં કેટલીક અતિશયોક્તિ હોવાનું ભાસે છે. પરંતુ તે સંબંધી નક્કર હકીકત જ્યાંસુધી પ્રાપ્ત ન થાય, ત્યાં સુધી તેને સત્ય માની લેવામાં વાંધો નથી એમ માની જેતે ગ્રન્થોમાંથી તેનાં સૂચનો અહીં રજુ કર્યાં છે. જિનપ્રભસૂરિ તીર્થકલ્પમાં તેનો નિર્દેશ કરતાં લખે છે કે "વસ્તુપાળની પ્રથમ તીર્થયાત્રામાં ૪૫૦૦ ગાડાં (શય્યાપાલકો સહિત), ૭૦૦ સુખાસનો, ૧૮૦૦ પાલખી, ૧૯૦૦ હાથી, ૨૧૦૦ શ્વેતાંબરો, ૧૧૦૦ દિગંબરો, ૪૫૦૦ જૈન ગાયકો અને ૩૩૦૦ બંદીજનો હતા.[३०] પ્રબંધચિંતામણિમાં ૫૫૦૦ વાહનો, ૨૧૦૦ શ્વેતાંબરો, ૧૦૦૦ ઘોડેસ્વારી રક્ષકો, ૭૦૦ ઊંટો અને સંઘરક્ષકાધિકારિ ચાર મહાસામંતો યાત્રામાં હતા એમ નોંધ્યું છે.[३१] જ્યારે વસ્તુપાલ તેજપાલ રાસામાં તેની આદશાહી સૂચી આપતાં સંવત ૧૨૭૩ અને ૧૨૮૫ ની યાત્રાઓના સંઘવર્ણનો રજુ કર્યાં છે તેમાં નીચે પ્રમાણે જનસમુદાય, સાહિત્ય, રક્ષકો અને વાહનોની નોંધ આપી છે.

	સંવત ૧૨૭૩માં	સંવત ૧૨૮૫માં
સેજવાળાં (વેલડીયો)	૫૫૦૦	૪૦૦૦
સુખાસન (સીઘરામ)	૭૦૦	૭૦૦
પાલખી	૫૦૦	૫૦૦
શ્રીકરણ (મહેતા)	૨૯૦૦	૦
ઘોડા	૪૦૦૦	૪૦૦૦
બળદ ઘુઘરમાળવાળા	૨૦૦૦	૦
ઊંટ	૦	૨૦૦
જૈન ગાયક	૪૮૪	૪૫૦
બંદીજન (ભાટચારણ)	૩૩૦૦	૩૩૦૦
વાદી (અન્યધર્મી)	૩૩૦૦	૦
ભટ્ટ	૭૦૦	૦
આચાર્ય	૭૦૦	૭૦૦
દિગંબર સાધુ	૧૧૦૦	૧૧૦૦
શ્વેતાંબર સાધુ	૨૧૦૦	૦
યતી	૦	૨૨૩૨

---

३० तत्र प्रथमयात्रायां चत्वारि सहस्राणि पंचशतानि शकटानां सशय्यापालकानां सप्तशती सुखासनानां अष्टादशशती वाहिनीनां एकोनविंशतिः शतानि श्रीकरीणां एकविंशतिः शतानि श्वेतांबराणां एकादशशती दिगम्बराणां चत्वारि शतानि सार्धानि जैनगायकानां त्रयस्त्रिंशच्छती बन्दीजनानाम् । **विविधतीर्थकल्पे** वस्तुपालतेजपालमंत्रिकल्प.

३१ सर्वसंवाहनानामर्धपंचमसहस्राणि, एकविंशतिशतानि श्वेतांबराणां, संघतद्रक्षाधिकारे सहस्रं तुरङ्गमाणां सप्तशती रक्तकरभीणां, संघरक्षाधिकारिणश्चत्वारो महासामन्ताः ।

प्रबंधचिंतामणि, पा. १६२. श्री दु. के. शास्त्री संपादित.

ગાડાં	૧૫૦૦		૪૫૦૦
વાહિની (ડોળી)	૧૦૦૦		૧૮૦૦
દાંતનાં સિંહાસન	૩૦૦	=રથમાં છે	૨૪
સાગનાં ,,	૧૨૦૦		૦
લાકડાનાં દહેરાં	૦		૧૨૦
સંઘવી	૪		૪
કુલમાણસ	૭૦૦૦૦૦		૭૦૦૦૦૦
કુલ ખરચ	૩૩૧૪૧૮૮૦૦		૨૯૮૦૨૦૯૦૭

આ ઉપરથી સંઘની ભવ્યતાનો કાંઈક ખ્યાલ આવી શકે છે.[૩૨] જો કે આ સૂચીમાં અતિશયોક્તિને અવકાશ છે પણ તેના ઉપરથી એટલું તો સમજી શકાય છે કે વસ્તુપાલે હજારો મનુષ્યોને સાથે લઈ પરમપુનિત જૈન તીર્થોની અનેક યાત્રાઓ ભારે દબદબાથી કરી હતી. આ સિવાય જિનહર્ષના वस्तुपाल चरित्रમાં પણ તેની યાત્રાનું વિગતવાર વર્ણન આપ્યું છે. આથી વસ્તુપાલની ધર્મભાવના, લોકકલ્યાણનો ઉચ્ચ આદર્શ અને મહાન ત્યાગ અપૂર્વ હતો એમ કહ્યા સિવાય ચાલે તેમ નથી. આજે પણ આવી સંઘ-યાત્રાઓ જૈન દાનવીરો કરે છે અને જગતને અદ્વિતીય ત્યાગ તથા ઉદાત્ત ધર્મભાવનાના પદાર્થપાઠો શીખવે છે.

वस्तुपालनां सुकृत कार्यो

વસ્તુપાલની કીર્તિ કેવા અદ્ભુત ગુણોને લઈને દિગંતવ્યાપી બની હતી તેનાં વિશિષ્ટ કારણો આ મહાનુભાવના ચરિત્રમાંથી જ્ઞાત થાય છે. તે નરશ્રેષ્ઠમાં વિદ્વત્તા, રાજ્યવ્યવહારની કુશળતા, વીરતા અને અદ્વિતીય ધર્મભાવના હતી પરંતુ તે બધા કરતાં તેને જગતમાં વધુ યશ અપાવનાર તેનાં દાનકાર્યો હતાં. તેના જેવો ઉદાર ધની ભૂતલે ફરીથી પાક્યો નથી. જુદા જુદા ગ્રંથોમાંથી તેનાં દાનકાર્યોના જે ઉલ્લેખો મળે છે તેથી તેની દાનભાવના જગતમાં અજોડ હતી એમ લાગ્યા વગર રહેતું નથી. કવિશ્રી સોમેશ્વરે તેના માટે સાદા શબ્દોમાં લખ્યું છે કે "વસ્તુપાલે અન્નદાન, જલપાન, અને ધર્મસ્થાનોથી પૃથ્વીને અને તે વડે પ્રાપ્ત થયેલ યશથી આકાશમંડળને ભરી દીધું છે."[૩૩] તેણે કરાવેલાં ધર્મસ્થાનો, મહાદાનો અને ધર્મકાર્યોની જુદી જુદી નોંધો सुकृतसंकीर्तन, कीर्तिकौमुदी, वसंतविलास, प्रबंधचिंतामणि, प्रबंधकोष, જિનહર્ષકૃત वस्तुपालचरित्र અને तीर्थकल्प વગેરે કેટલાય ઐતિહાસિક પ્રબંધો અને રાસાઓમાં આવેલી છે. તે બધામાં કેટલીક વધઘટ જોવામાં આવે છે. તેની સવિસ્તર યાદિ પૂરતા વિવેચનસાથે કરતાં એક સ્વતંત્ર નિબંધ થવા સંભવ છે. ઉદયપ્રભસૂરિએ આ મહાકાવ્યમાં પણ તેનાં કેટલાંક સુકૃત કાર્યોની નોંધ કરી છે, જેનું કેટલુંક વિવેચન અહીં કરવામાં આવ્યું છે.

---

૩૨ જુઓ કીર્તિકૌમુદીના સમશ્લોકી ગુજરાતી ભાષાંતરની પ્રસ્તાવનામાં સ્વ. વલ્લભજી આચાર્યે રજુ કરેલ वस्तुपाल तेजपाल रासाમાંની સંઘના સાહિત્યની સૂચિ, પ્રસ્તાવના, પા. ૨૭

૩૩ આ નિબંધની શરૂઆતમાં મુકેલો उपदेशतरंगिणीનો શ્લોક.

તે દાનશૂરે શત્રુંજય ઉપર આદિનાથ ભગવાનના મંદિર આગળ ઇંદ્રમંડપ બંધાવ્યો હતો જેની નોંધ આગળ પણ આપી ગયા છીએ. ગ્રંથકાર ફરીથી તેનો ઉલ્લેખ કરતાં તે મંડપની પાસે સ્તંભન પાર્શ્વનાથ અને ગિરનારના નેમિનાથ ભગવાનનાં મંદિરો બંધાવ્યાં હોવાનું જણાવે છે. આ જ હકીકતને ગ્રંથકારે પોતાના सुकृतकीर्ति-कल्लोलिनी કાવ્યમાં પણ મુકી છે.[૩૪] सुकृतसंकीर्तनકાર પણ આ બન્ને ગ્રંથોના કથનને પુષ્ટી આપે છે.[૩૫] वसंत विलास અને तीर्थकल्पમાં ધર્મસ્થાનો અને દેવ-મંદિરો બંધાવ્યાના મોઘમ ઉલ્લેખો છે; પણ કયે કયે સ્થળે, કેટલાં મંદિરો, કોનાં કોનાં બંધાવ્યાં હતાં તેની પૃથક્ પૃથક્ વિચારણા કરી નથી. આ ઇંદ્રમંડપમાં सुकृतकीर्ति-कल्लोलिनी નામક સંસ્કૃત કાવ્ય વિવિધ વૃત્તોમાં રચાયેલા ૧૭૯ શ્લોકોવાળું શિલો-ત્કીર્ણ કરવામાં આવ્યું હતું એમ કેટલાક ઉલ્લેખો ઉપરથી જણાય છે. ઉદયપ્રભસૂરિએ પણ આ મહાકાવ્યમાં ઇંદ્રમંડપમાં મુકવામાં આવેલી વસ્તુપાળની યશઃપ્રશસ્તિની પ્રશંસા રજુ કરતાં સુંદર શબ્દોમાં તેનો ઉલ્લેખ કર્યો છે.[૩૬] આ મંદિરમાં વસ્તુપાળે ગુરુ, પૂર્વજ, સંબંધિ, અને મિત્રની મૂર્તિઓ તેમ જ તે બન્ને ભ્રાતૃયુગલની અશ્વારૂઢ પ્રતિમાઓ બનાવી મુકી હતી. सुकृतकीर्तिकल्लोलिनीમાં ફક્ત તેનો ઉલ્લેખ જ છે જ્યારે सुकृतसंकीर्तनકાર તે બન્ને ભાઇઓ (વસ્તુપાળ–તેજપાળ)ની તથા વીરધવળની હાથી ઉપર બેઠેલી મૂર્તિઓ મુકી હતી એમ નોંધે છે.[૩૭] બન્નેના કથનમાં વધુ તફાવત નથી ફક્ત તેમાં ઘોડાને બદલે હાથી ઉપર હોવાની જણાવી છે. આ સિવાય प्रबंधचिंता-मणिમાંથી પણ ઇંદ્રમંડપ અને બીજાં વિવિધ ચૈત્યો બંધાવ્યાની તથા પોતાની અને ગુરુવગેરેની મૂર્તિઓ બેસાડ્યાની હકીકત મળી આવે છે.[૩૮] વસ્તુપાળે આ પવિત્ર તીર્થમાં ગિરનારની સાંબાદિટૂંકોના જેવી રચના કરાવી હતી. ત્યાં જિનમંદિરો ઉપર કલશો (શિખર કળશો) બેસાર્યા અને ઉપર્યુક્ત પ્રાસાદો ઉપર સુવર્ણ દંડો (ધ્વજ-દંડો) મુકવામાં આવ્યા હતા. આદીશ્વર ભગવાનના મંદિર ઉપર જ્ઞાન, દર્શન, અને

---

૩૪ व्यातन्वन्नमरेन्द्रमण्डपमयं श्रीरैवतस्तम्भना-
लङ्कारप्रभुनेमिपार्श्वसहितं तीर्थेऽत्र शत्रुञ्जये ।
प्राग्वाटान्वयवार्द्धिवर्धनविधुर्धात्रीशमन्त्रीश्वितो
श्लाघ्यः सङ्घपतिः सतां विजयते श्रीवस्तुपालोऽधुना ॥ १६७ सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी

३५ शत्रुञ्जयाद्रिमुकुटस्य पुरो जिनस्य तेनेन्द्रमण्डपमिदं तदकारि किञ्चित् ।
अप्येकवारमधिगम्य जना यदन्तर्जन्मान्तरेऽपि न भजन्ति कदापि तापम् ॥ १५
सुकृतसंकीर्तन, सर्ग ११

३६ श्रीवस्तुपालसचिवस्य परे कविन्द्राः कामं यशांसि कवयन्तु वयं तु नैव ।
येनेन्द्रमण्डपकृतोऽस्य यशःप्रशस्तिरस्त्येव शक्रहृदि शैलशिलाविशाले ॥
धर्माभ्युदय महाकाव्य, पंचमसर्गान्ते.

३७ मूर्तित्रयं हरिकरिस्थमपूरि तेजःपालस्य वीरधवलस्य तथात्मनोऽसौ ।
सन्नद्धमुक्कुरकलिप्रलयाय मूर्तमग्र्यं युगत्रयमिवात्र पवित्रदेशे ॥ १९
सुकृतसंकीर्तन, सर्ग ११

३८ नन्दीश्वरावतारे प्रासादान् इन्द्रमण्डपं च तन्मध्ये गजाधिरूढश्रीलवणप्रसादवीरधवल-मूर्तिः, तुरङ्गाधिरूढां निजमूर्ति तत्र सप्तपूर्वपुरुषमूर्तीः सप्तगुरुमूर्तीश्च । प्रबन्धचिन्ता० पृ. १६१

ચારિત્ર્યરૂપી મહારત્નનિધાન સરખા ત્રણ સુવર્ણકલશો મંત્રીશ્વરે મુકાવ્યા હતા. એ ઉપરાંત બે અતિમૂલ્યવાન તોરણો ત્યાં કરાવ્યાં હતાં.

શત્રુંજય પાસે આવેલું અર્કપાલિત (અંકેવાલિયા) ગામ જે રાણાક શ્રી વીરધવળની સત્તામાં હતું તે તેમની પાસેથી આ મંદિરોના પૂજનાર્ચનાર્થે અપાવ્યું. તેની નોંધ सुकृतकीर्तिकल्लोलिनीમાં પણ આપવામાં આવી છે. પરંતુ બીજા ગ્રન્થકારોએ તે સંબંધી કાંઈ પણ ઈસારો કર્યો નથી. વધુમાં ત્યાં અશ્વાવતાર મંદિર બંધાવી મુનિસુવ્રતની મૂર્તિ બેસાર્યાનું તથા પરબ બંધાવ્યાનું જણાવ્યું છે. જ્યારે सुकृतसंकीर्तनકાર ત્યાં તળાવ ખોદાવ્યાનું કહે છે. પાલિતાણામાં પોતાની સ્ત્રી લલિતાના નામ ઉપરથી લલિતા સરોવર બંધાવ્યું હોવાનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. તેની અલંકારપૂર્ણ ભાષામાં પ્રશંસા કરતાં કવિ કહે છે કે જાણે મંત્રીશની કીર્તિનો પ્રકાશ કરતું હોય તેવું આ સરોવર નિર્મળ જળ યુક્ત છે. આ સરોવરની નોંધ બધા ગ્રન્થકારોએ લીધી છે. આદીશ્વર ભગવાનની પાછળ સુવર્ણનું પૃષ્ઠપટ્ટ (પુંઠીયું) કરાવી અર્પણ કર્યું. શ્રીનાભિસૂનુ પ્રભુના પ્રાસાદમાં વસ્તુપાળે સુવર્ણતોરણ કરાવ્યું. ત્યાર બાદ કવિએ બન્ને મંત્રીવરોની કેટલીક યશગાથાઓ અલંકારપૂર્ણ ભાષામાં રજુ કરી છે. વસ્તુપાળે વસ્ત્રાપથના માર્ગમાં રહેલા તપસ્વિઓના શાસનોનો ઉદ્ધાર કરી તેમની પાસેથી લેવાતો કર માફ કર્યો અને તેમને પ્રસન્ન કર્યા. આ હકીકત પણ નવીન છે. બીજા કોઈ ગ્રન્થમાં તે જોવામાં આવતી નથી. છેવટમાં ગ્રન્થકર્તા વસ્તુપાળે શત્રુંજય ઉપર નંદીશ્વરતીર્થ અને અનુપમાસર બંધાવ્યાનો ઉલ્લેખ કરી યોગ્ય શબ્દોમાં પ્રશંસ્યું છે. વધૂમાં રૈવતકના તાપસોને ગામનું દાન કર્યાની હકીકત જણાવી તેનાં સુકૃતકાર્યોની નોંધ સમેટી લે છે. ઉપરોક્ત કથાનુસાર કવિ કેટલીક નવીન હકીકતો રજુ કરે છે. આથી કવિનું યાત્રાવર્ણન તેમજ ધર્મકાર્યોનું વર્ણન વધુ ચોકસાઈ વાળું હોવાનું જણાય છે. અંતમાં ગ્રંથકાર વસ્તુપાળની અને તેના દાનકાર્યોની યોગ્ય શબ્દોમાં પ્રશંસા કરી धर्माभ्युदय महाकाव्यनी ફલશ્રુતિમાં કહે છે કે વિશ્વાલંકૃત કરનાર અને ગુણરત્નોના ભંડારરૂપ આ સુવર્ણ રચિત સંઘાધીશ્વર ચરિત્ર સજ્જન પુરુષોના હૃદયમાનસમાં રહેલાં દુરિતોનો નાશ કરો એવો આદેશ આપી વિરમે છે.

उदयप्रभसूरि અને તેમના પૂર્વાચાર્યો

જે સાધુ પુરુષના પુનિત વચનામૃતોથી પવિત્ર બની વસ્તુપાળે મહાન દાનધર્મો કર્યા હતા તે મહાનુભાવ અને તેમના વિદ્વાન શિષ્ય ઉદયપ્રભસૂરિનો તે ગચ્છના પૂર્વાચાર્યોસાથે ટૂંક પરિચય આપ્યા સિવાય આ નિબંધ અપૂર્ણ જ લેખાય. તેથી તેમની યથાયોગ્ય પિછાન આપવા અહીં પ્રયત્ન કર્યો છે. આ ગ્રંથના રચયિતા મુનિવર્ય ઉદયપ્રભસૂરિ સુપ્રસિદ્ધ નાગેન્દ્ર ગચ્છના હતા. તેમણે પોતાના ગચ્છનો પૂર્વપરિચય આપતાં કહ્યું છે કે "નાગેન્દ્ર ગચ્છમાં શાંતિસુધાના કલશસમાન અને સંસારદ્રુમોન્મૂલન તત્ત્વાદેશ આપનાર મહેન્દ્રસૂરિ થયા. તેમના પટ્ટધર શ્રી શાંતિસૂરિ થયા જેમણે દિગંબરો ઉપર વિજય મેળવ્યો હતો. તેમના પછી નાગેન્દ્રગચ્છસિંહાસનાધિરૂઢ શમદમને ધારણ કરનાર આનંદસૂરિ અને અમરચંદ્રસૂરિ થયા. વાદિચક્રવર્તિ આ બન્ને સૂરિઓએ

સિદ્ધરાજની રાજસભામાં વાદિઓને પરાસ્ત કર્યા હતા. તેથી રાજાધિરાજ સિદ્ધરાજે તે બન્નેને व्याघ्रशिशुक અને सिंहशिशुक બિરુદો આપ્યાં હતાં.[३९] ઉદયપ્રભસૂરિ અને તેમના પૂર્વાચાર્યોનો આવો જ પરિચય सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी અને सुकृतसंकीर्तनમાં આપવામાં આવ્યો છે.[४०] આજ અમરચંદ્રે सिद्धांतार्णव નામક મહાગ્રન્થ રચ્યો હતો એવું અનુમાન છે. કારણ तत्त्वचिंतामणिમાં તાર્કિક ગંગેશ ઉપાધ્યાયે સિંહવ્યાઘ્ર लक्षणो મુક્યાં છે જે આ બન્ને માટે હશે એમ ડૉ. સતીશચંદ્ર વિદ્યાભૂષણ માને છે.[४१]

તેમની પછી ધર્મગાદી ઉપર શ્રીહરિભદ્રસૂરિ આરૂઢ થયા જે સચ્ચારિત્ર અને બીજા પ્રશસ્ય ગુણોને લઈ કલિકાલ ગૌતમથી ખ્યાતકીર્તિ થયા. તેમના શિષ્ય વિજયસેનસૂરિ થયા જે અગણિત ગુણોના ભંડાર સમાન અને વ્યાખ્યાન વાચસ્પતિ હતા. તેમના સદ્ધર્મે પ્રેરક વ્યાખ્યાનો માનવહૃદયને સચોટ અસર કરતાં. તેમની પુનિત પાવન વ્યાખ્યાનગંગા વનરાજવિહારતીર્થરૂપ અણહિલપુર પાટણના પંચાસર મંદિરમાં વહન કરતી હતી. આ મુનિરાજ વસ્તુપાળના પરમગુરુ હતા. વસ્તુપાળે કરેલાં દાનો, ધર્મકાર્યો અને યાત્રાઓની મુખ્ય પ્રેરણા ધર્મોદ્ધારક આ મહાન આચાર્ય પાસેથી જ મળી હતી એમ અનેક ગ્રન્થકારોયે નોંધ્યું છે. વસ્તુપાળે સ્થાપિત કરેલા કેટલાંક જિનબિંબોના સ્થાપક પણ આજ વિજયસેનસૂરિ હતા એમ તે બિંબોની નીચેની પ્રશસ્તિઓ ઉપરથી જ્ઞાત થાય છે.[४२] તેમણે કોઈ ગ્રન્થો લખ્યા હશે કે કેમ? તે સંબંધી વધુ માહિતી મળી શકી નથી. તેમના વિદ્વાન શિષ્ય ઉદયપ્રભસૂરિ થયા જે આ મહાકાવ્યના પ્રણેતા હતા. તેઓ ઉચ્ચ કોટીના વિદ્વાન હતા એમ તેમણે રચેલા અનેક ગ્રન્થો ઉપરથી માલમ પડે છે. આ મહાકાવ્ય તેમણે ગુરૂ શ્રીવિજયસેનસૂરિના આદેશથી રચ્યું હતું તેની સગર્વ નોંધ ગ્રન્થપ્રશસ્તિમાં લીધી છે.[४३] આ સિવાય શત્રુંજય યાત્રાનું વિવરણ કરતી ઐતિહાસિક હકીકતોથી સભર સંસ્કૃત કાવ્ય પ્રશસ્તિ

---

३९ अस्तावबाङ्मयपयोनिधिमन्दराद्रिमुद्राजुषोः किमनयोः स्तुमहे महिम्नः।
बाल्येऽपि निर्दलितवादिगजौ जगाद यौ व्याघ्र-सिंहशिशुकाविति सिद्धराजः ॥ ४
—धर्माभ्युदयकाव्य अंत्यप्रशस्ति।

४० (१) सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी, શ્લોક १५४ (ગા.ઓ.સી.ના हमीरमदमर्दन नाटकસાથે છપાયેલ)
(२) शैशवेऽपि मदमत्तवादविद्वारवारणनिवारणक्षमौ।
यौ जगाद जयसिंहभूपतिर्व्याघ्रसिंहशिशुकाविति स्वयम् ॥ २० ॥
सुकृतसंकीर्तन, सर्ग ४

४१ જુઓ 'જૈન સાહિત્યનો સંક્ષિપ્ત', ઇતિહાસ પા. २५०

४२ આબુના લૂણસિંહ વસહિકામાંની નેમિનાથ પ્રભુની સ્થાપના વિજયસેનસૂરિએ કરી હતી એમ તેની પ્રશસ્તિ ઉપરથી જણાય છે. જુઓ 'પ્રાચીન જૈન લેખ સંગ્રહ'માંની તેની પ્રશસ્તિ. તારંગા ઉપર વસ્તુપાળે અજિતસ્વામિ ચૈત્યમાં આદિનાથ ભગવાનના જિનબિંબનો ગોખલો બંધાવ્યો હતો તેમાં આદિનાથની પ્રતિષ્ઠા કરાવનાર વિજયસેનસૂરિ હતા એમ ત્યાંના સંવત १२८५ના શિલાલેખ ઉપરથી જણાય છે. જુઓ 'પ્રાચીન જૈન લેખસંગ્રહ'માં તે લેખ.

४३ इत्युक्त्वा गतयोस्तयोरथ पथो द्रष्टे प्रभातक्षणे,
विज्ञाप्य स्वगुरोः पुरः सविनयं नम्रीभवन्मौलिना।
प्राप्याऽऽदेशममुं प्रभोर्विरचयामासे समासेदुषा,
प्रागल्भीमुदयप्रभेण चरितं निस्यन्दरूपं गिराम् ॥ १२ ॥
धर्माभ्युदयमहाकाव्ये अंत्यप्रशस्ति।

सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी રચી છે. જેને શત્રુંજય ઉપર વસ્તુપાળે બંધાવેલ ઈંદ્રમંડપમાં શિલાપૃષ્ઠપર (પથ્થરમાં) કોતરવામાં આવી હતી. તે હકીકત આગળ પણ આપી ગયા છીએ. આ બન્ને ગ્રન્થો ઉપરાંત ઉદયપ્રભસૂરિએ જ્યોતિષ વિષયક आरंभसिद्धि ग्रंथ, संस्कृत नेमिनाथ चरित्र, षडशीति અને कर्मस्तव ઉપર ટિપ્પણ, धर्मदासगणीकृत उपदेशमाला ઉપર उपदेशमालाकर्णिका નામક ટીકા વગેરે ગ્રન્થો લખ્યા છે. આ મહાકાવ્ય તેમણે મલધારી ગચ્છીય નરચંદ્ર મુનિ પાસે સંશોધાવ્યું હતું, તેની નોંધ લઈ અંતમાં આ ધર્મસંહિતા ચિરકાળ સુધી વિદ્વજ્જનોના હૃદયકમળમાં ધર્મની સૌરભ પ્રકટાવો એવો આશિર્વાદ આપતાં સૂરિ શ્રી ગ્રન્થની ઇતિશ્રી કરે છે. આવી જ પ્રશસ્તિઓ આ ગ્રન્થકારે સ્વરચિત બીજા ગ્રન્થોમાં પણ મુકી હશે. પરંતુ તે બધા ગ્રંથો મેળવી તેની પૂરતી તપાસ કરવાનો લાભ મળી શક્યો નથી. અનુમાનથી લાગે છે કે તે બધામાં આવી જ હકીકતો જુદા જુદા સ્વરૂપે અલંકારપ્રચુર ભાષામાં ગુંથવામાં આવી હશે.

रचनाकाळ

આ ગ્રન્થ ક્યારે રચાયો તે માટે ગ્રન્થકારે કાંઈ પણ ઉલ્લેખ કર્યો નથી. વસ્તુપાળે શત્રુંજયની અનેક યાત્રાઓ કરી હતી તેમાં આ કઈ યાત્રાનું વર્ણન છે તે પણ સ્પષ્ટ નથી. પરંતુ આ ગ્રન્થ ક્યારે લખાયો તેની નોંધ ગ્રન્થ પ્રશસ્તિના અંતમાં લેવાઈ છે. તેમાં તે સંવત ૧૨૯૦ના ચૈત્ર સુદિ ૧૧ને વાર રવિના દિવસે સ્તંભતીર્થમાં (ખંભાતમાં) આ મહાકાવ્ય વસ્તુપાલે લખાવ્યું એવો સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ છે.[44] આથી આ ગ્રન્થ તે અગાઉ રચાયો હતો એમ ચોકસ લાગે છે. વસ્તુપાળની અનેક યાત્રાઓ કરતાં આ યાત્રાનું વર્ણન એક કરતાં વધુ વિદ્વાનોએ આલેખ્યું છે. તેથી બધી યાત્રાઓમાં આ તીર્થયાત્રા અનનુભૂત હશે તેમાં શંકા નહી, અર્થાત્ તે મહાયાત્રા હશે એમ માનું છું. प्रबंध चिंतामणिમાં વસ્તુપાળે મહાયાત્રાનો પ્રારંભ સંવત ૧૨૭૭માં કર્યો હતો એમ જણાવ્યું છે.[45] આ હકીકતને ગિરનારના સંવત ૧૨૯૩ના શિલાલેખથી પુષ્ટિ મળે છે તેમાં પણ વસ્તુપાળે સંવત ૧૨૭૭માં સંઘપતિ બની યાત્રા કર્યાનું સૂચવ્યું છે. આથી વસ્તુપાળે સંવત ૧૨૭૭માં મહાયાત્રા કરી હતી એમ લાગે છે. આ તીર્થયાત્રામાંથી આવ્યા બાદ થોડાક વખત પછી આ ગ્રન્થની રચના કરવામાં આવી હોવી જોઇએ એટલે તે સંવત ૧૨૭૭ થી ૯૦ સુધીમાં રચાઈ ગયો હતો એમાં શક નહી. અને તે પ્રમાણે धर्माभ्युदय काव्यની રચના સંવત ૧૨૭૯-૮૦માં થઈ હશે એવું અનુમાન થાય છે. આ અનુમાન કરવાનું ખાસ કારણ તેના માટે સીધે સીધા પ્રમાણોના અભાવને લઇને છે. છતાં તે ૧૨૯૦માં લખાયો હતો એવો સ્પષ્ટ પુરાવો મળતો હોવાથી તે વસ્તુપાળના સમકાળમાં સંવત ૧૨૯૦ પહેલાં રચાયો હતો એમ સ્પષ્ટ રીતે સાબીત થાય છે.

* * *

---

४४ सं० १२९० वर्षे चैत्र शु० ११ रवौ स्तम्भतीर्थवेलाकूलमनुपालयता महं० श्रीवस्तुपालेन श्रीधर्माभ्युदयमहाकाव्यपुस्तकमिदमलेखि ॥

४५ अथ सं० १२७७ वर्षे सरस्वतीकण्ठाभरणलघुभोजराजमहाकविमहामात्यश्रीवस्तुपालेन महायात्रा प्रारेभे ॥ —प्रबन्धचिन्तामणि, पा० १६२. श्री दु. के. शास्त्रि संपादित.

प्राचीन गुजराती साहित्यमां 'गुजरात'ना उल्लेखो

*

लेо — अध्याо भोगीलाल ज. सांडेसरा, एम. ए.

આપણા પ્રાન્તને અત્યારે સર્વસામાન્ય પ્રચારમાં છે તે 'ગુજરાત' નામ ક્યારે મળ્યું એ એક વિવાદાસ્પદ પ્રશ્ન છે. સંસ્કૃત અને પ્રાકૃત સાહિત્યમાં, શિલાલેખો અને તામ્રપત્રોમાં — અત્યારે મળતા પૂરાવાઓ જોતાં તો — નિરપવાદ રીતે, તેમ જ અપભ્રંશ અને પ્રારંભિક ગુજરાતીના સાહિત્યમાં સામાન્ય રીતે गूर्जरत्रामण्डल, गूर्जरत्राभूमि, गुज्जरत्ता, गुजरत्, गूर्जरत्रा, गूर्जरात्र, गुर्जराद्द, गुर्जरधरणि, गुज्जरदेश, गुर्जरभूमि, गुजरधर એવા જુદાં જુદાં નામો મળે છે. દશમા સૈકા સુધીના આરબ મુસાફરો 'જુર્ઝ' (Jurz) તથા 'જુઝ્ર' (Juzr) એવાં નામો આપે છે. અલબત, જે તે સ્થળોએ આ બધાં જ નામો અત્યારના ગુજરાતને અનુલક્ષીને આપવામાં આવ્યાં છે, એમ નથી. મૂળરાજ સોલંકીએ વિક્રમના દસમા સૈકાના અંતભાગમાં પાટણમાં પોતાનું રાજ્ય જમાવ્યું અને એ રાજ્યમાં 'જ્ઞાનસંસ્કારની પરબો' બેસાડવાનો પ્રયાસ કર્યો ત્યાર પહેલાંનું 'ગૂર્જરત્રામંડલ' હાલના ગુજરાતની ઉત્તરે ભિન્નમાલ તથા જયપુર પાસેના નારાયણની આસપાસ આવેલું હતું. વિક્રમના દશમા શતક સુધી હાલના મધ્ય ગુજરાત માટે ગુજરાત કે એને મળતું ગુર્જરત્રા કે ગુર્જરદેશ જેવું નામ પ્રચારમાં નહોતું આવ્યું, એમ શ્રી. દુર્ગાશંકર શાસ્ત્રી માને છે. અત્યારનું દક્ષિણ ગુજરાત અથવા લાટ તે પછી પણ ઘણા સમય સુધી તળ ગુજરાતથી ભિન્ન ગણાતું હતું. પણ ગુજરાતની સીમાઓમાં થએલાં આ ઐતિહાસિક પરિવર્તનો સાથે અત્યારે આપણને સંબંધ નથી. આપણા પ્રાન્તનું 'ગુજરાત' એ નામ કેટલું જૂનું છે, તે જ પ્રાપ્ત થતાં સાધનો ઉપરથી — ખાસ કરીને પ્રાચીન ગુજરાતી સાહિત્યમાંથી મળતા ઉલ્લેખોના પ્રકાશમાં — તપાસવાનો આ નિબંધનો ઉદ્દેશ છે.

સ્વ. નરસિંહરાવ દિવેટિયા એમના Gujarati Language and Literature (Wilson Philological Lectures), Vol. II, p. 193 માં આ વિષયની ચર્ચા કરતાં લખે છે:

"This much, however, is certain, that the name Gujarat did not come into free use till after the Mahomedan conquest; and the first riliable mention of that specific name for our province and our literature is to be found in the Kānhadade-Prabandh."

અર્થાત્ 'ગુજરાત' નામ મુસ્લીમ રાજ્યકાળ પહેલાં સર્વસાધારણ પ્રચારમાં નહોતું અને એ નામનો પહેલો વિશ્વાસપાત્ર પ્રયોગ આપણા સાહિત્યમાં 'કાન્હડદે પ્રબન્ધ'-માંથી મળે છે, એવો શ્રી. નરસિંહરાવનો મત છે. જો કે 'કાન્હડદે પ્રબન્ધ' પૂર્વેના 'સમરારાસ'માંથી તેમણે 'ગુજરાત'નો ઉલ્લેખ રજુ કર્યો છે (પૃ. ૧૯૭). આમ છતાં 'વસ્તુપાલ-તેજપાલરાસ' કે જે સંભવતઃ 'કાન્હડદે પ્રબન્ધ' કરતાં પણ અર્વાચીન

છે (બલ્કે કોઈ રીતે 'કાન્હડદે પ્રબન્ધ' કરતાં જૂનો તો નથી જ) અને તેમના પોતાનાજ મત મુજબ ઇસિવી સનના ચૌદમા સૈકાના ઉત્તરાર્ધથી જૂનો હોઈ શકે નહીં (પૃ. ૨૧), તેમાં મળતા 'ગુજરાત'ના ઉલ્લેખને તેઓ સૌથી જૂનો ઉલ્લેખ શી રીતે ગણે છે, એ બરાબર સમજાતું નથી.

શ્રી. નરસિંહરાવે તેમનાં વ્યાખ્યાનોમાં 'વસ્તુપાલ-તેજપાલ રાસ', 'સમરરાસ' અને 'કાન્હડદે પ્રબન્ધ'માંથી 'ગુજરાત'ના પ્રયોગો તારવી બતાવ્યા છે. આપણે આ તેમ જ આ ઉપરાંત નવા મળેલા સંખ્યાબંધ પ્રયોગો તપાસીશું.

કોઈ સંસ્કૃત શિલાલેખ કે તામ્રપત્રમાં અથવા સંસ્કૃત સાહિત્યમાં **'ગુજરાત'**નો ઉલ્લેખ મળતો નથી.[1]

પરન્તુ પરદેશી લેખકોનાં લખાણોમાંથી 'ગુજરાત'ના બે ઘણા જૂના તથા અગત્યના ઉલ્લેખો મળે છે. અલ બિરુની (ઈ. સ. ૯૭૦ થી ૧૦૩૧ – વિ. સં. ૧૦૨૬ થી ૧૦૮૭) એ હિન્દુસ્તાન વિષેના પોતાના અરબી ગ્રન્થમાં તેની પૂર્વેના કેટલાક મુસાફરોની જેમ 'જુજ' (Juzr) નહીં, પણ 'ગુજરાત' (Guzrāt) એવું નામ આપ્યું છે.[2] ગુજરાતની રાજધાનીનું શહર બઝાન અથવા નારાયણ હતું અને તે કનોજથી એંશી માઇલ અગ્નિખૂણે આવેલું છે, એમ તેણે કહ્યું છે. અલ બિરુનીના સમય પૂર્વે જ નારાયણ ભાંગી ગયું હતું, અને ત્યાંના વતનીઓ બીજે સ્થળે રહેવા ગયા હતા, એમ પણ જાણવા મળે છે. આ શહેર તે જયપુર પાસેનું નારાયણ છે, એમ સિદ્ધ થયું છે.[3] વિશેષમાં અલ બિરુનીએ નારાયણના નૈઋત્યખૂણે લગભગ ૨૪૦ માઇલ (૪૨ ફરસાખ) દૂર આવેલ અણહિલવાડનો તથા સૌરાષ્ટ્રના દરિયા કાંઠે આવેલા સોમનાથનો નિર્દેશ કર્યો

---

૧ 'નૈષધીયચરિત'ની નિર્ણયસાગરની આવૃત્તિના સંપાદક પં. શિવદત્ત શાસ્ત્રીએ પોતાની સંસ્કૃત પ્રસ્તાવનામાં "राजशेखरोऽपि स्वग्रन्थैकखण्डे प्रसङ्गतोऽवर्णयत्–'नैषधीयस्य प्रथमं पुस्तकं हरिहरो **गूजरातेति** ख्यातदेशं वीरधवलनामनि राजनि वसुमतीं शासत्यानयत्'।" (સાતમી આવૃત્તિની પ્રસ્તાવના, પૃ. ૯) એ પ્રમાણે લખ્યું છે. નરસિંહરાવભાઈએ આ અવતરણ લીધું છે (Vol. II, p. 197). રાજશેખરે પોતાનો 'પ્રબન્ધકોશ' સં. ૧૪૦૫માં રચ્યો છે, એટલે આમાંના 'ગુજરાત'ના પ્રયોગને તેમણે નિઃશંક રીતે એ કાળનો ગણ્યો છે. પણ વાસ્તવિક રીતે એમ નથી. રાજશેખરના ઉપર્યુક્ત ગ્રન્થમાં 'ગુજરાત' એવો પ્રયોગ તો કયાંય મળતો નથી. એમાંનો 'હરિહરપ્રબન્ધ' કે જેમાં 'નૈષધીયચરિત' ગુજરાતમાં લાવ્યાની વાત આવે છે તેમાં પણ श्रीहर्षवंशे हरिहरः गौडदेश्यः सिद्धसारस्वतः। स **गूर्जरधरां** प्रत्यचालीत्। એ પ્રમાણે 'ગૂર્જરધરા'નો પ્રયોગ માત્ર એકવાર મળે છે (ફા. ગુ. સભાની આવૃત્તિ, પૃ. ૧૧૯)–'ગુજરાત'નો નહીં. અર્થાત્ પં. શિવદત્તે પોતાની પ્રસ્તાવનામાં રાજશેખરમાંથી શબ્દશઃ અવતરણ આપ્યું નથી, પણ 'હરિહરપ્રબન્ધ'માંના તેના કથનનો પોતાની ભાષામાં માત્ર સારોદ્ધાર આપ્યો છે. એટલે એમાંનો 'ગુજરાત' શબ્દ રાજશેખરનો નહીં, પણ પં. શિવદત્તનો છે. 'ગર્ગસંહિતા'માં ગુર્જરાટ શબ્દનો પ્રયોગ મળે છે. જુઓ–प्रद्युम्नोऽथ महावीर्यो जित्वा माहिष्मतीपतिम्। विकर्षन् महतीं सेनां **गुर्जराटं** समाययौ॥ (ગર્ગસંહિતા, વિશ્વજિત્ ખંડ, ૭મો અધ્યાય, શ્લોક ૧) તથા **गुर्जराटाधिपं** वीरमृष्यनाम महाबलम्। जग्राह सेनया कार्ष्णिस्तुण्ड्याहिं यथा विराट्॥ (એ જ શ્લોક ૨). આમાંનો 'ગુર્જરાટ' શબ્દ એ લોકપ્રચલિત 'ગુજરાત' શબ્દનું સંસ્કૃત રૂપાન્તર છે એમાં શંકા નથી. આમ હોવા છતાં સંસ્કૃત સાહિત્યમાં 'ગુજરાત'નો પ્રયોગ મળતો નથી, એ મત અબાધિત રહે છે.

૨ Dr. Edward Sachau: Alberuni's India, Vol. I, p. 202

૩ Bombay Gazetteer, Vol. I, pt. I; p. 520

છે. તે લખે છે કે અણહિલવાડની દક્ષિણે લગભગ ૧૭૦ માઈલ (૪૨ ફરસાખ) લાટદેશ આવેલો છે, જેમાં ભરુચ (Bihroj) અને રાંદેર (Rihanjur) એ બે મુખ્ય શહેરો છે.[૪] આ વર્ણન બતાવી આપે છે કે વિક્રમના અગીયારમા સૈકાના પ્રારંભમાં ઓછામાં ઓછું અત્યારના ઉત્તર તથા મધ્ય ગુજરાતને તો ‘ગુજરાત’ નામ મળી ચૂક્યું હતું.[૫]

હવે પ્રાચીન ગુજરાતી સાહિત્યમાં ‘ગુજરાત’ના ઉલ્લેખો તપાસીએ.

૧. પાલ્હણકૃત ‘આબુરાસ’ (સં. ૧૨૮૯)

સૌથી જૂનો અને ઘણો જ મહત્ત્વનો ઉલ્લેખ સં. ૧૨૮૯માં પાલ્હણ નામે કવિએ લખેલ ‘આબુરાસ’નો છે.[૬] આબુ ઉપર મંત્રી વસ્તુપાલ-તેજપાલે સં. ૧૨૮૬માં બંધાવેલ સુપ્રસિદ્ધ મન્દિરો સંબંધી વૃત્તાન્ત ૫૫ કડીના આ ટૂંકા રાસમાં આપેલો છે. તેની ૧૧મી કડીમાં નીચે પ્રમાણે ‘ગુજરાત’નો પ્રયોગ છે–

सोळंकिय कुळ[७] संभमिउ सूरउ जगि जस वाउ ।
गूजरात धुर समुधरणु राणउ लूणपसाउ ॥

માર્કોપોલોથી કેટલાંક વર્ષ પૂર્વે આ રાસ રચાયેલો છે. પરદેશી મુસાફરની નોંધમાં તેમ જ પાલ્હણની આ કૃતિમાં ‘ગુજરાત’ નામ છે, તે એ શબ્દપ્રયોગની સારી એવી વ્યાપકતા પૂરવાર કરે છે. બીજું, ઉપલા અવતરણમાં ધોળકાના રાણા લવણપ્રસાદને ગુજરાતના ઉદ્ધારક તરીકે વર્ણવ્યો છે, એ પણ બતાવે છે કે હવે માત્ર ઉત્તર ગુજરાત નહીં, પણ આખો પ્રાન્ત ‘ગુજરાત’ તરીકે ઓળખાતો હતો.

વળી એ જ રાસમાંથી ‘ગુજ્જર દેસ’ પ્રયોગ પણ મળે છે–

गूजरदेसह मज्झि पहाणं, चंद्रावती नयरि वक्खाणं ।
वावि सरोवर सुरहि सुणीजइ, बहु यारामिहि ऊपम दीजइ ॥ २ ॥

ગુજરાતીની પ્રાચીનતમ રાસકૃતિઓ સં. ૧૨૪૧માં રચાયેલ શાલિભદ્રસૂરિકૃત ‘ભરતેશ્વર બાહુબલી રાસ’ તથા એ અરસામાં લખાયેલ એ જ કવિનો ‘બુદ્ધિરાસ’ છે. એ જોતાં સં. ૧૨૮૯નો ‘આબુરાસ’ તથા તેમાંનો ‘ગુજરાત’નો ઉલ્લેખ ખાસ મહત્ત્વનાં લેખાવાં જોઈએ.

---

૪ Dr. Edward Sachau: Alberuni's India, Vol. I, p. 205

૫ Linguistic Survey of India, Vol. IX, pt. II, p. 333

૬ કલકત્તાની રાજસ્થાન રિસર્ચ સોસાયટીના હિન્દી મુખપત્ર ‘રાજસ્થાની’ના ભાગ ૩, અંક ૧માં આ રાસ છપાયેલ છે. તેની ૫૪મી કડીમાં નીચે પ્રમાણે રચ્યા સાલ છે–

बार संवच्छरि नवमासीए वसंतमासु रंभाउलु दीहे ।
एहु रासु विसतारिहिं जाए, राखइ सयलसंघ अंबाए ॥

કર્તાનું નામ ૫૩મી કડીના ઉત્તરાર્ધમાં છે–

केवि चडावळि नेमि नमीजइ, ए सु-वयणु **पाल्हण** पुज कीजइ ॥

૭ રાસની મુદ્રિત આવૃત્તિમાં અહીં તથા બીજે સ્થળે ळ છાપેલો છે, તેથી મૂળ હાથપ્રતમાં ळ લખેલો છે, એમ સમજવાનું નથી. ‘રાજસ્થાની’ના ઉપર્યુક્ત અંકમાં છપાયેલા ‘રાજસ્થાની વર્ણમાલા’ નામના લેખમાં “ळ-ऌ=ल का मूर्धन्य उच्चारण (जो गुजराती मराठी आदिमें है)” એમ જણાવેલું છે. એટલે આ સ્થળોએ હાથપ્રતમાં ळ હોવો જોઈએ, જેને સંપાદકો ळ અથવા ऌ તરીકે છાપે છે.

૩.૧.૧૩.

૨. રાણકદેવીના દૂહા (સં. ૧૨૯૦ પહેલાં)

બીજો એટલો જ અગત્યનો ઉલ્લેખ, સિંઘી જૈન ગ્રન્થમાલામાં પ્રસિદ્ધ થયેલ 'પુરાતન પ્રબન્ધસંગ્રહ'માંથી મળે છે. જુદી જુદી હસ્તલિખિત પોથીઓ ઉપરથી સંકલિત કરવામાં આવેલા આ પ્રબન્ધસંગ્રહમાં, પૃ. ૩૪ ઉપર P सङ्ग्रहे सोनलवाक्यानि । એ શીર્ષક નીચે, ष(ख)ङ्गारे जीर्णदुर्गाधिपतौ उदयनेन हते तत्प्रिया सोनलदेवी जगाद – એટલી પ્રસ્તાવના સહિત અગીઆર પ્રાચીન ગુજરાતી દૂહાઓ છે. 'પ્રબન્ધચિન્તામણિ'માં જૂનાગઢનો રાજા નવઘણ મરણ પામતાં તેની શોકાકુલ રાણીના મુખમાં જે દૂહાઓ મૂકવામાં આવ્યા છે તેમાંના કેટલાક એમાં છે. જનસમાજમાં તેમ લોકસાહિત્યમાં એ દૂહાઓ આજે પણ – અલબત અર્વાચીન ભાષામાં – 'રાણકદેવીના દૂહા' તરીકે પ્રસિદ્ધ છે. 'પુરાતન પ્રબન્ધસંગ્રહ'માં પૃ. ૩૫ ઉપર ૧૦૯મા પદ્ય તરીકે જે દૂહો છપાયો છે તેમાં 'ગુજરાત'નો પ્રયોગ છે –

> वलि गुरूआ गिरनार, दीठ्ठू नीझरणे झरइ ।
> बापुडली गुजरात[८] पाणीहइ पहुरउ पडइ ॥

આ જ દૂહાનો આશય અત્યારે જનસમાજમાં પ્રચલિત રાણકદેવીના દૂહામાં કંઈક પ્રકારાન્તરે મળે છે. જુઓ –

> સરવો સોરઠ દેશ, જ્યાં સાવજડાં સેજળ પીએ;
> મારુ પાટણ દેશ, જ્યાં પાણી વિના પોરા મરે.

ઉપર્યુક્ત 'પુરાતન પ્રબન્ધસંગ્રહ'માંના પ્રબન્ધો જુદી જુદી પાંચ હાથપ્રતોમાંથી મળતા વ્યવસ્થિત એકીકરણ છે. એમાંની P સંજ્ઞક હાથપ્રતના અંતિમ પૃષ્ઠ ઉપર, આગળ જણાવેલા દૂહાઓ, કુમારપાલ રાજ્યપ્રાપ્તિપ્રબન્ધ તથા બીજું એક દૃષ્ટાન્ત લખેલું છે. એ જ પૃષ્ઠ ઉપર મૂળ ગ્રન્થકારનો ઉલ્લેખ નીચે પ્રમાણે છે –

> सिरिवत्थुपालनंदणमंतीसरजयतसिंहभणणत्थं ।
> नागिंदगच्छमंडणउदयप्पहसूरिसीसेणं ॥
> जिणभद्देण य विक्कमकालाउ नवइ अहियबारसए ।
> नाणाकहाणपहाणा एस पबंधावली रईआ ॥

અર્થાત્ શ્રીવસ્તુપાલના પુત્ર જયંતસિંહના પઠન અર્થે નાગેન્દ્ર ગચ્છના ઉદયપ્રભસૂરિના શિષ્ય જિનભદ્રે સં ૧૨૯૦માં વિવિધ કથાનકપ્રધાન આ પ્રબન્ધાવલીની રચના કરી. જો કે એ કૃતિમાં સં. ૧૨૯૦ પછી બનેલી ઘટનાઓનું જેમાં વર્ણન આવે છે એવા કેટલાક પ્રબન્ધો પાછળથી કોઈએ દાખલ કરી દીધા છે; પરન્તુ એ સિવાયનો બાકીનો ભાગ જિનભદ્રની કૃતિ માનવામાં કોઈ પણ બાધ નથી, એમ સંપાદક મુનિશ્રી જિનવિજયજીનો મત છે.

ટૂંકમાં, P सङ्ग्रहे सोनलवाक्यानि એ શીર્ષક નીચેના પ્રાચીન ગુજરાતી દૂહાઓ સં. ૧૨૯૦માં જિનભદ્રે કરેલી સંકલનાનો જ એક ભાગ છે. મારા માનવા મુજબ, એ દૂહાઓનો સમય વાસ્તવિક રીતે તો સં. ૧૨૯૦ પૂર્વેનો ગણવો જોઈએ. મેરુતુંગાચાર્યે

---

૮ અહીં 'ગુજરાત' સ્ત્રીલિંગમાં છે. આ વિષયની વધુ ચર્ચા માટે આગળ જુઓ.

સં. ૧૩૬૧માં 'પ્રબન્ધચિન્તામણિ' લખ્યો તેમાં રાણકદેવીના દૂહા મળે છે; પણ સૌ કોઈ સ્વીકારે છે કે એ દૂહાઓ લોકસાહિત્યમાં તો એ પૂર્વે પ્રચલિત હોવા જોઈએ. હવે એ જ દૂહા સં. ૧૨૯૦ની આ જિનભદ્રની કૃતિમાં ઉદ્ધૃત થયેલા મળે છે, એટલે ત્યાર પહેલાં લોકજીભે ચઢ્યા હોવા જોઈએ. સિદ્ધરાજે સોરઠ ઉપર સં. ૧૧૭૦માં વિજય મેળવ્યો હતો, એ સિદ્ધ હકીકત છે, એટલે ત્યાર પછીનાં વર્ષોમાં લોકકવિઓએ આ દૂહાઓ જનતામાં વહેતા મૂક્યા હશે. એટલે શતાબ્દીઓ થયાં ગુજરાતે પોતાની સ્મૃતિમાં જાળવી રાખેલા આ માર્મિક શોકકવિતાનો સમય વિક્રમના તેરમા સૈકાના આરંભમાં માનીએ તો જરાયે વધારે પડતું નથી. એ જોતાં, ઉપર ટાંકેલો 'ગુજરાત'નો ઉલ્લેખ પણ એ સમયનો ગણવો જોઈએ. આમ 'ગુજરાત'નો આ પ્રયોગ સં. ૧૨૮૯ના 'આબુરાસ'ની પૂર્વેનો છે. સં. ૧૨૯૦માં રચાયેલા ગ્રન્થમાંથી તે મળે છે માટે જ તેને 'આબુરાસ'ની પછી મૂક્યો છે. સાહિત્યમાં 'ગુજરાત'નો પ્રયોગ થવા લાગ્યો ત્યાર પહેલાં એ નામ લોકસમાજમાં પ્રચલિત થઈ ચૂકેલું, તેનો આ પણ એક પૂરાવો છે.

૩. પ્રભાચન્દ્રસૂરિકૃત 'પ્રભાવકચરિત' (સં. ૧૩૩૪)

'ગુજરાત'નો ત્રીજો મહત્ત્વનો ઉલ્લેખ પ્રભાચન્દ્રસૂરિકૃત 'પ્રભાવકચરિત'માં મળે છે. ગુજરાતના મધ્યકાલીન સાંસ્કૃતિક ઇતિહાસ માટે અતિ મહત્ત્વનો આ ઐતિહાસિક સંસ્કૃત ચરિત્ર ગ્રન્થ સં. ૧૩૩૪માં એટલે કે સારંગદેવ વાઘેલાના રાજ્યકાળમાં રચાયેલ છે. એમાં 'બપ્પભટ્ટિસૂરિચરિત'માં કનોજનો આમ રાજા બપ્પભટ્ટિસૂરિના ચારિત્ર્યની પરીક્ષા કરવા માટે તેમના ઉપાશ્રયમાં એક ગણિકાને મોકલે છે. પરન્તુ ગણિકાને આ કાર્યમાં નિષ્ફળતા સાંપડતાં તે રાજા પાસે આવીને નીચે પ્રમાણે એક અપભ્રંશ દૂહો બોલે છે :

> गयवर केरइ सत्थरइ पाय पसारिउ सुत्त ।
> निच्चोरि गुजरात[९] जिम्व नाह न केणइ भुत्त ॥

અર્થાત્ ગજવર (બપ્પભટ્ટિસૂરિનું 'ગજવર' એવું બિરુદ હતું)ના સાથરામાં પગ પસારીને સુતેલા તે નાથ નિચ્ચોરી (?) ગુજરાતની જેમ કોઈનાથી ભોગવાયા નહીં.

આ ઉલ્લેખ સં. ૧૩૩૪નો એટલે કે ગુજરાતના સ્વતંત્ર હિન્દુ રાજ્યનો અંત આવ્યો તે સમયથી ૨૬ વર્ષ પૂર્વેનો છે. વળી 'પ્રભાવકચરિત'ના મંગલાચરણમાં જ તેના કર્તા પ્રભાચન્દ્રસૂરિ લખે છે કે 'બહુશ્રુત મુનિઓ પાસેથી સાંભળીને તેમ જ પ્રાચીન ગ્રન્થોમાંથી એકત્ર કરીને આ ઇતિવૃત્તો હું વર્ણવું છું.' અર્થાત્ સંસ્કૃત ગ્રન્થમાં ઉતારેલો આ અપભ્રંશ દૂહો સં. ૧૩૩૪ પૂર્વેનો જ છે એમાં શંકા રહેતી નથી. સંસ્કૃત કાવ્યો કે પ્રબન્ધોમાં લોકોક્તિરૂપ અપભ્રંશ કે જૂના ગુજરાતી દૂહાઓ આપવાની એક જૂની પરંપરા જૈન સાહિત્યમાં છે. બપ્પભટ્ટિસૂરિનો જીવનકાળ 'પ્રભાવકચરિત'માં જણાવ્યા પ્રમાણે વિક્રમની નવમી શતાબ્દી છે. આ દૂહો પણ તેના મૂળ સ્વરૂપે એટલે પ્રાચીન હશે કે કેમ એ કહેવું મુશ્કેલ છે, પણ 'પ્રભાવકચરિત'ના રચના સમયથી ઘણા કાળ

---

૯ અહીં પણ 'ગુજરાત' સ્ત્રીલિંગમાં છે. આ વિષયની વધુ ચર્ચા માટે આગળ જુઓ.

પૂર્વે તે દૂહો લોકોમાં–ખાસ કરીને પ્રભાચન્દ્રસૂરિ જેમનો નિર્દેશ કરે છે તેવા 'બહુશ્રુત મુનિઓ'માં પ્રચલિત થઈ ચૂક્યો હશે એમાં શંકા નથી.

૪. અંબદેવસૂરિકૃત 'સમરરાસ' (સં. ૧૩૭૧)

આ પછી, સં. ૧૩૭૧માં લખાયેલો અંબદેવસૂરિકૃત 'સમરરાસ' આવે છે. શ્રી. ચિમનલાલ દલાલ સંપાદિત 'પ્રાચીન ગૂર્જર કાવ્યસંગ્રહ'માં તે છપાયો છે. શ્રી. નરસિંહરાવે તેમનાં વ્યાખ્યાનોના બીજા ભાગમાં (પૃ. ૧૯૭) આ રાસની રચ્યાસાલ સં. ૧૪૭૧ આપી છે, તે શરત ચૂક લાગે છે.

સં. ૧૩૬૯માં પાટણના સુબા અલફખાને શત્રુંજય ઉપરના મંત્રી બાહડે બંધાવેલા જૈન મન્દિરને તોડી નાંખ્યું હતું. આથી પાટણના એક ધનિક ઓસવાલ સમરસિંહે અલફખાન પાસે જઈ જૈન સંઘની લાગણી દર્શાવી, તથા બીજાં દેવસ્થાનોને ભ્રષ્ટ કરવામાં ન આવે એ માટેનું ફરમાન કઢાવ્યું. સમરસિંહે શત્રુંજયના મન્દિરનો જીર્ણોદ્ધાર કરવાની પરવાનગી મેળવી એ વર્ષમાં તેનો જીર્ણોદ્ધાર કરાવ્યો તથા પાટણથી એક મોટો સંઘ લઈ તે શત્રુંજય ગયો તથા ત્યાંનાં મન્દિર અને મૂર્તિની પ્રતિષ્ઠા કરી, એ ઐતિહાસિક પ્રસંગ આ કાવ્યમાં વર્ણવેલો છે. તેની બારમી ભાષાની ચોથી કડીમાં નીચે પ્રમાણે 'ગુજરાત'નો ઉલ્લેખ છે–

सोहग ऊपरि मंजरिय बीजीय सेत्रुजि उधारि ।
......ठिय ए समरऊ ए समरउ ए आविउ गुजरात ॥

અહીં ગુજરાતનો પ્રયોગ સોરઠ સંબંધી વર્ણન કરતાં થયેલો છે, એ ખાસ નોંધ માગી લે છે.

૫. ધર્મકલશમુનિકૃત 'જિનકુશલસૂરિ–પટ્ટાભિષેકરાસ' (સં. ૧૩૭૭)

આ પછી ધર્મકલશમુનિકૃત 'જિનકુશલસૂરિ–પટ્ટાભિષેકરાસ' આવે છે. શ્રી. અગરચંદ નાહટા તથા ભઁવરલાલ નાહટા સંપાદિત 'ઐતિહાસિક જૈન કાવ્યસંગ્રહ'માં આ રાસ પ્રસિદ્ધ થયેલો છે. ખરતર ગચ્છના મહાન પ્રભાવક આચાર્ય જિનકુશલસૂરિ (જેમનું દીક્ષિત નામ કુશલકીર્ત્તિ હતું)નો પટ્ટાભિષેક મહોત્સવ પાટણમાં સં. ૧૩૭૭ના જ્યેષ્ઠ વદ અગીઆરના દિવસે ઓસવાલ શેઠ તેજપાલ તથા તેના ભાઈ રુદ્રપાલે ભારે ધામધૂમથી કરાવ્યો હતો અને પદસ્થાપના રાજેન્દ્રચન્દ્રસૂરિના હસ્તે કરવામાં આવી હતી, એ પ્રસંગનું વિસ્તૃત અને છટાદાર વર્ણન આ કાવ્યમાં છે. જૈન ગૂર્જર સાહિત્યમાં આ પ્રકારનાં સંખ્યાબંધ કાવ્યો લખાયેલાં છે. સામાન્ય રીતે આવાં કાવ્યો જે તે પ્રસંગ વીતી ગયા પછી તુરત જ, ઘણુંખરું તો એ પ્રસંગ નજરે જોનાર કવિની કલમે જ લખાય છે; એટલે આ પટ્ટાભિષેક–રાસ પણ ધર્મકલશે સં. ૧૩૭૭માં અથવા તે પછી તુરત જ રચ્યો હશે, એમ માનવું યોગ્ય છે.

આ કાવ્યની આવીસમી કડીમાં નીચે પ્રમાણે 'ગુજરાત'નો પ્રયોગ છે–

सयल संघह सयल संघह केलि आवासु ।
अणहिलपुर वर नयर गुजरातधरमुखह मंडणु ।
देसदेसंतरि वहि मिलिय सयल संघ वरिसंत जिम घणु ।

पाट धुरंधर संठविउ, मिलिय मिलावइ भूरि ।
संघ महोछव कारावइ वाजंतइ वणतूरि ॥

૬. ભાષાઓનાં પ્રાચીન ઉદાહરણ (૧૫મા સૈકા પહેલાં)

કલકત્તાના 'રાજસ્થાની' ત્રૈમાસિકના ભાગ ૩, અંક ૩માં भाषाओंके चार प्राचीन उदाहरण એ શીર્ષક નીચે એક રસિક અને મનોરંજક પ્રાચીન ગદ્યપદ્યાત્મક કૃતિ છપાયેલ છે. ગુજરાત, માળવા, પૂર્વ અને મહારાષ્ટ્ર એમ ચાર પ્રદેશની સ્ત્રીઓ શત્રુંજય ઉપર ઋષભનાથના મન્દિરમાં ભેગી થાય છે અને પોતપોતાની ભાષામાં વાતચીત કરે છે.[10] આ કૃતિમાં રચ્યાસાલ નથી, પણ તેની હાથપ્રત વિક્રમના ચૌદમા સૈકાના ઉત્તરાર્ધમાં 'વિવિધતીર્થકલ્પ' લખનાર જિનપ્રભસૂરિના શિષ્યના હાથે લખાયેલ છે, આથી આ હાથપ્રતનો સમય વિક્રમના પંદરમા સૈકાના પહેલા પાદ કરતાં અર્વાચીન હોઈ શકે નહીં; અને કૃતિ પોતે તો એનાથી જૂની જ હોવી ઘટે.[11] આ કૃતિમાં 'ગુજરાત'ના ત્રણ પ્રયોગ મળે છે, જેમાંના પહેલા બે ગુજરાતણની ભાષામાં અને ત્રીજો મરાઠણની ભાષામાં છે.

(१-२) त प्रथमां चानवा गूजरी नायका भणइ । अहे बाइ एहु तुम्हारउ देसु कवण लेखामाहि गणियइ । किसउ देसु गुजरातु,[12] सांभलि माहरी वात । ××× अनि किसउ घणउं भणियइ माहरी माइ एहु देसु गुजराति[12] छाडी करि अनइ देसि किसी परि मनु जाइ ।

(३) तरि भाविक जन तं पुच्छसि मइं अनिक देस देशांतर चातुर्दिशा मागु मया देखुणी । ××× तरिया इकि नहीं सामिन पुरि सतरि सहस्र गुजरातचा सीतरि गिरि सेत्तुज्जंचा ऊपरि ।

૭. દેવપ્રભગણિકૃત 'કુમારપાલરાસ' (૧૫મા સૈકાનો પૂર્વાર્ધ)

આ પછીનો ઉલ્લેખ દેવપ્રભગણિકૃત 'કુમારપાલરાસ'નો છે. આ રાસ મારા તરફથી 'ભારતીય વિદ્યા' ત્રૈમાસિકના પુ. ૨, અંક ૩માં છપાયો છે. ૪૧ રોળામાં છપાયેલા

---

૧૦ જુઓ–

गुज्जरि तह मालविणी पूरविणी तह य चैव मरहट्ठी ।
संपत्ता इय नारी सित्तुज्जे रिसह भवणंमि ॥
× × × ×
हंसजुयल कोमल कमलि जिम सरि बुल्लइ सारसी ॥
तिम रमणि मिक्खि जिणवर भवणि निय निय बुल्लइ पारसी ॥

૧૧ આ માહિતી 'રાજસ્થાની'માં આપેલી નથી, પણ પુરાવિદ્ મુનિશ્રી જિનવિજયજીએ મને અંગત વાતચીતમાં આપી હતી. વિક્રમના ચૌદમા સૈકાના આરંભમાં લખાયેલી આવી એક ભાષાની હાથપ્રત તેઓશ્રીની પાસે છે તેમાં તથા એ જ અરસામાં લખાયેલી બીજી એક કૃતિમાં 'ગુજરાત'નો પ્રયોગ છે; પરન્તુ આ લેખ તૈયાર થયો ત્યાં સુધીમાં એ ઉલ્લેખો પ્રાપ્ત કરવાનો સુયોગ મળ્યો નથી, તેથી તેની માત્ર અહીં નોંધ કરી છે. ઉપર્યુક્ત મહત્ત્વના ઉલ્લેખો પ્રત્યે ધ્યાન ખેંચવા માટે હું મુનિજીનો આભારી છું.

૧૨–૧૨ આ બન્ને સ્થળે 'ગુજરાત' શબ્દ પુલ્લિંગમાં છે, એ તેને 'દેશ' તરીકે વર્ણવવામાં આવ્યો છે તેને આભારી છે. 'ગુજરાત'ના લિંગ વિષે વધુ ચર્ચા આગળ કરી છે.

આ ટૂંકા કાવ્યમાં કુમારપાલે પ્રવર્તાવેલી અમારિઘોષણા તથા તેણે કાઢેલા શત્રુંજયના સંઘનું વર્ણન છે. રાસના અંતે કવિ રચ્યાસંવત આપતો નથી, પણ પોતાને સોમતિલકસૂરિના શિષ્ય તરીકે ઓળખાવે છે. હવે સોમતિલકસૂરિ સં. ૧૪૨૪ સુધી વિદ્યમાન હતા. સં. ૧૪૩૬ની એક ગ્રન્થપ્રશસ્તિમાં સોમતિલકસૂરિના શિષ્યસમુદાયમાં 'મુગ્ધાવબોધ ઔક્તિક'કાર કુલમંડનની સાથે દેવપ્રભનું નામ મળે છે. એટલે વિક્રમના પંદરમા શતકના પૂર્વાર્ધમાં આ કાવ્ય રચાયાનું સિદ્ધ થાય છે. એ કાવ્યની ત્રેવીસમી કડી નીચે પ્રમાણે છે–

मंत्रीय मोकली देसि देसि बहु संघ मेलावइ,
धामी बहु आसीस दिइं, राउ जात चलावइ ।
देसविदेसह मिलिय संघ पहुतउ गूजरात,
बाहुड मंत्री वीनवइ ए सुणि स्वामी वात ॥

૮. જયશેખરસૂરિકૃત 'ત્રિભુવનદીપકપ્રબન્ધ' (૧૫મા શતકનો ઉત્તરાર્ધ)

'ઉપદેશચિન્તામણિ', 'ધમ્મિલચરિત', 'જૈન કુમારસંભવ' આદિ સંસ્કૃત ગ્રન્થોના કર્તા અંચલગચ્છીય જયશેખરસૂરિએ સં. ૧૪૬૨માં 'પ્રબોધચિન્તામણિ' નામે એક સુન્દર રૂપકગ્રન્થની સંસ્કૃતમાં રચના કરી છે. એ પછી એના વસ્તુમાં નહીં જેવા ફેરફારો કરી તેમણે ગુજરાતીમાં 'ત્રિભુવનદીપકપ્રબન્ધ'[૧૩] નામથી અત્યંત છટાદાર અને પ્રાસાદિક કાવ્ય રચ્યું છે. એટલે એ કાવ્ય સં. ૧૪૬૨ પછી થોડા સમયમાં રચાયું હોવું જોઈએ. ચોક્કસ વર્ષ કવિએ આપ્યું નથી. 'ત્રિભુવનદીપકપ્રબન્ધ'ની ૧૧૬મી કડીમાં નીચે મુજબ 'ગુજરાત'નો ઉલ્લેખ મળે છે–

कर्मवसिं जीव चिहुगति फिरइ, पितर तणउं तिहां तर्पण करइ ।
गंगातडि जल ऊरेवीइं, गूजरात तिहां आंबा पीइं ॥[१४]

૯. હીરાણંદસૂરિકૃત 'વસ્તુપાલરાસ' (સં. ૧૪૮૫)

પ્રસિદ્ધ 'વિદ્યાવિલાસ પવાડા'ના કર્તા હીરાણંદસૂરિએ સં. ૧૪૮૫માં 'વસ્તુપાલરાસ' રચ્યો છે. તેમાં વસ્તુપાલે કરેલી શત્રુંજયની તીર્થયાત્રાના સંબંધમાં જુદા જુદા દેશોનાં નામ ગણાવ્યાં છે, ત્યાં નીચે પ્રમાણે 'ગુજરાત'નો ઉલ્લેખ પણ મળે છે–

इसउ एक श्रीशत्रुंजयतणउ विचारु, महिमानउ भंडारु, मंत्रीश्वरि मनमाहि जाणी, उल्लरंग आणी, यात्रा उपरि उद्यम कीधउ, पुण्यप्रसाद तेहनउ मनोरथ सीधउ । हिव अंग वंग तिलंग कलिंग......मरुस्थल लाड मेयवाड गूजरात पारिजात सिंधुजात...... मालव मरहठ सोरठ कासी कुंकण पंचाल बंगाल प्रमुख एवंविह देसना चतुर्विध श्रीश्रमणसंघ चलाविउ ।

---

૧૩ પ્રસિદ્ધઃ પં. લાલચંદ્ર ભગવાનદાસ ગાંધી તરફથી. એમાંથી થોડોક ભાગ કમી કરી તથા ફરી વાર સંપાદિત કરી એ કાવ્ય સ્વ. કેશવલાલ ધ્રુવે તેમનાં 'પંદરમા શતકનાં પ્રાચીન ગૂર્જર કાવ્ય'માં 'પ્રબોધચિન્તામણિ' નામથી છપાવ્યું છે.

૧૪ આ અવતરણવાળો ભાગ સ્વ. ધ્રુવે છોડી દીધો છે.

આ રાસ હજી અપ્રસિદ્ધ છે. તેની હાથપ્રત મને મુનિશ્રી પુણ્યવિજયજી પાસેથી મળી હતી.

૧૦. પદ્મનાભકૃત 'કાન્હડદે પ્રબન્ધ' (સં. ૧૫૧૨)

આ પછી સં. ૧૫૧૨માં રચાયેલું પદ્મનાભનું ઐતિહાસિક વીરરસપૂર્ણ કાવ્ય 'કાન્હડદે પ્રબન્ધ' આવે છે. એમાં 'ગુજરાત'નો પ્રયોગ નીચે પ્રમાણે તેર વખત આવે છે. આ તેર પૈકી બાર પ્રયોગો તો એ પ્રબન્ધના પહેલા ખંડમાં જ આવે છે, કે જેમાં મુખ્યત્વે અલાઉદ્દીનના લશ્કરની ગુજરાત ઉપર ચઢાઈ તથા ત્યાં તેણે કરેલી રંજાડ વર્ણવાઈ છે. બીજા ખંડમાં 'ગુજરાત' એક જ વાર આવે છે તથા બાકીના બે ખંડોમાં એ પ્રયોગ બીલકુલ નથી. એમાંના પહેલા ત્રણ ઉલ્લેખો શ્રી. નરસિંહરાવે નોંધ્યા છે–

(૧) **'गूजरातिनूं** (तु) भोजन करूं जुं तरकाणूं आणूं अरहूं' ।
माधव महितइ करिउ अधर्म नवि छूटीइ आगिलां कर्म । (१–१५)

(२) पूछइ वात पातसाह हसी **गूजराति**[15] ते कहीइ किसी ।
किस्यूं खंबायत अणहलपुर ? किस्यूं दीवगढ मांगलहूर ? । (१–२२)

(३) **गूजरातिस्यूं** मांडिसि कलहु माहारइ साथि कटक मोकलउ ।
हुडी हींदू घालूं रानि, एक मारूं एक झालूं बान । (१–२७)

(४) खूनकार तूं साचूं जाणि, **गूजराति** लेईं आपूं प्राणि ।
ततखिण तूठउ असपति राउ तस आप्यु पचाङ्ग पसाउ । (१–२८)

(५) अलूखान बलवन्तु बांदु तास दीउं फुरमाण;
गूजराति ऊपरि दल न्युधा; बीडऊं दीऊं सुरताणि (१–२६)

---

૧૫ આ સ્થળે 'ગુજરાત' સ્પષ્ટ રીતે સ્ત્રીલિંગમાં છે. રાણકદેવીના દૂહામાંનો સં. ૧૨૯૦ પૂર્વેનો જે અતિ પ્રાચીન પ્રયોગ અગાઉ ઉતાર્યો છે, તેમાં પણ बापुडली गूजरात એ પ્રમાણે 'ગુજરાત' સ્ત્રીલિંગમાં છે. સં. ૧૩૩૪માં રચાયેલ 'પ્રભાવકચરિત'માંથી ઉદ્ધૃત કરવામાં આવેલા અપભ્રંશ દૂહામાં પણ निच्चोरी गुजरात એ પ્રમાણે 'ગુજરાત' શબ્દ સ્પષ્ટ રીતે સ્ત્રીલિંગમાં છે. 'ભાષાઓનાં પ્રાચીન ઉદાહરણ'માં 'ગુજરાત' પુલ્લિંગમાં છે, તે એની પૂર્વે વપરાયેલ 'દેશ' શબ્દની અસરથી છે, એમ મેં કહ્યું છે (જુઓ ટિ. ૧૨). આ સિવાય બીજા સંખ્યાબંધ પ્રયોગોમાં લિંગ સંદિગ્ધ રહે છે અથવા આગળ–પાછળ મૂકાયેલા દેશ શબ્દને કારણે પુલ્લિંગમાં છે. 'ચોખંડી કંકાવટી, ને નવખંડી ગુજરાત' એ લોકગીતમાં તથા 'ગાંડી ગુજરાત, આગુસે લાત, પીછુસે બાત' એ કહેવતમાં 'ગુજરાત' સ્ત્રીલિંગમાં છે. વળી 'અમ્હ ઘરિ આવી રહેજ્યે નહિ તો આપું સઘલી ગુજરાતિ' (મધુસૂદન વ્યાસ–'હંસાવતી વિક્રમચરિત્ર વિવાહ'– ૨. સં. ૧૬૦૬–કડી ૪૫૧), 'જય જય ગરવી ગુજરાત' (નર્મદ), 'કોની કોની છે ગુજરાત' (નર્મદ), 'સુણ ગરવી ગુજરાત, વાત કહું કાનમાં' (મલબારી), 'ગુણવંતી ગુજરાત, અમારી ગુણવંતી ગુજરાત' (ખબરદાર), 'ગુજરાત મોરી મોરી રે' (ઉમાશંકર) વગેરે શિષ્ટ કવિઓના કાવ્યપ્રયોગોમાં પણ 'ગુજરાત' સ્ત્રીલિંગમાં છે. 'ગુજરાત'નાં સંસ્કૃત તથા પ્રાકૃતમાં અનુક્રમે गूर्जरत्रा અને गुज्जरत्ता રૂપો મળે છે, તે પણ સ્ત્રીલિંગમાં હોય છે. એટલે મારૂં માનવું છે કે 'ઠકરાત', 'ભીલાત' અને 'મ્હોલાત'ની જેમ 'ગુજરાત' પણ સ્ત્રીલિંગમાં હશે. તેની સાથે 'દેશ' અભિહિત કે અધ્યાહૃત રહેતાં તેનો પુલ્લિંગમાં–તથા બીજા કેટલાક પ્રાન્તો અને દેશોનાં નામ નપુંસકલિંગમાં પ્રયોજાતાં હોઈ નપુંસકલિંગમાં પણ–પ્રયોગ કરવામાં આવે છે, એવો મારો તર્ક છે.

(६) गूजराति सोरठ सोमईं आ वाहरि विलमूं वीतूं ।
अडकमाडि राउलि हठ कीधउ, अलूखान दल जीतूं । (१-३९)

(७) दीधी वाट समरसी राउलि; आव्यां कटक बनासि ।
गूजराति बूंबाआ पहुता; ततखिण पडीउ त्रास । (१-४७)

(८) भागा देस काहानम चिडोत्तर बावननी खेड हारि;
गूजरातिनु खोखर भाधु अजीय व आवइ पार । (१-५८)

(९) भणी कटक ऊपड्यां असाउलि । गढ मांहि मेहलूं थाणूं ।
गूजरात देस हीलोल्यूं अति कीधूं तरकाणूं । (१-६७)

(१०) गूजराति मांहि ताखति कीधी, सहू सामटी लीधूं ।
वाजी सान; खान सोमईआ भणी पियाणूं कीधूं । (१-७१)

(११) माहरा दल साहामूं कुण मांडइ ? देखि माहरी वात ?
आणीमुहि मइ देस बि लीधा सोरठ नइ गूजराति । (१-११४)

(१२) कटक सनाहु, हाती, घोडा, साहण संख नइ पार ।
गूजरात, सोरठीआं माणस झाल्या बान अपार । (१-१७९)

(१३) इम जाणि साचइ अहिनाणि, मइं नवि जाणिउ निश्चि जाणि ।
पातसाहि इम कहावी वात, 'सातलनइ आपूं गूजरात । (२-१६१)

એ જ કાવ્યમાં 'ગુજરાત'ને માટે વૈકલ્પિક 'ગૂજર' પ્રયોગ પણ મળે છે–

तिणि अवसरि गूजर धर राइ, सारंगदे नामि बोलाइ । (१-१३)
लाड देश नि सिन्धु सवालख, गूजर सोरठ लीध । (२-६३)

આજ સુધી પણ 'ગૂર્જર' નામ શિષ્ટ લેખનમાં ચાલુ રહેલું છે જ.

૧૧. લક્ષ્મીસાગરસૂરિકૃત 'વસ્તુપાલ–તેજપાલ રાસ' (૧૬મા શત૦ પૂર્વાર્ધ)

લક્ષ્મીસાગરસૂરિકૃત 'વસ્તુપાલ–તેજપાલ રાસ'માં કર્તાએ રચ્યાસાલ આપી નથી, પણ તેનો સમય નક્કી થઈ શકે એમ છે.[૧૬] લક્ષ્મીસાગરસૂરિ એ 'વિમલપ્રબન્ધ'કાર

---

૧૬ પ્રસિદ્ધ: 'જૈન સાહિત્ય સંશોધક' ખંડ ૩, અંક ૧. આ કૃતિ વિષે સ્વ. નરસિંહરાવભાઈ પોતાનાં વ્યાખ્યાનો (ભાગ ૨, પૃ. ૨૦)માં લખે છે : "The date of this work is not ascertainable nor the author's name." પરન્તુ 'જૈન સાહિત્ય સંશોધક'માં છપાયેલા રાસની ૫૭ મી કડીમાં–

लक्ष्मीसागरसूरि बोलिउ ए गिरुउ एह ए रास ।

એ પ્રમાણે કર્તા પોતાનું નામ આપે છે, અને તેથી ઉપર જણાવ્યું તેમ, કૃતિનો રચનાકાળ નક્કી થઈ શકે છે. સ્વ. ચિમનલાલ દલાલે પાંચમી સાહિત્ય પરિષદ સમક્ષ રજુ કરેલા પાટણના ગ્રન્થભંડારો વિષેના નિબંધમાં આ કાવ્ય વિષે જે ટૂંક નોંધ કરેલી તે જ માત્ર સ્વ. નરસિંહરાવભાઈ પાસે હતી. દલાલે નોંધેલી પ્રતમાં કર્તાનું નામ જ નહોતું. પરન્તુ આ કાવ્યની માત્ર બે જ કડીઓનું પૃથક્કરણ કરીને "अनइ and कहिसिउं belong to a period not earlier than the latter half of the forteenth century A. D., so for as I can see"–એ પ્રમાણે તેના રચનાકાળ સંબંધી લગભગ સત્ય નિર્ણય ઉપર નરસિંહરાવભાઈ સ્વતંત્રપણે આવી ગયા છે.

પ્રસિદ્ધ કવિ લાવણ્યસમયના ગુરુ સમયરત્નના ગુરુ હતા. પટ્ટાવલિઓ ઉપરથી જણાય છે કે તેમનો જન્મ સં. ૧૪૭૪માં થયો હતો, તથા તેમને સૂરિપદ સં. ૧૫૦૮માં અને ગચ્છનાયકપદ સં. ૧૫૧૭માં મળ્યું હતું. 'વિમલપ્રબન્ધ'ની પ્રશસ્તિમાં જણાવ્યા મુજબ, સં. ૧૫૨૧માં લક્ષ્મીસાગરસૂરિએ લાવણ્યસમયને દીક્ષા આપી હતી. તેમનું અવસાન સં. ૧૫૩૭માં થયાનું મનાય છે, પણ એ સાલ શંકાસ્પદ છે. ગમે તેમ, પણ 'વસ્તુપાલ–તેજપાલરાસ' એ તેમને સૂરિપદ મળ્યા પછીની એટલે કે સં. ૧૫૦૮ પછીની રચના છે એ ચોક્કસ. એ રાસ સં. ૧૫૧૨ પછી રચાયો હોય તો 'કાન્હડદે પ્રબન્ધ'થી આ તરફનો ગણાય. એની બીજી કડી નીચે પ્રમાણે છે–

> वस्तुपाल तेजिग तणउ अम्हे बोलिस रासो ।
> भरहषेत्र धुरि गूजरात अणहिलनिवासो ॥

૧૨. દેપાલકૃત 'જંબુસ્વામી પંચભવચરિત્ર' (સં. ૧૫૨૨)

ભોજક કવિ દેપાલે સં. ૧૫૨૨માં 'જંબુસ્વામી પંચભવચરિત્ર'[17] લખ્યું છે. તેની ૧૩૫મી કડી નીચે પ્રમાણે છે–

> गंगातटि जल ऊरेवीइ, गूजरात किम आंबा पीइ ।
> जीव मरीनइ चिहुगति भमइ, जे विस थाइ ते पुण मरइ ॥

'ત્રિભુવનદીપક'માંની આગળ ઉતારેલી પંક્તિઓ જ દેપાલે થોડાક પાઠાન્તર સાથે લીધી છે. અથવા કદાચ એમ પણ હોય કે આ પંક્તિઓ એક કહેવતના રૂપમાં પ્રચલિત બની ગઈ હોય, જેનો ઉપયોગ દેપાલે કર્યો હોય. જો એમ હોય તો તે 'ગુજરાત' શબ્દપ્રયોગની વ્યાપકતા સૂચવે છે.

ઉપસંહાર

આ પછીના સમયના સાહિત્યમાં 'ગુજરાત'નો પ્રયોગ તપાસવાની જરૂર મને લાગતી નથી,[18] કારણ કે વિક્રમના સોળમા શતકના પૂર્વાર્ધ સુધીનું સાહિત્ય પણ એ શબ્દપ્રયોગની વ્યાપકતા બતાવી આપે છે. બીજું, અહીં રજુ કરેલાં પ્રમાણો એ પણ

---

૧૭ મારા મિત્ર પં. અમૃતલાલ મોહનલાલ ભોજક પાસેની સં. ૧૫૬૦માં લખાયેલી હાથપ્રતનો મેં ઉપયોગ કર્યો છે. કાવ્ય હજી અપ્રસિદ્ધ છે. દેપાલ કવિ માટે જુઓ 'જૈન ગૂર્જર કવિઓ' ભાગ ૧, પૃ. ૩૭–૪૨

૧૮ ઉપર્યુક્ત કવિ દેપાલની પછી થયેલા–અથવા સંભવતઃ એના સમકાલીન–માંડણ બંધારા કૃત 'પ્રબોધબત્રીશી'માં–

'જાણેશિ જાં તુ યમ કહિ ચડી, ગૂજરાત શેરી સાંકડી' (કડી ૫૨)

એ પ્રમાણે 'ગુજરાત'નો ઉલ્લેખ છે. 'પ્રબોધબત્રીશી'ના કર્તાની એક પ્રતિજ્ઞા તત્કાલીન કહેવતોનો સંગ્રહ કરવાની છે; પ્રસ્તુત સ્થળે 'ગૂજરાત શેરી સાંકડી'નો પ્રયોગ સ્પષ્ટ રૂપે કહેવત તરીકે જ થયો છે. જનસમાજના સર્વસામાન્ય ઉક્તિભંડોળમાં પ્રવેશ પામેલાં આવાં વાક્યો સામાન્યતઃ ઘણાં જૂનાં હોય છે, અને તેમની પાછળ ઘણીયે વાર પ્રજાજીવનના કંઈ કંઈ રહસ્યો છૂપાયેલાં હોય છે. પ્રસ્તુત ઉક્તિ ગુજરાતનાં જૂના શહેરોની રચના પરત્વે સુશ્લિષ્ટ સંક્ષેપમાં એક ઐતિહાસિક સત્ય રજુ કરે છે, એ ભાગ્યે જ કહેવું પડે તેમ છે. માંડણ વિક્રમના સોળમા સૈકામાં થઈ ગયો, એટલે તેણે પોતાના કાવ્યમાં વણી લીધેલો, તેના જ શબ્દોમાં કહીએ તો આ 'ઉખાણો' તેના સમય કરતાં સહેજે બે ત્રણ સૈકા જેટલો જૂનો હશે, એમ માનવામાં ઐતિહાસિક સત્યોની અવગણના નહીં થાય.

૩.૧.૧૪.

બતાવી આપશે કે, "આપણા પ્રાન્તનું 'ગુજરાત' એ નામ મુસ્લીમ રાજ્યકાળ પહેલાં સર્વસામાન્ય પ્રચારમાં નહોતું, અને એ નામનો પહેલો વિશ્વાસપાત્ર પ્રયોગ આપણા સાહિત્યમાં 'કાન્હડદે પ્રબન્ધ'માંથી મળે છે"– એ મત હવે સાધાર ગણી શકાય એમ નથી. વિક્રમના અગીઆરમા સૈકાનો લેખક અલ બિરુની 'ગુજરાત'નો ઉલ્લેખ કરે છે, એટલું જ નહીં પણ લાટદેશ અણહિલવાડની દક્ષિણે ૧૭૦ માઇલ દૂર આવેલો છે, એમ જણાવે છે; વિક્રમના તેરમા સૈકામાં રચાયેલા 'આબુરાસ'માં તથા સં. ૧૨૮૦ પૂર્વેના રાણકદેવીના લોકદૂહામાં પણ 'ગુજરાત'નો પ્રયોગ છે; વિક્રમના ચૌદમા સૈકાના પૂર્વાર્ધમાં રચાયેલ 'પ્રભાવકચરિત'માં ઉદ્ધૃત થયેલા અપભ્રંશ દૂહામાં પણ 'ગુજરાત'નો પ્રયોગ છે તથા એ જ સમયનો ઇટાલિયન મુસાફર માર્કો પોલો પોતાના પ્રવાસવર્ણનમાં 'ગુજરાત'ની નોંધ લે છે. આ ચારે ઉલ્લેખો મુસ્લીમ રાજ્યકાળ પૂર્વેના છે; 'સમરા રાસ' તથા 'જિનકુશલસૂરિ–પટ્ટાભિષેક રાસ'માં મળેલા 'ગુજરાત'ના ઉલ્લેખો મુસ્લીમ રાજ્યકાળ પછી તુરતના જ છે. અલ બિરુની અને માર્કો પોલો જેવા પરદેશીઓએ તો તે કાળની જીવતી ભાષામાંનો પ્રચલિત પ્રયોગ જ સાંભળીને નોંધ્યો હોવો જોઈએ. પરદેશીઓની નોંધમાં તેમ જ તત્કાલીન દેશભાષાના શિષ્ટસાહિત્ય તેમ જ લોકસાહિત્યમાં પણ 'ગુજરાત' શબ્દનો પ્રયોગ છે. એમાં સૌથી પહેલો અલ બિરુનીનો ઉલ્લેખ ધ્યાનમાં લેતાં, આપણા પ્રાન્ત માટે–ખાસ કરીને ઉત્તર અને મધ્ય ગુજરાત માટે 'ગુજરાત' એ નામ વિક્રમના અગીઆરમા શતકમાં મૂળરાજ સોલંકીના રાજ્યકાળ દરમ્યાન પ્રચારમાં આવ્યું હોવું જોઈએ.[૧૯] સંસ્કૃત–પ્રાકૃત

---

૧૯ અહીં એક આનુષંગિક પ્રશ્ન ઊભો થાય છે–આ પ્રાન્તની ભાષાને 'ગુજરાતી' નામ ક્યારે મળ્યું? ઇસવી સનની અઢારમી સદીની અધવચમાં આપણી ભાષાને આ નામ મળ્યું એમ શ્રી. નરસિંહરાવ માને છે. અલબત, તેમણે બતાવ્યું છે તે પ્રમાણે, વિક્રમના અઢારમા સૈકાના ઉત્તરાર્ધમાં લખાયેલા પ્રેમાનંદના 'નાગદમણ'માં અને ઈ. સ. ૧૭૩૧ (સં. ૧૭૮૭)માં લા ક્રોઝે નામે જર્મનની નોંધપોથીમાં આપણી ભાષા માટે 'ગુજરાતી' નામ પહેલી વાર વપરાયેલું મળે છે. પણ અગીઆરમા–બારમા સૈકામાં આ પ્રાન્તને માટે 'ગુજરાત' નામ પ્રચારમાં આવ્યા પછી ભાષાને 'ગુજરાતી' નામ મળતાં બીજા પાંચ–છ સૈકા વીતી જાય એ શું શક્ય અને સ્વાભાવિક છે? પ્રેમાનંદ પૂર્વેના સાહિત્યમાંથી આપણી ભાષા માટે 'અપભ્રષ્ટ ગિરા' (નરસિંહ મહેતો), 'પ્રાકૃત' (પદ્મનાભ અને અખો), 'અપભ્રંશ' અને 'ગૂર્જર ભાષા' (ભાલણ) એવાં નામ અત્યાર સુધીમાં મળ્યાં છે, પણ તેથી શું પૂરવાર થઈ શકે કે જનસમાજમાં એ વખતે 'ગુજરાતી' નામ નહીં જ બોલાતું હોય? 'તવારિખે ફરિસ્તા' (ઈ. સ. ૧૬૧૦=સં. ૧૬૬૬) અને 'મિરાતે સિકંદરી' (ઈ. સ. ૧૬૧૧=સં. ૧૬૬૭) એ મુસ્લીમ તવારિખોના લેખકો અમદાવાદના સુલ્તાનોને 'અહમદશાહ ગુજરાતી' 'મહમ્મદશાહ ગુજરાતી' એવાં નામથી ઓળખાવે છે. બીજી રીતે પણ 'મિરાતે સિકંદરી'નો લેખક ગુજરાતવાસી લોકોને 'ગુજરાતી' નામ આપે છે. गूजरात सोरठीआं माणस झाल्यां बान अपार (૧–૧૭૯) એ 'કાન્હડદે પ્રબન્ધ' (ર. સં. ૧૫૧૨)ના ઉલ્લેખમાં गूजरातनो અર્થ 'ગુજરાતી'–ગુજરાતના વતની એવો છે, એ સ્પષ્ટ છે. મધુસૂદન વ્યાસકૃત 'હંસાવતી વિક્રમચરિત્ર વિવાહ' (ર. સં. ૧૬૦૬)ના त्रंबसेन गुजराति राय (કડી ૬૦૬) એ ઉલ્લેખમાં પણ गुजरातिनो પ્રયોગ વિશેષણ તરીકે થયો હોય એ અશક્ય નથી. વળી પુષ્ટિમાર્ગીય કવિ માહવદાસકૃત 'ગોકુલનાથજીનો વિવાહ' (ર. સં. ૧૬૨૪) એ કાવ્યમાં 'ગુજરાતી સાથ', 'દાઢો વલો ગુજરાતિનો', 'ગુજરાતિય લોક' એવા પ્રયોગ મળે છે (જુઓ ફાર્બસ સભાનાં હસ્તલિખિત પુસ્તકોની નામાવલિ, ભાગ ૨, પૃ. ૨૫૯). મુનિ શ્રીજશવિજયજી પાસે કૃષ્ણજીવનને લગતા કોઈ જૈન રાસાની એક તૂટક હાથપ્રતનાં માત્ર ૮ થી ૧૧ સુધીનાં ચાર પાનાં છે. આદિ–અંત મળતાં નથી એટલે

સાહિત્ય, શિલાલેખો અને તામ્રપત્રો જેવાં વિદ્વન્માન્ય લખાણોમાં એનાં 'ગૂર્જરાત્રા', 'ગૂર્જરત્રા', 'ગુજ્જરત્તા' કે 'ગુર્જરાઠ' જેવાં સંસ્કારેલાં કૃત્રિમ રૂપોને સ્થાન મળે એ સમજી શકાય એવું છે.[20]

*

કર્તાનું કે કૃતિનું નામ તથા રચ્યાસંવત જાણી શકાતાં નથી. પણ ભાષા અને લિપિ ઉપરથી પ્રત વિક્રમના સત્તરમા સૈકામાં લખાયેલી લાગે છે. આ રાસાના ૧૧મા પાના ઉપર ૧૧મી ઢાળના આરંભમાં **"ઢાલ ૧૧મી ગૂજરાતી ફૂલડાંની"** એ પ્રમાણે દેશીના ઢાળનો નિર્દેશ છે. હવે, 'હરિયાલી' (ટૂંકા પદોમાં વિનોદાત્મક અવળવાણી દ્વારા ગૂઢ આધ્યાત્મિક અર્થોનો નિર્દેશ કરતો એક જૂનો કાવ્યપ્રકાર)ને 'ફૂલડાં' નામથી ઓળખવામાં આવે છે, અને તે જ અર્થ જો અહીં ઉદ્દિષ્ટ હોય તો 'ગુજરાતી ફૂલડાં'માં 'ગુજરાતી' એ ભાષાનું જ નામ ગણાય, અને એ રીતે પ્રેમાનંદ પૂર્વેનો આ 'ગુજરાતી' ભાષાનો ઉલ્લેખ ગણાય. આ ઉલ્લેખને ઘડીભર બાજુએ રાખીએ તો પણ જો આ પ્રાન્તના વતનીઓ, ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે, 'ગુજરાતી' કહેવાતા હોય તો તેમની ભાષા પણ એ નામે ઓળખાય એ અશક્ય નથી; અને ઉપરનાં પ્રમાણો ધ્યાનમાં લેતાં પ્રેમાનંદની પહેલાં લોકબોલીમાં પણ ભાષા માટે 'ગુજરાતી' નામ નહીં જ વપરાતું હોય એમ માનવું વધારે પડતું છે. અલબત, આ દિશામાં વિશેષ સંશોધનની જરૂર છે.

૨૦ ગુજરાત વર્નાક્યુલર સોસાયટી, ઉચ્ચ અભ્યાસ અને સંશોધન વિભાગ (૧૯૪૨-૪૩) માટે તૈયાર કરેલો નિબંધ.

महाकवि दण्डीना समयनो हिंदुसमाज

*

लेखक—श्रीयुत चंद्रमणिशंकर जेठालाल पंडित.

સંસ્કૃત ગ્રંથોની ઉપયોગિતા.

'દશકુમારચરિત' કવિ દણ્ડીનું સંસ્કૃત ભાષામાં રચેલું દશકુમારોના ચરિત્રનું રોમાંચક ગદ્યકાવ્ય છે. કર્તાએ તેમાં જે વિવિધ પ્રકારનાં વર્ણનો આપ્યાં છે તેનાથી તેના સમયની સામાજિક સ્થિતિ અને હિંદુ સંસ્કૃતિપર સારો પ્રકાશ પડે છે. આપણા પ્રાચીન હિંદુ ગ્રંથોની એ ખાસ વિશિષ્ટતા છે કે તેઓ સમાજ અને સંસ્કૃતિનો સાચો અને સારો ઇતિહાસ પૂરો પાડે છે. આપણા સંસ્કૃત સાહિત્યના વિદ્વાન અભ્યાસી અને પ્રખર ચિંતક સ્વ. રમેશચંદ્ર દત્ત એમના "Civilization in Ancient India" નામના ગ્રંથમાં આ વસ્તુ બહુ સારી રીતે સમજાવે છે. તેઓ કહે છે કે પ્રાચીન ઇજીપ્ત, આસિરિયા, બાબીલોન, ચીન આદિ પ્રજાના ચિત્રલિપિ અને સાંકેતિક ચિત્રોના લેખો તે તે પ્રજાઓના રાજાઓ, રાજવંશો, યુદ્ધો, વગેરેની ઐતિહાસિક બીનાઓ આપે છે પણ માનવ પ્રગતિ અને સંસ્કૃતિ વિષે તે મૌન સેવે છે, જ્યારે આપણા પ્રાચીન હિંદુ ગ્રંથો ઐતિહાસિક વસ્તુ અને તેનાં વર્ણનોથી વિમુખ હોવા છતાં હિંદુ સંસ્કૃતિની પ્રગતિ અને મનુષ્યની વિચારસરણીની વૃદ્ધિ વિષે સંપૂર્ણ, સંયુક્ત અને સત્ય હેવાલ રજુ કરે છે. વાસ્તવિક રીતે કહીએ તો સંસ્કૃત ગ્રંથો જે જે કાળમાં તે લખાએલા હોય છે તે તે કાળની સામાજિક સ્થિતિની આરસીનું કામ કરે છે. "The literature of each period is a perfect picture—a photograph if we may call it—of the Hindu civilization of that period......" "પ્રત્યેક કાળનું સાહિત્ય તે કાળની હિંદુ સંસ્કૃતિનું સંપૂર્ણ ચિત્ર—બલ્કે તેનો ફોટોગ્રાફ છે..." એ એમનું કથન સંસ્કૃત ગ્રંથોની સત્ય સ્થિતિ રજુ કરતું હોઈ આ પુસ્તકને પણ લાગુ પડે છે, તેથી તે દૃષ્ટિએ જોતાં આ પુસ્તક ઉપયોગી અને રસપ્રદ હોઈ એમાંથી આપણને ઘણું જાણવાનું મળે છે.

વૈદિકધર્મનું સ્થાન પૌરાણિક ધર્મે લીધું હતું.

કવિ દણ્ડીના કાળમાં, એટલે ઇસવી સન છઠ્ઠા અને સાતમા સૈકાના આરંભમાં, કે જે કાળને અત્યાર સુધીના ઉપલબ્ધ પ્રમાણાનુસાર એના કાળ તરીકે નક્કી કરવામાં આવ્યો છે તે સમયે અને તે પહેલાં, હિંદુ ધર્મપર બૌદ્ધ ધર્મની અસર પૂરેપૂરી થઈ ચૂકી હતી. બૌદ્ધ ધર્મની ત્રિપુટી—બુદ્ધ, ધર્મ અને સંઘ—નું સ્થાન હિંદુ ત્રિમૂર્તિ બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને રુદ્રે લીધું હતું. બૌદ્ધ ધર્મના પહેલાના કાળમાં જે વૈદિક ધર્મ પ્રચલિત હતો તેને સ્થાને પૌરાણિક ધર્મ સ્થપાઈ ચૂક્યો હતો. બૌદ્ધ ધર્મની અસર તરીકે મૂર્તિપૂજા, દેવમંદિરો અને યાત્રાનાં સ્થળો અસ્તિત્વમાં આવ્યાં હતાં. વળી, દણ્ડી પહેલાના એટલે ચંદ્રગુપ્તના અને અશોકના કાળમાં, તથા ત્યાર પછીના એટલે કદાચ,

લગભગ એના સમકાલીન શ્રીહર્ષના કાળમાં જે આદર્શરૂપ સમાજનાં વર્ણનો પરદેશી પ્રવાસીઓએ કરેલાં છે તેનું તે સમયે કેટલેક અંશે નૈતિક અધઃપતન થઈ ગયું જણાય છે. દેશની સમૃદ્ધિ કેટલી વિપુલ હતી તેનું ગ્રંથના આરંભમાં પુષ્પપુરી નગરીનું વર્ણન સારૂં દૃષ્ટાંત આપે છે, વળી, રાજાઓની અને શ્રેષ્ઠીજનોની સમૃદ્ધિનાં વર્ણનો પણ સ્થળે સ્થળે આવે છે, તેમ જ નગરોમાં ધનાઢ્ય લોકો મોટી સંખ્યામાં વસતા હોવાનો નિર્દેશ કરવામાં આવેલો છે. સામાન્ય જનસમાજ એકંદરે સુખી અને પ્રવૃત્તિમય જણાય છે અને તે ચાતુર્વર્ણ્યમાં વિભક્ત થયેલો છે. આદિમવાસી તરીકે કિરાત, શબર, ભિલ્લ, પુલિંદ વગેરે જાતિઓનો ઉલ્લેખ કરવામાં આવેલો છે. હિંદ અનેક સબળ રાજ્યોમાં વિભક્ત થયેલો છે અને તેમાં મગધરાજ રાજહંસ પ્રભાવશાળી અને બળવાન હોઈ એના રાજકુમાર—આ વાર્તાના નાયક—રાજવાહનને દિગ્વિજય કરવા મોકલી સાર્વભૌમપદ પ્રાપ્ત કરવા તેના દ્વારા બીજાઓ સાથે યુદ્ધ કરે છે, અને તે રાજકુમાર અનેક મિત્ર રાજકુમારોની સહાયથી સાહસકર્મો કરીને તે રાજાઓપર વિજય મેળવે છે. સાર્વભૌમત્વ પ્રાપ્ત થયા પછી રાજહંસ વાનપ્રસ્થાશ્રમ સ્વીકારી અરણ્યવાસ કરે છે અને તેના કુમાર રાજવાહનને રાજગાદી સુપરત થયાથી તે ચક્રવર્તી રાજા થાય છે. રાજકુમાર રાજવાહન અને તેના સહાયક કુમારોનાં સાહસોનું '**દશકુમારચરિત**'માં વર્ણન છે.

કવિ દાક્ષિણાત્ય હતો.

'**દશકુમારચરિત**'માં શાસનકર્તા અને સામાન્ય જનનું ચિત્ર ઠીક દોરવામાં આવ્યું છે, અને તે પ્રમાણસર અને યથાયોગ્ય છે. 'દશકુમાર'નો લેખક કવિ દાક્ષિણાત્ય હતો એમ જણાય છે. આ ગ્રંથમાં એણે કૂકડાઓની લડાઈનું જે રસુજી અને આબેહુબ વર્ણન આપ્યું છે તે એ વાતનું સમર્થન કરે છે. તદુપરાંત કાવેરી તીર્થપ્રદેશનાં સ્થળો, કલિંગ અને આંધ્ર દેશનો નિર્દેશ તથા ગોમિનીની વાર્તામાં ગૃહવધૂની કરકસરનું જે ઉત્તમ વર્ણન કવિ આપે છે તે પૂરેપૂરૂં હાલના સમય સુધીયે દક્ષિણ હિંદને લાગુ પડતું હોઈ કવિ તે પ્રદેશનો રહેવાશી હતો એ માન્યતાને પુષ્ટિ આપે છે. પછીથી કવિએ ઉત્તરના પ્રદેશોમાં ભ્રમણ કરી ત્યાં કોઈ સ્થળે વાસ કર્યો હોય એ બનવા જોગ છે. કૌટિલ્યના 'અર્થશાસ્ત્ર'નો અને વાત્સ્યાયનના 'કામસૂત્ર'નો કવિએ ઉત્તમ અભ્યાસ કરેલો જણાય છે.

હિંદુધર્મ પર બૌદ્ધધર્મની અસર.

આપણે અગાઉ જણાવી ગયા તે પ્રમાણે બૌદ્ધ ધર્મની અસરથી મૂર્તિપૂજા પ્રચલિત થઈ ચૂકી હતી. બ્રહ્મા, વિષ્ણુ અને શિવે ઇષ્ટ દેવતાઓનું સ્થાન લીધું હતું અને તેમની મૂર્તિઓનું પૂજન થતું હતું. ઉજ્જયિનીના મહાકાળેશ્વર અને વિંધ્યવાસિની દેવીનો મહિમા મોટો ગણાતો હતો. દેવદેવીઓ ભક્તોને સ્વપ્નમાં દર્શન દઈ ઇષ્ટફલપ્રાપ્તિનો માર્ગ બતાવતા હતા; અને ઇષ્ટપ્રાપ્તિને અર્થે તેમની તુષ્ટિ કરવામાં આવતી હતી. નર-નારાયણના અર્ચનથી મગધરાજ રાજહંસને પુત્રપ્રાપ્તિ થાય છે અને માલવપતિ માનસાર રાજહંસપર વિજય મેળવવા તપથી મહાદેવજીને પ્રસન્ન કરી શત્રુમર્દનનો વર

મેળવે છે, અને તદર્થે આયુધ તરીકે પ્રચંડ શત્રુસંહારિણી ગદા પ્રાપ્ત કરે છે. સુહ્મપતિ તુંગધન્વા વિંધ્યવાસિનીની પૂજા કરી સંતતિ મેળવે છે. આમ આખા ગ્રંથમાં સ્થળે સ્થળે દેવોની પૂજાઓ, અર્ચનાઓ, યાત્રાઓ તથા ઉત્સવોનો નિર્દેશ કરેલો જોવામાં આવે છે. શ્રાવસ્તીમાં શંકરોત્સવ ઉજવાય છે અને તેમાં શંકરપત્ની ગિરિસુતા અંબિકાદેવી વિરાજમાન છે. વળી, ફાગણ મહિનામાં અંત:પુરની સ્ત્રીઓ તીર્થયાત્રોત્સવ ઉજવે છે ત્યારે તીર્થસ્થળે ગંગાજળમાં સ્ત્રીઓ જળવિહાર કરે છે. વસન્તસમયે માનસારની કુંવરી અવન્તિસુંદરી નગરની સીમાએ આવેલા ઉદ્યાનમાં સખીઓ સાથે આવી વસન્તોત્સવ ઉજવે છે અને કામદેવની પ્રતિમાનું પૂજન કરે છે. ચંપાનગરીનો રાજા સેંકડો રમણીઓથી વીંટળાઈ ઉપવનમાં પ્રકટ રીતે પૂરવાસીઓની હાજરીમાં કામોત્સવ ઉજવે છે, અને તે ઉત્સવ વિષે નગરવાસીઓને ઘોષણાથી ખબર આપવામાં આવેલી હોય છે. વળી, સુહ્મદેશના રાજા તુંગધન્વાની પુત્રી કંદુકાવતી એના પિતાને વિંધ્યદેવીના વરદાનથી પુત્ર અને પુત્રી મળેલાં હોઈ દેવીના આદેશાનુસાર નગરજનોની સમક્ષ અસાધારણ ચાતુર્ય અને ચાપલ્ય દર્શાવી દડો ઉછાળવાની રમત રમે છે, કે જે પ્રસંગનો કવિએ કંદુકોત્સવ નામથી ઉલ્લેખ કરી તેને બહુ જ રસિકતાથી વર્ણવ્યો છે. રાજા રાજહંસ રાણી વસુમતીનો સીમન્તોત્સવ પોતાના મિત્રો અને રાજાઓને બોલાવી અતિ ઉત્સાહ સાથે ભવ્ય રીતે ઉજવે છે.

બ્રાહ્મણો માનપ્રદ બન્યા છે.

વૈદિક કાળમાં વિશિષ્ટ જાતિપદને નહિ પામેલા અને કોઈ વિશિષ્ટ અધિકારને પ્રાપ્ત નહિ કરી શકેલા બ્રાહ્મણો આ કાળમાં સમાજમાં બહુ માનને પાત્ર બન્યા છે. તેમની ગણના શ્રેષ્ઠ કોટિમાં થવા માંડી છે, અને તેમને ભૂદેવ, મહીસૂર, ધરણીસૂર વગેરે માનયુક્ત શબ્દોથી ઓળખવામાં આવે છે. રાજાઓ યજ્ઞોમાં દક્ષિણાથી તેમનું સન્માન કરે છે, અને તેમના ગુજરાન માટે ક્ષેત્રાદિ (અગ્રહાર)નું દાન આપે છે. અથર્વવેદના બ્રાહ્મણોને ખાસ પુરોહિતના પદે નિયોજવામાં આવતા, કેમકે તેઓ મંત્રતંત્રના જાણકાર રહેતા. બ્રાહ્મણ છતાં નિંદવાલાયક આચરણ અને ચારિત્રવાળા, અને બ્રાહ્મણોના ધર્મ નહિ પાળતા હોઈ પોતાને નામના બ્રાહ્મણ કહેવડાવનારા બહુ તિરસ્કારપાત્ર ગણાતા. દક્ષિણાથી રાચનાર બ્રાહ્મણો પર સખ્ત કટાક્ષ કરવામાં આવ્યો છે. એક સ્થળે રાજાને પુરોહિત પાસે કવિ કહેવડાવે છે, "હમણાંનાં ખોટાં સ્વપ્નાં દેખા દે છે, ગ્રહ બહુ કઠણ છે, શકુન અશુભ છે, શાંતિ કરવી જોઈએ. બધાં હોમનાં સાધનો સુવર્ણનાં બનાવેલાં હોવા જોઈએ. આમ કરવાથી કર્મ ફળદાયી બને છે. વળી, આ બ્રાહ્મણો બ્રહ્મ જેવા છે. એમની કરેલી શુભ વિધિઓ બહુ કલ્યાણકારી નીવડે છે. વળી, તેઓ કષ્ટદાયક રીતે દરિદ્રી, ઘણાં બાળકોવાળા, અહર્નિશ પૂજાપાઠ કરનારા, તેજસ્વી અને હજી સુધી તમારી પાસેથી દક્ષિણા નહિ પામેલા છે. એમને આપેલું દાન સ્વર્ગીય આયુષ્ય આપનાર અને અરિષ્ટનો નાશ કરનાર નીવડે છે." આ દક્ષિણામાં પુરોહિતનો બહુ મોટો ભાગ હોય છે એ ભાગ્યે જ કહેવાની જરૂર હોય. પૂજવાયોગ્ય બ્રાહ્મણકુમારને સકલ વિદ્યામાં પ્રવીણ, દેવતાને પ્રત્યક્ષ કરાવનાર, યુદ્ધમાં નિપુણ અને મણિ,મંત્ર તથા ઔષધિઓના જાણકાર તરીકે વર્ણવવામાં આવે છે.

રાજાઓ પ્રજાની સંભાળ રાખતા.

રાજાઓનો પ્રજા પ્રત્યેનો ધર્મ તેમનાં દુઃખ જાણી તેનું શમન કરવામાં તથા અપરાધીને શિક્ષા કરવામાં રહેલો છે. તેઓ ધર્માસનપર બેસી ન્યાય આપતા અને પ્રજાજનો પોતાનાં દુઃખના નિવારણાર્થે રાજાને મળી શકતા. પાંચાલશર્મા પોતાની કહેવાતી પુત્રીનું શીળ સચવાવવા તેને ન્યાસ તરીકે સોંપવા ધર્માસનપર બેઠેલા ધર્મવર્ધન રાજા પાસે જાય છે. ધનમિત્ર પોતાની ખોવાએલી રત્નથેલીની ફરિયાદ કરવા અંગે રાજા પાસે બે વખત જાય છે. રાગમંજરી ગણિકાની ભગિની કામમંજરી અને માતા માધવસેના રાગમંજરી ગણિકાધર્મ પાળવા ના કહેતી હોવાથી તત્સંબંધમાં સ્વદુઃખ નિવેદનાર્થે અને તેના નિવારણાર્થે રાજાને મળે છે.

રાજાઓ અશ્વ, ગજ, રથ અને પદાતિની ચતુરંગ સેના રાખતા અને જાતે યુદ્ધમાં ચઢતા. યુદ્ધનાં આયુધો તરીકે, કવચ, ચાપ, બાણુ, ભાલા, ચક્ર, લોહદંડ, બે ધારી તલવાર, બરછી અને ગદાનો ઉપયોગ કરતા. રાજાનું મૂળ સૈન્ય અર્થાત્ વંશપરાગત સૈન્ય, બહુ વિશ્વાસપાત્ર ગણાતું, અને રાજા પાસે પૂરતું બળ ન હોય તો તેઓ કિલ્લામાં રહીને લડતા, એટલે આક્રમણકાર તરફથી તેમના સામે પારિ(પાર)ગ્રામિક (ઘેરા ઘાલવાની) વિધિનો ઉપયોગ થતો. જુદા જુદા પ્રદેશના રાજાઓ વારંવાર એકમેકની સાથે યુદ્ધો કરતા, અને તે યુદ્ધો મુખ્યત્વે કરીને સાર્વભૌમત્વ પ્રાપ્ત કરવા માટે, અથવા તો લગ્ન માટે રાજકુમારીની માગણી કરવામાં આવતાં તે નકારવામાં આવ્યાથી તેને જોરજૂલમથી મેળવવા માટે રાજકુમારીના પિતાના રાજ્યપર આક્રમણરૂપે, અથવા સામાનું રાજ્ય પડાવી લેવા માટે લડવામાં આવતાં. મગધપતિ રાજહંસ માલવપતિ માનસારપર પોતાનું સ્વામિત્વ સ્થાપવા હુમલો કરે છે, અને લાટપતિ મત્તકાળ પાટલીપુરના રાજા વીરકેતુની પુત્રી માટે, તેમ જ ઉત્કલ નૃપતિ ચંડવર્મા ચંપાપતિ સિંહવર્માની પુત્રી અંબાલિકાના હસ્ત અર્થે તેમના પિતાનાં રાજ્યોપર આક્રમણ કરે છે. વળી, મિથિલાપતિ પ્રહારવર્મા એની રાણી પ્રિયંવદા સાથે રાજહંસની રાણી વસુમતીના સીમન્તોત્સવનો આનંદ માણવા ગયો હતો તે સમયે તેના ભત્રીજા વિકટવર્માએ તેનું રાજ્ય પચાવી પાડ્યું અને તેના પરિણામે તે બે જણુ વચ્ચે જે યુદ્ધ થયું તેમાં પ્રહારવર્મા બંદીવાન થયો. પછી એનો કુમાર ઉપહારવર્મા કપટયુક્તિથી વિકટવર્માને મારીને પિતાનું રાજ્ય પાછું મેળવે છે. આંધ્રદેશનો રાજા નૌકાઓમાં આણેલા સૈન્યથી વસન્તનો આનંદ માણવા ગએલા કલિંગપતિ કર્દમને કેદ કરે છે અને એની પુત્રી કનકલેખાને પરણવા ઇચ્છા રાખે છે. કુમાર મંત્રગુપ્ત કપટયુક્તિથી જયસિંહનો સંહાર કરે છે અને કલિંગપતિનું રાજ્ય પાછું મેળવી આપી એની કુંવરી સાથે પરણે છે. અશ્મકેન્દ્ર વસંતભાનુ વિદર્ભપતિ અનન્તવર્માપર ચઢાઈ કરે છે, અને વનવાસીના રાજા ભાનુવર્માને ઉશ્કેરી તેની સામે લડાવે છે, અને તેનો સંહાર કરાવી તેનું રાજ્ય જીતી લે છે. કુમાર વિશ્રુત યુક્તિપ્રયુક્તિથી માહિષ્મતીના રાજા મિત્રવર્માનું અને ઉત્કલ નૃપતિ ચંડવર્માનું એમ બન્નેનાં રાજ્ય જીતી લે છે, તથા અનંતવર્માની પુત્રી મંજુવાદિનીને પરણી, એના પુત્ર ભાસ્કરવર્માને તેના પિતાનું વિદર્ભનું રાજ્ય વસંતભાનુનો પરાજય કરી પુનઃ સંપાદન કરી આપે છે.

રાજાઓને નીતિશાસ્ત્ર શીખવું પડતું.

રાજાઓને રાજનીતિમાં નિપુણતા પ્રાપ્ત કરવી પડતી અને એને માટે કૌટિલ્યના 'અર્થશાસ્ત્ર'નો અભ્યાસ આવશ્યક ગણાતો. તેના અભ્યાસથી રાજનીતિદક્ષ રાજાઓ કેવી રીતે પોતાના કાર્યમાં સફળતા મેળવતા, અને વિરોધીઓને પરાજય આપતા તેનો ચિતાર આ ગ્રંથના છેલ્લા ઉચ્છ્વાસમાં સરસ રીતે આપવામાં આવ્યો છે. રાજનીતિને અનુસરનારા રાજાઓને અહોરાત્ર પ્રવૃત્તિમય જીવન ગાળવું પડતું. સારા રાજા તરીકે પુણ્યવર્માને ધાર્મિક, પ્રતાપી, સત્યવાદી, ઉદાર, નમ્ર, પ્રજાને શિક્ષા આપનાર, નોકરવર્ગને સંતુષ્ટ રાખનાર, કીર્તિમાન, બુદ્ધિમાન, રૂપગુણસંપન્ન, પુરુષાર્થી, શાસ્ત્રની આજ્ઞાનુસાર વર્તનાર, વિદ્વાનોને આશ્રય આપનાર, કૃતજ્ઞ, ગુણવાન, વિદ્વાન, ગુણગ્રાહી, રાજ્યના કોશાદિપર સ્વયં દેખરેખ રાખનાર, શૂરવીર, શત્રુઓનો તિરસ્કાર કરનાર, પ્રજાની સર્વ આપત્તિઓનું નિવારણ કરનાર અને મનુના ધોરણે ચાતુર્વર્ણ્યનું પાલન કરનાર તરીકે વર્ણવવામાં આવ્યો છે. રાજા તેના અમાત્યો, સેનાપતિઓ, પુરોહિતો, દૂતો વગેરેની સલાહ અને સહાયથી પોતાનું રાજ્યતંત્ર ચલાવતો. સારા રાજાઓ ગૃહસ્થાશ્રમની અવધિએ પહોંચ્યેથી વાનપ્રસ્થાશ્રમનો અંગીકાર કરતા.

રાજ્યના સલાહકારો અને પાંચમી કતાર.

અર્થશાસ્ત્રાનુસાર રાજાનો નિત્યનો વ્યવસાય નીચે પ્રમાણે નક્કી કરવામાં આવ્યો હતો.

દિવસે:–(૧) (પ્રથમ ચોઘડીયે) આવક જાવકનો હિસાબ, (૨) ન્યાય કર્મ, (૩) સ્નાન અને ભોજન, (૪) સુવર્ણપરિગ્રહણ કિંવા ભેટોનો સ્વીકાર, (૫) મંત્રીઓ સાથે રાજકાજની મસલત, (૬) આરામ, (૭) ચતુરંગ સેનાનું નિરીક્ષણ, (૮) સેનાપતિ સાથે વિગ્રહ વિષે ચિંતા.

રાત્રિએ:–(૧) રાજ્યદૂત અને ગુપ્તચરો સાથે મંત્રણા, (૨) અભ્યાસ, (૩), (૪), (૫) નિદ્રા, (૬) શાસ્ત્રોક્ત કાર્યો, (૭) મંત્રીમંત્રણા અને દૂતપ્રેષણ, (૮) પુરોહિતોને અને બ્રાહ્મણોને દાન.

રાજાઓને સારા તેમ જ નઠારા સલાહકારો મળતા. ખરાબ સલાહકારો અવળી શિખામણ આપી રાજાઓને મૃગયા, દ્યૂત, મદિરા અને સ્ત્રીઓના છંદમાં નાખી ખરાબ કરતા. દિવસના આઠ પહોર કામમાં રચ્યો પચ્યો રહેનાર એક વેતરા જેવો રાજા કામમાંથી એક ક્ષણ પણ નવરો પડી આરામ લઈ શકતો નથી એમ કહી તેને કામમાં પ્રેરનાર રાજનીતિની હાંસી કરતા. વળી, તેઓ રાજાના મિત્રો વચ્ચે ભેદ પડાવવાનો, નવા શત્રુઓ ઊભા કરાવવાનો અને દગા ફટકાથી સામાવાળાને મળી જઈ લશ્કરનો સંહાર કરાવવાના ઉપાયો અજમાવતા, જેવા કે અશ્મક નૃપતિ વસંતભાનુના અમાત્યનો પુત્ર ચંદ્રપાલિત પોતાના પિતાએ તેને કાઢી મૂકયો છે એવા ખોટા બહાના નીચે સામાવાળા ભોજપતિ અનન્તવર્માના રાજ્યમાં જઈ તે રાજાના નઠારા સલાહકાર વિહારભદ્રને પોતાના પક્ષમાં મેળવી લઈ રાજાને ખરાબ રસ્તે ચઢાવે છે. પછી તે અત્યારે પાંચમી કતારના નામથી પ્રસિદ્ધ થએલી જાસુસોની ટોળીના જેવા ઉપાયો થકી અનન્તવર્માના લશ્કરનો નાશ કરે છે. તે ઉપાયો આ પ્રમાણે છે:–

(૧) આનંદદાયક મૃગયાનાં પ્રલોભનોથી બંધ માર્ગોવાળા અરણ્યોમાં સામાવાળા-ઓને પ્રવેશ કરાવી દ્વારપર અગ્નિ ચેતાવી બાળી નાખવા; (૨) વાઘના શિકારની લાલચ આપી તેમની પાસે તેઓનો જીવ લેવડાવવો; (૩) સારા મીઠા કુવાઓની આશાએ દૂર નિર્જન અને નિર્જળ પ્રદેશોમાં લઈ જઈ ભૂખ ને તરસથી જીવ લેવડાવવો; (૪) પાંદડાં, ડાળીઓ વગેરેથી ઢંકાએલા ખાડાવાળા માર્ગે લઈ જઈ તેમાં પાડી નાખવા; (૫) વિષ-મય સોયોથી પગના કાંટા કઢાવી કાસળ કઢાવવું; (૬) જુદે જુદે સ્થળે ફેરવી પોતાના નોકરોથી છૂટા પાડી વધ કરાવવો; (૭) હરણનાં શરીર ચૂક્યાં હોય એવો દેખાવ કરી તે જ બાણોવડે સંહાર કરાવવો; (૮) શરતના બહાને દુર્ગમ પર્વતોપર ચઢાવી નીચે ફેંકી દેવડાવવા; (૯) જંગલી મનુષ્યોના વેશમાં આવી સંહાર કરવો; (૧૦) પાસાનું જૂગટું, પક્ષીયુદ્ધ, મેળાઓ વગેરે જાહેર દૃશ્ય સ્થળોમાં ટોળાઓમાં બળથી પેસાડી મારામારી કરી જીવ લેવડાવવો; (૧૧) ખાનગીમાં નુકસાન કરાવી સાક્ષીઓ દ્વારા તેને પ્રસિદ્ધ કરાવી અપકીર્તિમાંથી બચવા ગુપ્તપણે નસાડી મૂકી મરાવી નંખાવવા; (૧૨) પારકી સ્ત્રીઓ સાથે મેળાપ કરાવી તેમના પતિઓનો અને ઉપપતિઓનો સંહાર કરાવીને તેમને માથે પાડી શિક્ષા કરાવવી; (૧૩) સુંદર સ્ત્રીઓ દ્વારા સંકેત સ્થળે આણી છૂપાઈને ઓચિંતો હુમલો કરાવવો; (૧૪) દ્રવ્યનિધિ માટે ભૂમિ ખોદાવી અથવા મંત્રસાધના કરાવી તેને લીધે પડતી અડચણોના મિષે નાશ કરાવવો; (૧૫) ગાંડા હાથીપર બેસાડી અંકુશમાં ન રખાવી તેમનો વધ કરાવવો; (૧૬) તોફાની હાથી-ઓને એમનાપર છોડાવી મૂકી નાશ કરાવવો; (૧૭) વારસા માટે લડાવી મારી નંખાવી એનો દોષ સામા પક્ષપર ઢોળવો; (૧૮) વંઠેલા લોકોને મારી નાખી એમના મારનારા તરીકે એમને જાહેર કરાવી મરાવવા; (૧૯) વિષમય સ્ત્રીઓ સાથે રાતદિવસ સંભોગ કરાવી ક્ષયરોગ ઉત્પન્ન કરાવી નાશ કરાવવો; (૨૦) વસ્ત્રો, અલંકારો, માળાઓ અને ચંદનલેપાદિમાં ઝેર ભેળવી સંહાર કરાવવો; (૨૧) અને ચિકિત્સાના બહાને રોગ વધારી મૃત્યુવશ કરવા.

નઠારા રાજાઓ રૈયતપર અત્યાચાર કરતા અને તેમના ખરાબ સગાઓ પણ કવચિત્ રૈયતને રંજાડતા. વળી, સામાની ગુપ્ત વાતો જાણવા રાજાઓ જાસૂસોને કામે લગાડતા અને તેઓ યતિઓ અને જાદૂગરોના વેશમાં દુશ્મનના દેશોમાં ભ્રમણ કરી બાતમી લઈ આવતા. રાજાને પોતાનાપર કોઈ વિષપ્રયોગ ન કરે તેની ખાસ સંભાળ રાખવી પડતી. રાજાઓ મહેફિલો ભરતા અને તેમાં જાદુની રમતો, નજરબંધી તથા કસરતના ખેલો કરાવવામાં આવતા, જેવા કે પક્ષીઓના ધ્વનિનું અનુકરણ, હાથપર કૂદકા મારવા, પગ ઊંચા કરવા, જમીનપર હથેળી રાખી માથાને ગોળ ફેરવવું, એક પગ ઊંચો કરી બીજાને સંકુચિત કરવો, બાજુએ નૃત્ય કરવું, વૃશ્ચિકની જેમ ચાલવું, અથવા મગરની જેમ ફાળ ભરવી, તથા મત્સ્યની જેમ ધસી આવવું વગેરે.

માલવપતિના રાજમહેલમાં જાદૂગર વિદ્યેશ્વર જાદુના યાને નજરબંધીના ખેલોને માટે પ્રથમ અનુકૂળ વાતાવરણ ઉત્પન્ન કરે છે. પોતાના પરિજનોથી બજાવાતાં અનેક વાદ્યોના અવાજો સાથે અને મત્ત કોકિલાના ધ્વનિસમ ગાયિકાઓના મધુર સંગીત સાથે તેના ખેલ શરૂ થાય છે. જાદૂગર મોરપિચ્છને ગોળ ફેરવતો પોતાના સાથીઓને ગોળ

ફેરવે છે, અને અર્ધમિલિત લોચન સાથે ક્ષણવાર ઊભો રહે છે. પછી તે પુષ્કળ અને તીવ્ર વિષ વમન કરતા, ફણાથી અલંકૃત થએલા તથા સર્વ દિશાઓમાં રત્નોથી પ્રકાશ ફેલાવતા સર્પો દેખાડે છે. વળી, અભિનયદ્વારા દૈત્યપતિ હિરણ્યકશિપુનો નાશ થતો બતાવવામાં આવે છે. છેવટે તે રાજકુમાર રાજવાહનનો કુમારી અવંતિસુંદરી સાથે સાચો પણ રાજાને મન કૃત્રિમ હસ્તમેળાપ કરી બતાવે છે. વિશેષમાં, આવી મહેફિલોમાં ગવૈયાઓ અને ચારણોના જલસા થતા અને નર્તિકાઓનાં નૃત્યો કરાવવામાં આવતાં.

રાજકુમારોને સર્વ શાસ્ત્રો અને કળાઓ શીખવી પડતી.

ભવિષ્યમાં રાજા થવા નિર્માણ થએલા રાજકુમારોને વિવિધ પ્રકારની વિદ્યાઓ શીખી તેમાં પ્રવીણતા મેળવવી પડતી, અને તે શીખ્યા પછી દિગ્વિજય અર્થે પ્રયાણ કરવું પડતું. વળી, તેમને જન્મસંસ્કાર, તથા ચૌલ, ઉપનયન આદિ સંસ્કારો યથાકાળે યથાવિધિ આપવામાં આવતા, તેમ જ તેઓ સંધ્યા, આચમન, સૂર્યપૂજા, દેવાર્ચન વગેરે નિત્ય કર્મો કરતા. તેઓ મોટે ભાગે ગાંધર્વ વિધિથી અને વૈદિક વિધિથી પરણતા, જો કે અનુલોમ અને પ્રતિલોમ લગ્નોનો વ્યવહાર ચાલુ હોય એમ જણાય છે. તેઓ સઘળી લિપિઓનું જ્ઞાન, જુદા જુદા દેશોની ભાષાઓમાં પાંડિત્ય, ષડંગ સહિત વેદોનું અધ્યયન, કાવ્યો, નાટકો, ઇતિહાસો, આખ્યાયિકાઓ, વાર્તાઓ, રમ્ય કથાઓ અને પુરાણોમાં નિપુણતા, ધર્મશાસ્ત્ર, વ્યાકરણ, જ્યોતિષશાસ્ત્ર, તર્કશાસ્ત્ર, મીમાંસા અને રાજ્યનીતિમાં કૌશલ્ય, વીણાદિ વાદ્યોમાં દક્ષતા, સંગીત, સાહિત્ય અને ચિત્રકળામાં નૈપુણ્ય; મણિમંત્ર, ઔષધિ અને કપટપ્રબંધમાં પ્રવીણતા, હાથી વગેરે વાહનોની સવારીમાં ચપળતા, અને વિવિધ પ્રકારના શસ્ત્રોના ઉપયોગમાં દક્ષતા સંપાદન કરતા. વળી, ચૌર્ય, દ્યૂત વગેરે કપટકળાઓ પણ તેમને શીખવી પડતી. આ સઘળી વિદ્યાઓનું જ્ઞાન કુમારોને બહુ ઉપયોગી નીવડતું. દા. ત. વિપ્ર પાંચાલશર્મા કુમાર પ્રમતિને ધર્મવર્ધન રાજા પાસે ન્યાસ તરીકે મૂકેલી કહેવાતી કન્યાના વર, એક બ્રાહ્મણકુમાર તરીકે રાજા પાસે રજુ કરે છે ત્યારે તેણે આ સઘળી વિદ્યાઓમાં પ્રવીણતા મેળવેલી હોવાનું જણાવે છે, જે હકીકત વાસ્તવિક હોવા વિના તે જણાવી શકત નહિ. વળી, કુમાર મંત્રગુપ્ત યતિના વેશમાં આંધ્રદેશની રાજધાનીમાં કનકલેખાને આન્ધ્રપતિ જયસિંહ પાસેથી છોડાવવા જાય છે ત્યારે પોતાનામાં આસ્થા ઉપજાવવાને પોતે આ બધી વિદ્યાઓમાં નિષ્ણાત હોવાની વાત યથાર્થ રીતે નગરમાં બધે પ્રગટ કરાવે છે. ચૌર્ય, દ્યૂત વગેરે કપટકળાઓનો કેટલેક સ્થળે નિષેધ થએલો હોવા છતાં આ કુમારોને તેનું જ્ઞાન અપાએલું હોવાથી તેમને તે કળાઓનો ઉપયોગ કે દુરુપયોગ કરતા આપણે સ્થળે સ્થળે જોઈએ છીએ. કુમાર અપહારવર્મા ચંપા નગરીમાં રાગમંજરીને અને અંબાલિકાને મેળવવા માટે તથા પોતાના મિત્ર ધનમિત્રને મદદ કરવા માટે ચોરીનો, દ્યૂતનો તથા અન્ય કપટ કળાઓનો ઉપયોગ કરે છે, અને તે પોતાને એક અઠંગ ચોર અને દ્યૂતકાર તરીકે પૂરવાર કરે છે. કુમાર અપહારવર્મા પણ કલ્પસુંદરીની પ્રાપ્તિ અર્થે અનેક કપટકળાઓ અજમાવે છે અને રાજમહેલના અંતઃપુરમાં પ્રવેશ કરે છે. આમ જુદા જુદા

સમયે જુદા જુદા કુમારોને આ વિદ્યાઓ તેમની અર્થસિદ્ધિમાં ઉપયોગી બની બહુ ઉપકારક નીવડે છે.

મામાફોઈનાં બાળકોનાં લગ્ન થતાં.

રાજકુળમાં મામાફોઈનાં પુત્રપુત્રીઓનાં લગ્ન સામાન્ય હતાં એમ જણાય છે. દર્પસારની પુત્રી અવંતિસુંદરીને તેનો ભાણેજ ચંડવર્મા પરણવા ઇચ્છે છે, જો કે તે લગ્ન પાર પડતું નથી. રાણી કાંતિમતી દ્યૂતમાં પોતાના ભાઈ ચંડઘોષની પુત્રી મણિકર્ણિકાને પોતાના પુત્ર અર્થપાળ માટે જીતે છે, અને આખરે તેમનું લગ્ન થાય છે. વળી, કુમાર વિશ્રુત અને વિદર્ભની રાણી વસુંધરાનાં અનુક્રમે બાપના અને માતાના માતામહ એક થાય એટલે તે મામાફોઈનાં થયાં. વસુંધરાની પુત્રી મંજુવાદિનીને વિશ્રુત પરણે છે.

સ્ત્રીઓ લલિત કળાઓ શીખતી.

સ્ત્રીઓ લલિત કળાઓમાં પ્રવીણતા મેળવતી, અને રાજકન્યાઓ ચિત્ર, સંગીત, નૃત્ય આદિ કળાઓમાં નૈપુણ્ય દાખવતી. આ ચિત્રકળાનું પ્રાવીણ્ય રાજકન્યાઓને અને રાજકુમારોને બહુ ઉપકારક નીવડતું, કેમ કે તેના થકી તેઓ પોતાના સુહૃદ અને દાસદાસીઓને અજ્ઞાત છતાં જેમની સાથે પોતાનો પ્રેમ જોડેલો છે એવા કામુકનો પરિચય કરાવી શકતાં. કન્યાઓ સામાન્ય રમત તરીકે અગર તો દેવ–દેવીની તુષ્ટિ અર્થે નૃત્ય કરતી, જેમ કે કંદુકાવતીનું સોમાપીડાદેવી સમક્ષ નૃત્ય, અને કાન્તિમતીનું શિવની આરાધના અર્થે પ્રમદાવનમાં કરેલું નૃત્ય. કંદુકાવતી કંદુક નૃત્ય કરતાં અસાધારણ કૌશલ્ય દર્શાવે છે અને ગીતમાર્ગનો ઠેકો મારે છે, એટલે કે પડતા દડાને ઝીલવાને દસ પગલાં ઠેકીને આગળ આવે છે, અને દડાની ગતિ અનુસાર આગળ પાછળ કૂદકા મારી (ચૂર્ણપદથી) એની ગતિ સમજવામાં નિપુણતા દર્શાવે છે. વળી, પરિત્યક્તા રત્નવતી પોતાના રુષ્ટ પતિ બલભદ્રને લલચાવવા પોતાની સખી કનકાવતીના વેશમાં દડાની રમત રમે છે. સામાન્ય રીતે રાજકુટુંબની સ્ત્રીઓને લોકોની દૃષ્ટિએ પડવાની મનાઈ હોય એમ લાગે છે, કેમ કે કંદુકોત્સવ સમયે રાજકન્યા કંદુકાવતીના દર્શનનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો નથી એમ તેની સખી જણાવે છે, એટલે તેઓ બનતા સુધી લોકોની દૃષ્ટિએ નહિ પડતી હોય એમ પ્રતીત થાય છે. વળી, સ્ત્રીઓ સામાન્યતઃ પુરુષોની સાથે ફરે એ પણ ઠીક નહિ ગણાતું હોય, કેમ કે પોતાના પુત્રસમ કુમાર પ્રમતિને સાથે લઈ શ્રાવસ્તીમાં ત્ર્યંબક મહાદેવના ઉત્સવ સમારંભમાં જવામાં, "હું કેવી રીતે આ યુવાનની સાથે મેળામાં જઈશ", એ શબ્દોથી તારાવલી લોકાપવાદનું સૂચન કરે છે. સ્ત્રીઓ સતીત્વનું મૂલ્ય બહુ ઊંચું આંકતી, અને પતિની અવકૃપામાં રહેવું એ તેમને મન જીવતાં મોત સમાન લેખાતું. પતિવિયોગ અનુભવતી સ્ત્રી કેશની એક જ વેણી રાખતી અને નીલવર્ણનાં વસ્ત્ર અને કંચુકી પહેરતી. પતિવ્રતા સ્ત્રી પતિને દેવતુલ્ય કિંવા પોતાનું દૈવત ગણતી, અને પોતાની સપત્ની પ્રત્યે સમભાવ દર્શાવતી. સતીત્વની પરીક્ષા માટે ચમત્કારિક પારખાં (દિવ્ય)નો આશ્રય લેવાતો. વસુમતી રાણી રાજહંસના કલ્પેલા મરણ પાછળ સતી થવાનો વિચાર કરે છે, તથા કાંતિમતી

કામપાલ સાથે ચિતાગમન કરવા પ્રવૃત્ત થાય છે એ દૃષ્ટાંતોથી સતી થવાની રૂઢિ પ્રચલિત થઈ હોય એમ જણાય છે.

ગણિકાઓનો ધર્મ.

ગણિકાઓને પોતાનો કુટુંબધર્મ પાળવો પડતો અને પોતાના સૌંદર્યવિક્રયથી ધનોપાર્જન કરવું પડતું, કેમ કે કુલધર્માનુસાર વર્તનાર (પછી ભલેને તે ગણિકાનો ધંધો હોય તો પણ)ને સ્વર્ગપ્રાપ્તિ થાય છે એવી માન્યતા હતી. સતીત્વના માર્ગે જવા ઇચ્છતી ગણિકા માટે સન્માર્ગ કષ્ટસાધ્ય હતો, કારણ કે તે તેની માતા અને માતામહીની ઇચ્છાનું ઉલ્લંઘન કરી શકતી નહિ. છતાં પણ તેમનામાંથી ક્વચિત્ કોઈ રાગમંજરી જેવી વસંતસેનાનો ઉદ્ભવ થતો. તેમને અનેકાનેક વિદ્યાઓમાં અને કળાઓમાં નિપુણતા મેળવવી પડતી. તેમનાં શારીરિક સૌંદર્ય અને પુષ્ટિ પ્રત્યે ખાસ ધ્યાન અપાતું, અને કામશાસ્ત્ર, જુદા જુદા પ્રકારની રમતો અને દ્યૂતકળામાં તેમને પ્રવીણતા પ્રાપ્ત કરવી પડતી. જાહેર જલસાઓમાં અને ઉત્સવોમાં તેમને સંભાળથી શણગારી લોકોની દૃષ્ટિએ પાડવામાં આવતી, તેમ જ પંચવીરગોષ્ઠ (town-hall)માં તેઓ સંગીત અને નૃત્યના જલસા કરતી. ચાટુડાઓ, ભાંડો અને આર્જાઓની મારફત લોકોમાં તેમના સૌંદર્યનું પ્રકાશન કરાવવામાં આવતું. વેશવાટ અથવા વેશ્યાવાડો નગરમાં અલગ રાખવામાં આવતો.

વાણિજ્યની ઉત્તમ સ્થિતિ.

વાણિજ્ય ઉત્તમ સ્થિતિમાં હતું. વણજારાઓની ટોળીઓ માલની પોઠો સાથે વનમાર્ગોમાં અને શહેરોમાં પ્રવાસ કરતી. વહેપારીઓ પોતાનાં મહાજનો સ્થાપતા અને તેઓ વ્યાપારીઓના રક્ષણનો પ્રબંધ કરતા. વ્યાપારાર્થે સમુદ્રગમન કરવામાં આવતું. પદ્મોદ્ભવ પ્રધાનનો પુત્ર રત્નોદ્ભવ વ્યાપારાર્થે કાળયવન દ્વીપમાં (જંગબારમાં) જાય છે અને ત્યાં રહે છે. તે કાળમાં નૌકાઓનો ઉપયોગ ઠીક પ્રમાણમાં થતો. આંધ્રપતિ જયસિંહ કલિંગ રાજાની સાથે લડવા નૌકા દ્વારા સૈન્ય લાવી તેનાપર હુમલો કરે છે. નૌકાયુદ્ધમાં પણ તેઓ પાવરધા હતા, અને મદ્ગુ (યુદ્ધનૌકા-battle-ship)નો ઉપયોગ કરતા. તે મદ્ગુ, 'अनेकनौकापरिवृतः,' અર્થાત્ અનેક નૌકાઓથી વીંટાએલી રહેતી, તે ખાસ ધ્યાનમાં લેવા જેવું છે. સૌરાષ્ટ્રમાં વલભીના અતિધનવાન નાવિકપતિ ગૃહગુપ્તની વાર્તાપરથી વલભી નૌકાનું મોટું ધામ હોવું જોઈએ એમ લાગે છે. યવનોનાં વહાણો અરબસ્તાનના કિનારાપરથી સમુદ્રયાત્રાએ આવતાં. અર્થપ્રાપ્તિનાં સાધન તરીકે કૃષિકાર્ય, પશુપાલન, વાણિજ્ય, સંધિ અને વિગ્રહ મુખ્ય ગણાતાં.

ન્યાયાધીશો અને ગુનેગારો.

ન્યાયાધીશો ન્યાય આપવાનું કાર્ય કરતા અને ચોકિયાતો રાતદિવસ નગરપર્યટન કરી નગરરક્ષણનું અને અપરાધીઓને પકડવાનું કાર્ય કરતા. ગુનેગારોને દરોગાઓના કબજામાં સોંપવામાં આવતા, અને તેઓ ગુનેગારોના શરીરપર ગુના કબૂલ કરાવવા જાતજાતની (અઢાર પ્રકારની) યાતનાઓ ગુજારતા. તેમને ચિત્રવધ અર્થાત્ હાથીના

પગનીચે છુંદાવવાની, આંખો ફોડવાની વગેરે અતિશય ઘાતકી વ્યથાઓ કરાવવામાં આવતી અને તેમના જીવનનો અંત લાવવામાં આવતો. ચોરી માટે ગુનેગારને મોતની શિક્ષા કરવામાં આવતી, તથા તેના બે હાથ ચીનના ગુનેગારોની જેમ લાકડાના ઢીમચામાં નાખવામાં આવતા. બ્રાહ્મણને રાજદ્રોહ માટે કષ્ટદાયક શિક્ષા કરી મારી નાખવામાં આવતો, અને વણિકને ચોરીના ગુના માટે એનું સર્વસ્વ હરણ કરી લઈ દેશપાર કરવામાં આવતો. ડાકિની સ્ત્રીને ગ્રામવાસીઓનું પંચ દેશપારની શિક્ષા કરતું.

પાખંડધર્મ અને વૈદિક યજ્ઞનો ઉપહાસ.

યતિઓને જનસમાજના ઉપકારક ગણવામાં આવતા. તેઓ શાસ્ત્રો શીખવતા, તેમની ચરણરજથી રોગનો નાશ થતો અને તેમની કૃપાથી ગ્રહોનું નડતર દૂર થતું. જૈનધર્મને પાષંડી અર્થાત્ પાખંડી ધર્મ તરીકે ગણેલો છે. મનુષ્યને માટે નિંદવાયોગ્ય વેશવાળો, અતિશય દુઃખથી ભરેલો, વિષ્ણુ, બ્રહ્મા અને મહાદેવ વગેરે દેવતાઓની નિંદા સતત સાંભળવાથી મૃત્યુ પછી નરકનું ફળ આપનારો, કોઈ પણ પ્રકારના સારા ફળ વિનાનો અને વંચનાયુક્ત ધર્મ તરીકે તેની ગણના થતી. વળી, પત્ની, છોકરાં વગેરે સર્વસ્વનો ત્યાગ કરાવનાર ધર્મ તરીકે પણ તેની હાંસી કરાવી છે. વેદવિહિત અગ્નિસ્તોમ યજ્ઞનો, યજમાનના શિરનું મુંડન કરાવી, તેને દર્ભના દોરડાથી બાંધી, ચર્મથી તેનું શરીર ઢાંકી, માખણ ચોપડી ખવડાવ્યા વિના સુવાડી, બીજા જન્મમાં સુખ મળવાની આશાએ સર્વ સંપત્તિનો ત્યાગ કરાવનાર વિધિ તરીકે નિર્દેશ કરી તેનો ઉપહાસ કરવામાં આવ્યો છે. આમ કરીને વૈદિક યજ્ઞને ઉતારી પાડ્યો છે.

તે કાળનું નૈતિક અધઃપતન.

તે કાળમાં લોકનીતિનું અધઃપતન થવા માંડ્યું હતું તે પ્રથમ જણાવવામાં આવ્યું છે. નગરમાં લોભિયા ધનવાન મનુષ્યો વસતા અને ધૂર્ત લોકો એમના ધનનું કોઈ પણ રસ્તે, મુખ્યત્વે કરીને ચોરી અને જુગારથી હરણ કરતા. ચૌર્ય અને દ્યૂતની કળામાં ગણના થતી, એ આપણે કહી ગયા છીએ. ચૌર્યકાર્યનો અધિષ્ઠાતા દેવ કર્ણિસુત અથવા મૂળદેવ હતો, અને દ્યૂતાગારનો સંચાલક અથવા અધ્યક્ષ સભિક કહેવાતો. સભિક દ્યૂતકાર્યપર દેખરેખ રાખતો અને એને રમનારાઓની આવકમાંથી અમુક ભાગ મળતો. ચોરી કરવાનાં ઉપકરણોનું અને દ્યૂતની રમતની ઉસ્તાદીનું 'મૃચ્છકટિક'ની જેમ આમાં ઠીક વર્ણન આપવામાં આવ્યું છે, અને તે પરથી તે ધંધાના અનુયાયીઓ વિપુલ સંખ્યામાં હોવા જોઈએ એમ લાગે છે. 'મૃચ્છકટિક'ના નાટકની જેમ આમાં દ્યૂત અને ચૌર્યકાર્યનું શાસ્ત્રીય કળાઓ તરીકે વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. તે એની સરખામણી અસ્થાને નહિ ગણાય, કેમ કે એ બેનું કેટલું સામ્ય છે તે આથી જણાશે. 'મૃચ્છકટિક'નો ચોરી કરનાર પાત્ર શર્વલિક ચૌર્યકાર્ય માટે રાત્રિના સમયની પ્રશંસા કરે છે; અને ચૌર્યકાર્યની સ્તુતિ કરતાં કહે છેઃ--

कामं नीचमिदं वदन्ति पुरुषाः स्वप्ने च यद्वर्धते
विश्वस्तेषु च वञ्चना परिभवश्चौर्यं न शौर्यं हि तत् ।
स्वाधीना वचनीयतापि हि वरं बद्धो न सेवाञ्जलि-
र्मार्गो ह्येष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतं द्रौणिना ॥

ખાતર કેવી રીતે પાડવું તેનું શાસ્ત્રીય વિવેચન કરી, કળામય આકૃતિમાં ખાતર પાડવા સંબંધમાં તે કહે છે,

पद्मव्याकोशं भास्करं बालचन्द्रं
वापी विस्तीर्णं स्वस्तिकं पूर्णकुम्भम् ।
तत्कस्मिन्देशे दर्शयाम्यात्मशिल्पम्
दृष्ट्वा श्वो यं यद्विस्मयं यान्ति पौराः ॥

ચોરી કરવાના ઉપકરણોમાં અદૃશ્યતા અને વ્રણમુક્તિ પ્રાપ્ત કરી આપનાર યોગરોચનાનું જાદુઈ મલમ, અંતર માપવાનું (પ્રમાણ) સૂત્ર, ઘરમાં મનુષ્યો જાગે છે કે ઊંઘે છે તે નક્કી કરવાને પ્રથમ ઘરમાં દાખલ કરવા પ્રતિપુરુષ, દ્રવ્યનું અસ્તિત્વ નક્કી કરવા યાને નિધિસ્થળ જાણવાને માટે જમીનપર પાણી સિંચી, નાખવાથી ફૂટે તો તે સ્થળે તે હોવાનો નિર્ણય કરી આપનાર બીજ, વગેરે વસ્તુઓ જણાવવામાં આવી છે. શર્વલિક પાસે તે સમયે પ્રમાણસૂત્ર (માપવાની દોરી) હાજર નહિ હોવાથી તે કાર્યમાં તે યજ્ઞોપવીતનો ઉપયોગ કરે છે. યજ્ઞોપવીત હોવાના લાભ તે નીચે પ્રમાણે દર્શાવે છે.

एतेन मापयति भित्तिषु कर्ममार्ग-
मेतेन मोचयति भूषणसंप्रयोगात् ।
उद्घाटको भवति यन्त्रदृढे कपाटे,
दष्टस्य कीटभुजगैः परिवेष्टनं च ॥

વળી, ચૌર્યકાર્ય કરનારાનું નીતિશાસ્ત્ર પણ છે. તદનુસાર ચોરે સ્ત્રીઓના નિવાસમાં ખાતર પાડવું નહિ, સ્ત્રીને મારવી નહિ, તથા પરમાર્થી દરિદ્રી ગૃહસ્થના ઘરમાં ચોરી કરવી નહિ. 'દશકુમાર ચરિત'માં કુમાર અપહારવર્મા ચોરી કરવા જાય છે ત્યારે ચોરી કરવાનાં સાધનો તરીકે નીચેની વસ્તુઓ સાથે લઈ જાય છે. પ્રથમ તો તે કાર્ય માટે તે અતિશય કાળી રાત્રિ પસંદ કરે છે, અને શરીરપર કાળો અંધેરપછેડો ઓઢી લે છે. પછી સાથે તીક્ષ્ણ તલવાર, ખોદવા માટે સર્પની ફેણ જેવો પળો, સિસોટી, સાણસી, ઘરમાં મનુષ્યો જાગે છે કે ઊંઘે છે તે જાણવા માટે બનાવટી માથું, 'મૃ૦ ક૦'ની યોગરોચના સમાન જાદુઈ ભૂકી, મનુષ્યોને નિદ્રામાં નાખવા અને ધન દૃષ્ટિએ પડે એટલા માટે જાદુઈ દિવેટ, માપવાની દોરી, ઉપર ચઢવા માટે પેચ (હુક) ને દોરડું, ફાનસ, ઘરમાં બળતો દીવો હોલવી નાખવા વાંદાની દાબડી, એટલી વસ્તુઓ લઈ જાય છે.

દ્યૂતાગારનો અધ્યક્ષ સભિક 'મૃચ્છકટિક'ના વર્ણન અનુસાર દ્યૂત રમનારાની જીતમાંથી અમુક ભાગ પડાવતો. (૧૦૦ ટકાથી ઓછા મળતરપર તે પાંચ ટકા લેતો, અને વિશેષ મળતરપર દસ ટકા લેતો). તે જીતનારાના પૈસા વસુલ કરાવી આપતો. જે મનુષ્ય પૈસા ન આપે તેને દ્યૂતકર મંડળીના નામે પકડાવી શકતો, અને તેને પગેથી લટકાવડાવતો, અથવા તેના બરડાની ખાલ ઉતારી નંખાવતો, અગર તો તેની પાછળ

કૂતરાં છોડી મૂકાવતો. આમ પૈસા ન આપનાર પર અનેક પ્રકારની યાતનાઓ ગુજારવામાં આવતી.

'દશકુમારચરિત'માં પાસા ફેંકવાની તથા ચલાવવાની ઉસ્તાદી વગેરે દ્યૂતની સાથે સંબંધ ધરાવતી પચીસ કળાઓ હોવાનું જણાવ્યું છે. તેનાથી થતા લાભમાં દ્રવ્યના ત્યાગમાં રહેલી ચિત્તની ઉદારતા, જયપરાજયની અસ્થિરતાને લીધે હર્ષશોકનો અભાવ, પૌરુષના એક જ કારણરૂપ કોઈથી ન દબાવાના ગુણની વૃદ્ધિ, પાસા ચલાવ-વાના ગૂઢ દાવપેચના નિરીક્ષણને લીધે અતિશય બુદ્ધિચાતુર્ય, એક વિષયમાં પરોવેલા મનની આશ્ચર્યકારક એકાગ્રતા, ઉદ્યમસાતત્યના ગુણની અનુષંગી સાહસકર્મો પ્રત્યે અભિરુચિ, કર્કશ લોકો સાથે આકરી આંધવાને લીધે પરાજય નહિ પામવાનો ગુણ, સ્વમાન વિષે દૃઢ નિશ્ચય, અને પ્રતિષ્ઠા સાથે જીવનયાત્રા, એટલા ગુણો ગણાવવામાં આવ્યા છે.

પ્રેમકથાઓ અને પ્રેમકાર્યમાં કપટકળા.

પ્રેમકાર્યમાં કપટપ્રબંધનો સ્થળે સ્થળે છૂટથી ઉપયોગ થતો. કન્યાઓના અંતઃ-પુરમાં યુવાનોને પ્રવેશ કરાવવામાં આવતો, તથા કુમારી કન્યાઓ સાથે તેમનો સમા-ગમ થતો. વળી, એવી રીતે સમાગમ થએલી સ્ત્રીને પ્રસૂતિ થતી, અને પ્રસૂત બાળકને જીવાડવામાં આવતું. કાંતિમતીની બાબતમાં આવી ઘટના બની હતી, તેમાંથી તેની ભત્રીજી મણિકર્ણિકાને બચાવવા કાંતિમતીનો ભાઈ ચંડઘોષ પોતાની પુત્રીને વર્ષો સુધી ભૂગર્ભના પ્રાસાદમાં પૂરી રાખે છે. આ દાખલા પરથી તેમ જ પાંચાલશર્મા બ્રાહ્મણ પોતાની વેષધારી કન્યાનું શીલ સાચવવા રાજા ધર્મવર્ધન પાસે તેને ન્યાસ તરીકે મૂકી જાય છે તે પરથી અમુક સંજોગોમાં કન્યાઓનું શીલ સાચવવા કેવા માર્ગ લેવાતા એ માલૂમ પડે છે. કુમાર ઉપહારવર્મા પોતાની અર્થસિદ્ધિ અર્થે પોતાના કાકાના દીકરા વિકટવર્માની પત્ની પ્રિયંવદા સાથે સંગમન કરવા પ્રવૃત્ત થાય છે. એનો અંતરાત્મા એ દુષ્કૃત્ય સામે વાંધો ઉઠાવે છે એટલે તે કાર્ય સદ્‌હેતુ અર્થે તેને કરવું પડે છે અને ગત જન્મમાં તે સ્ત્રી પોતાની પત્ની હતી અને અમુક શાપને અંગે આમ બનવું નિર્માણ થએલું છે એવા સયુક્તિક બચાવથી તે પોતાના મનનું સમાધાન કરે છે. આખા પુસ્તકમાં પ્રેમકથાઓનાં અનેક વર્ણનો છે, અને પ્રેમકાર્યોમાં 'માલતીમાધવ'ની કામંદકીની જેમ બુદ્ધ ભિક્ષુકીઓ અને જૈન સાધ્વીઓનો દૂતી તરીકે ઉપયોગ થતો જોવામાં આવે છે.

કેટલીક માન્યતાઓ.

કાર્તાંતિકો કિંવા જ્યોતિષિઓ પ્રત્યે લોકો સારી શ્રદ્ધા ધરાવતા. તેઓ સામુદ્રિક ચિહ્નો જોઈને મનુષ્યનું ભાગ્યકથન કરતા. અનારોગ્યાદિ અનિષ્ટો દુષ્ટ ગ્રહની અસરથી અથવા પાછલા જન્મનાં કૃત્યનાં ફળરૂપે ઉત્પન્ન થએલાં મનાતાં. લોકોની પુનર્જન્મ વિષે દૃઢ માન્યતા હતી, અને તદનુસાર મનુષ્યોને પાપનાં અને પુણ્યનાં ફળ બીજા જન્મમાં ભોગવવા પડતાં. પાપની શિક્ષા તરીકે પાપીઓને જમપુરીમાં નરકયાતનાઓ સહન કરવી પડતી. યમરાજા પોતાના અમાત્ય ચિત્રગુપ્તદ્વારા સૌ સૌના પાપ પ્રમાણે

શિક્ષા કરતા. વળી, શાપને લીધે ઉચ્ચ યોનિમાંથી મનુષ્ય યોનિમાં જન્મ ધારણ કરવો પડતો, અને તે સમયે પ્રથમ જન્મનું સ્મરણ રહેતું. મણિ, મંત્ર અને ઔષધિઓનો પ્રભાવ જાણનારાઓને અનિષ્ટનિવારણાર્થે અમુક સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થએલી હોવાનું માનવામાં આવતું. તેઓ શરીરાન્તર કરાવી શકતા, સર્પનું ઝેર ઉતારી શકતા, અને મણિની મદદથી ભૂખ, તરસ આદિનું નિવારણ કરી શકતા. સિદ્ધ તાપસો ભવિષ્ય કહેતા. રાક્ષસો, ડાકિનીઓ, પ્રેતો અને ભૂતપિશાચોને લોકો માનતા અને યક્ષ, ભૂત આદિનું મનુષ્યને વળગણ થતું એમ માનવામાં આવતું. ભૂતપિશાચો 'અરેબિયન નાઇટ્સ'માં જેમ કરે છે તેમ અહીં પણ મનુષ્યોને અદ્ધર ઊઠાવી સ્થળાન્તર કરાવતા, તથા તેઓ ઇચ્છાનુસાર ગમે તે રૂપ ધારણ કરી શકતા. અંજન આંજવાથી મનુષ્યને વાનર બનાવી શકાતું, ગુપ્તનિધિ પ્રકટ કરી શકાતો, તેમ જ અદૃશ્ય થવાની વિદ્યાના જાણકાર અદૃશ્ય થતા. શબ ખાનારી ડાકિની (ghoul)નું અસ્તિત્વ પણ માનવામાં આવતું. યક્ષ-રાક્ષસો તરફથી ઉત્પન્ન થએલા ઉપદ્રવો માટે મંત્રતંત્રના જાદુઈ ઉપચારો કરાવવામાં આવતા. રણમાં જે યોદ્ધાઓ પડતા તેમને અપ્સરાઓ વરતી એ માન્યતા પણ આ કાળમાં પ્રચલિત હતી. વળી, પક્ષીઓનાં વચનપરથી ભાવી વસ્તુઓની શક્યાશક્યતા અને કાળનો નિર્ણય કરવામાં આવતો. વિશેષમાં કિરાત લોકો મિથિલાપતિના બાળક-પુત્રને દેવી આગળ બલિદાન આપવા પ્રવૃત્તિ કરતા હોવાનો ઉલ્લેખ છે તેથી હલકા વર્ણના લોકોમાં નરબલિ આપવાનો રીવાજ તે સમયમાં હોવો જોઈએ. મહાન આપત્તિના અથવા દુઃખના સમયે આત્મઘાતનું શરણ લેવાતું, અને વૈશ્વાનર (અગ્નિ)પ્રવેશ કરીને અથવા ભૈરવજપનો કૂદકો મારીને અગર તો* પ્રતિશયન વા અનશન વ્રતથી જીવનનો અંત આણવામાં આવતો. આ પ્રમાણે રાજા કદી ભૂખે મરી પોતાના જીવનનો અંત આણવા ગંગાતટપર આવેલા વનમાં સપત્નીક જતો તો તેની સાથે વૃદ્ધ પૌરજનો પણ મરવા તૈયાર થતા. ગુલામીની પ્રથા તે કાળમાં ચાલુ હતી એમ જણાય છે, અને દાસ દાસીઓ વેચાતાં મળી શકતાં હતાં.

આતિથ્ય અને કરકસર.

અતિથિદેવો ભવ એ શાસ્ત્રાદેશને પ્રમાણરૂપ ગણનાર આપણો દેશ અતિથિસત્કારમાં પાછો પડે એમ નથી, એટલે પરોણાઓનું આતિથ્ય ઉત્તમ રીતે કરવામાં આવતું એ સ્પષ્ટ જ છે. અતિથિનું યોગ્ય સ્વાગત કરી, સ્નાન, ભોજન, શય્યા, કર્પૂરયુક્ત તાંબૂલ આદિથી તેની સરભરા કરવામાં આવતી. વળી, ગૃહિણીની કરકસર તથા આતિથ્યનું દૃષ્ટાંત ગોમિનીની વાર્તા યથાસ્થિત પૂરૂં પાડે છે, એટલે તેનું સંક્ષિપ્ત કથન કર્યા વિના આ લેખ અપૂર્ણ ગણાશે. આપણા લોકોની સાદાઈ, સ્વચ્છતા, સંતોષવૃત્તિ અને રહેણી કરણીનું તાદૃશ ચિત્ર તે ઊભું કરે છે. તે નીચે પ્રમાણે છે:–

ગોમિનીનું વૃત્તાંત.

કાંચીપુરીના શક્તિકુમાર નામના યુવકને ગુણવાન સ્ત્રી સાથે લગ્ન કરવું હતું તેથી તેવી સ્ત્રી મેળવવાને માટે તે દેશેદેશ ભટક્યો. સાથે શાલિ ડાંગેરનું પસ્તાનું બાંધી

---

* પ્રતિશયન:–દેવ દેવતા સમક્ષ ખાધા પીધા વિના પોતાની ઇચ્છિત વસ્તુ પ્રાપ્ત થતાં સુધી, અને તે પ્રાપ્ત ન થાય તો મરતાં સુધી પડી રહેવું.

લીધું. પોતે કાર્તાંતિકના વેશમાં હોઈને તથા સામુદ્રિક વિદ્યાનો જાણકાર હોવાથી લોકો તેને પોતાની કન્યાઓ બતાવવા લાગ્યા. શુભ ચિહ્નો ધારણ કરતી સુંદર સવર્ણા કન્યા એના જોવામાં આવતાં સાથે લીધેલું પસ્તાનું બતાવી તેમાંથી સરસ અન્ન બનાવી પોતાને જમાડવાનું કહેતો, પણ તેની સઘળે સ્થળે મશ્કરી થતી. ફરતાં ફરતાં શિબિ દેશમાં કાવેરી નદીના તીરપર એક શહેરમાં તે આવ્યો. ત્યાં તેને એક આછાં અલંકાર ધારણ કરતી અતિ સુંદર કન્યા એની ધાવે બતાવી. એના લાવણ્યથી અને એના શરીરપરનાં માંગલિક ચિહ્નોથી તે આકર્ષાયો અને તેને શાલિ પસ્તાનામાંથી રુચિર ભોજન બનાવવાને કહ્યું. તે કન્યાએ ધાવ સામે દૃષ્ટિ કરતાં તેની અનુમતી મળ્યેથી ધાન્યનું પોટલું લઈ, પાણીથી છાંટેલા અને લીંપેલા એક ઊંચા સ્થળપર પગ ધોવાનું પાણી આપી એને બેસાડ્યો. પછી એણે તે સુગંધયુક્ત શાલિને તડકે સહેજ સૂકવી, બત્તાથી છડી, ચોખા ભાગે નહિ એમ છોડાં છૂટાં કર્યાં. છોડાં ધાવને ઘરેણાં સાફ કરનારા સોનીઓને વેચાતાં આપવા માટે આપ્યાં. એના પૈસામાંથી બાળવાનાં લાકડાં, રાંધવાનું પાત્ર અને બે માટીનાં પાત્ર લાવવા સૂચના કરી. પછી તે ચોખાને અર્જુનના કાષ્ઠના ખાંડણિયામાં છેડાપર લોખંડનો પાટો જડેલા ખદિરના સાંબેલાથી આંગળીઓ-વડે વારંવાર ફેરવી ફેરવીને ખાંડ્યા અને સૂપડાથી ઝાટક્યા. એની કુશકીમાંથી કણ અને ધૂળ જૂદાં કરી ચોખાને અનેક વખત ધોયા, અને ચૂલાની પૂજા કરી ઉકળતા પાણીમાં ઓર્યાં. ચોખાનો દાણેદાણો કળીની માફક છૂટો પડી રંધાયો એટલે તેણે દેવતા ઓછો કરી પાત્રનું મોં બંધ કરી ઓસામણ નીતારી લીધું, અને કડછીથી ચોખા સહેજ હલાવી ભાત સીજ્યેથી પાત્ર ચૂલાપરથી ઉતારી લીધું. લાકડાં થોડાં બળેલાં હોવાથી છાંટી નાખી બુઝાએલા અંગારાના કોલસા બનાવી જેને તેની જરૂર હોય તેને વેચી દેવા માટે ધાવને આપ્યા. તેના પૈસામાંથી શાક, ઘી, દહીં, તેલ અને આમળાં વગેરે લાવવાની સૂચના કરી. તેમાંથી બે ત્રણ મશાલાના પદાર્થો તૈયાર કરી ભીની રેતપર મૂકેલા નવા માટીના પાત્રમાં ભરેલા ઓસામણને તાડપત્રના પંખાથી ધીમે ધીમે પવન નાખી ઠંડુ કરી તેમાં મીઠું નાખ્યું. પછી અંગારામાં નાખેલા ધૂપથી સુવાસિત કરી તથા આમળા આદિ મશાલાનું સૂક્ષ્મ ચૂર્ણ કરી કમળ જેવું સુગંધી બનાવી, આગંતુકને ધાવ મારફત સ્નાન કરવા કહેવડાવ્યું.

નહાવા ગયો ત્યાં નહાઈ ધોઈ શુદ્ધ થએલી ધાવે તેને તેલ અને આમળાં એક પછી એક આપ્યાં અને તેણે સ્નાન કીધું. પછી તેને છાંટેલી અને માર્જન કરેલી ફરસબંધી-વાળી જમીનપર ઢાળેલા પાટલાપર બેસાડ્યો. આંગણામાં ઉગેલી કેળના ત્રીજા ભાગના કાપેલા પત્રપર બે ભીનાં વાસણોનો સ્પર્શ કરી ક્ષણવાર તે થોભ્યો. પછી તેણે આણેલો કન્યાએ પીવાનો પદાર્થ (ઓસામણ) પ્રથમ પીધો. તે પીવાથી પ્રવાસનો થાક ઉતરી ગયો અને તેને આનંદ થયો એટલે શરીરે પ્રસ્વેદનાં બિંદુ ફૂટવા સાથે તે ઘડીભર બેઠો. પછી રાંધેલા ભાતમાંથી બે કડછી જેટલો ભાત અને થોડું ઘી, મશાલો અને શાકાદિ પદાર્થ તેને આપ્યા. ત્રિકટુચૂર્ણમિશ્રિત દહીં તથા શીતળ અને સુગંધિ છાસ સાથે તેણે તે આરોગ્યું. તેને અતિશય તૃપ્તિ થવા છતાં રાંધેલા ભાતમાંથી થોડો વધ્યો. પછી તેણે પીવાનું પાણી માગતાં કન્યાએ નવા માટીના ઘડામાં ઠારેલું, અગરનો ધૂપ દીધેલું તથા

નાનાં પાટલકુસુમોથી અને વિકસિત કમળોથી સુગંધિત કરેલું પાણી ધાર કરીને આપ્યું. જળકણોથી એની આંખોનાં પોપચાં છંટાઈને રતાશવાળાં બન્યાં, ધારાના ધ્વનિથી કર્ણને આનંદ થયો, સ્પર્શના સુખથી કઠણ કપોળપ્રદેશ રોમાંચિત બન્યો, તેની ઘટ્ટ સુગંધના પ્રસરવાથી નસકોરા ફૂલ્યાં અને જળના અતિશય માધુર્યથી જીભને પરમ તૃપ્તિ થઈ. આવું સ્વચ્છ પાણી તેણે થાળીને મોંએ અરાડી ધરાઈને પીધું. પછી કન્યાએ તેને બીજા પાત્રમાંથી આચમન આપ્યું. પેલી વૃદ્ધાએ એઠું ઊઠાવી લીધું અને લીલા છાણથી એ ફરસબંધીપર લીંપ્યું, એટલે પોતાનું ઉત્તરીય વસ્ત્ર તેનાપર પાથરી ક્ષણવાર તે ત્યાં સૂઈ ગયો. આથી અતિશય સંતુષ્ટ થઈ વિધિસર એ કન્યાને પરણી તેને પોતાને ઘેર લઈ ગયો.

ઉપસંહાર: હિંદુસમાજની રૂઢિચુસ્તતા અને સ્થિતિસ્થાપકતા.

દણ્ડીના દશકુમાર ચરિતમાં આલેખેલા હિંદુ સમાજનું આપણે વિહંગાવલોકન કર્યું. અતિશય સમૃદ્ધિના અનુષંગી ભોગવિલાસોના પરિણામે તેનું તે સમયે નૈતિક અધઃ-પતન થવા માંડ્યું હતું. હિંદુસમાજનું એ ખાસ લક્ષણ છે કે અનેક કાળો આવે છે અને જાય છે, છતાં તેના રીતરિવાજો, તેની માન્યતાઓ અને તેનાં બાહ્ય સ્વરૂપોમાં ઝાઝો ફેરફાર પડેલો જણાતો નથી. સૈકાનાં સૈકાઓ સુધી તે લગભગ એક જ સ્થિતિમાં રહેલો જણાય છે. તે કાળના રિવાજોમાં પ્રધાનપદે અનેક પત્નીઓ કરવાનો રિવાજ, મૂર્તિપૂજા, યાત્રોત્સવો, ગૃહવ્યવસ્થાની રીતો, ધાર્મિક વિધિઓ વગેરે વિના રૂપાન્તરે આગળ ચાલ્યા આવે છે. પુનર્જન્મ, કર્માનુસાર ફળ, સ્વર્ગ ને નરક, શાપો, સ્વપ્નો, શકુનો, ભૂતપ્રેતો, જાદૂઈ ઉપચારો વગેરેની માન્યતાઓ એવી ને એવી દૃઢ રહેલી માલૂમ પડે છે. વેદના કાળમાં અવિભક્ત અને આ સમય પહેલાં ચાતુર્વર્ણ્યમાં વિભક્ત થએલો જનસમાજ જે આગળ જતાં વિવિધ પેટાભાગોમાં વહેંચાય છે તે થોડા અથવા વત્તા પ્રમાણમાં એક સ્વરૂપે દેખા દે છે. વળી, ધર્મમાં પરિવર્તન થયું જણાય છે પણ તે માત્ર બાહ્ય સ્વરૂપમાં થએલું છે. બુદ્ધ ધર્મે મૂર્તિપૂજા, દેવમંદિરો, ઉત્સવ સમારંભો અને તીર્થયાત્રાઓને જન્મ આપ્યો પણ મનુના કાળ સુધી ત્રિમૂર્તિનો સ્વીકાર થયો નથી, તેમ જ મૂર્તિપૂજા પ્રશંસનીય ગણાઈ નથી. વળી, બુદ્ધ ધર્મના લીધે ધર્મના સ્વરૂપમાં જે પરિવર્તન થયું તેના પરિણામે યજ્ઞો લગભગ બંધ જેવા થઈ ગયા, અને તેમનું સ્થાન મંદિરો અને યાત્રાઓના ભપકાબંધ સમારંભો અને ઉત્સવોએ લીધું. તેમ છતાં એકરીતે હિંદુસમાજ એટલો રૂઢિચુસ્ત અને સ્થિતિસ્થાપક છે કે આ પરિવર્તન માત્ર બાહ્ય સ્વરૂપનું હતું, અને તત્ત્વતઃ હિંદુધર્મના વિચારો નવીન પરિસ્થિતિને બંધ બેસતા આવે એવી રીતે એમના પ્રથમ સ્વરૂપમાં જળવાઈ રહ્યા. આમ થવાથી જો કે બુદ્ધ ધર્મની અસરથી ધર્મનું પરિવર્તન થએલું જણાય છે, છતાં વૈદિક અને પૌરાણિક ધર્મ વાસ્તવિક રીતે એક જ રહ્યા. एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति એવો વેદ અને ઉપનિ-ષદનો મહાન ઈશ્વર, वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषम् એવો સર્વ સ્થળે વ્યાપી રહેલો એક પરમાત્મા, અને सर्वं खल्विदं ब्रह्म એવો સર્વવ્યાપી એકાકાર બ્રહ્મ, એ મતોનો તે બન્ને ધર્મો સ્વીકાર કરે છે. સકલ વિશ્વ એનાથી ઉદ્‌ભવ્યું છે અને તેમાં તે લય પામશે

એવી બન્ને ધર્મની માન્યતા છે. વળી, તે બેઉ પુનર્જન્મ, તથા કર્માનુસારી ફળની માન્યતા સ્વીકારે છે, અને વિશ્વના સકળ આત્માઓ એ બ્રહ્મમાં વિલીન થઈ જશે એમ દૃઢતાથી કહે છે. વૈદિક ધર્મના આ મહાન સિદ્ધાંતોમાંથી કોઈનું લેશ પણ પરિવર્તન યાને સ્ખલન થયું નથી. બુદ્ધ ધર્મને અંગે મૂર્તિપૂજા અને ઉત્સવો તથા યાત્રાઓએ જે સ્થાન ધર્મમાં લીધું તેમાં સમાએલા આનંદદાયક અને ભવ્ય સમારંભોએ મનુષ્યોના દિલપર જબરી સત્તા જમાવી. આના પરિણામે પુરાણી વિચારસરણીને અનુશીલ અને અનુષંગી હિંદુધર્મનું નવું સ્વરૂપ સર્જાયું, પણ તેની સાથે બૌદ્ધ ધર્મને આ દેશમાંથી દેશવટો મળ્યો. આમ જે ધર્મ સર્જાયો તે સામાન્ય જનસમૂહનો ધર્મ—બલ્કે ઉત્સવો, સમારંભો અને મૂર્તિપૂજાનો ધર્મ—બન્યો.*

*

हेमचंद्र अने विरहाङ्क

*

लेo—प्रो. हरिवल्लभ भायाणी, एम्. ए.

કોઈ પણ મૃત ભાષાના પ્રામાણિક વ્યાકરણની રચના કરવાનું જેણે હાથ ધર્યું હોય તેની આગળ પોતે ઘડેલા વ્યાકરણનિયમોના સમર્થનમાં ટાંકવાનાં ઉદાહરણો મેળવવા માટે બે જ માર્ગ હોય છે: પૂર્વના પ્રમાણભૂત વૈયાકરણોએ વીણીવીણીને સંઘરેલાં પરંપરાગત ઉદાહરણોનો ઉપયોગ કરવો અથવા તો ઉપલબ્ધ સાહિત્યમાંથી પોતે સ્વતંત્રપણે સૂત્રપોષક ઉદાહરણો પસંદ કરવા. હેમચંદ્રે પોતાના પ્રાકૃત વ્યાકરણમાં કેટલેક અંશે અપભ્રંશ વિભાગ માટે તો તે વેળા પ્રચલિત અપભ્રંશ સાહિત્યનો આધાર લીધો હોવાનું હવે આપણે સપ્રમાણ કહી શકીએ તેમ છીએ. અને તેવી જ રીતે પ્રાકૃત વિભાગ માટે પણ પોતાને સુપરિચિત પ્રાકૃત સાહિત્યમાંથી તેણે ઉદાહરણો પસંદ કર્યાં હોવાનું સૂત્ર ૧, ૮૦ની વૃત્તિમાં જોઇંદુના परमप्पपयासुમાંથી લીધેલું ને સૂત્ર ૧, ૨૧૧ની વૃત્તિમાં હાલની गाहासत्तसईમાંથી લીધેલું ટાંચણ પુરવાર કરે છે. વધારે પ્રાકૃત સાહિત્ય પ્રકાશમાં આવતાં ને તેનું પર્યેષણ વધતાં બીજાં ઉદાહરણોનું પગેરું પણ ખોળી શકાશે એ હકીકત વિરહાङ્કના वृत्तजातिसमुच्चय ગ્રંથ પરથી સાબિત થાય છે. એ પ્રાકૃત છંદોગ્રંથ અધ્યાપક એચ. ડી. વેલણકરે સંપાદિત કરી પ્રસિદ્ધ કરેલો છે (માત્રાવૃત્તવાળા વિભાગ

---

* આ લેખના આધારભૂત ગ્રંથો:—

૧. दशकुमारचरितम्। (આંતરભાગનું મંથન).
૨. मृच्छकटिकम्।
૩. R. C. Dutt's 'Civilization in Ancient India.'
૪. R. C. Dutt's 'Epochs of Indian History.'
૫. Weber's 'History of Indian Literature.'
૬. Macdonell's 'Sanskrit Literature.'

માટે જુઓ Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society (New Series), ગ્રંથ ૫, અંક ૧-૨, ૧૯૨૯, પા. ૩૪-૯૪). ગ્રંથકારનો સમય જણાયો નથી પણ મૂળ પ્રત સં. ૧૧૯૨માં લખાણી હોવાથી અને ટીકાકારોના ઉલ્લેખો વગેરે પરથી વેલણકરનું એવું અનુમાન છે કે વિરહાંક ઈસવી ૯-૧૦ સદીમાં—કે તેથી પહેલાં—થયો હોય. હેમચંદ્રના પ્રાકૃત વ્યાકરણમાં આ વૃત્તજાતિસમુચ્ચયમાંથી બે ટાંચણો—સામાન્ય પ્રથા પ્રમાણે નામનિર્દેશ વિના જ—જડી આવે છે. આથી પણ વિરહાંકની પ્રાચીનતાનું પરોક્ષપણે સમર્થન થાય છે.

સૂત્ર ૮, ૨, ૪૦ પરની વૃત્તિમાં સૂત્રાનુસાર થતા वृद्धःના રૂપ वुड्ढो ઉપરાંત વિકલ્પે विद्ध પણ થતું હોવાના ઉદાહરણ તરીકે विद्ध-कइ-निरुविअं એ સમસ્ત શબ્દ આપેલો છે. એ वृत्तजातिसमुच्चयમાંથી લેવાયો લાગે છે. જુઓ

मुअआहिव-सालाहण-वुड्ढकई-णिरूविअं दइए ।
णिहण-णिरूविअ-धुवअम्मि वत्थुए गीइया णत्थि ॥

वृत्तजातिसमुच्चय २. ८.

અહીં હેમચંદ્રે નોંધેલા લાક્ષણિક રૂપ विद्धને બદલે वुड्ढ કે बुड्ढ (ને कइને બદલે कई) મળે છે એ ખરું પણ એનો એ જ શબ્દક્રમ ને એના એ જ શબ્દો (ઉપરાંત સરખાવો वृत्तजाति० २. ९ : मुअआहिव-सालाहण-वुड्ढकइ-णिरूविआण दुवईण ઇત્યાદિ) ઘણું સંભવિત બનાવે છે કે અહીં હેમચંદ્રના આધાર તરીકે વિરહાંક હોય. ઉપર ટાંકેલી ગાથાનો પૂર્વાર્ધ છંદોદૃષ્ટિએ અશુદ્ધ છે એ સૂચવે છે કે હેમચંદ્રે આપેલો પાઠ જ વધારે પ્રાચીન હોવાથી શુદ્ધરૂપે જળવાયેલો હોય. આ જ રીતે સૂત્ર ૮, ૩, ૧૩૪ પરની વૃત્તિમાં इअराइं जाण लहु-अक्खराइं पायन्तिमिल्ल-सहिआण એ ગાથાર્ધ આપેલો છે. તે પણ वृत्तजातिसमुच्चयમાંથી લીધેલો છે. જુઓ

इत(?)राइँ जाण लहुअक्खराइँ पाअन्तिमॅल्ल-सहिआण ।
संजोअ-पढम-दीहर-सबिन्दु-सविसग्ग-वण्णाण ॥

वृत्तजाति० १. १२.

આ પરથી આપણને એક ધ્યાનાર્હ હકીકત એ મળે છે કે વ્યાકરણના નિયમોનાં ઉદાહરણો માટે હેમચંદ્રે કવચિત્ છંદોગ્રંથોની પ્રાકૃત પણ ઉપયોગમાં લીધી છે. આપણી આ શોધનું એક આનુષંગિક ફળ એ કે આ પરથી વિરહાંક એક પ્રમાણભૂત અને પ્રાચીન ગ્રંથકાર હોવાનું સૂચિત થાય છે, નહીંતર પ્રાકૃત વ્યાકરણનિયમનાં ઉદાહરણ અર્થે હેમચંદ્રે એનો ઉપયોગ ન કર્યો હોત.

* *
*

वाचक उमास्वातिका सभाष्य तत्त्वार्थसूत्र और उनका सम्प्रदाय

*

ले० — श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी

पहला संस्कृत जैन सूत्रग्रन्थ

आचार्य उमास्वाति वाचकका जैनसाहित्यमें एक विशेष स्थान है। संभवतः वे ही पहले विद्वान् हैं जिन्होंने विविध आगम-ग्रन्थोंमें बिखरे हुए जैन तत्त्व-ज्ञानको, योग, वैशेषिक आदि दर्शन-ग्रन्थोंके समान संस्कृत सूत्रबद्ध जैन-शास्त्रके रूपमें ग्रथित किया और उसे तत्त्वार्थाधिगम या अर्हत्प्रवचनके रूपमें उपस्थित किया।

इसके पहले प्रायः[1] सारा जैन वाङ्मय अर्धमागधी प्राकृतमें था। उन्हींने शायद सबसे पहले यह अनुभव किया कि अब संस्कृतकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई है, विद्वत्समुदायकी प्रधान भाषा वही बन रही है, इसलिए जैन दर्शनकी ओर उसका ध्यान तभी जा सकेगा, जब कि उसे संस्कृतमें[2] लिखा जाय[3]। चूँकि वे ब्राह्मणकुलमें पैदा हुए थे और इसलिए इस भाषामें ग्रन्थ-निर्माण करना उनके लिए सहज भी था।

जिस तरह पाली पिटकोंमें बिखरे हुए तत्त्वज्ञानको संग्रह करके आचार्य वसुबन्धुने संस्कृतमें 'अभिधर्म कोश[4]'की रचना की और उसपर स्वोपज्ञ भाष्य लिखा, उसी तरह उमास्वातिने प्राकृत आगम-साहित्यपरसे संग्रह[5] करके तत्त्वार्थाधिगम सूत्र और स्वोपज्ञ भाष्यकी रचना की।

---

१ — प्रायः कहनेका कारण यह है कि तत्त्वार्थसे भी पहले संस्कृतमें थोड़े बहुत जैन वाङ्मयकी रचना हो गई थी। तत्त्वार्थ-भाष्यमें भी कुछ संस्कृतके उद्धरण दिये हुए हैं। देखो, अध्याय १, सूत्र ३५ का भाष्य।

२ — शुङ्ग राजवंशके कालमें ब्राह्मणधर्मका पुनर्जागरण हुआ और तब राज्याश्रय पाकर संस्कृतका भी भाग्य चमका। उसी समय पतंजलिका पाणिनि व्याकरणपर महाभाष्य लिखा गया। गृह्यधर्म श्रौतसूत्रोंका रचना-काल भी यही है। महाभारतका संस्करण भी तभी हुआ।

३ — आगे बताया गया है कि उमास्वाति योग-सूत्रों और शायद उसके भाष्यसे भी परिचित थे।

४ — काशी विद्यापीठने 'अभिधर्मकोश' प्रकाशित किया है। यह तत्त्वार्थकी ही शैलीपर रचा गया है। इसमें ९ अध्याय हैं।

५ — देखो, मुनि आत्मारामकृत 'तत्त्वार्थसूत्र-जैनागमसमन्वय'। इसमें जैनागमोंके वाक्यों और तत्त्वार्थ-सूत्रोंकी समानता दिखलाई गई है।

तत्त्वार्थसूत्र या तत्त्वार्थाधिगमको जैन-धर्मके दोनों सम्प्रदाय मानते हैं। इसपर जिस तरह दिगम्बराचार्योंने सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक आदि अनेक टीका-ग्रन्थ लिखे हैं, उसी तरह हरिभद्र, सिद्धसेनगणि आदि श्वेताम्ब-राचार्योंने भी अनेक टीकायें लिखी हैं।

तत्त्वार्थपर जो स्वोपज्ञ भाष्य है, श्वेताम्बर टीकायें उसीपर और उसीका अनु-सरण करनेवाली हैं जब कि दिगम्बर-टीकायें तत्त्वार्थकी सबसे पहली टीका सर्वार्थसिद्धिका अनुसरण करती हैं, वे भाष्यानुसारिणी नहीं हैं।

दिगम्बर संप्रदाय केवल मूल तत्त्वार्थको ही उमास्वातिकी रचना मानता है जब कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय भाष्यको और प्रशमरति, श्रावकप्रज्ञप्ति आदि और भी कई ग्रन्थोंको[1]।

तत्त्वार्थके दो सूत्र-पाठ हैं, एक तो दिगम्बर-सूत्र-पाठ जो सर्वार्थसिद्धि-टीकामें मिलता है और जो उसके बादके सभी दिगम्बर टीकाकारोंको मान्य है और दूसरा भाष्य-मान्य सूत्रपाठ जो श्वेताम्बर सम्प्रदायमें प्रचलित है। पहले सूत्र-पाठमें सूत्रोंकी संख्या ३५७ और दूसरेमें ३४४ है। दोनों सूत्रपाठोंमें सिर्फ तीन ही सूत्र ऐसे हैं जिनमें अर्थकी दृष्टिसे महत्त्वका अन्तर हैं, शेष सूत्रोंमें जो फर्क है वह बहुत ही मामूली, शब्द-रचनाका, एक सूत्रके दो बनाने, दो सूत्रोंको एक कर देने और संक्षेप या विस्तार करने आदिका है।

अर्थदृष्टिसे महत्त्वका पहला सूत्र है, चौथे अध्यायका स्वर्गोंकी १२ और १६ संख्या बतलानेवाला[2]। दूसरा सूत्र है, पाँचवें अध्यायका कालको स्वतंत्र द्रव्य मानने न माननेवाला[3] और तीसरा सूत्र है आठवें अध्याय का हास्य आदि चार प्रकृतियोंको पुण्यरूप मानने न माननेवाला[4]। इन तीन सूत्रोंके पाठ-

---

१ – क्षेत्रविचार, जम्बूद्वीपसमास, पूजाप्रकरण, आदि और भी अनेक ग्रन्थ उमास्वातिके बतलाये जाते हैं, परन्तु उनके विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, 'प्रशमरति' अवश्य प्राचीन ग्रन्थ है। उसकी तत्त्वार्थ-भाष्यके साथ बहुत समानता भी है। कहीं कहीं दोनोंके शब्द और भाव बिल्कुल मिलते जुलते हैं। भाष्यके प्रारंभ और अन्त-की कारिकाओंकी रचना-शैली भी प्रशमरति जैसी ही है। इसके सिवाय प्रशमरतिकी एक कारिका (२५वीं) जयधवलाकारने भी (पृ० २६९) उद्धृत की है।

२ – भाष्य-मान्यपाठका २० वाँ और दिगम्बरी पाठका १९ वाँ।

३ – ३५ वाँ और ३९ वाँ।

४ – "सद्वेद्यसम्यक्त्वहास्यरतिपुरुषवेदशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्।" "सद्वेद्यशुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम्।"

भेदका कारण तो मतभिन्नता माना जा सकता है, परन्तु अन्य सूत्रोंमें जो न्यूनाधिक अन्तर है, उसका कारण अभी गवेषणीय है।

ग्रन्थकारका परिचय

भाष्यके अन्तमें नीचे लिखी प्रशस्ति मिलती है—

वाचकमुख्यस्य शिवश्रियः प्रकाशयशसः प्रशिष्येण।
शिष्येण घोषनन्दिक्षमणस्यैकादशाङ्गविदः॥ १
वाचनया च महावाचकक्षमणमुण्डपादशिष्यस्य।
शिष्येण वाचकाचार्यमूलनाम्नः प्रथितकीर्तेः॥ २
न्यग्रोधिकाप्रसूतेन विहरता पुरवरे कुसुमनाम्नि।
कौभीषणिना स्वातितनयेन वात्सीसुतेनाऽर्घ्यम्॥ ३
अर्हद्वचनं गुरुक्रमेणागतं समुपधार्य।
दुःखार्त्तं च दुरागमविहतमतिं लोकमवलोक्य॥ ४
इदमुच्चैर्नागरवाचकेन सत्त्वानुकम्पया दृब्धं।
तत्त्वार्थाधिगमाख्यं स्पष्टमुमास्वातिना शास्त्रम्॥ ५
यस्तत्त्वार्थाधिगमाख्यं ज्ञास्यति च करिष्यते च तत्रोक्तम्।
सोऽव्याबाधसुखाख्यं प्राप्स्यत्यचिरेण परमार्थम्॥ ६

अर्थात्—जो वाचकमुख्य शिवश्रीके प्रशिष्य, ग्यारह अंगधारी घोषनन्दि-क्षमणके शिष्य और वाचनासे (विद्याग्रहणकी दृष्टिसे) महावाचकक्षमण मुण्ड-पादके प्रशिष्य तथा 'मूल' नामके वाचकाचार्यके शिष्य थे; जिनका गोत्र कौभीषणि था, जो स्वाति पिता और वात्सी माताके पुत्र थे, जिनका जन्म 'न्यग्रोधिका' में हुआ, जो उच्चनागर शाखामें हुए और श्रेष्ठनगर कुसुमपुर (पाटलिपुत्र या पटना)में विहार कर रहे थे, उन उमास्वाति वाचकने गुरुपर-म्परासे प्राप्त अर्हद्वचनोंको भले प्रकार अवधारण करके लोगोंको दुःखोंसे त्रस्त और दुरागमोंसे हतबुद्धि देखकर अनुकम्पापूर्वक इस तत्त्वार्थाधिगम नामके स्पष्ट शास्त्रकी रचनाकी। जो इस तत्त्वार्थाधिगमको जानेगा और इसके कथनानुसार आचरण करेगा, वह अव्याबाध सुख मोक्षको शीघ्र प्राप्त करेगा।

भाष्यकी यह प्रशस्ति ग्रन्थकर्त्ताका पूरा परिचय देनेवाली और विश्वस्त है। इसमें कोई बनावट नहीं मालूम होती और इससे प्रकट होता है कि मूलसूत्र-के कर्त्ताका ही यह भाष्य है।

१—प्रशस्तिके पाँचवें पद्यका 'स्पष्ट' पद 'तत्त्वार्थाधिगम' का विशेषण है और वह भाष्यका संकेत करता है।

तत्त्वार्थ-भाष्य स्वोपज्ञ है

भाष्यकी स्वोपज्ञतामें कुछ विद्वानोंको सन्देह है; परन्तु नीचे लिखी बातोंपर विचार करनेसे वह सन्देह दूर हो जाता है–

१ भाष्यकी प्रारंभिक कारिकाओंमें और अन्य अनेक स्थानोंमें 'वक्ष्यामि' 'वक्ष्यामः' आदि प्रथम पुरुषका निर्देश है और निर्देशमें की गई प्रतिज्ञाके अनुसार ही बादमें सूत्रोंमें कथन किया गया है। अतएव सूत्र और भाष्य दोनोंके कर्त्ता एक हैं।

२ सूत्रोंका भाष्य करनेमें कहीं भी खींचातानी नहीं की गई है। सूत्रका अर्थ करनेमें भी कहीं सन्देह या विकल्प नहीं किया गया और न किसी दूसरी व्याख्या या टीकाका खयाल रखकर सूत्रार्थ किया गया है। भाष्यमें न कहीं किसी सूत्रके पाठ-भेदकी चर्चा है और न सूत्रकारके प्रति कहीं सम्मान ही प्रदर्शित किया गया है।

३ भाष्यके प्रारंभमें जो ३१ कारिकायें हैं वे मूल सूत्र-रचनाके उद्देश्यसे और मूल ग्रन्थको लक्ष्य करके ही लिखी गई हैं। इसी प्रकार भाष्यान्तकी प्रशस्ति भी मूलसूत्रकारकी है। भाष्यकार सूत्रकारसे भिन्न होते और उनके समक्ष सूत्रकारकी कारिकायें और प्रशस्ति होती, तो वे स्वयं भाष्यके प्रारंभमें और अन्तमें मंगल और प्रशस्तिके रूपमें कुछ न कुछ अवश्य लिखते। इसके सिवाय उक्त कारिकाओं और प्रशस्तिकी टीका भी करते।[1]

क्योंकि भाष्य प्राचीन है

१ तत्त्वार्थकी सुप्रसिद्ध टीका राजवार्तिकके कर्त्ता भट्टाकलंकदेव विक्रमकी आठवीं शताब्दिके विद्वान् हैं। वे इस भाष्यसे परिचित थे। क्योंकि उन्होंने अपने ग्रन्थके अन्तमें भाष्यान्तकी ३२ कारिकायें 'उक्तं च' कहकर उद्धृत की हैं। इतना ही नहीं, उक्त कारिकाओंके साथका भाष्यका गद्यांश भी प्रायः ज्योंका त्यों दे दिया है[2]। इसके सिवाय आठवीं 'दग्धे बीजे' आदि कारिकाको

१–देखो, पं० सुखलालजीकृत हिन्दी तत्त्वार्थकी भूमिका पृ० ४५–५०

२–"ततो वेदनीयनामगोत्रआयुष्कक्षयात्फलबन्धननिर्मुक्तो निर्दग्धपूर्वोपात्तेन्धनो निरुपादान इवाग्निः पूर्वोपात्तभववियोगाद्धेत्वभावाच्चोत्तरस्याप्रादुर्भावाच्छान्तः संसारसुखमतीत्या-

भी और एक जगह 'उक्तं च' रूपसे उद्धृत किया है।[1]

२ राजवार्तिकमें अनेक जगह भाष्यमान्य सूत्रोंका विरोध किया है[2]—और भाष्यके मतका भी कई जगह खण्डन किया है[3]।

३ पं० कैळासचन्द्रजी शास्त्री और पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य दिगम्बरसम्प्रदायके विशिष्ट विद्वान् हैं। वे भी मानते हैं कि अकलंकदेव भाष्यसे परिचित थे[4]। डा० जगदीशचन्द्रजी शास्त्री एम्० ए०ने भी भाष्य और वार्तिकके अनेक उद्धरण देकर इस बातको सिद्ध किया है[5]।

न्त्यान्तिकमैकान्तिकं निरुपमं निरतिशयं नित्यं निर्वाणसुखमवाप्नोतीति । एवं तत्त्वपरिज्ञानाद्विरक्तस्यात्मनो भृशं......"—भाष्य

"ततः शेषकर्मक्षयाद्भावबन्धनिर्मुक्तः निर्दग्धपूर्वोपादनेन्धनो निरुपादान इवाग्निः पूर्वोपात्तभववियोगाद्धेत्वभावाच्चोत्तरस्याप्रादुर्भावात्सान्तसंसारसुखमतीत्य आत्यन्तिकमैकान्तिकं निरुपमं निरतिशयं निर्वाणसुखमवाप्नोतीति । तत्त्वार्थभावनाफलमेतत् । उक्तं च—एवं तत्त्वपरिज्ञानादिरक्तस्यात्मने भृशं......"—राजवार्तिक (जैन ज्ञानपीठ बनारसमें राजवार्तिककी जो ताडपत्रकी प्रति आई है, उसमें 'एवं तत्त्वपरिज्ञानाद्विरक्तस्य' ही पाठ है, छपी प्रति जैसा 'सम्यक्त्वज्ञानचारित्रसंयुक्तस्य' नहीं।) यह पिछला पाठ सम्पादकोंद्वारा अमृतचन्द्रसूरिके 'तत्त्वार्थसार' के अनुसार बनाया गया है और तत्त्वार्थसारको राजवार्तिकका पूर्ववर्ती समझ लिया गया है जो कि भ्रम है।)

१—राजवार्तिक (मुद्रित) पृ० ३६१।

२—तृतीय अध्यायके पहले भाष्यसम्मत सूत्रमें 'पृथुतराः' पाठ अधिक है। इसको लक्ष्य करके राजवार्तिक (पृ० ११३) में कहा है—"पृथुतरा इति केषांचित्पाठः।" चौथे अध्यायके नवें सूत्रमें 'द्वयोर्द्वयोः' पद अधिक है। इसपर रा०वार्तिक (पृ० १५३)में लिखा है—"द्वयोर्द्वयोरिति वचनात्सिद्धिरिति चेन्न आर्षविरोधात्।" इसी तरह पाँचवें अध्यायके ३६ वें सूत्र 'बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ" को लक्ष्य करके पृ० २४२ में लिखा है—"समाधिकावित्यपरेषां पाठः...स पाठो नोपपद्यते। कुतः, आर्षविरोधात्।"

३—पाँचवें अध्यायके अन्तमें 'अनादिरादिमांश्च' आदि तीन सूत्र अधिक हैं। पृ० २४४ में इन सूत्रोंके मतका खंडन किया है। इसी तरह नवें अध्यायके ३७ वें सूत्रमें 'अप्रमत्तसंयतस्य' पाठ अधिक है, उसका विरोध करते हुए पृ० ३५४ में लिखा है, "धर्म्यमप्रमत्तस्येति चेन्न। पूर्वेषां विनिवृत्तप्रसंगात्।"

४—देखो, न्यायकुमुदचन्द्र प्रथमभागकी प्रस्तावना पृ० ७१।

५—देखो, अनेकान्त वर्ष ३, अंक ४—११ में 'तत्त्वार्थाधिगमभाष्य और अकलंक', जैन सिद्धान्तभास्कर वर्ष ८ और ९, जैनसत्यप्रकाश वर्ष ६ अंक ४ में 'तत्त्वार्थभाष्य और राजवार्तिक' में शब्दगत और चर्चागत साम्य तथा सूत्रपाठसम्बन्धी उल्लेख।'

३.१.१७.

४ आचार्य वीरसेनने अपनी जयधवला टीका शक संवत् ७३८ (वि० सं० ८७३)में समाप्त की थी। इसमें भी भाष्यान्तकी उक्त ३२ कारिकायें उद्धृत पाई जाती हैं[1]। इससे भी भाष्यकी प्राचीनता और प्रसिद्धिपर प्रकाश पड़ता है। इसके सिवाय वीरसेन स्वामी उमास्वातिके दूसरे ग्रन्थ 'प्रशमरति'[2]से भी परिचित थे। क्योंकि उन्होंने जयधवला (पृ० ३६९) में 'अत्रोपयोगी श्लोकः' कहकर प्रशमरतिकी २५ वीं कारिका उद्धृत की है।

५ आचार्य अमृतचन्द्रने अपने तत्त्वार्थसार (पद्यबद्ध तत्त्वार्थसूत्र)में भी भाष्यकी उक्त ३२ कारिकाओंमेंसे ३० कारिकाएँ नम्बरोंको कुछ इधर उधर करके ले लीं हैं और मुद्रित प्रतिके पाठपर यदि विश्वास किया जाय तो उन्होंने उन्हें 'उक्तं च' न रहने देकर अपने ग्रन्थका ही अंश बना लिया है। अमृतचन्द्रका समय निर्णीत नहीं है, फिर भी वे विक्रमकी बारहवीं सदीके बादके नहीं हैं और वे भी भाष्यसे या उसकी उक्त कारिकाओंसे परिचित थे।

६ अकलंकदेव और वीरसेनके समान उनसे भी पहलेके आचार्य पूज्यपाद या देवनन्दिके समक्ष भी तत्त्वार्थभाष्य रहा होगा। यद्यपि उन्होंने सर्वार्थसिद्धिमें कहीं भाष्यका विरोध आदि नहीं किया है, फिर भी जब हम भाष्य और सर्वार्थसिद्धिको आमने सामने रखकर देखते हैं तब दोनोंके वाक्यके वाक्य, पदके

---

१ – जयधवलामें भाष्यकी जो उक्त कारिकायें उद्धृत पाई जाती हैं, उनके बाद जयधवलाकारने लिखा है – 'एवमेत्तिएण पबंधेण णिव्वाणफलपज्जवसाणं" इस वाक्यको देखकर पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारने (अनेकान्त वर्ष ३, अंक ४ पृ० ३११) कल्पनाकी थी कि पूर्वाचार्यका कोई प्राचीन प्रबन्ध रहा होगा जिस परसे राजवार्तिकमें भी वे कारिकायें उद्धृत की गई हैं। परन्तु, यह 'एत्तिएण पबन्धेण' पद जयधवलामें उक्त प्रसंगमें ही नहीं, और बीसों जगह आया है और सब जगह उससे केवल यही सूचित किया गया है कि इतने प्रबन्ध या सूत्रभागके द्वारा या इतने कथनसे अमुक विषयका निरूपण किया गया। उक्त ३२ कारिकाओंके बाद आये हुए उक्त पदका भी यही अर्थ वहाँ ठीक बैठता है। दूसरा कोई अर्थ नहीं हो सकता।

२ – तत्त्वार्थभाष्यकी वृत्तिके कर्त्ता सिद्धसेन गणिने 'प्रशमरति' को उमास्वाति वाचकका ही माना है – "यतः प्रशमरतौ अनेनैवोक्तम्" "वाचकेन त्वेतदेव बलसंज्ञया प्रशमरतौ उपात्तम्।" अ० ५–६ तथा ९–६ की भाष्यवृत्ति।

प्रशमरतिकी १२० वीं कारिका 'आचार्य आह' कहकर श्रीजिनदास महत्तरने निशीथ-चूर्णिमें उद्धृत की है, और जिनदास महत्तर विक्रमकी आठवीं सदीके हैं।

पद एकसे मिलते चले जाते हैं[१]।

१ – भाष्य

१ – सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानं सम्यक्चारित्रमित्येष त्रिविधो मोक्षमार्गः। तं पुरस्ताल्लक्षणतो विधानतश्च विस्तरेणोपदेक्ष्यामः शास्त्रानुपूर्वी विन्यासार्थं तूद्देशमात्रमिदमुच्यते।– १,१

२ – चक्षुषा नो इन्द्रियेण च व्यंजनावग्रहो न भवति।– १,१९

३ – काष्ठपुस्तचित्रकर्माक्षनिक्षेपादिषु स्थाप्यते जीव इति स स्थापनाजीवः।– १, ५

४ – नैर्ग्रन्थं प्रति प्रस्थिताः शरीरोपकरणविभूषानुवर्तिन ऋद्धियशस्कामाः सातगौरवाश्रिता अविविक्तपरिवाराश्छेदशबलयुक्तनिर्ग्रन्था बकुशाः। कुशीला द्विविधाः प्रतिसेवनाकुशीलाः कषायकुशीलाश्च। तत्र प्रतिसेवनाकुशीलाः नैर्ग्रन्थं प्रति प्रस्थिता अनियतक्रियाः कथंचिदुत्तरगुणेषु विराधयन्तश्चरन्ति ते प्रतिसेवनाकुशीलाः। येषां तु संयतानां सतां कथंचित्संज्वलनकषाया उदीर्यन्ते ते कषायकुशीलाः।– ९, ४८

५ – लिङ्गं द्विविधं द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गं च। भावलिङ्गं प्रतीत्य सर्वे पंचनिर्ग्रन्था भावलिङ्गे भवन्ति द्रव्यलिङ्गं प्रतीत्य भाज्याः।– ९,४९

६ – कषायकुशीलो द्वयोः परिहारविशुद्धौ सूक्ष्मसाम्पराये च। निर्ग्रन्थस्नातकावेकस्मिन् यथाख्यातसंयमे। श्रुतम् – पुलाकबकुशप्रतिसेवनाकुशीला उत्कृष्टेनाभिन्नाक्षरदशपूर्वधराः। कषायकुशील-निर्ग्रन्थौ चतुर्दशपूर्वधरौ। जघन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु। बकुशकुशीलनिर्ग्रन्थानां श्रुतमष्टौ प्रवचनमातरः।, श्रुतापगतः केवली स्नातक इति। प्रतिसेवना – पञ्चानां मूलगुणानां रात्रिभोजनविरतिषष्ठानां पराभियोगाद्बलात्कारेणान्यतमं प्रतिसेवमानः पुलाको भवति।– ९,४९

सर्वार्थसिद्धि

१ – सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानं सम्यक्चारित्रमिति। एतेषां स्वरूपं लक्षणतो विधानतश्च पुरस्ताद्विस्तरेण निर्देक्ष्यामः। उद्देशमात्रमिदमुच्यते। १,१

२ – चक्षुषा अनिन्द्रियेण च व्यंजनावग्रहो न भवति। १,१९

३ – काष्ठपुस्तचित्रकर्माक्षनिक्षेपादिषु सोऽयमिति स्थाप्यमाना स्थापना।– १,५

४ – नैर्ग्रन्थं प्रति प्रस्थिता अखंडितव्रताः शरीरोपकरणविभूषानुवर्तिनोऽविविक्तपरिवारा मोहशबलयुक्ता बकुशाः। कुशीला द्विविधाः प्रतिसेवनाकुशीलाः कषायकुशीला इति। अविविक्तपरिग्रहाः परिपूर्णोभयाः कथंचिदुत्तरगुणविरोधिनः प्रतिसेवनाकुशीलाः वशीकृतान्यकषायोदयाः संज्वलनमात्रतंत्राः कषायकुशीलाः।– ९ – ४७

५ – लिङ्गं द्विविधं द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गं चेति। भावलिङ्गं प्रतीत्य पंच निर्ग्रन्था लिङ्गिनो भवन्ति। द्रव्यलिङ्गं प्रतीत्य भाज्याः।– ९,४७

६ – कषायकुशीला द्वयोः संयमयोः परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययोः पूर्वयोश्च। निर्ग्रन्थस्नातका एकस्मिन्नेव यथाख्यातिसंयमे सन्ति। श्रुतम् – पुलाकबकुशप्रतिसेवनाकुशीला उत्कर्षेणाभिन्नाक्षरदशपूर्वधराः। कषायकुशीला निर्ग्रन्थाश्चतुर्दशपूर्वधराः। जघन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु। बकुशकुशीलनिर्ग्रन्थानां श्रुतमष्टौ प्रवचनमातरः। स्नातका अपगतश्रुताः केवलिनः। प्रतिसेवना–पञ्चानां मूलगुणानां रात्रिभोजनवर्जनस्य च पराभियोगाद्बलादन्यतमं प्रतिसेवमानः पुलाको भवति।– ९,४७

१ विशेष उदाहरणोंके लिए देखो डा० जगदीशचन्द्रजी शास्त्रीके लेख।

७ भाष्यकी लेखनशैली भी सर्वार्थसिद्धिसे प्राचीन मालूम होती है। वह प्रसन्न और गंभीर होते हुए भी दार्शनिकताकी दृष्टिसे कम विकसित और कम परिशीलित है। संस्कृतके लेखन और जैनसाहित्यमें दार्शनिक शैलीके जिस विकासके पश्चात् सर्वार्थसिद्धि लिखी गई है, वह विकास भाष्यमें नहीं दिखाई देता। अर्थदृष्टिसे भी सर्वार्थसिद्धि अर्वाचीन मालूम होती है। जो बात भाष्यमें है, सर्वार्थसिद्धिमें उसको विस्तृत करके और उसपर अधिक चर्चा करके निरूपण किया गया है। व्याकरण और जैनेतर दर्शनोंकी चर्चा भी उसमें अधिक है। जैन परिभाषाका जो विशदीकरण और वक्तव्यका पृथक्करण सर्वार्थसिद्धिमें है वह भाष्यमें कमसे कम है। भाष्यकी अपेक्षा उसमें तार्किकता अधिक है और अन्यदर्शनोंका खंडन भी जोर पकड़ता है। ये सब बातें सर्वार्थसिद्धिसे भाष्यको प्राचीन सिद्ध करती हैं[२]।

इस तरह हम देखते हैं कि भाष्य पूज्यपाद, अकलंकदेव, वीरसेन आदि आचार्योंसे पहलेका है और उससे उक्त सभी आचार्य परिचित थे। उन्होंने उसका किसी न किसी रूपमें उपयोग भी किया है और उसकी यह प्राचीनता स्वोपज्ञताका ही समर्थन करती है।

भाष्य स्वोपज्ञ ही होना चाहिए

तत्त्वार्थ जैसे संक्षिप्त सूत्र ग्रन्थपर स्वोपज्ञ भाष्य होना ही चाहिए। क्योंकि एक तो जैनदर्शनका यह सबसे पहला संस्कृतबद्ध सूत्र-ग्रन्थ है, जो अन्य दर्शनोंके दार्शनिक सूत्रोंकी शैलीपर रचा गया है। जैनधर्मके अनुयायी इस संक्षिप्त सूत्र-पद्धतिसे पहले परिचित नहीं थे। वे भाष्यकी सहायताके बिना उससे पूरा लाभ नहीं उठा सकते थे। दूसरे इसकी रचनाका एक उद्देश्य इतर दार्शनिकोंमें भी जैनदर्शनकी प्रतिष्ठा करना जान पड़ता है। इसलिए भी सूत्रोंका भाष्य आवश्यक हो जाता है।

सूत्रकारको उस समय यह चिन्ता अवश्य हुई होगी कि यदि मैंने स्वयं अपने सूत्रोंका भाष्य नहीं किया, अपने अभिप्रायोंको स्पष्ट नहीं किया, तो आगे लोग उनका अनर्थ कर डालेंगे। पाटलिपुत्रमें विहार करते हुए उन्होंने

---

१ – उदाहरणके लिए देखो अ० १–२, १–१२, १–३२, और २–१ सूत्रोंका भाष्य और सर्वार्थसिद्धि।

२ – देखो, हिन्दी तत्त्वार्थकी भूमिका पृ० ८६–८८

अपने इस भाष्य-ग्रन्थकी रचना की थी, इसलिए वे आर्य चाणक्य या विष्णुगुप्तके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ कौटिलीय अर्थशास्त्र (सूत्र और स्वोपज्ञ भाष्य)से अवश्य परिचित होंगे, जो पाटलिपुत्रमें ही निर्माण किया गया था[1] और जिसके अन्त में लिखा है—

दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं प्रायः सूत्रेषु भाष्यकाराणाम् ।
स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं च भाष्यं च ॥

अर्थात् प्रायः सूत्रोंसे भाष्यकारोंकी विप्रतिपत्ति या विरोध देखकर, सूत्रकारका अभिप्राय कुछ था और भाष्यकारोंने कुछ लिख दिया, यह समझकर, विष्णुगुप्तने स्वयं सूत्र बनाये और स्वयं ही भाष्य ।

इससे यह ध्वनित होता है कि चाणक्यके पहले भी इस तरहके कुछ सूत्र और भाष्य रहे होंगे जिनमें उक्त विप्रतिपत्ति थी और उनसे भी उमास्वाति परिचित होंगे। ऐसी अवस्थामें उनका स्वयं ही भाष्य निर्माण करनेमें प्रवृत्त होना स्वाभाविक है ।

अपने ग्रन्थोंपर इस तरहके स्वोपज्ञ भाष्य लिखनेके उदाहरण और भी मिलते हैं। प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन उमास्वातिसे पहले हुए हैं[2]। उन्होंने अपने 'विग्रहव्यावर्तिनी' नामक ग्रन्थकी स्वयं व्याख्या लिखी है। उक्त मूल ग्रन्थ कारिकाओंमें हैं जो सूत्रकी ही भाँति अधिक बातोंको थोड़े शब्दोंमें कहनेवालीं और पद्य होनेसे कण्ठस्थ करने योग्य होती हैं। इसी तरह वसुबन्धुका 'अभिधर्मकोश' है जो तत्त्वार्थ जैसा ही है और उसपर स्वोपज्ञ भाष्य है।[3]

अपने ग्रन्थपर स्वोपज्ञ टीका लिखनेकी यह पद्धति जैन परम्परामें भी रही है। पूज्यपादने अपने व्याकरणपर जैनेन्द्र-न्यास (अनुपलब्ध), जिनभद्रगणिने अपने विशेषावश्यक भाष्यपर व्याख्या, शाकटायनने अपने व्याकरण-सूत्रोंपर अमोघवृत्ति और तथा अकलंकदेवने अपने लघीयस्त्रय, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चयपर स्वोपज्ञ वृत्तियोंकी रचना की।

इन सब बातोंपर विचार करनेसे हम इसी परिणामपर पहुँचते हैं कि तत्त्वार्थ-भाष्य भी स्वोपज्ञ या मूलसूत्रकर्त्ताका ही होना चाहिए, किसी अन्यका नहीं।

१—चाणक्यका समय ई० सन् से ३२५ वर्ष पहलेके लगभग है।

२—नागार्जुनका समय वि० सं० २२३—२५३ निश्चित किया गया है।

३—विनयतोष भट्टाचार्यके अनुसार वसुबन्धुका समय वि० सं० ३९४ है।

उमास्वाति किस सम्प्रदायके थे ?

वाचक उमास्वातिको दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही अपने अपने सम्प्रदायका मानते हैं, इसलिए अब हमें इस बातकी जाँच करनी चाहिए कि वास्तवमें वे किस सम्प्रदायके थे।

भाष्यकी प्रशस्तिमें उमास्वातिने अपने गुरुओं और प्रगुरुओंके नाम दिये हैं, परन्तु वे नाम न तो हमें किसी दिगम्बर-परम्परामें मिलते हैं और न श्वेताम्बर-परम्परामें।

दिगम्बर-परम्पराकी जाँच

१ दिगम्बर सम्प्रदायकी जो सबसे प्राचीन आचार्यपरम्परा मिलती है वह वीर निर्वाण संवत् ६८३ (वि० सं० २१३) तककी है। तिलोयपण्णत्ति, महापुराण, हरिवंशपुराण, जंबुदीवपण्णत्ति, श्रुतावतार आदि ग्रन्थोंमें यह लगभग एक-सी मिलती है। परन्तु इस परम्परामें उमास्वाति या उनके किसी गुरुका नाम नहीं दिखलाई देता।

२ आदिपुराण और हरिवंश विक्रमकी नौवीं शताब्दिके ग्रन्थ हैं। इनमें प्रायः सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ताओंका स्तुतिपरक स्मरण किया गया है, परन्तु उनमें उमास्वाति स्मरण नहीं किये गये और यह असंभव मालूम होता है कि उमास्वाति जैसे युगप्रवर्तक ग्रन्थकर्ताको वे भूल जाते। और आदिपुराणके कर्त्ता तो उनके साहित्यसे भी परिचित थे। क्योंकि उन्होंने अपनी धवला-टीकामें एक जगह गृध्रपिच्छाचार्य या उमास्वातिके तत्त्वार्थ सूत्रके एक सूत्रको भी उद्धृत किया है[1] और इनके गुरु वीरसेनाचार्यने तो जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, उमास्वातिके भाष्यान्तके ३२ पद्य और प्रशमरति प्रकरणका भी एक पद्य अपनी जयधवलामें उद्धृत किया है। वास्तवमें वे उन्हें भिन्न सम्प्रदायका आचार्य जानते होंगे।

३ दिगम्बर सम्प्रदायमें गृध्रपिच्छाचार्य नामसे उमास्वातिकी अधिक प्रसिद्धि है। कहा गया है कि वे गीधके पंखोंकी पिच्छि रखते थे, इस कारण इस नामसे ख्यात हुए। नन्दिसंघकी गुर्वावलीके अनुसार जिनचन्द्रके शिष्य

---

१ – तह गिद्धपिंछाइरियपयासिद तच्चत्थसुत्ते वि 'वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य' इदि दव्वकालो परूविदो। –जिल्द ४, पृ० ३१६

२ – जैनहितैषी भाग ६, अंक ७–८, पृ० २२-२८

पद्मनन्दि या कुन्दकुन्द और कुन्दकुन्दके शिष्य उमास्वाति थे। साथ ही कुन्द-कुन्दके जो पाँच नाम[1] (एलाचार्य, वक्रग्रीव, गृध्रपिच्छ, पद्मनन्दि और कुन्द-कुन्द) बतलाये हैं उनमें कुन्दकुन्दका भी एक नाम गृध्रपिच्छ है। अर्थात् इसके अनुसार गृध्रपिच्छ उमास्वातिका ही नहीं, उनके गुरुका भी नाम था। उधर श्रवणबेलगोलके शिलालेख नं० ४० (शक संवत् १०८५), नं० ४२ (श० १०९९), नं० ४३ (१०४५), नं० ४७ (१०३७), ५० (१०६८), और १०८ (१३५५) के अनुसार उमास्वाति ही गृध्रपिच्छ थे, वे कुन्दकुन्दके अन्वयमें (शिष्य नहीं) हुए थे और उनके शिष्य बलाकपिच्छ थे।

पूर्वोक्त गुर्वावलीमें कुन्दकुन्दका एक नाम गृध्रपिच्छ बतलाया है और दूसरा वक्रग्रीव। परन्तु शिलालेख नं० ५४ (श० १०५०) में कुन्दकुन्दके बाद समन्तभद्र और सिंहनन्दिकी स्तुति करके फिर वक्रग्रीवकी प्रशंसा की गई है और उन्हें बड़ा भारी वाग्मी और वादी बतलाया है। उक्त लेखमें कुन्द-कुन्दके बाद उमास्वातिका नाम ही नहीं है और आगे भी उनकी कोई चर्चा नहीं है।

नन्दिसंघकी पट्टावलीमें[2] कुन्दकुन्दका समय वि० सं० ४९ और उमा-स्वातिका १०१ लिखा हुआ है पर इसके विरुद्ध आचार्य श्रुतसागरने अपनी तत्त्वार्थटीकामें कुन्दकुन्द और उमास्वाति दोनोंका समय संवत् (वीर नि० ?) ७७० बतलाया है[3]।

गुर्वावली, पट्टावली और शिलालेखों आदिके पूर्वोक्त उल्लेखोंसे मालूम होता है कि उनके रचयिताओंको उमास्वातिकी गुरुपरम्पराका, नामका और समयका कोई स्पष्ट ज्ञान नहीं था और इसीलिए उनमें परस्पर मतभेद और गड़बड़ है। पूर्वोक्त शिलालेखोंमें कोई भी श० सं० १०३७ (वि० सं० ११७२) से

१—ततोऽभवत्पञ्चसुनामधामा श्रीपद्मनन्दी मुनिचक्रवर्ती।
आचार्य कुन्दकुन्दाख्यो वक्रग्रीवो महामतिः।
एलाचार्यो गृध्रपिच्छः पद्मनन्दीति''' ॥ ३

२—जैनहितैषी भाग ६, अंक ७–८, पृ० २९–३३।

३—वर्षे सप्तशते चैव सप्तत्या च समन्विते। उमास्वामिमुनिर्जातः कुन्दकुन्दस्तथैव च।
—ए० पन्नालाल सरस्वती-भवनकी प्रति नं० $\frac{1}{13}$
'विद्वज्जनबोधक' नामक भाषाग्रन्थमें भी यह श्लोक उद्धृत किया गया है।

पहलेका नहीं है और गुर्वावली-पट्टावली तो शायद उनके भी बहुत बादकी हैं[१]। जिस समय टीका-ग्रन्थोंके द्वारा उमास्वाति दिगम्बर सम्प्रदायके आचार्य मान लिये गये, और उनको कहीं न कहीं दिगम्बरपरम्परामें बिठा देना लाजिमी हो गया, उस समयके बादकी ही उक्त पट्टावलियों शिलालेखों आदिकी सृष्टि है। विभिन्न समयोंके लेखकों द्वारा लिखे जानेके कारण उनमें एकवाक्यता नहीं रह सकी।

श्वेताम्बर-परम्पराकी जाँच

लगभग यही हालत श्वेताम्बरसम्प्रदायकी पट्टावलियों आदिकी भी है। उनमें सबसे प्राचीन कल्पसूत्र-स्थविरावली और नन्दिसूत्र-पट्टावली हैं जो वीर नि० सं० ९८० (वि० सं० ५१०)में संकलित की गई थीं[२]। उमास्वातिके विषयमें इतना तो निश्चित है कि वे वि० सं० ५१० के पहले हो चुके थे। फिर भी उनमें उमास्वातिका नाम नहीं है। नन्दिसूत्र-पट्टावलीमें वाचनाचार्योंकी सूची दी हुई है परन्तु उसमें भी उमास्वाति या उनके गुरु शिवश्री, मुण्डपाद, मूल आदि किसी भी वाचकका नाम नहीं है।

पिछले समयकी रची हुई जो अनेक श्वे० पट्टावलियाँ हैं उनमें अवश्य उमास्वातिका नाम आता है, परन्तु एकवाक्यताका वहाँ भी अभाव है।

दुःषमाकाल-श्रमणसंघस्तोत्र (वि० की तेरहवीं सदी)में हरिभद्र और जिनभद्र गणिके बाद उमास्वातिको लिखा है जब कि स्वयं हरिभद्र तत्त्वार्थभाष्यके टीकाकार हैं और जिनभद्रगणिने अपना विशेषावश्यक भाष्य वि० सं० ६६०में समाप्त किया था।

धर्मसागर उपाध्यायकृत तपागच्छ पट्टावली (वि० सं० १६४६)में जिन-भद्रके बाद विबुधप्रभ, जयानन्द और रविप्रभके बाद उमास्वातिको युगप्रधान बतलाया है और समय वि० सं० ७२०। फिर उनके बाद यशोदेवका नाम है। इसके विरुद्ध देवविमलकी महावीर-पट्टपरम्परा (वि० सं० १६५६)में रविप्रभ और यशोदेवके बीच उमास्वातिका नाम ही नहीं है और न आगे कहीं है।

१–पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार इन्हें विक्रमकी बारहवीं सदीके बादकी बनी हुई मानते हैं।–स्वामी समन्तभद्र

२–कल्पसूत्र-स्थविरावली और नन्दिसूत्र-पट्टावलीमें सबसे बड़ी कमी यह है कि उनमें किसी भी स्थविरका समय नहीं दिया गया है। अन्य पट्टावलियोंमें जो समयक्रम मिलता है, वह बहुत पीछे प्रस्थापित किया गया है।

विनयविजय गणिने अपने लोकप्रकाश (वि० सं० १७०८)में उमास्वातिको ग्यारहवाँ युगप्रधान बतलाया है जो जिनभद्रके बाद और पुष्यमित्रके पहले हुए।

रविवर्द्धन गणिने (वि० सं० १७३९) पट्टावली सारोद्धारमें उमास्वातिको युगप्रधान कहकर उनका समय वीर नि० सं० ११९० लिखा है। उनके बाद वे जिनभद्रको बतलाते हैं जब कि धर्मघोषसूरि उमास्वातिको जिनभद्रके बाद रखते हैं।

धर्मसागरने तो अपनी त० पट्टावली (सटीक)में दो उमास्वाति खड़े कर दिये हैं, एक तो वि० सं० ७२०में रविप्रभके बाद होनेवाले जिनका जिकर ऊपर हो चुका है और दूसरे आर्यमहागिरिके बहुल और बलिस्सह नामक दो शिष्योंमें-से बलिस्सहके शिष्य, जिनका समय वीर नि० ३७६से कुछ पहले पड़ता है और उन्हें ही तत्त्वार्थादिका कर्त्ता अनुमान कर लिया है।

नन्दिसूत्र-पट्टावलीकी २६ वीं गाथामें 'हारियगुत्तं साइं च वन्दे' (हारीत-गोत्रं स्वातिं च वन्दे) पद है। चूँकि उमा-स्वाति नामका उत्तरार्ध 'स्वाति' है, इसलिए धर्मसागरजीने 'स्वाति'को ही उमा-स्वाति समझ लिया और यह सोचने-का कष्ट नहीं उठाया कि तत्त्वार्थकर्त्ता उमास्वातिका गोत्र तो कौभीषणि है और स्वातिका हारीत। इसके सिवाय दोनोंके गुरु भी दूसरे दूसरे हैं।

गरज यह कि श्वेताम्बर सम्प्रदायके लेखक भी उमास्वातिकी परम्परा और समय आदिके सम्बन्धमें अँधेरेमें थे। उन्होंने भी बहुत पीछे उन्हें अपनी पर-म्परामें कहीं न कहीं बिठानेका प्रयत्न किया है और उसमें वे सफल नहीं हुए हैं।

हमारी समझमें तत्त्वार्थ-सूत्र और भाष्यके कर्त्ता पहले तो दोनों सम्प्रदायों-के लिए अन्य थे परन्तु पीछे जब अपनी अपनी टीकाओंके बलपर उनको आत्मसात् कर लिया गया तब पीछेके लेखकोंको उन्हें अपनी अपनी परम्परामें स्थान देनेको विवश होना पड़ा, जिसमें एकवाक्यता न रही और यह गड़बड़ मच गई।

उमास्वाति यापनीय थे

तब उमास्वाति किस सम्प्रदायके थे? सबसे पहले मुझे एक शिलालेखके नीचे लिखे हुए श्लोकसे उनके सम्प्रदायका आभास मिला—

१–मैसूरके नगर ताल्लुकेका ४६ वें नम्बरका शिलालेख। एपिग्राफिआ कर्नाटिकाकी आठवीं जिल्द।

तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं उमास्वातिमुनीश्वरम् ।
श्रुतकेवलिदेशीयं वन्देऽहं गुणमन्दिरम् ॥

इसमें उमास्वातिको 'श्रुतकेवलिदेशीय' विशेषण दिया गया है और यही विशेषण व्याकरणाचार्य शाकटायनके साथ लगा हुआ मिलता है[1] साथ ही इसी शिलालेखमें शाकटायनकी भी स्तुति की गई है ।

यापनीय सम्प्रदायका अब केवल नाम ही रह गया है, सम्प्रदायके रूपमें उसका अस्तित्व नहीं है । हाँ, उसका थोड़ा-सा साहित्य अवश्य रह गया है जो मुश्किलसे पहिचाना जाता है और जिसपर वर्तमानमें दिगम्बर-श्वेताम्बर सम्प्रदायोंका अधिकार है । किसी ग्रन्थपर एकका और किसीपर दूसरेका । उदाहरणके लिए शाकटायन व्याकरण विना किसी सन्देहके यापनीय सम्प्रदायका है जिसपर कई दिगम्बर विद्वानोंने टीकायें[2] लिखकर अपना बना लिया है और शाकटायन आचार्यका ही लिखा हुआ 'स्त्रीमुक्ति-केवलिभुक्ति प्रकरण' श्वेताम्बर सम्प्रदायमें खप गया है । इसी तरह शिवार्यकी भगवती आराधना और उसकी अपराजितसूरिकृत विजयोदया टीका भी यापनीयोंकी है, परन्तु इनपर इस समय दिगम्बरोंका अधिकार है और पं० आशाधर और अमितगति जैसे दिगम्बर विद्वानोंकी मूलाराधनापर कई टीकायें भी हैं[3] ।

ऐसी दशामें यदि उमास्वाति यापनीय हों और उनके सूत्र-पाठ और भाष्यको दोनों सम्प्रदायोंने अपना अपना बना लिया हो तो क्या आश्चर्य है ?

तत्त्वार्थ-भाष्यकी प्रशस्तिके दो आचार्य – घोषनन्दि और शिवश्री – भी उमास्वातिके यापनीय होनेका संकेत देते हैं । चन्द्रनन्दि, नागनन्दि, कुमारनन्दि आदि नन्द्यन्त नाम यापनीय-परम्परामें अधिक मिलते हैं, बल्कि यापनीयोंका 'नन्दि संघ' नामका एक संघ भी था जब कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इस तरहके नामोंका प्रायः अभाव है । इसी तरह उमास्वातिके प्रगुरु 'शिवश्री' भी आश्चर्य नहीं जो भगवती आराधनाके कर्त्ता 'आर्य शिव' ही हों । 'श्री' और 'आर्य' नामांश नहीं किन्तु सम्मानसूचक शब्द जान पड़ते हैं । वास्तविक नाम 'शिव' है, जो छन्दके वजन को ठीक रखनेके लिए भाष्यमें 'शिवश्री' और

---

१ – देखो 'जैन साहित्य और इतिहास'में शाकटायन और उनका शब्दानुशासन' शीर्षक लेख ।

२ – देखो, वही पृ० २३ – ४० । ३ – देखो, वही पृ० ५३ – ५४ ।

आराधनामें 'सिवज्ज' या 'शिवार्य' किया गया है। जिस तरह शिवार्यके गुरुओंमें जिननन्दि और मित्रनन्दि ये दो नन्द्यन्त नाम है, उसी तरह उमास्वातिके एक गुरु भी घोषनन्दि हैं। वाचना-गुरु 'मूल'का भी शायद पूरा नाम 'मूलनन्दि' हो।

भाष्यमें यापनीयत्व

तत्त्वार्थ-भाष्यमें कुछ स्थल ऐसे हैं जो उसके यापनीय होनेकी स्पष्ट सूचना देते हैं—

१ आठवें अध्यायका अन्तिम सूत्र है—'सद्वेद्यसम्यक्त्वहास्यरतिपुरुषवेद-शुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्'। इसमें पुरुषवेद, हास्य, रति और सम्यक्त्वमोहनीय इन चार प्रकृतियोंको पुण्यरूप बतलाया है। परन्तु श्वेताम्बर दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंमें इन्हें पुण्यप्रकृति नहीं माना है। इसलिए श्वेताम्बराचार्य सिद्धसेन गणिको इस सूत्रकी टीका करते हुए लिखना पड़ा है कि "कर्मप्रकृति ग्रन्थका अनुसरण करनेवाले तो ४२ प्रकृतियोंको ही पुण्यरूप मानते हैं। उनमें सम्यक्त्व, हास्य, रति, पुरुषवेद नहीं हैं। सम्प्रदायका विच्छेद हो जानेसे मैं नहीं जानता कि इसमें भाष्यकारका क्या अभिप्राय है और कर्मप्रकृतिग्रन्थ-प्रणेताओंका क्या। चौदहपूर्वधारी ही इसकी ठीक ठीक व्याख्या कर सकते हैं[1]।"

वास्तवमें उक्त चार प्रकृतियोंको पुण्यरूप यापनीय सम्प्रदाय ही मानता है और यह न जाननेके कारण ही सिद्धसेन गणि उलझनमें पड़कर उक्त टीका लिखनेको वाध्य हुए हैं।

अपराजितसूरि निश्चयसे यापनीय सम्प्रदायके थे[2]। उन्होंने भी अपनी विजयोदया[3] टीकामें उक्त चार प्रकृतियोंको पुण्यरूप माना है। यथा—सद्वेद्यं

१—"कर्मप्रकृतिग्रन्थानुसारिणस्तु द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतीः पुण्याः कथयन्ति।... आसां च मध्ये सम्यक्त्वहास्यरतिपुरुषवेदा न सन्त्येवेति। कोऽभिप्रायो भाष्यकृतः को वा कर्म-प्रकृतिग्रन्थप्रणयिनामिति सम्प्रदायविच्छेदान्मया तावन्न व्यज्ञायीति। चतुर्दशपूर्वधरादयस्तु संविदते यथावदिति निर्दोषं व्याख्यातम्।"

२—देखो, 'जैनसाहित्य और इतिहास' पृ० ४५—५४

३—विजयोदयाके कर्त्ता तत्त्वार्थसूत्रसे खूब परिचित थे। उन्होंने इस टीकामें तत्त्वार्थके बीसों सूत्र उद्धृत किये हैं और उनमें कुछ सूत्र भाष्यानुसारी हैं। जैसे पृ० १५२१ पर 'उत्तमसंहननस्य' आदि सूत्र। विजयोदया टीका सर्वार्थसिद्धिके बादकी मालूम होती है। क्योंकि उसमें एक जगह स० सि०के विचारोंका खंडन है—(आगे नोट चालू है)

सम्यक्त्वं रतिहास्यपुंवेदाः शुभे नामगोत्रे शुभं चायुः पुण्यं, एतेभ्योऽन्यानि पापानि ।—भगवती आ० पृ० १६४३, पंक्ति ४

२—सातवें अध्यायके तीसरे सूत्रके भाष्यमें पाँच व्रतोंकी जो पाँच पाँच भावनायें बतलाई हैं उनमेंसे अचौर्य व्रतकी भावनायें भगवती आराधनाके अनुसार हैं, सर्वार्थसिद्धिके अनुसार नहीं ।

"अस्तेयस्यानुवीच्यवग्रहयाचनमभीक्ष्णावग्रह-याचनमेतावदित्यवग्रहावधारणं समानधार्मिकेभ्योऽवग्रहयाचनमनुज्ञापितपानभोजनमिति ।"—भाष्य

"अणणुण्णदग्गहणं असंगबुद्धी अणुण्णवित्तावि ।
एदावंति य उग्गहजायणमध उग्गहाणुस्स ॥ १२०८
वज्जणमणुण्णादगिहप्पवेसस्स गोयरादीसु ।
उग्गहजायणमणुवीचिए तहा भावणातइए ॥ १२०९
—भगवती आराधना

इससे भी मालूम होता है कि भाष्यकार और भगवती आराधनाके कर्त्ता शिवार्य दोनों एक ही यापनीय सम्प्रदायके हैं ।

३—तीसरे अध्यायके 'आर्या म्लेच्छाश्च' सूत्रके भाष्यमें अन्तरद्वीपोंके नाम वहाँके मनुष्योंके नामसे पड़े हुए बतलाये हैं, जैसे एकोरुकोंका (एक टांगवालोंका) एकोरुक द्वीप आदि ।[1] परन्तु इसके विरुद्ध भाष्य-वृत्तिकर्त्ता सिद्धसेनगणि कहते हैं कि उक्त द्वीपोंके नामसे वहाँके मनुष्योंके नाम पड़े हैं, जैसे एकोरुक नामक द्वीपके रहनेवाले एकोरुक मनुष्य । वास्तवमें वे मनुष्य सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंगोंसे

"अग्रं मुखं । एकमग्रमस्येत्येकाग्रः नानार्थावलम्बनेन चिन्तापरिस्पन्दवती तस्या अन्याशेषमुखेभ्यो व्यावर्त्य एकस्मिन्नग्रे नियम एकाग्रचिन्तानिरोध इत्युच्यते ।" स०सि०९–२७

"केचित्प्रवदन्ति 'नानार्थावलम्बनेन चिन्तापरिस्पन्दवती तस्या एकस्मिन्नग्रे नियमश्चिन्तानिरोध' इति । त इदं प्रष्टव्याः—नानार्थाश्रया चिन्ता सा कथमेकत्रैव प्रवर्तते ? एकत्रैव चेत्प्रवृत्ता नानार्थावलम्बनं परिस्पन्दं नासादयतीति निरोधवाचोयुक्तिरसंगता । तस्मादेवमत्र व्याख्यानं चिन्ताशब्देन चैतन्यमुच्यते ।"—भ० आ० पृ० १५२३

पहले अध्यायके पहले सूत्रकी सर्वार्थसिद्धिमें चारित्रका लक्षण दिया है—"ज्ञानवतः कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमः सम्यक्चारित्रम् ।" विजयोदयामें ठीक यही अंश उद्धृत है—"तथा चाभ्यधायि—कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमो ज्ञानवतश्चारित्रमिति ।" पृ०३२

१—"एकोरुकाणामेकोरुकद्वीपः । एवं शेषाणामपि स्वनामभिस्तुल्यनामानो वेदितव्याः ।"—भाष्य ।

पूर्ण सुन्दर मनोहर थे[१]। अर्थात् इस विषयमें भाष्य और वृत्तिकारकी मान्यतामें भेद है। परन्तु यापनीयोंकी विजयोदया टीकामें भाष्यके ही मतका प्रतिपादन किया गया है[२] और यह भी भाष्यकारके यापनीय होनेका सबल प्रमाण है।

भाष्यसे श्वेताम्बर सम्प्रदायका विरोध।

भाष्यमें अनेक मान्यतायें ऐसी हैं जिनसे श्वेताम्बर सम्प्रदायका विरोध आता है और जिनसे श्वेताम्बर टीकाकार सिद्धसेन सहमत नहीं हैं। वे उन्हें आगम-विरोधी मानते हैं[३]।

२—अध्याय २, सूत्र १७के भाष्यमें उपकरण के दो भेद किये हैं, बाह्य और अभ्यन्तर। इसपर सिद्धसेन कहते हैं कि आगममें ये भेद नहीं मिलते। यह आचार्यका ही कहींका सम्प्रदाय है[४]। और वास्तवमें वह यापनीयोंका सम्प्रदाय है।

३—अध्याय ३, सूत्र ३ के भाष्यमें रत्नप्रभाके नारकीयोंके शरीरकी ऊँचाई ७ धनुष, ३ हाथ और ६ अंगुल बतलाई है[५]। सिद्धसेन कहते हैं कि भाष्यकारने यह अतिदेशसे कही है। मैंने तो आगममें कहीं यह प्रतरादि भेदसे नारकीयोंकी अवगाहना नहीं देखी[६]।

४—अ० ३, सू० ९ के भाष्यमें जो परिहाणि बतलाई है, उसके विषयमें सिद्धसेन कहते हैं कि यह परिहाणि गणितप्रक्रियाके साथ जरा भी ठीक नहीं

१—"द्वीपनामतः पुरुषनामानि, ते तु सर्वाङ्गसुन्दरा दर्शनमनोरमणाः नैकोरुका एव। इत्येवं शेषा अपि वाच्या।—सि० से० वृत्ति।

२—"अभाषका एकोरुका लांगूलिकविषाणिनः। आदर्शमेषहस्त्यश्वं विद्युदुल्कमुखा अपि॥
हयकर्णगजकर्णाः कर्णप्रावरणास्तथा। इत्येवमादयो ज्ञेया अन्तरद्वीपजा नराः॥
समुद्रद्वीपमध्यस्थाः कन्दमूलफलाशिनः। वेदयंते मनुष्यायुः मृगोपमचेष्टिताः॥"
—भ० आ० पृ० ९३६

३—ऐसा जान पड़ता है कि यापनीयोंके आगम वर्तमान वल्लभी वाचनाके आगमोंसे भिन्न पहलेकी किसी वाचनाके, संभवतः माथुरी वाचनाके, थे और इसीलिए विजयोदयामें जो उद्धरण हैं वे वर्तमान आगमोंमें ज्योंके त्यों नहीं, यत्किञ्चित् पाठ-भेदको लिये हुए मिलते हैं। उमास्वातिका भाष्य उसी पूर्वकी वाचनाके अनुसार होगा और इसीलिए वह कहीं कहीं सिद्धसेनको आगमविरोधी मालूम हुआ है।

४—"आगमे तु नास्ति कश्चिदन्तर्बहिर्भेद उपकरणस्येत्याचार्यस्यैव कुतोऽपि सम्प्रदाय इति"।

५—तिलोयपण्णत्तिमें तत्त्वार्थ-भाष्यके ही समान अवगाहना बतलाई है—सत्त-ति-छ हत्थंगुलाणि कमसो हवंति घम्माए।—अ० २,११६

६—"उक्तमिदमतिदेशतो भाष्यकारेणास्ति चैतत् न तु मया क्वचिदागमे दृष्टं प्रतरादि-भेदेन नारकाणां शरीरावगाहनमिति।"

बैठती। आर्षानुसारी गणितज्ञ इसे अन्यथा ही वर्णन करते हैं[1]। हरिभद्रसूरिको भी इसमें कुछ संदेह हुआ है[2]।

५–अ० ३, सूत्र १५के भाष्यकी टीका करते हुए सिद्धसेन लिखते हैं, इस अन्तरद्वीपक भाष्यको दुर्विदग्धोंने प्रायः नष्ट कर दिया है जिससे भाष्य-पुस्तकों (भाष्येषु)में ९६ अन्तरद्वीप मिलते हैं[3]। पर यह अनार्ष है। वाचक-मुख्य सूत्रका उल्लंघन नहीं कर सकते। यह असंभव है[4]।

७–अ० ४, सूत्र ४२के भाष्यपर सिद्धसेन कहते हैं कि भाष्यकारने सर्वार्थसिद्धमें भी जघन्य आयु बत्तीस सागरोपम बतलाई है, सो न जाने किस अभिप्रायसे, आगममें तो तेतीस सागरोपम है[5]।

८–अ० ४, सू० २६के भाष्यमें लोकान्तिक देवोंके आठ भेद हैं। परन्तु भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, स्थानांगादिमें नौ बतलाये हैं[6]।

९–अ० ९, सू० ६के भाष्यमें भिक्षुप्रतिमाओंके जो १२ भेद किये हैं, उनको ठीक न मानकर सिद्धसेन कहते हैं कि यह भाष्यांश परम ऋषियोंके प्रवचनके अनुसार नहीं है किन्तु पागलका प्रलाप है। वाचक तो पूर्ववित् होते हैं, वे ऐसा आर्षविरोधी कैसे लिखते? आगमको ठीक न समझनेसे जिसे भ्रान्ति हो गई है ऐसे किसीने यह रच दिया है[7]।

१–"एषा च परिहाणिः आचार्योक्ता न मनागपि गणितप्रक्रियया संगच्छते। गणित-शास्त्रविदो हि परिहाणिमन्यथा वर्णयन्त्यागमानुसारिणः।"

२–"गणितज्ञा एवात्र प्रमाणं।"

३–सर्वार्थसिद्धि और तिलोयपण्णत्ति आदि दिगम्बर-ग्रन्थोंमें भी ९६ ही अन्तरद्वीप बतलाये हैं। भाष्यमें भी ९६का ही पाठ रहा होगा। परन्तु आश्चर्य है कि मुद्रित भाष्यपाठोंमें ५६ ही अन्तरद्वीप मुद्रित हैं और उक्त भाष्यांशके नीचे ही ९६ अन्तरद्वीपोंकी सूचना देनेवाली सिद्धसेनकी तथा हरिभद्रकी टीका मौजूद है। प्रतिलिपिकारों अथवा मुद्रित करानेवालोंका यह अपराध अक्षम्य है।

४–"एतच्चान्तरद्वीपकभाष्यं प्रायो विनाशितं सर्वत्र कैरपि दुर्विदग्धैर्येन षण्णवतिरन्तर-द्वीपिका भाष्येषु दृश्यन्ते। अनार्षं चैतदध्यवसीयते जीवाभिगमादिषु षट्पञ्चाशदन्तरद्वीप-काध्ययनात्। नापि च वाचकमुख्याः सूत्रोल्लंघनेनाभिदधत्यसम्भाव्यमानत्वात्।..." (हारिभद्रीयवृत्तिमें भी बिल्कुल यही पाठ है।)

५–"भाष्यकारेण तु सर्वार्थसिद्धेऽपि जघन्या द्वात्रिंशत्सागरोपमान्यधीता, तन्न विद्मः केन अभिप्रायेण। आगमस्तावदयं... ।"

६–"भाष्यकृता चाष्टविधा इति मुद्रिताः। आगमे तु नवधैवाधीता।"

७–"नेदं पारमर्षप्रवचनानुसारि भाष्यं किं तर्हि प्रमत्तगीतमेतत्। वाचको हि पूर्ववित् कथमेवंविधं आर्षविसंवादिनिबध्नीयात्। सूत्रानवबोधादुपजातभ्रान्तिना केनापि रचितमेतत्।"

इस तरह और भी अनेक स्थानोंमें वृत्तिकारने आगम-विरोध बतलाया है, जिसका स्थानाभावसे उल्लेख नहीं किया जा सका। इस विरोधसे स्पष्ट समझमें आ जाता है कि भाष्यकारका सम्प्रदाय सिद्धसेनके सम्प्रदायसे भिन्न है और वह यापनीय ही हो सकता है।

मूल सूत्रमें भी खटकनेवाली बातें

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दिगम्बर सम्प्रदाय तत्त्वार्थ-भाष्यको नहीं मानता, सिर्फ सूत्र-पाठको मानता है और वह सूत्रपाठ भी भाष्यमान्य सूत्र-पाठसे कुछ भिन्न है। फिर भी उसमें भी कुछ सूत्र ऐसे हैं जिनपर बारीकीसे विचार किया जाय, तो वे दिगम्बर-सम्प्रदायकी दृष्टिसे खटकते हैं—

१—अ० १०के 'एकादश जिने' सूत्रका सीधा और सरल अर्थ यह है कि तेरह-चौदहवें गुणस्थान (जिन)में भूख-प्यास आदि ग्यारह परीषह होती हैं परन्तु चूँकि दि० सम्प्रदाय केवलीको कवलाहार या भूख-प्यास नहीं मानता है, इसलिए उसे इस सूत्रकी व्याख्या दो तरहसे करनी पड़ी है। एक तो यह कि जिन सर्वज्ञमें क्षुधा आदि ग्यारह परीषह वेदनीयकर्मजन्य हैं लेकिन मोह न होनेके कारण वे भूख आदि वेदनारूप न होनेसे सिर्फ उपचारसे द्रव्य परीषह हैं। दूसरी तरह यह कि उक्त सूत्रमें 'न'का अध्याहार करके यह अर्थ किया जाय कि जिन भगवानमें वेदनीय कर्म होनेपर भी तदाश्रित क्षुधा आदि ग्यारह परीषह मोहका अभाव होनेके कारण बाधारूप न होनेसे हैं ही नहीं।[१] परन्तु वास्तवमें यह खींचातानी है। सूत्रकार यापनीय हैं, इसीलिए वे केवलीको कवलाहार मानते हैं और उनके मतसे 'जिन'के ग्यारह परीषह होना ठीक है।[२]

२—चौथे अध्यायका 'दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः' सूत्र दोनों सूत्रपाठोंमें एक-सा मिलता है जिसके अनुसार भवनवासियोंके दस, व्यन्तरोंके आठ, ज्योतिष्कोंके पाँच और कल्पवासियोंके बारह भेद बतलाये हैं; परन्तु आगेके 'सौधर्मेशान' आदि सूत्रमें जिसमें कल्पवासियोंके भेद गिनाये हैं, भिन्नता आ गई है। भाष्यमान्यपाठमें जहाँ कल्पोंके नाम १२ हैं, वहाँ दिगम्बर सूत्रपाठमें १६ हैं, अर्थात् ब्रह्मोत्तर, कापिष्ठ, शुक्र और सतार ये चार नाम

१—इस विषयपर डा० हीरालालजी जैनने जैनसिद्धान्तभास्कर (भाग १०, अंक २, पृष्ठ ८९-९४)में प्रकाशित 'क्या तत्त्वार्थसूत्रकार और उनके टीकाकारोंका अभिप्राय एक ही है?" शीर्षक लेखमें विशेष प्रकाश डाला है।

२—यापनीय संघके शाकटायनाचार्यने अपने 'केवलिभुक्ति' नामक प्रकरणमें कवलाहारका जोरोंसे समर्थन किया है। देखो, जैनसाहित्य संशोधक भाग २, अंक ३।

और बढ़ गये हैं। चूँकि दिगम्बर सम्प्रदायमें कल्प १६ माने जाते हैं, और तदनुसार ही आगेके सूत्रको बढ़ाकर उनका नाम निर्देश भी कर दिया गया है, इस लिए पहले सूत्रमें भी 'द्वादश' के स्थानमें 'षोडश' पद होना चाहिए था, अर्थात् सूत्रका रूप 'दशाष्टपंचषोडशविकल्पाः कल्पोपन्नपर्यन्ताः' होना ठीक होता। सो नहीं है और यह खटकनेवाली बात है।

३ – नवें अध्यायके 'पुलाकबकुश' और 'संयमश्रुत' आदि सूत्रोंमें जिन पाँच तरहके निर्ग्रन्थोंका वर्णन है, उनकी चर्चा दिगम्बर सम्प्रदायके किसी भी प्राचीन ग्रन्थमें – तत्त्वार्थ टीकाओंके सिवाय – नहीं दिखलाई देती। इनमेंसे पहलेके तीन निर्ग्रन्थों – पुलाक बकुश और कुशील मुनियों – का दिगम्बर मुनियोंकी चर्याके साथ कोई मेल नहीं बैठता। इनके अन्वर्थक नाम, और भाष्यमें जो इनके स्वरूप बतलाये हैं वे, इनकी चर्याको काफी शिथिल प्रकट करते हैं। सर्वार्थसिद्धिकारने इनके स्वरूपको काफी सँभालनेकी कोशिश की है, परन्तु दूसरे टीकाकार श्रुतसागरसूरिने 'संयमश्रुत' आदि सूत्रकी व्याख्या करते हुए यह स्वीकार किया है कि असमर्थमुनि शीतकालादिमें वस्त्रादि भी ग्रहण कर सकते हैं और इसे कुशीलमुनिकी अपेक्षासे भगवती आराधनाके अनुकूल भी बतलाया है।[१] इस तरह उन्होंने एक तरहसे यापनीयोंका ही मत मान लिया है जो अपवादरूपसे मुनियोंको वस्त्रग्रहणकी व्यवस्था देता है। कहनेका अभिप्राय यह कि ये कुशीलादि मुनि यापनीय सम्प्रदायके अनुसार ही निर्ग्रन्थ कहला सकते हैं और सूत्रकार यापनीय हैं।

४ – तत्त्वार्थके दो सूत्रों (अ० ७, सू० २१–२२) में जो गृहस्थोंके लिए सात उत्तरव्रत या शील और आठवीं मारणान्तिकी सल्लेखना सेवनीय बतलाई है, सो भी दिगम्बरसम्प्रदायकी दृष्टिसे खटकनेवाली है। दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदण्डविरति, सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोगपरिभोगपरिमाण और अतिथिसंविभाग ये सात उत्तरव्रत हैं। भाष्यमें इनको शील तो कहा है परन्तु गुणव्रत

---

१ – पुलाको निःसार इति प्ररूढं लोके। शबलपर्यायवाची बकुशशब्दः। सातिचारत्वाच्चरणपटं शबलयति। अनिर्यमितेन्द्रियाः कुशीलाः।

२ – लिङ्गं द्विविधं द्रव्यभावलिङ्गभेदात्। तत्र भावलिङ्गिनः पञ्च प्रकारा अपि निर्ग्रन्था भवन्ति। द्रव्यलिङ्गिनः असमर्था महर्षयः शीतकालादौ कम्बलादिकं गृहीत्वा न प्रक्षालयन्ते न सीव्यन्ति न प्रयत्नादिकं कुर्वन्ति अपरकाले परिहरन्तीति भगवती आराधना प्रोक्ताभिप्रायेण कुशीलापेक्षया वक्तव्यम्।

और शिक्षाव्रतरूपसे इनको दो भागोंमें विभक्त नहीं किया। परन्तु दिगम्बर-सम्प्रदायके अग्रणी आचार्य कुन्दकुन्द अपने चारित्र-पाहुड़में दिग्विरति, अनर्थ-दण्डविरति, और भोगोपभोगपरिमाणको तीन गुणव्रत और सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथिसंविभाग और अन्तसल्लेखनाको चार शिक्षाव्रत बतलाकर सात शीलोंकी पूर्ति करते हैं।[१] इनमें देशविरतिको कोई स्थान नहीं दिया और उसके बदलेमें सल्लेखनाको ले लिया, जो तत्त्वार्थमें सात उत्तरव्रतोंके अतिरिक्त है।

श्वेताम्बरसम्प्रदायके औपपातिकसूत्रमें भी देशविरतिको सात शीलोंमें गिनाकर सल्लेखनाको अलगसे सेवनीय बतलाया है।[२]

इस तरह यह मत-भेद स्पष्ट ही दो सम्प्रदायोंके मत-भेदको सूचित करता है और पंडितवर्य जुगलकिशोरजी मुख्तारकी विवेचनाके अनुसार इसका कारण अपेक्षाभेद, विषयभेद, प्रतिपादकोंकी समझ आदि नहीं मालूम होता।[३]

दिगम्बरसम्प्रदाय कुन्दकुन्दका अनुयायी है; परन्तु आगे चलकर जब तत्त्वार्थ-सूत्रको भी उसने अपना लिया तब इन गुणव्रतों और शिक्षाव्रतोंके विषयमें बड़ी गड़बड़ मच गई और पिछले ग्रन्थकर्त्ताओंमेंसे किसीने कुन्दकुन्दका, किसीने उमास्वातिका और किसीने दोनोंका अनुसरण किया। किसी किसीने दोनोंके समन्वय करनेका प्रयत्न किया और आचार्य जिनसेनने तो सातकी जगह आठ शील मान लिये!

इस तरह सर्वार्थसिद्धि-सम्मत सूत्रपाठमें भी अनेक खटकनेवाली बातें मौजूद हैं।

क्या टीकाकार यापनीयोंसे परिचित थे?

भाष्यके अतिरिक्त तत्त्वार्थकी जितनी टीकायें उपलब्ध हैं उनमें सबसे पहली सर्वार्थसिद्धि है। इसका रचना-काल विक्रमकी छठी सदीका प्रारंभ है।[४] संभवतः इसीके द्वारा दिगम्बर-सम्प्रदाय तत्त्वार्थसूत्रसे परिचित हुआ। इसी तरह आचार्य

---

१ – दिसविदिसमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं विदियं। भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि॥ २५॥ सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसहं भणियं। तइयं अतिहीपुज्जं चउत्थं सल्लेहणा अंते॥ २६॥

२ – आगारधम्मं दुवालसविहं आइक्खइ, तं जहा – पंच अणुव्वयाइं तिण्णि गुणवयाइं चत्तारि सिक्खावयाइं। तिण्णि गुणव्वयाइं, तं जहा – अणत्थदण्डवेरमणं, दिसिव्वयं, उवभोगपरिभोगपरिमाणं। चत्तारि सिक्खावयाइं, तं जहा – सामाइयं, देसावगासियं, पोसहोववासे, अतिहिसंविभागे। अपच्छिमा मारणंतिआ संलेहणा जूसणाराहणा। सू० ५७।

३ – देखो, 'जैनाचार्योंका शासनभेद' पृ० ४१ – ६४।

४ – देखो, 'जैनसाहित्य और इतिहास' पृष्ठ ११५ – २०।

३.१.१९.

हरिभद्रकी अधूरी[1] टीका और सिद्धसेनगणिकी सम्पूर्ण टीकाके द्वारा श्वेताम्बरसम्प्रदायमें तत्त्वार्थ और उसके भाष्यको स्थान मिला। इन दोनोंका ही समय विक्रमकी ८–९ वीं शताब्दि[2] है।

पिछली दोनों टीकायें सर्वार्थसिद्धि ही नहीं अकलंकदेवकी प्रसिद्ध टीका राजवार्तिकके भी बादकी हैं और जैसा कि पं० परमानन्दजी शास्त्रीने सप्रमाण सिद्ध किया है[3] उनके कर्त्ताओंके सामने सर्वार्थसिद्धि और राजवार्तिक मौजूद थे। इनके सिवाय ऐसा जान पड़ता है कि सिद्धसेनगणिके सामने और भी छोटी मोटी टीकायें रही होंगी;[4] परन्तु संभवतः वे यापनीयोंकी होंगी जैसा कि सिद्धसेनकी वृत्तिके एक उल्लेखसे प्रकट होता है।[5]

जहाँतक हम जानते हैं हरिभद्र और सिद्धसेनके समयमें उत्तर-पश्चिम भारतमें यापनीय सम्प्रदायके प्रत्यक्ष अस्तित्वका कोई प्रमाण नहीं है। इसलिए उनका

१–यह टीका हरिभद्रने अ० ५ सूत्र २३ तक लिखी थी और शेष यशोभद्र और उनके अज्ञात शिष्यने सिद्धसेनकी वृत्तिकी ही प्रायः नकल करके पूर्ण की है। शुरूके अध्यायोंमें भी यत्र तत्र सिद्धसेनवृत्तिके अंश मिलते हैं।

२–देखो, हिन्दी 'तत्त्वार्थसूत्र'की भूमिका पृ० ५०।

३–देखो, अनेकान्त वर्ष ३, अंक ११में 'सिद्धसेनके सामने स० सि० और राजवार्तिक'।

४–देखो, हिन्दी 'तत्त्वार्थसूत्र'की भूमिका पृ० ५१।

५–देखो, आठवें अध्यायके अन्तिम सूत्रकी वृत्ति, जिसमें कहा है कि कुछ लोग सम्यक्त्व, हास्य, रति, पुरुषवेदको पुण्य प्रकृति मानते हैं, जो इष्ट नहीं है—

सम्यक्त्व-हास्य-रति-धववेदानां पुण्यतामुशन्त्येके।
न तथा पुनस्तदिष्टं मोहत्वाद्देशघातित्वात्॥

और फिर 'अपरस्त्वाह' कहकर नीचे लिखी पाँच कारिकायें दी हैं जिनमें उक्त प्रकृतियोंका पुण्यत्व प्रतिपादन किया है और भाष्यका 'सर्वं चैतदष्टविधं कर्म पुण्यं पापं च' अंश उद्धृत करके सूत्रको भाष्यानुकूल बतलाया है—

रति-सम्यक्त्व-हास्यानां पुंवेदस्य च पुण्यताम्। मोहनीयमिति भ्रान्त्या केचिन्नेच्छन्ति तच्च न॥ 'सर्वमष्टविधं कर्म पुण्यं पापं च' निर्वृतम्। किं कर्मव्यतिरिक्तं स्याद्यस्य पुण्यत्वमिष्यताम्॥ 'शुभायुर्नामगोत्राणि सद्वेद्यं' चेति चेन्मतम्। सम्यक्त्वादि तथैवास्तु प्रसादनमिहात्मनः॥ पुण्यं प्रीतिकरं सा च सम्यक्त्वादिषु पुद्गला। मोहत्वं तु भवाबन्ध्यकारणादुपदर्शितम्॥ मोहो रागः स च स्नेहो, भक्तिरागः स चार्हति। रागस्यास्य प्रशस्तत्वान्मोहत्वेनापि मोहता॥

इससे साफ समझमें आता है कि सिद्धसेनके सामने किसी यापनीय विद्वान्‌की ही कोई तत्त्वार्थवृत्ति थी जिसमेंसे उक्त कारिकायें उद्धृत की हैं और उस वृत्तिकारके सामने 'सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यं' सूत्र जिसमें है, ऐसा सूत्र–पाठ भी था। यह वृत्ति सर्वार्थसिद्धिसे पहलेकी भी हो सकती है।

यापनीयोंसे साक्षात् सम्बन्ध तो रहा नहीं होगा, केवल उनके साहित्यसे परिचय होगा परन्तु उस साहित्यकी सैद्धान्तिक दृष्टिसे श्वेताम्बरसम्प्रदायके साथ इतनी अधिक समानता है और इतनी कम भिन्नता है कि वह सहसा समझमें नहीं आ सकती। इसलिए उक्त टीकाकारोंने भाष्यकारको अपने ही सम्प्रदायका उच्चै-नागरशाखाका वाचक समझ लिया होगा। परन्तु चूँकि सिद्धसेनगणि कट्टर आगमिक थे, इसलिए उन्हें भाष्यमें जहाँ कहीं आगम-विरोध दिखलाई दिया है वहाँ वे उसे स्पष्टरूपसे प्रकट करनेसे भी नहीं चूके हैं, परन्तु इसके लिए उन्होंने सूत्रपाठ या भाष्यमें कोई हस्तक्षेप नहीं किया है। "उमास्वाति वाचकमुख्य हैं, वाचक तो पूर्वोके ज्ञाता होते हैं, उन्होंने ऐसा आगमविरोधी कैसे लिख दिया, यहाँ अवश्य ही किसी दुर्विदग्धने भाष्यको नष्ट कर दिया है"। उनके इस तरहके वाक्योंसे प्रतीत होता है कि वे भाष्यकारको अपने ही सम्प्रदायका समझते थे। 'वाचक' पदवी भी श्वेताम्बर सम्प्रदायमें पहले प्रचलित थी।

परन्तु आचार्य पूज्यपाद यापनीय सम्प्रदायसे अवश्य परिचित रहे होंगे। क्योंकि दक्षिण और कर्नाटकमें उनसे पहले, चौथी पाँचवीं सदीसे लेकर उनसे बहुत बाद पन्द्रहवीं सदी तक यह सम्प्रदाय जीवित रहा है[१]। कदम्बवंशी राजाओंके दानपत्रोंमें, जो पाँचवीं शताब्दिके अनुमान किये गये हैं, यापनीयोंको जमीन दान की गई है। उन्हींके एक और दानपत्रसे मालूम होता है कि उस समय दिगम्बर तथा यापनीय पास पास भी रहते थे और उन्हें एक साथ एक ग्रामके हिस्से दान किये गये हैं।[३] यापनीयोंकी 'भगवती आराधना' पूज्यपादके

१—कागवाड़ेके जैनमन्दिरके भौंहिरेमें श० सं० १३१६ (वि० सं० १४५१) का यापनीयसंघके धर्मकीर्ति और नागचन्द्रका समाधि-लेख है। इनके गुरु नेमिचन्द्रको तुलुव-राज्यका स्थापक बतलाया है।—(बाम्बे यूनीवर्सिटी जर्नल, मई १९३३का 'यापनीय संघ' नामक लेख)

२—देखो, रायल एशियाटिक सोसाइटी बाम्बे ब्रांच जर्नल नं० ३४, जिल्द १२ और जैनहितैषी भाग १४, अंक ७–८। ये दानपत्र करजघी (धारवाड़)में मिले थे। कदम्ब-वंशके श्रीमृगेशवर्माका एक और दानपत्र इंडियन ए० जि० ६, पृ० २५–२६ में छपा है जिसमें कुमारदत्त आदि यापनीय मुनियोंको ग्राम-दान किया गया है।

३—देखो 'अनेकान्त' भाग ७ अंक १–२में मेरा लिखा हुआ 'कूर्चकोंका सम्प्रदाय।' और इंडियन ए० जिल्द ६, पृ० २४–२५

पहलेकी और उसकी विजयोदया टीका बादकी लिखी हुई है। शाकटायन व्याकरण और स्त्रीमुक्ति-केवलिभुक्तिप्रकरण अमोघवर्ष प्रथमके समयमें विक्रमकी नवीं शताब्दिके प्रारंभके हैं। इस समयके[१] और इससे पहलेके[२] और भी कई दान-पत्र मिले हैं, जिनमें यापनीयोंको ग्राम या भूमि दान की गई है।

गरज यह कि पूज्यपादके समयमें यह एक सजीव सम्प्रदाय था। इसलिए उन्हें उनका और उनके साहित्यका साक्षात् परिचय न रहा हो यह नहीं कहा जा सकता।

सूत्रपाठका संशोधित संस्करण

उस समय तत्त्वार्थसूत्र और भाष्यकी कर्नाटकके यापनीयोंमें अवश्य प्रसिद्धि रही होगी और उसका पठन-पाठन भी होता होगा। उसे देखकर आचार्य पूज्यपादके हृदयमें यह भावना उठना स्वाभाविक है कि इस तरहका सुन्दर ग्रन्थ हमारे सम्प्रदायमें भी होता तो कितना अच्छा होता। पाणिनि-व्याकरणको पढ़कर जिस तरह उन्होंने जैनसाहित्यमें एक व्याकरण-ग्रन्थकी कमी महसूस की और उसकी पूर्ति उसीके अनुकरणपर 'जैनेन्द्र'की रचना करके की, उसी तरह यदि यापनीयोंके तत्त्वार्थसूत्र और भाष्यकी कमीकी पूर्ति उन्होंने सर्वार्थसिद्धि टीका लिखकर की हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

श्वेताम्बराचार्योंके समान भाष्यकी टीका तो वे कर नहीं सकते थे क्योंकि उसमें सैकड़ों स्थल ऐसे हैं जो उनके सिद्धान्तोंसे विरुद्ध जाते हैं और किसी तरह अनुकूल नहीं बनाये जा सकते। इसलिए एक स्वतंत्र टीका लिखनेसे ही उनकी इच्छाकी पूर्ति हो सकती थी।

सर्वार्थसिद्धिका सूत्र-पाठ भी हमारी समझमें उमास्वातिके सूत्र-पाठको थोड़ा-सा संशोधन परिवर्तन करके तैयार किया गया है—केवल उतने ही सूत्रोंमें फर्क

१—देखो, पृथ्वीकोंगणि महाराजका श्रीपुर (धारवाड़)के लोकतिलक जैनमन्दिरको दिया हुआ श० सं० ६९८ का दानपत्र (इंडियन एण्टिक्वेरी २-१५६-५९) और द्वि० प्रभूतवर्षका मान्यपुर (मैसूर)के शिलाग्राम जिनालयको दिया हुआ श० सं० ७३५का दानपत्र। (—इं० ए० जिल्द १२ पृ० १३-१६)

५—देखो, सत्याश्रयवल्लभका श० सं० ४११ का यापनीय काकोपलाम्नायके जिननन्दि-मुनिको 'त्रिभुवनतिलक' मन्दिरके लिए दिया हुआ दानपत्र (इं०ए०जिल्द ७, पृ०२०९)।

करके जो दिगम्बरसम्प्रदायके साथ बिलकुल ही मेल नहीं खाते थे अथवा जिन जिनमें कुछ त्रुटियाँ नजर आती थीं।[1]

सूत्रपाठके संशोधन और परिवर्तनका ऐसा ही एक उदाहरण पूज्यपादके ही जैनेन्द्र (व्याकरण) सूत्र-पाठका हमारे सामने है। तत्त्वार्थके ही समान 'जैनेन्द्र' के भी दो सूत्र-पाठ प्रचलित हैं। एक पूज्यपादकृत असली सूत्र-पाठ जिसपर

१—उपलब्ध टीकाओंसे मालूम होता है कि मूल सूत्र-पाठमें उनसे पहले ही बहुतसे पाठान्तर प्रचलित थे। इन पाठान्तरोंकी थोड़ी बहुत चर्चा प्रायः सभी टीकाकारोंने की है। सर्वार्थसिद्धिमें दो ही पाठान्तरोंका उल्लेख है, राजवार्तिकमें उससे कुछ अधिक पाठान्तरोंकी चर्चा है और सिद्धसेनकी वृत्तिमें तो बीसों पाठान्तरोंकी आलोचना है। जैसे—अ० २ सू० ९,१९,२४,३७,४९, अ० ५, सू० २,३, अ० ७ सू० ३,२३ आदि। अधिक पाठान्तर भाष्य-प्रतियोंके कारण हुए जान पड़ते हैं। क्योंकि हस्तलिखित प्रतियोंमें मूल और भाष्य लगातार—रनिंग—लिखे रहते हैं। उनमें कहाँ तक सूत्र-पाठ है और कहाँसे भाष्य-पाठ शुरू होता है, यह जल्दी और सुगमतासे समझमें नहीं आ सकता। इसलिए बहुतसे सूत्र भाष्यमें मिल गये हैं और बहुतसे भाष्य-वाक्य सूत्र समझ लिये गये हैं।

इसके सिवाय लिपिकर्त्ताओंकी कृपासे भाष्यपाठमें भी बहुतसे पाठान्तर और गोलमाल होते रहे हैं। जैसे अ० ४ सू० ३८ के भाष्यमें 'अजघन्योत्कृष्टा सर्वार्थसिद्ध इति' यह पाठ हरिभद्रको नहीं मिला। सिद्धसेनकी वृत्तिमें अ० ५, सू० २९का भाष्य ३—४ पंक्तियोंका है जब कि हरिभद्रकी वृत्तिमें २५—२६ पंक्तियोंका। इसी तरह अ० २के अन्तिम सूत्रके भाष्यमें जहाँ सिद्धसेनको 'एभ्य औपपातिकचरमदेहासंख्येयवर्षायुर्भ्यः' पाठ मिला है वहाँ हरिभद्रको "एभ्य औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषासंख्येयवर्षायुर्भ्यः" और पूर्वोक्त पाठमें 'उत्तमपुरुषा' न होनेसे सिद्धसेनने सूत्रमें ही उत्तमपुरुष होने न होनेका सन्देह किया है—"अतो भाष्यादेव सन्देहः।" जरूरत इस बातकी है कि मूल और भाष्यकी अधिकसे अधिक प्राचीन प्रतियाँ संग्रह की जायँ, उनमें जितने पाठ-भेद मिलते हैं वे सब छाँटे जायँ और फिर उन सबपर टीकाओंकी पाठभेदसम्बन्धी चर्चाको सामने रखकर बारीकीसे विचार किया जाय। इस प्रयत्नसे दोनों सम्प्रदायोंके जिन जिन सूत्रोंमें साधारण शाब्दिक अन्तर हैं, वे तो एक जैसे ही सिद्ध हो जायँगे और शेष सूत्रोंके विषयमें यह पता लग जायगा कि उनमेंसे किस किसमें मतभेदके कारण भिन्नता हुई है और किस किसमें त्रुटियोंके कारण उचित संशोधन या परिवर्तन किया गया है और कौन कौन सूत्र विस्तारके अभिप्रायसे या जरूरत समझकर बढ़ाये गये हैं।

विस्तारके अभिप्रायसे बढ़ाये गये सूत्रोंकी चर्चा सिद्धसेनने तीसरे अध्यायके ११वें सूत्रकी टीकामें की है—"अपरे पुनर्विद्वांसोऽतिबहूनि स्वयं विरचय्यास्मिन्प्रस्तावे सूत्राण्यधीयते विस्तरदर्शनाभिप्रायेण।" और इसी सूत्रका भाष्य-वाक्य है—"तत्र पंचयोजनशतानि षड्विंशतिषट्चैकोनविंशतिभागा भरतविष्कंभः।" इसपर लिखा है—"अपरे त्विदमेव भाष्यवाक्यं सूत्रीकृत्याधीयते।"

महावृत्ति, पंचवस्तु और शब्दांभोजभास्कर आदि अनेक टीकाग्रन्थ लिखे गये हैं; दूसरा गुणनन्दिकृत सूत्रपाठ जिसपर प्रक्रिया, शब्दार्णवचन्द्रिका आदि टीकायें मिलती हैं। पहले सूत्रपाठमें लगभग तीन हजार और दूसरेमें लगभग सैंतीस सौ सूत्र हैं। फिर भी दोनोंके अधिकांश सूत्र समान हैं, दोनोंका प्रारंभिक मंगलाचरण एक है और दोनोंके कर्त्ताओंका नाम भी टीकाकारोंने देवनन्दि या पूज्यपाद लिखा है, सिर्फ दूसरेको 'गुणनन्दि-तानितवपुः' विशेषण दिया गया है।[1]

और एक ही सूत्र-पाठसे यापनीयों, दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंके ही समान अपने अपने सिद्धान्तोंके प्रतिपादन करनेका दूसरा उदाहरण 'ब्रह्मसूत्र'का है जिसपर शंकर, निम्बार्क, मध्व, रामानुज और वल्लभ आदि पाँच छह आचार्योंने द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करनेवाले जुदा जुदा भाष्य लिखे हैं। उनके सूत्रपाठोंमें भी भिन्नता है। कई सूत्र ऐसे हैं जिन्हें एक मानता है, दूसरा नहीं मानता, और कईके शब्दोंमें भी न्यूनाधिक्य है।

सर्वार्थसिद्धि टीकामें उसके कर्त्ताने दो पाठान्तरोंका निर्देश किया है।[2] यद्यपि ये पाठान्तर बिल्कुल साधारणसे हैं, उनसे कोई बड़ा मत-भेद प्रकट नहीं होता है; फिर भी कुछ विद्वान् उनके कारण यह अनुमान करते हैं कि सर्वार्थसिद्धिसे पहले भी दिगम्बरमान्य सूत्रपाठ रहा होगा, तभी तो ये पाठान्तर दिये गये हैं। अर्थात् उनके मतसे इस सूत्रपाठके कर्त्ता स्वयं पूज्यपाद नहीं हो सकते।

यद्यपि अभीतक वाचक उमास्वातिका समय ठीक निर्णीत नहीं है; फिर भी मोटे तौरपर उनके और पूज्यपादके बीच डेढ़ दो सौ वर्षका अन्तर अवश्य है। इस लम्बे समयमें उनके तत्त्वार्थसूत्र और भाष्यकी बीसों प्रतिलिपियाँ हुई होंगी और उनपर छोटे मोटे टीका-टिप्पणग्रन्थ भी लिखे गये होंगे।[3] इन प्रतिलिपियों और टीका-टिप्पणोंसे अनेक पाठान्तरोंकी सृष्टि हो सकती है और उन्हींमेंसे

१—देखो, 'जैनसाहित्य और इतिहास'में 'देवनन्दि और जैनेन्द्रव्याकरण' शीर्षक लेख पृ० १००—६।

२—पहले अध्यायका १६ वाँ सूत्र—"बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम्।"—अपरेषां क्षिप्रनिःसृत इति पाठः। दूसरे अध्यायका ५३वाँ सूत्र—औपपातिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः"—चरमदेहा इति वा पाठः।

३—ये टीका-टिप्पण यापनीय विद्वानोंके ही होंगे, दिगम्बर-श्वेताम्बरोंके नहीं। सिद्धसेनने आठवें अध्यायके अन्तमें 'अपरस्त्वाह' कहकर जो कारिकायें उद्धृत की हैं वे निश्चयसे किसी यापनीय-टीकाकी हैं।

उक्त दो पाठान्तरोंका भी उल्लेख पूज्यपाद स्वामी कर सकते हैं। सिद्धसेनगणिने अपनी भाष्यवृत्तिमें इस तरहके अनेक पाठ-भेदोंकी चर्चा की है।[1] इसके सिवाय भाष्यकी प्रतिलिपियोंपरसे भी इन साधारण पाठान्तरोंका जन्म हो सकता है।[2] अतएव केवल उक्त पाठान्तरोंके कारण आचार्य पूज्यपादद्वारा संशोधित पाठके तैयार होनेकी संभावनाका विरोध नहीं किया जा सकता।

फिर भी यदि यही मान लिया जाय कि पूज्यपादको यह सूत्रपाठ ज्योंका त्यों मिला था, स्वयं उन्होंने इसका संस्कार नहीं किया, और यदि यह भी निश्चित हो जाय कि सिद्धसेनने जिस यापनीय-वृत्तिकी कारिकायें 'अपरस्त्वाह' कहकर उद्धृत की हैं, वह सर्वार्थसिद्धिसे पहलेकी है, बादकी नहीं, तो भी हमारे निर्णयमें कोई बाधा नहीं आयगी। इतना ही और कहना होगा कि इसे स्वयं उन्होंने नहीं किन्तु उनके पूर्ववर्ती किसी दूसरे दिगम्बराचार्यने संशोधित किया होगा और यह वाचक उमास्वातिके मूल सूत्र-पाठका ही दिगम्बर संस्करण है।

* *
*

---

१ – केचिदभिदधते – नास्ति सूत्रकारस्योत्तमपुरुषग्रहणमिति। कथम्। ये किल चरमदेहास्ते नियमत एवोत्तमा भवन्ति। उत्तमास्तु चरमदेहत्वेन भाज्या वासुदेवादय इति। तस्मादनार्षमुत्तमपुरुषग्रहणमिति। अ० २–५३।

२ – रायचन्द्रशास्त्रमाला द्वारा प्रकाशित और ऋषभदेव के० सं० द्वारा प्रकाशित भाष्य-पाठमें छपा है – "अनिश्रितमवगृह्णाति। निश्रितमवगृह्णाति।" और देवचन्द लालभाईके संस्करणमें छपा है – "निश्रितमवगृह्णाति। अनिश्रितमवगृह्णाति।" भिन्न भिन्न पोथियोंमें इन दोनों पाठोंकी उपस्थितिमें कहा जा सकता है कि "अपरेषां क्षिप्रनिःसृत इति पाठः।"

श्रीसिद्धसेन दिवाकरना समयनो प्रश्न

*

ले० —आचार्य पं० श्रीसुखलालजी संघवी.

आजथी लगभग बार वर्ष पहेलां ज्यारे सन्मतितर्कनुं गुजराती भाषान्तर गुजरात विद्यापीठ तरफथी प्रसिद्ध थयुं त्यारे में तेनी प्रस्तावनामां सन्मतितर्कना कर्ता सिद्धसेन दिवाकरना समयनो प्रश्न चर्च्यो हतो। तेमां जूना मळी आवता प्रबन्धो, परम्परागत मान्यता अने साहित्यिक उल्लेखोने आधारे में सिद्धसेननो जीवनकाल विक्रमनी पंचम शताब्दी सिद्ध कर्यो हतो। त्यार बाद ज्यारे एज सन्मतितर्कना गुजराती भाषान्तरनो इंग्रेजी अनुवाद श्री श्वे० जैन कोन्फरन्स तरफथी प्रसिद्ध थयो त्यारे आजथी लगभग ६ वर्ष पहेलां फरी में ए इंग्रेजी अनुवादना फोरवर्डमां सिद्धसेनना समय विषेनो प्रश्न फरी विचारवानी सूचना ए दृष्टिए करी हती के ते वखते नवा प्रसिद्धिमां आवेला केटलाक बौद्ध ग्रन्थो जोतां मने एम लागेलुं के कदाच सिद्धसेननो समय पांचमी शताब्दीने बदले छठी के सातमी सुधी लंबाय।

परंतु त्यार बाद आ विचारास्पद प्रश्नने लगतां केटलांक बलवत् प्रमाणो मळी आव्यां छे जे ऊपरथी हवे एम मानवाने कारण छे के सिद्धसेन दिवाकरनो समय मारी प्रथमनी कल्पना अने गवेषणा प्रमाणे विक्रमनी पांचमी शताब्दीज वधारे संगत छे। ए नवा मळी आवेल प्रमाणोने आधारेज अहिं टूंकमां चर्चा करवा धारूं छुं।

सुप्रसिद्ध याकिनीसूनु हरिभद्रसूरिनो समय सुनिर्णीत करवानुं मान धरावनार आचार्य श्रीजिनविजयजीए ज आगमधर अने महाभाष्यकार श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमणना संदिग्ध समयने निश्चित कोटिमां मूकवानुं मान प्राप्त कर्युं छे। तेओ बे वर्ष पहेलां ज्यारे जेसलमेरना प्राचीन जैन ज्ञानभण्डारो जोवा अने तेमांथी सामग्री मेळववा गया त्यारे तेमने त्यांथी श्रीजिनभद्रगणिना विशेषावश्यक महाभाष्यनी एक अति प्राचीन लिखित प्रति जोवा मळी। तेने अंते ते ग्रन्थनो रचनाकाल ग्रन्थकारे पोते ज आपेलो छे। तदनुसार ते ग्रन्थ विक्रम संवत् ६६६मां काठियावाड वलभीमां समाप्त थयो छे। एटले के जिनभद्रगणि विक्रमना सातमा सैकाना उत्तरार्धमां विद्यमान हता। जिनभद्र महाभाष्यकार कहेवाय छे अने तेमणे एकाधिक

महाभाष्यो रच्यां छे जेमांथी विशेषावश्यकभाष्य तो तेमनो आकर तेम ज सर्वशास्त्र-संदोहनरूप गंभीर ग्रन्थ छे । अन्य ग्रन्थोनी रचना साथे आवा विस्तृत, गंभीर अने परिपक्व ग्रन्थनी रचना तेम ज साधुजीवन-सुलभ आयुष्यनो विचार करतां एम लागे छे के क्षमाश्रमणजीनो जीवनकाल विक्रमना छठा सैकाना अंतिम भागथी सातमा सैकाना त्रीजा पाद सुधी लंबाएलो होय तो ए विशेष संभवित छे। जिनभद्र क्षमाश्रमणे पोताना ए महान् ग्रन्थमां अने लघु ग्रन्थ विशेषणवतीमां सिद्धसेन दिवाकरना उपयोगाभेद-वादनी तेम ज दिवाकरनी कृति सन्मतितर्कना टीकाकार मल्लवादीना उपयोगयौगपद्य-वादनी विस्तृत समालोचना करी छे । आ ऊपरथी एटलुं तो सिद्ध छे के मल्लवादी अने सिद्धसेन दिवाकर ए बन्ने जिनभद्र-गणि करतां अनुक्रमे पूर्व अने पूर्वतर छे । ए पौर्वापर्य केटलुं होवुं जोइए एज अहिं विचारणीय छे । मल्लवादीना द्वादशारनयचक्रना विनष्ट मूलनां जे प्रतीको तेना विस्तृत टीकाग्रन्थमां मळे छे तेमां दिवाकरनुं सूचन छे पण जिनभद्रगणिनुं सूचन नथी । एटले मल्लवादी जिनभद्रगणि करतां पहेलां थया छे एम फलित थाय छे । मल्लवादीए सिद्धसेन दिवाकरना सन्मतितर्क ऊपर टीका रचेली जेनो निर्देश आचार्य हरिभद्र करे छे । एटले सिद्धसेन मल्लवादी करतां पूर्ववर्ती छे ए पण स्वतःसिद्ध छे । मल्लवादीने विक्रमना छट्ठा सैकाना पूर्वार्धमां मानीए तो सिद्धसेन दिवाकरनो समय जे पांचमी शताब्दी धारवामां आवेलो ते वधारे संगत लागे छे ।

वधारे संगत कहेवाना पक्षमां बीजुं पण सबल प्रमाण छे अने ते पूज्यपाद देवनंदीए करेल विश्वस्त उल्लेखोनुं । देवनंदीए पोताना जैनेन्द्रव्याकरणमां 'वेत्तेः सिद्धसेनस्य' ए सूत्रमां सिद्धसेननो मतविशेष नोंध्यो छे । ते ए छे के सिद्धसेनना मत प्रमाणे 'विद्' धातुने 'र्' आगम थाय छे; भले ते सकर्मक पण होय । देव-नंदीनो आ उल्लेख बिलकुल साचो छे, केमके दिवाकरनी जे कांइ थोडीक संस्कृत कृतिओ बची छे तेमांथी तेमनी नवमी बत्रीशीना २२मां पद्यमां 'विद्रते' एवो 'र्' आगमवालो प्रयोग मळे छे । अन्य वैयाकरणो 'सम्' उपसर्गपूर्वक अने अकर्मक विद् धातुने 'र्' आगम स्वीकारे छे त्यारे सिद्धसेने अनुपसर्ग अने सकर्मक 'विद्' धातुनो 'र्' आगमवाळो प्रयोग कर्यो छे । आटली विलक्षणतानी नोंध देवनंदीए लीधी ए तेमनुं बहुश्रुतत्व अने चातुर्य कहेवाय । वळी देवनंदी पूज्यपादनी मनाती सर्वार्थसिद्धि नामनी तत्त्वार्थसूत्र ऊपरनी टीकाना सप्तम अध्यायना १३मां

सूत्रमां "उक्तं च" शब्द साथे सिद्धसेन दिवाकरना एक पद्यनो अंश उद्धृत थएलो मळे छे "उक्तं च – वियोजयति चासुभिर्न च वधेन संयुज्यते ।" जे पद्य तेमनी त्रीजी बत्रीशीना १६मां श्लोकमां आवे छे । ते आखुं पद्य आ प्रमाणे छे–

वियोजयति चासुभिर्न च वधेन संयुज्यते,
शिवं च न परोमर्दपु (प)रुषस्मृतेर्विद्यते ।
वधायतनमभ्युपैति च परान्न निघ्नन्नपि,
त्वयाऽयमतिदुर्गमः प्रथ(श)महेतुरुद्योतितः ॥ १६ ॥

देवनंदी दिगम्बर परम्पराना पक्षपाती सुविद्वान् छे ज्यारे सिद्धसेन दिवाकर श्वेताम्बर परम्पराना समर्थक आचार्य छे । ते वखतना कटोकटीवाळा साम्प्रदायिक वळणोनो विचार करतां एम मानवानुं प्राप्त थाय छे के एक सम्प्रदायना गमे तेवा सुविद्वान्नी कृतिने बीजा विरोधी सम्प्रदायमां सादर प्रवेश पामतां अमुक चोक्कस समय लागे ज ।

पूज्यपाद देवनंदीनो जे समय अत्यारे मानवामां आवे छे ते मारी दृष्टिए तो फरी ऊंडी विचारणा मागे ज छे । छतां अत्यारनी मान्यता प्रमाणे ए समय विक्रमनी छठी शताब्दीनुं पूर्वार्ध छे । एटले के पांचमा सैकाना अमुक भागथी छठा सैकाना अमुक भाग लगी पूज्यपादनो समय लंबाय छे । पूज्यपादे दिवाकरनां ग्रन्थोनुं करेलुं सूक्ष्म अवगाहन अने दिगम्बर परंपरामां ए ग्रन्थोनी जामेली प्रतिष्ठा ए बधुं जोतां ऊपर जे सिद्धसेन दिवाकरनी पांचमी शताब्दीमां होवानी वातने वधारे संगत कही छे तेनो योग्य रीते खुलासो थई जाय छे । दिवाकरने देवनंदीथी पूर्ववर्ती के देवनंदीना वृद्धसमकालीन मानीए तोय तेमनो जीवन समय पांचमी शताब्दीथी अर्वाचीन ठरतो नथी ।

तेथी में जे मारा सन्मतितर्कना गुजराती भाषान्तरमां धारणा बांधेली ते ज वधारे सत्यनी नजीक छे अने इंग्रेजी फोरवर्डमां जे नवी सूचना करेली ते निराधार ठरे छे । पूज्यपादनी सर्वार्थसिद्धिमांथी दिवाकरना पद्यांशनुं अवतरण मेळवी आपवा बदल हुं पं. महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यनो आभारी छुं ।

* *
*

कवि अब्दुल रहमानकृत सन्देशरासक

[एक अवलोकन]

लेऽ — अध्यापक श्रीयुत पं० बेचरदास जी० दोशी

*

आचार्य श्रीजिनविजयजी द्वारा जे अनेकानेक अपूर्व अने विविध विषयोवाळा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, प्राचीन गुजराती आदि भाषाना ग्रन्थो अत्यारे संशोधित – संपादित थई प्रकट थवा तैयार थई रह्या छे, तेमां एक 'सन्देशरासक' नामनो पण अपूर्व ग्रन्थ छे. ए अपभ्रंश भाषामां रचाएली एक सुन्दर काव्यकृति छे. वळी वधारे विशिष्टता तो एनी ए छे के एनो कर्ता एक अब्दुल रहमान नामनो कोई भारतीयेतर कवि छे जे धर्मथी कदाच इस्लामनो अनुयायी होय. संक्षिप्त संस्कृत टिप्पणी तेम ज ३–४ जूनी प्रतोनां बहुविध पाठान्तरो आदिथी समलंकृत थई थोडा ज समयमां ए ग्रन्थ प्रकट थवानो छे. ए मूळ ग्रन्थनां छपाएलां पृष्ठो गुजरातीभाषा विषेना मारा युनिवर्सिटीनां व्याख्यानो तयार करती वखते, मारी विनंतिथी आचार्यश्रीए मने तेनो उपयोग करवा माटे मोकली आप्यां हतां अने साथे ए ग्रन्थना अवलोकनथी मने जे विचारो स्फुरी आवे तेनी एक नोंध पण लखी मोकलवा तेओश्रीए मने जणाव्युं हतुं. ए कृतिना अवलोकनरूपे एक नानकडो निबन्ध ज माराथी लखाई गयो जे आचार्यश्रीनी इच्छानुसार आ नीचे प्रकट करवामां आवे छे.

आ निबंधमां वक्तव्यनी क्रमयोजना आ प्रमाणे छे –

(१) शृङ्गार रसनुं स्थान
(२) संदेशरासक अने मेघदूत
(३) रासनो रचनाक्रम अने तेनुं वस्तु
(४) रासकारनुं रचनाकौशल अने नम्रता
(५) रासकारनो परिचय, रासकारनां नाम, पिता, कुल अने देश
(६) आ रासनुं नाम अने रासनी भाषा
(७) रासकारनो समय
(८) रास ऊपरनुं साहित्य – टिप्पनक अने अवचूरिका
(९) रासना छंदो
(१०) रासनां पाठांतरो अने प्रतो

(१) शृङ्गार रसनुं स्थान

संसारमां कुसुमशर पंचबाण कामदेव चक्रवर्तीनुं साम्राज्य प्रबळमां प्रबळ छे. जे, संसार आखाने वश करी शके छे ते पण कामदेव पासे तो 'गुलाम' ज होय छे. जगतमां नानुं के मोटुं कोई पण प्राणी एवुं नथी जे कामदेवनी आज्ञाने वश न होय – वनस्पति जेवुं सूक्ष्मतम अने मानव जेवुं पंडितवर जंतु ए बन्ने कामदेवने जोतां ज थरथरी ऊठे छे. आम छे माटे ज मनुए कह्युं छे के 'प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु

महाफला'-(मनुस्मृति) सर्व इंद्रियोनी तृप्ति द्वारा मनमां जे उल्लास आवे छे ते 'शृंगार' नी व्याख्यामां समाई शके. शृंगारनां बाह्य साधनो अनेक छे अने भौतिक सुखनी आसक्तिमां शृंगारनुं मूळ छे. 'आसक्ति' नुं बीजुं नाम 'काम' 'वासना' पण छे. क्रोध, मान, माया अने लोभ ए बधां आसक्तिनां संतानो छे. एवो कोईक ज विरल महासमर्थ मानव मळशे जे आसक्तिने वश न होय. बाकी जति जोगी ब्राह्मण श्रमण भिक्षु कवि पंडित मुनि संन्यासी फकीर बाळ युवान वृद्ध रोगी एम समस्त मनुष्योमां कोईने कोई प्रकारे शृंगारनी व्याप्ति देखाय छे ने देखावानी. आ रीते सारा ब्रह्मांडमां प्रधानतः एक शृंगार रस ज प्रसरेलो छे. बीजा हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत अने शांत ए बधा रसो पण जगतमां व्यापेला छे; परंतु शृंगारनी अपेक्षाए एमनी व्याप्ति मर्यादित छे. वळी, 'शांत' सिवायना ए हास्यादिक रसो पण कोई अपेक्षाए शृंगार मूलक होय छे वा शृंगारनां डाळां पांखडां जेवां होय छे. आ रीते जगतमां व्यापकतानी अपेक्षाए सर्व रसोमां शृंग–शिखर–समान एक शृंगार–काम–ज छे. आम छे तेथी तो वात्स्यायन जेवा मुनिए पण 'कामशास्त्र'नी रचना करी. संस्कृत के प्राकृत साहित्यमां, गद्य वा पद्य एवा काव्यसाहित्यमां, प्रधानतः 'शृंगाररस'नी व्याप्ति-भरती–आवेली छे. शृंगारप्रधान कविता करनार कवि ऊपर केटलाक, 'चरित्रहीन' नो आक्षेप करवा तैयार थाय छे; परंतु खरी रीते तेम नथी. कवि तो ब्रह्मांडनी–समाजनी–परिस्थितिनो प्रतिबिंबक छे. जे स्थिति समाजमां प्रधानतः प्रवर्तती होय ते ज, तेनी कविताना आरिसामां झबके. कालिदास के जगन्नाथ ए बधा तो गृहस्थाश्रमी कविओ हता; परंतु जे काव्यो, विरक्त तपस्वी एवा जैन मुनि वा बौद्ध भिक्षुओए रचेलां छे तेमां पण कालिदासादिकने टपी जाय एवां शृंगारमय चित्रणो छे. एटले एम थवानुं कारण केवल शृंगार-प्रधान लोकस्थिति छे. प्रस्तुत रासमां पण ब्रह्मांडनो प्रधान नाद शृंगार वर्णवायेलो छे. रासकारे पोताना अभिमत शृंगारना चित्रणमाटे एक विरहवती नायिका, संदेशवाहक पथिक तथा प्रवासे गयेलो नायिकानो पति–एवी त्रिपुटीनी भित्तिनो आश्रय लई पछी एमां ऋतुवर्णन वगेरेना रंगो पूरी रासने भभकदार बनावेलो छे.

*

(२) संदेशरासक अने मेघदूत

प्राचीन समयमां खेपियाओ के वडीए जोजनगामी सांढणीना अस्वारो संदेशो लाववा लई जवानुं काम करता. ए खेपिया वगेरेमां गतिशक्ति प्रबळ रहेती. वेगवाळी गतिवाळो हंस, दमयंतीनो संदेशो नळ पासे लई गयो छे जेनुं वर्णन श्रीहर्षे नैषधमां आपेलुं छे. पक्षिओमां संदेश वहननुं सामर्थ्य, जो एमने केळववामां आवे तो, जरूर प्रगटी शके छे. पारेवां वगेरे पक्षिओ ए दृष्टिए केटलां महत्त्वनां छे ए वर्तमानयुद्ध द्वारा आपणने प्रतीत थई गयुं छे. संस्कृत साहित्यमां मात्र संदेशो मोकलवा माटे ज सर्वतः प्रथम कवि कालिदासे 'मेघदूत' रच्युं. पछी तो बीजां एवां पवनदूत वगेरे 'दूत काव्यो' रचायां. मेघदूतमां संदेशो मोकलनार शापभ्रष्ट यक्ष छे, संदेशो लई जनार मेघ छे अने संदेशो मेळवनार विरहिणी यक्षवनिता छे. संदेशरासकमां संदेशो मोकलनार, कोई धन कमावा जनार वेपारीनी, विरहिणी पत्नी छे, संदेशो लई जनार

एक पथिक छे अने संदेशो मेळवनार ते विरहिणीनो पति छे. मेघ एक गतिमान पदार्थ छे परंतु ते द्वारा संदेशो पहोंचाडवो ए केवळ कविता गणाय. त्यारे आ रासमां संदेश पहोंचाडनाररूपे पथिकने कल्पता कविए कविता द्वारा वास्तविकताने बतावी छे. मेघदूत अने प्रस्तुत रास ए बन्ने संदेशो मोकलवानां काव्यो छे. मेघदूतनुं वर्णन मनोविज्ञाननी दृष्टिए अने रसशास्त्रनी दृष्टिए विशेष उत्कर्षप्राप्त छे, परंतु ते केवळ पंडितभोग्य छे. त्यारे नायिकाना अने पथिकनी वृत्तिना भावोने व्यक्त करतुं आ संदेशरासकनी कवितानुं वर्णन जोके सीधुं अने सरल छे छतां ते लोकभोग्य छे ए तेनी विशेषता छे. मेघदूतमां यक्षे मेघने संदेशो कह्यो वगेरे वर्णव्युं छे परंतु ते मेघ, 'ए यक्षपत्नीने मळयो अने पछी शुं थयुं' ए बधी हकीकतो कविना हृदयमां ज रही गई छे; त्यारे आ रासमां तो छेल्ले ए विरहिणी अने तेनो पति बन्ने एक बीजा मळी गया छे अने ते पण पथिकनो संदेशो पहोंचता पहेलां ज अर्थात् संदेशो आपीने विरहिणी पती पथिकने वळावीने पाछी वळे छे एटलामां तेनो पति आवी पहोंचे छे. ए रीते मेघदूतना अंत अने आ रासना अंतमां तारतम्य छे – मेघदूतना अंतमां यक्षनी इष्ट सिद्धि कविना मनमां छे त्यारे आ रासना अंतमां संदेशो मोकलनारनी इष्टसिद्धि प्रत्यक्ष चित्रित छे.

रासकार विरहिणीद्वारा कहे छे के –

जलरहिय मेह संतविअ काइ, किम कोइल कलरउ सहण जाइ।
रमणीयण रत्थिहि परिभमंति, तूरारवि तिहुयण बहिरयंति ॥२१८

---

१ आ पद्योनो अनुक्रमे आ प्रमाणे अर्थ छेः–

पाणी वगरना मेघ कायाने संताप आपे छे, कोयलनो कलरव केम करीने सह्यो जाय। रमणीगण रथ्याओमां – शेरीओमां – परिभ्रमण करे छे, अने वाद्योना अवाजवडे त्रिभुवनने ब्हेरुं बनावे छे ॥ २१८

चाचरमां – खुल्ला चोकमां के चार मार्गो ज्यां भेगा थाय छे, त्यां अपूर्व वसंतसमयमां गीतध्वनि अने तालध्वनि साथे निबिड हारने पहेरेली, मेखलानी घूघरीओनो रणझणाट करती अने चारे बाजु खेलती एवी युवतिओ नाचे छे. ("चाचरमां रहेनारा लोको ताल तथा ध्वनि करीने पूर्वोक्त युवतिओ साथे नाचे छे" – टिप्पनकनो अर्थ) ॥ २१९

आ वसंत ऋतुमां नवयौवनवाळी युवतिओ गाजे छे, एम में पतिने पामवानी – उत्कंठाने लीधे उक्त गाथा कही छे ॥ २२०

आवा वसंत समयमां (के ज्यारे लोको रसपूर्ण – रसथी तरबोळ बनेला छे) मारा ऊपर कंदर्प पोतानां बाणो फेंके छे अने मारा हृदयने अधिक संतापे छे ॥ २२१

हे पथिक! हुं बहु दुक्खणी छुं, मदननी ज्वाला तथा पतिविरहने लीधे विशेष सळगेली छुं. आवी परिस्थितिमां में तने जे संदेशो कहेलो छे तेमां कठोर वचनो पण आव्यां हशे, परंतु तुं ते कठोर वचनोने छोडीने मारां कोमल वचनोने, विनयपूर्वक मारा पति पासे पहोंचाडजे अने तेनी साथे विनयनी रीते वात करजे जेथी ते प्रकुपित न थाय. ए रीते ते उत्तम स्त्रीए आशीष आपीने ते पथिकने विदाय आपी ॥ २२२

विदाय आपीने जेवी ए स्त्री वेगथी पाछी फरी के तेणीए दक्षिणदिशा तरफथी मार्गने आवरतो पोतानो पति आवतो जोयो अने तेणी शीघ्र आनंदित थई. जेम ए दुक्खणी स्त्रीनुं ओचिंतुं कार्य सिद्ध थयुं तेम आ रासने पढतां तथा सुणतां लोकोनुं पण इष्ट सिद्ध थाओ अने अनादि अनंत परमेश्वर जयवंता रहो ॥ २२३

चच्चरिहि गेउ झुणि करिवि तालु, नच्चीयइ अउव्व वसंतकालु ।
घण निविडहार परिखिल्लरीहिं, रुणझुण रउ मेहलकिंकिणीहिं ॥२१९
गज्जंति तरुणि णवजुव्वणीहिं, सुणि पढिय गाह पिअकंखिरीहिं ॥२२०
एआरिसंमि समए घणदिणरहसोयरंमि लोयंमि ।
अच्चहियं मह हियए कंदप्पो खिवइ सरजालं ॥ २२१
जइ अणक्खरु कहिउ मइ पहिय,
घणदुक्खाउन्नियह मयणअग्गि विरहिण पलित्तिहि ।
तं फरसउ मिल्हि तुहु विणयमग्गि पभणिज्ज झत्तिहि ।
तिम जंपिय जिम कुवइ णहु तं पभणिय जं जुत्तु ।
आसीसिवि वरकामिणिहि वट्टाऊ पडिउत्तु ॥ २२२
जं पढुंजिवि चलिय दीहच्छि अइ तुरियइ,
इत्थंतरिय दिसि दक्खिण तिणि जाम दरिसिय,
आसन्न पहावरिउ दिट्ठु णाहु तिणि झत्ति हरसिय ।
जेम अचिंतिउ कज्जु तसु सिद्धु खणद्धि महंतु ।
तेम पढंत सुणंतयह जयउ अणाइ अणंतु ॥ २२३

*

(३) रासनो रचनाक्रम अने तेनुं वस्तु

रासकारे संदेश रासकमां त्रण प्रक्रम कल्पेला छे. ए प्रक्रमोनुं कोई विशेष नाम नथी आप्युं. मात्र टिप्पनकरूप-वृत्तिकार एक बीजा प्रक्रमनुं ज 'संदेशप्रदान' एवुं नाम आपे छे. प्रथम प्रक्रममां २३ पद्यो छे, ते पद्यो विपुला गाथा, रड्ड, पद्धडी अने डुमिला वगेरे जुदा जुदा छंदोमां रचेलां छे. टिप्पनकारे टिप्पनमां ते बधा छंदोनां लक्षणो स्पष्टपणे समझावेलां छे. प्रक्रमना आरंभमां—प्रथम गाथामां रासकारे जगन्नियंता—जगतना सरजनहारनुं स्मरण करीने बुधजनोनी कल्याणकामना व्यक्त करी छे.[1] बीजी गाथामां ए ज एक कर्ता परमेश्वरने 'नागरिक जनो नमन करो' एवो भाव प्रगट करी परमेश्वर प्रति नम्रता दाखवी छे. त्रीजी[3] अने चोथी गाथामां पोतानो देश, पिता, पितानो वंशानुगत व्यवसाय, पोतानुं नाम अने रासना नाम साथे तेनी रचना संबंधे सूचन

---

१ रयणायर-धर-गिरि-तरुवराइं गयणंगणम्मि रिक्खाइं ।
जेणऽज्ज सयल सिरियं सो बुहयण वो सिवं देउ ॥ १ ॥

२ टिप्पनकारे अने अवचूरिकाकारे 'नागरिक'नी नीचे प्रमाणे व्याख्या आपेली छे:
"द्वन्द्वाऽऽलापन-भेषज-भोजनसमये समागमे च रमणीनाम् ।
अनिवारितोऽपि तिष्ठति स खलु सखे ! व्यक्तनागरिकः ॥"
अर्थात् ज्यां बे जण वात करतां होय, औषधनी वातचीत थती होय, भोजननो वखत होय, रमणीओना समागम समये—एकांतमां आटला स्थळे जेने ऊभो रहेतां कोई न वारे ते 'व्यक्त नागरिक' कहेवाय. (पृ० २)

३ पच्चाएसि पहूओ पुव्वपसिद्धो य मिच्छदेसो त्थि ।
तह विसए संभूओ आरद्दो मीरसेणस्स ॥ ३ ॥

कर्युं छे. पांचमी अने छट्ठी गाथामां पूर्वना छेकोने – पंडितोने[4] अने शब्दशास्त्रकुशल सुकविओने संभार्यां छे. अवहट्टय[5] – अपभ्रष्टक, संस्कृत, प्राकृत अने पैशाची भाषामां जेओए रचना करी कवित्वने भूषित कर्युं छे तेमने याद कर्यां छे. पांचमी गाथा द्वारा पूर्वना पंडितोने साधारणपणे संभारी छट्ठी गाथामां भाषाविशेषना कविओने याद कर्यां छे; परंतु कोई पंडित के कविने विशेष नाम लईने याद कर्यां नथी. वळी भाषाओमां पण संस्कृत, प्राकृत, पैशाची अने अपभ्रंश ए चारने ज याद करेली छे. संभव छे के मागधी वा शौरसेनीमां महाकाव्योनी विपुलता न होवाथी,– महाकवि राजशेखरनी बे एक कृतिओ (कर्पूरमंजरी अने रंभामंजरी) शौरसेनीनी कृतिओ गणाय, छतां ते महाकाव्य नथी अने मागधीमां तो कोई कविए कविता – विशिष्ट कविता – करी नथी – एथी रासकारे शौरसेनी अने मागधीनो उल्लेख नहि कर्यो होय ए उचित ज छे. वळी, ए भाषाओना उल्लेख ऊपरथी रासकार कविनो ते चारे भाषाना साहित्यनो विशिष्ट परिचय अने पांडित्य पण व्यक्त थाय छे. रासकार पोते प्राकृत[6] गीतो रचवामां विशेष निपुण छे एम ए जाते ज जणावे छे अने ए सर्वथा यथार्थ छे. सातमी[7] गाथामां पोतानी लघुता बताववानी सूचना छेः ए कहे छे के एवा मोटा मोटा कविओनी पाछळ श्रुति अने शब्दशास्त्र रहित अमारा जेवानुं व्याकरण अने छंदोथी वेगळुं एवुं कुकवित्व कोण वखाणशे? छतां कोई वखाणे के न वखाणे तो य अमे तो अमारुं कर्तव्य बजाववाना ज छिए. आ हकीकत, आठमीथी सत्तरमी गाथा सुधी रासकारे विशिष्ट अने मनोरंजक ओठां आपीने सरसरीते रजु करी छे. ते कहे छे के "चंद्र ऊगे एटले शुं दीवो पोते न प्रकाशे?" "कोयल बोले एथी शुं कागडा चूप थई जाय" "गंगा वहे एथी शुं बीजी नदीओ वहेती अटकी जाय?" "कमलिनी खीले तेथी शुं वाड ऊपर तुंबडी न खीले?"

---

४ केवल अवचूरिकाकारे पंडित अने कवि वच्चे अंतर बतावनारुं मयूरमहाकविनुं वाक्य आ प्रमाणे नोंध्युं छेः

"तूर्णमानीयतां चूर्णं पूर्णचन्द्रनिभानने !।
कवये बाणभट्टाय पण्डिताय च दण्डिने ॥"

टिप्पनकारना मत प्रमाणे कविओ कर्ता छे अने पंडितो संशोधको छे. (पृ० ३)

५ "अवहट्टय - सक्कय - पाइयम्मि पेसाइयम्मि भासाए ।
लक्खण - छंदाहरणे सुकइत्तं भूसियं जेहिं ॥" (पृ०३)

६ "तह तणओ कुलकमलो पाइयकव्वेसु गीयविसयेसु ।
अद्दहमाणपसिद्धो संनेहयरासयं रइयं ॥ (पृ०३)

आ गाथाना पूर्वार्धना बीजा चरणनो अर्थ अवचूरिकाकार टिप्पनकार करतां बीजी रीते करे छे. "प्राकृतकाव्ये गीतविषयेषु भोगेषु च" अर्थात् आ रासकार, प्राकृतगीतोमां अने विषयो एटले भोगोमां अर्थात् कामसूत्र वगेरे शास्त्रोमां विशेष निपुण हतो.

७ "ताणऽणु कईण अम्हारिसाण सुइ - सद्दसत्थरहियाण ।
लक्खण - छंदपमुक्कं कुकवित्तं को पसंसेइ ? ॥ ७ ॥"

अनुक्रमे गा० ८–९–१३–१४–१५–१६–१७. आ सिवाय वच्चे आवेली १०–११–१२ गाथाओमां पण एवां ज उदाहरणो साथे उक्त एकज आशय बतावेलो छे.

"शिक्षित तरुणी भरते बतावेली भावभंगिओ द्वारा नाच करे एटले गामडियण नारी ताळीओ पाडी शुं नाचवुं छोडी दे?" "क्यांय खीरना ऊकळवानो अवाज आवे एथी शुं हांडलीमां पाकती कुशकानी राबडी पोतानो 'खदखद' अवाज न करे?" छेक छेल्ले ए रासकार कहे छे के, "चतुर्मुखे कह्युं छे एटले शुं बीजा कांई न कहे?" तेथी खरी वात तो ए कहे छे के "जेनी⁸ जेटली काव्यशक्ति होय तेणे शरमाया विना पोतानी ए शक्तिने प्रगट करी देवी". अने आ दृष्टिए ज रासकार पोते काव्य करवा तत्पर थयो छे. तेम छतां प्रस्तुत रास ए कांई राबडी नथी किंतु मिष्टरसपूर्ण सुगंधित क्षीर छे, ए वात नक्कर सत्य छे, ए ध्यान बहार न रहे. रासकार भरतनाट्य शास्त्रनो पण पंडित छे अने रसिक छे ए तेणे ऊपर लख्या प्रमाणे 'भरत' नो निर्देश करतां सूचवेलुं छे. रासकारे सत्तरमी गाथामां छेक छेल्ले 'चतुर्मुख' ना नामनो उल्लेख कर्यो छे. टिप्पनकार अने अवचूरिकाकार ए बन्ने 'चतुर्मुख' नो अर्थ 'ब्रह्मा' करे छे अने "ब्रह्माए वेदो कर्या एटले हवे शुं कोईए कांई रचना न करवी?" एवो अर्थ समझावे छे. परंतु आ 'रास' जोतां रासकारे प्रस्तुतमां 'चतुर्मुख' शब्दद्वारा 'ब्रह्मा'ने याद कर्यो होय एम नथी लागतुं; किंतु अपभ्रंशभाषानो विशिष्ट कवि महापंडित 'चतुर्मुखस्वयंभू' नामे जे प्रसिद्ध 'जैन कवि' थयेलो छे, अने जेनुं काव्य विशेष रसाळ अने विदग्धजन-मोहक छे तेथी रासकारे ए कविने अहीं याद कर्यो होय एवी संभावना थाय छे. वेदना प्रणेता ब्रह्मा अने प्रस्तुत कवि ए बे वच्चे विशेष अंतर पडी जाय छे–'ब्रह्मा' ए ईश्वररूप छे अने प्रस्तुत रासकार 'मानव' छे, एथी ए बे वच्चे समोवडनो संभव नथी. कविओ जे रीते पोताना समोवडिया कविओने संभारे छे ए जोतां आ रासकारे 'चउमुह' शब्दद्वारा ए सुप्रसिद्ध महाकवि 'चतुर्मुख'ने संभार्यो होय ए सुघटित छे. पोतानी लघुता बतावतां रासकारे पोताने 'श्रुति-रहित' कहेलो छे एथी कदाच एम जणाय छे के रासकारने वेदोनो विशेष ऊंडो परिचय न होय. अढारमी, ओगणीशमी अने वीशमी गाथाओमां रासकार, महाकविओनी पासे पोते 'मूर्ख छे' एम जणावी पछी "पोते मूर्खे करेल आ रासने स्नेह करीने बुध जनो पण सांभळे" एवुं बुधजनोने निमंत्रण आपे छे अने साथे पोतानी जात 'कौलिक'नी एटले 'तंतुवायनी–वणकरनी छे' ए हकीकत पण लघुता दर्शाववा माटे बतावे छे. आ स्थले रासनुं नाम 'संनेहरासउ' एम सूचवेलुं छे. "जेओ पंडित

---

८ "जा जस्स कव्वसत्ती सा तेण अलज्जिरेण भणियव्वा ॥" (पृ० ६)

९ "जइ चउमुहेण भणियं ता सेसा मा भणिज्जंतु ॥ १७ ॥"

'चतुर्मुख' नामे एक महाकवि थयेलो छे. जेणे विशेषे करीने अपभ्रंश भाषामां मनोहर रचना करेली छे. तेनो समय सुनिर्णीत नथी तो पण अगीयारमा सैकामां महापुराणनी समाप्ति करनारा महाकवि पुष्पदंते 'चतुर्मुख'ने ग्रंथारंभे याद करेलो छे एटले 'चतुर्मुख'नो समय अगीयारमा सैकाथी पूर्वे छे ए चोक्कस. परंतु केटलुं पूर्वे ए हजु निर्णीत नथी. आ संबंधे विद्याविलासी पं० नाथूरामजी प्रेमी रचित 'जैनसाहित्य और इतिहास' (पृ० ३७१) अवश्य जोवो जोईए.

१० जुओ टिप्पण ७ मुं, त्यां गाथामां रासकारे पोताने 'श्रुति' रहित जणावेलो छे. 'श्रुति' ए वेदनुं नाम छे.

अने मूर्ख बन्नेनुं अंतर समजे एवा महापंडितो छे, एओ माटे आ रास उपयुक्त नथी" (गाथा २०) परंतु "जेओ पंडित नथी तेम मूरख पण नथी एओ माटे आ रास छे. माटे आ रास एवा वचगाळाना लोको सामे गावो" एवी भलामण २१मी गाथामां करे छे. प्रथम प्रक्रमनी छेल्ली बे डुमिला छंदमां रचेली कडीओमां (२२मी अने २३मी) कवि रासकार, पोताना रासने मूलवे छे. ते कहे छे: आ रास, अनुरागिओ माटे 'रतिगृह' छे, कामुको माटे 'मनहर' छे, मदनमनस्को माटे 'मार्गदर्शक दीप' छे, विरहिणीओ माटे 'मकरध्वज' छे अने रसिक जनो माटे 'संजीवक रस' छे-कानने अमृत जेवो मीठो छे तथा अतिस्नेहपूर्वक कहेवामां आव्यो छे. आटलुं कही रासकार प्रथम प्रक्रमने पूरो करे छे.

बीजो प्रक्रम १०६ पद्योमां छे. तेनो आरंभ गा० २४थी, अने अंत १२९मी गाथाथी थाय छे. आ प्रक्रमना आरंभमां ज रासकार 'विजयनयर'[11]नो उल्लेख करी त्यांनी विरहिणी नायिकानुं विरहावस्थानुं चित्र खडुं करवा साथे तेणीए 'पथिकने जोयो' 'तेणीनी संदेशो देवानी उत्कंठा विशेष वधी' अने 'पथिकने जोईने संदेशो आपवानी उतावळमां तेना केवा केवा हालहवाल थया', 'उतावळथी संदेशो आपवा जतां तेणीनो कंदोरो छूटी गयो, एने गांठवाळी ठीक कर्यो त्यां हार तुटी गयो, हारने समो कर्यो त्यां पगनां झांझर साथे अफळातां पोते ज पडी गई, मांड ऊभी थई त्यां ओढणुं खसी गयुं, तेने सरखुं कर्युं त्यां कांचळी फाटी गई, कमळोवडे जेम कनककलश ढंकाय तेम हाथवडे छांती ढांकी मांड मांड तेणी पथिकनी पासे पहोंची अने तेने क्षणवार ऊभो रहेवानुं अने पोतानुं बोलवुं सांभळवानुं जणाव्युं'-ए बधुं वर्णव्युं छे. (गा० २४ थी गा० ३०) पछी ते पथिक आ नायिकाने जोतां ज थंभी गयो-एक पगलुं आगळ था एक पगलुं पाछळ ते चाली ज न शक्यो. चाळीशमी गाथा सुधी पथिके जोएली ए विरहिणीना सौंदर्यनुं माथा[12]थी पग सुधी वर्णन कर्युं छे. ए पथिक कहे छे के 'आ वामा[13]नो रचनार प्रजापति कां तो आंधळो छे अथवा व्यंडल (वियड्ढलु) छे-तृतीयप्रकृति छे. नहीं तो आवी वामाने सरजी ते पोतानी पासे ज न राखे.' ४०मी गाथामां ए पथिक कहे छे के, "[14]कविओ पोतानी कृतिमां पुनरुक्ति दोष करे छे तेथी तेओ दोषपात्र नथी. कारण के पुनरुक्ति तो सरजनहारे पण करी छे: सरजनहारे पहेलां शैलजाने-पार्वतीजीने सरज्यां अने त्यारबाद तेना जेवी ज आ वामाने सरजी, ए सरजनहारनी पुनरुक्ति ज छे.' संदेशो आपवा आवेली ए नायिका पथिकने पूछे छे के 'हे पथिक!

---

११ "विजयनयरहु कावि वररमणि" इत्यादि (गा० २४थी ७)

१२ देवोनी स्त्री-देवीनुं वर्णन माथाथी आरंभाय छे एम टिप्पनक अने अवचूरिका बन्नेमां लखेलुं छे. माटे ज प्रस्तुत रासकारे आ रासमां स्त्रीनुं वर्णन माथाथी आरंभ्युं छे.

१३ "किं नु पयावइ अंधलउ अहवि वियड्ढलु आहि।
जिणि एरिसि तिय णिम्मविय ठविय न अप्पह पाहि॥" (पृ०१५)

१४ "सयलज्ज सिरेविणु पयडियाइं अंगाइं तीय सविसेसं।
को कवियणाण दूसइ सिट्ठं विहिणा वि पुणरुत्तं॥" (गा०४०पृ०१७)

तुं क्यांथी आव्यो छे?, हवे तुं क्यां जईश?' (गा० ४१) आना उत्तरमां पथिक पोते ज्यांथी आव्यो छे ते स्थळनुं वर्णन करे छे अने छेक छेल्ला वाक्यमां पोते जे माटे, ज्यां, जवानो छे ते पण जणावी दे छे. आ माटे रासकार, ६५मी गाथा सुधीनो भाग रोकी राखे छे. पथिक कहे छे 'हे शशधरवदनि! मारुं नगर 'सामोरु' छे, एमां रहेनारा लोको 'नागरिक' छे, त्यां मोटां मोटां महालयो छे. कोई मूरख नथी, बधा जण पंडित छे. नगरमां फरो तो क्यांय मधुर प्राकृत छंदो सांभळवा मळशे, क्यांय वेदोने सांभळशो, क्यांय अनेक रूपको द्वारा रचायेला रासो कहेवाय छे, क्यांय सुदयवच्छनी कथा, क्यांय नलचरित, क्यांय भारत, क्यांय रामायण–एम अनेक कथाओ ज्यां त्यां वंचाय छे, क्यांय विविध वाद्यो वागे छे, क्यांय प्राकृत गीतो गवाय छे अने क्यांय 'चल चल' एम बोलती नर्तकीओ चालती रहे छे.' आ पछी तो रासकार 'सामोरु' नगरना वेश्यावाडानुं वर्णन करतां गा० ४६थी ५४ सुधी पहोंची जाय छे अने पछी त्यांनां उद्यानोनुं वर्णन करतां विविध वनस्पतिओना वर्णनमां आठ गाथाओ रोके छे. ए गाथाओमां जाणी वा अजाणी अनेक वनस्पतिनां मात्र नामो कही जाय छे अने छेवटे 'ए उद्यानोनी छाया दश योजन सुधी पहोंचे छे' एम कही पथिकना नगरनुं एक विशेष एंधाण आपी तेनुं बीजुं नाम पण रासकार जणावे छेः

"तवणतित्थु चाउद्दिसि मियच्छि! वखाणियइ,
मूलत्थाणु सुपसिद्धउ महियलि जाणियइ।"–(गा० ६५)

अर्थात् 'हे मृगाक्षि! ज्यांनुं तपनतीर्थ–सूर्य तीर्थ–सूर्यनो कुंड–विशेष वखणाय छे अने जे नगरनुं बीजुं नाम 'मूलत्थाण' एवुं सुप्रसिद्ध छे'. आम कही पथिक कहे छे के–

"तिह हुंतउ हउं इक्किण लेहउ पेसियउ,
खंभाइत्तई वच्चउं पहुआएसियउ॥"–(गा० ६५)

अर्थात्–'त्यांथी कोई एके लेख–कागळ–मोकल्यो छे तेने लइने प्रभु–स्वामी द्वारा आदेश पामेलो हुं खंभात तरफ जाउं छुं'.

नायिका 'खंभात'नुं नाम सांभळतां कहेवा लागीः

"रुइवि खणद्धु फुसवि नयण पुण वज्जरिउ,
खंभाइत्तह णामि पहिय तणु जज्जरिउ।
तह मह अच्छइ णाहु विरहउल्हावयरु,
अहिय कालु गम्मियउ ण आयउ णिद्दयरु॥ ६७
× × × ×
जिणि हउ विरहह कुहरि एव करि घल्लिया,
अत्थलोहि अकयत्थि इकल्लिय मिल्हिया।
संदेसडउ सवित्थरु तुह्नु उत्तावलउ,
कहिय पहिय पिय गाह वत्थु तह डोमिलउ॥ ९२

अर्थात्–'जराक वार रोईने आंख लुंछीने पछी नायिका बोलीः हे पंथिक! खंभातनुं नाम लईलईने हुं तो जर्जरित थई गई, मारा विरहअग्निने ओलवनारो मारो स्वामी त्यां रहे छे. तेणे त्यां वधारे काल गुमाव्यो छे अने ए निर्दय हजी पण आव्यो नथी.' ६७

'एम करीने जेणे मने विरहना खाडामां घाली मूकी छे अने अर्थना लोभने वश थई जेणे मने एकली करी मूकी छे, तेने आपवानो संदेशडो सविस्तर रीते मारे कहेवानो छे अने तुं उतावलो थाय छे. पथिक! तेने आ एक गाथा अने डोमिलक कही संभळावजे.' ९२

आ रीते नायिका ए पथिकने जुदा जुदा छंदोमां एक ज तात्पर्यवाळो संदेशो जुदी जुदी रीते वारंवार कह्ये जाय छे. वच्चे वच्चे पोतानी परिस्थितिनो – विरहव्यथानो – ख्याल आपती जाय छे अने पेलो पथिक 'मारे उतावळ छे' 'तुं मोडुं न कर' 'तारो संदेशो हुं बराबर कहीश' अने 'तुं तारा नायक माटे विशेष खेद न कर, ए तेनुं कार्य साध्या विना नहीं आवे अने कार्य सिद्ध थतां ज तुरत पाछो वळशे' वळी 'तारी पेठे ए पण तारे माटे जूरतो हशे' एम तेने सांत्वना आपतो जाय छे. आ रीते नायिका अने पथिक वच्चेना संदेशासंबंधी कथनोपकथनमां बीजो प्रक्रम समाप्त थाय छे, अने तेमां वच्चे वच्चे रासकार श्लेषवाळां अने विविध अनुप्रासवाळां पद्यो गोठवी पोतानी प्रतिभा ठलवतो जाय छे. तेना संक्षिप्त नमूना आ प्रमाणे छे.

"तुय समरंत समाहि मोहु विसम ट्ठियउ,
तह खणि खुवइ कवालु न वामकरट्ठियउ।
सिज्जासणउ न मिल्हउ खण खट्टंग लय,
कावालिय! कावालिणि तुय विरहेण किय ॥" ८६

"जइ मइ णत्थि णेहु ताकं तहं, पंथिय! कज्जु साहि मह कंतहं।
जं विरहग्गि मज्झ णक्कंतह, हियउ हवेइ मज्झ णक्कंतह ॥ १०४
तणु दीउन्हसासि सोसिज्जइ, अंसुजलोहु णेय सोसिज्जइ।
हियउ पउक्कु पडिउ दीवंतरि। णाइ पतंगु पडिउ दीवंतरि ॥ १११

आ प्रकारनां काव्यचमत्कृतिनां अनेक पद्यो आ रासमां रासकारे योजेलां छे. बीजा प्रक्रमने अंते नायिका ग्रीष्मऋतु ऊपर पोतानो रोष ठलवतां कहे छे के–

"मुक्का हं जत्थ पिए डज्झउ गिह्मानलेण सो गिह्मो।
मलयगिरिसोसणेण य सोसिज्जउ सोसिया जेणं" ॥ १२९

अर्थात्–'मारा प्रिये मने ग्रीष्म ऋतुमां मूकी दीधी छे–ते मने छोडीने ग्रीष्म-ऋतुमां चाल्यो गयो छे. तेथी ते ग्रीष्म ऋतु, ग्रीष्मनी धखधखती लू वरसती आगवडे बळीने खाख थाओ अने जे ग्रीष्म ऋतुए मने सूकवी नाखी छे ते ग्रीष्म पण मलयाचलना पवनवडे शोषाई जाओ' १२९. नायिका द्वारा ग्रीष्म ऊपर संताप वरसावी रासकार त्यार पछीना आखा त्रीजा प्रक्रममां छए ऋतुनुं वर्णन घणी ज सरस रीते करे छे. ऋतुवर्णननो आरंभ ग्रीष्मथी थाय छे अने अंत वसंतमां आवे छे. प्रथम ग्रीष्म गाथा १३०–१३८, पछी अनुक्रमे वर्षा गा० १३९–१५६, शरद गा० १५७–१८३, हेमंत गा० १८४–१९१, शिशिर गा० १९२–१९९, वसंत २००–२२१. ऋतुवर्णनमां रासकारे ते ते ऋतुना वृक्षो, पुष्पो, पक्षिओ, जलाशयोनी परिस्थिति; कुन्दचतुर्थी वगेरे खास खास ऋतुना उत्सवो; हस्त, अगस्त्य वगेरे विशेष ऋतुना नक्षत्रो, रमणीओनां ऋतुने अनुकूल रासरमणो–रासक्रीडाओ; ऋतुओमां रमणीओने

थता उल्लासो अने प्रोषितभर्तृकाओनी विडंबनाओ; वगेरेनुं वर्णन सचोटपणे करेलुं छे. जे ऋतुनुं वर्णन वाचीए ते ऋतु आपणी सामे प्रत्यक्षवत् नाचवा मांडे छे. तेमां एक खास बात ए पण कही छे के देडकाना 'डूाउं डूाउं' ध्वनिओ अने कोकिलना कलरवो ए बन्ने एके साथे वर्षाऋतुमां संभळाय छे. साधारण रीते वसंतमां कोकिलना टहुका वर्णवानो कविसमय छे अने आ रासकारे वसंतना वर्णनमां तेम वर्णव्युं पण छे खरुं. परंतु तेना ए टहुका थाय छे वैशाख–जेठमां ज्यारे आंबा पाकवाना होय छे. अने ए जोतां वर्षामां पण कोकिलना कलनादोनुं वर्णन विशेष लौकिक अने अनुभवगम्य छे. वर्षामां पण कोयलने अनेक वार सांभळेली छे. आ बधुं जोतां कविनां पांडित्य, प्रतिभा उपरांत तेनो प्रकृतिसाक्षात्कार पण अद्भुत छे एम कह्या विना चाली शकतुं नथी. रासकारनां 'कोकिल' माटेनां वचनो आ प्रमाणे छेः

बगु मिल्हवि सलिलद्दहु तरुसिहरिहि चडिउ,
तंडवु करिवि सिहंडिहिँ वरसिहरिहि रडिउ ।
सलिलिहि वर साल्लूरिहि फरसिउ रसिउ सरि,
कलयलु कियउ कलयंठिहि चडि चूयह सिहरि ॥ १४४

णहह मग्गि णहवल्लिय तरल तडयडिवि तडक्कइ,
दद्दुर रडणु रउद्दु सद्दु कुवि सहवि ण सक्कइ ।
निवड निरंतर नीरहर दुद्धर धरधारोहभरु,
किम सहउ पहिय! सिहरट्ठियइ दुसहउ कोइल रसइ सरु ॥ १४८

२२२ मी गाथामां नायिका पथिकने भलामण करे छे के 'हे पथिक! हुं कामज्वरथी संतप्त छुं अने तेथी घणी दुखणी छुं. में आ स्थितिमां तने आपेला संदेशामां कठोर वचनो पण आवी गयां हशे तो तुं तेने दूर करी विनयभरी रीते मारा नायकने समझावजे अने तुं तेने एवी रीते कहेजे के ते कुपित न थाय, हुं तने आशीर्वाद आपुं छुं. आम कहीने नायिकाए ए वटेमार्गुने वळाव्यो'. (२२२)

आ पछी त्रीजा प्रक्रमनी अंतिम २२३ मी गाथा आवे छे. एमां रासकारे मंगलमय हकीकत सूचवतां कह्युं छे के–

'एम संदेशो आपीने नायिका पाछी वळी. एटलामां दक्षिण दिशा तरफ तेणीनी नजर पडतां रस्ता पर चाल्या आवता पोताना नायकने जोतां ते घणी आनंदमां आवी गई.' आ पछी रासकारे जणाव्युं छे के 'जेम ए नायिकानी इष्टसिद्धि ओचिंती रीते थई तेम आ रासने भणनारा अने सांभळनाराओनी पण इष्टसिद्धि थाओ अने अनादि अनंत परमेश्वरने जय थाओ' आ स्थले रास पूरो थाय छे.

रासकारे रासमां नायिकानुं निवासस्थळ 'विजयनगर' बताव्युं छे. टिप्पनकार अने अवचूरिकाकार बन्नेए 'विजयनगर' नो अर्थ 'विक्रमपुर' आपे छे. ए जोतां वर्तमान बीकानेर (मारवाड) अने रासकारनुं 'विजयनगर' ए बन्ने एक लागे छे. 'बीकानेर' ने संस्कृतपंडितोए 'विक्रमपुर' तो कहेलुं छे पण तेने आ रासकार सिवाय बीजा कोईए 'विजयनगर' कह्युं छे के केम? ए शोधनीय रह्युं. हमणां तो आपणे टिप्पनकार अने अवचूरिकाकारने प्रमाणभूत गणी 'विजयनगरने 'विक्रमपुर–बीकानेर' समझी लेवानुं छे. परंतु

एथी 'विजयनगर' ए 'बीकानेर' ज छे एवुं निर्धारण करतां पहेलां ए माटे बीजा संवादो मेळव्या सिवाय चालशे नहीं. आपणा देशमां 'विजयनगर' नामे पण एक जुदुं ज नगर छे, एटले आ बाबतनुं संशोधन कर्या विना निर्णय न बांधी शकाय.

['विक्रमपुर' ए बीकानेर नहीं पण ए नामनुं बीजुं प्राचीन स्थान छे जे जेसलमेरनी हदमां आवेलुं होई प्रसिद्ध छे. तेम ज 'सामोरु' ए साम्बपुरनुं अपभ्रंश रूप छे अने ते मूलस्थाननुं बीजुं नाम छे. – जिनविजय]

पथिक पोताना स्थळने 'सामोरु' के 'सामोर' (अव०) नाम आपे छे, तेनो विशेष परिचय आपतां जे कह्युं छे ते विशे हुं आगल लखी गयो छुं. पथिक 'सामोर' नी प्रसिद्ध संज्ञा 'मूलत्थाणु' छे एम जणावी त्यांना 'सूर्यतीर्थ' – 'सूरजकुंड' – ना वखाण करे छे. आपणे शब्दसाम्यनी दृष्टिए 'मूलत्थाणु' ने 'मूलतान' समजी शकिए, परंतु ए माटे पण विशेष संवाद मेळववो जोईए. 'सामोर' विशे मूलमां के टिप्पन वा अवचूरिकामां कशो बीजो परिचय नथी. एथी ए विशे शुं कही शकाय ? रासकारना कहेवा प्रमाणे 'सामोर' अने 'मूलत्थाणु' ए बन्ने एक ज छे, एम जाणी शकाय छे. पथिक मूलत्थाणु के सामोरथी कोईनो संदेशो लई 'खंभात' भणी जाय छे ए हकीकत सर्वथा स्पष्ट छे. अर्थात् 'खंभात' तो सर्वप्रतीत होवाथी ते विशे कशुं लखवापणुं रहेतुं नथी.

*

'रासनो रचनाक्रम अने तेनुं वस्तु' ए त्रीजा मुद्दा विशेनी चर्चा करतां साथे 'रासकारनुं रचनाकौशल अने नम्रता' नो चोथो मुद्दो पण चर्चाई गयो छे एथी चोथा मुद्दा विशे जुदुं लखवानी जरूर जणाती नथी. एथी हवे पांचमां मुद्दा ऊपर आविए.

(४) रचना कौशल

*

रासकारनुं नाम–रासकारे रासमां पोतानुं नाम 'अद्दहमाण' ("तह तणओ कुलकमलो + + + अद्दहमाणपसिद्धो" – गा० ४, पृ० ३) जणावेलुं छे. टिप्पणकारे अने अवचूरिकाकारे ते माटे 'अब्दल रहमान' शब्द वापर्यो छे. ("अब्दल रहमान नामा" – टि० "अब्दल रहमानः अभूत्" – अवचू० पृ० ३)

(५) रासकारनो परिचय

कुल–रासकारे पोताना कुल – वंश माटे 'कोलिय – कौलिक' शब्द वापर्यो छे. भाषामां जे जातने 'कोळी' कहेवामां आवे छे ते जातसूचक 'कोळी' शब्द अने प्रस्तुत 'कोलिय' ए बन्ने आम तो मळता शब्दो छे; परंतु अर्थदृष्टिए ए बन्ने शब्दो एक छे के केम, ए विचारणीय खरुं. रासना टिप्पणमां 'कोलिय' शब्द ऊपर कशी नोंध ज नथी त्यारे अवचूरिकामां ("कौलिकेन तन्तुवायुना" – पृ० ८) 'कौलिक' नो अर्थ 'तन्तुवाय' कर्यो छे. 'तन्तुवाय' एटले वणकर – जुलाहो. भारतवर्षना प्रखर क्रान्तिकार भक्तराज श्री कबीर, उच्चप्रतिभावाळा कवि हता अने धंधे वणकर हता. तेम प्रस्तुत रासकार, विशिष्ट प्रतिभावाळो कवि होई धंधे वणकर हतो, ए वस्तुस्थिति भारतवर्षमां नवाई पमाडनारी नथी. अहीं सोनी अखो पण कवि थई गया छे; अने प्रायः गमे ते धंधो करवा छतां अहींनुं मानस, प्रतिभारहित रह्युं नथी. आ रास वांचतां पण कविनी प्रतिभा विशे आपणने शंका रहेती नथी.

पिता–रासकार, पोताना पितानुं नाम 'मीरसेन' जणावे छे. ("आरद्दो मीरसेणस्स तह तणओ" – गा. ३ – ४, पृ. २ – ३) 'आरद्दो' ए मीरसेननुं विशेषण छे.

अने ए 'आरद्दो' पद, मीरसेनना जाति – वंशनुं द्योतक छे. टिप्पनकार अने अवचूरि-काकार बन्ने 'आरद्दो' नो अर्थ 'तन्तुवाय – वणकर' करे छे. ("आरद्दो देशीत्वा[त्] तन्तुवायो मीरसेनाख्यः तस्य मीरस्य "मीरसेनस्य" तनयः" – पृ० २ – ३) रासकार, वंशपरंपराथी 'वणकर' होय, एम आ ऊपरथी लागे छे. 'मीरसेन' नाम ऊपरथी एवी पण कल्पना ऊठे छे के 'रासकार' अने वर्तमानमां काठियावाडमां वसती शूरवीर जात 'मेर' ए बे वच्चे कांईक संबंध होय. आ बाबत जरूर शोधनीय छे.

देश – रासकार पोताना देश विशे कोई स्पष्ट वात करता नथी; परंतु –

"पच्चाएसि पहूओ पुव्वपसिद्धो य मिच्छदेसो त्थि"(– गा० ३, पृ० २)

एम कहीने मोघम रीते 'म्लेच्छदेश'ने पोतानो देश जणावे छे अने साथे ऊमेरे छे के ए 'म्लेच्छ देश' पश्चिम दिशामां आवेलो छे अने प्रधान छे. तेथी पूर्वकाळथी सुप्रसिद्ध छे. टिप्पनकार तथा अचूवरिकाकार पण आ बाबत आथी वधारे कशुं ज बोलता नथी. प्रस्तुतमां 'म्लेच्छ देश' एवा अस्पष्ट शब्दथी रासकारना देश विशे कशी खास माहिती सांपडती नथी. संभव छे के रासकारना समये 'म्लेच्छ देश' शब्द, कोई विशेष देशनुं नाम होय; परंतु वर्तमानमां तो ए पद, कोई विशेष देशने सूचवतुं नथी.

*

(६) रासनुं नाम अने रासनी भाषा

'पृथिवीराज रासो' 'कुमारपाल रास' वगेरे 'रास' नां नामो जोतां 'राजयश' शब्दद्वारा 'रास' शब्द आव्यो होय एम जणाय छे. जेमां राजानो यश – कीर्ति – विजय अने तेनी आखी कारकिर्दीनुं सुरेख वर्णन होय तेनुं नाम राजयश – रायजस – राजस – रायस – रास – ए रीते 'रास'नी व्युत्पत्ति करी शकाय. अथवा 'रस' धातु द्वारा पण 'रास' शब्दने नीपजावी शकाय. 'रस' धातु 'शब्द करवो' अर्थमां छे ["तुस ह्रस ह्लस रस शब्दे" – धातुपारायण धातु अंक ५४२] 'रास'नो अर्थ बतावतां आचार्य हेमचंद्र पोताना 'अनेकार्थसंग्रह'मां अने कोषकार पुरुषोत्तमदेव पोताना 'त्रिकांडशेष' कोशमां एक सरखी हकीकत लखे छे; ते आ प्रमाणे छेः

"रासः क्रीडासु गोदुहाम्" ॥५९२॥ "भाषाशृङ्खलके" (अनेकार्थ)

"भाषाशृङ्खलके रासः क्रीडायामपि गोदुहाम्" १००३ (त्रिकांडशेष)

अर्थात् 'रास' एटले गोवाळियाओनी क्रीडा – रमत; अथवा भाषाशृंखलक – भाषामां सांकळ जेवी सलंग रचना (?). 'स्वाद' अर्थनो 'रस' शब्द, अने प्रस्तुत 'रास' ए बन्नेनुं मूळ उक्त 'रस' धातुमां छे. प्रधानतः 'रास' शब्द यौगिक जणाय छे, परंतु पछीथी लक्षणावडे रूढ अर्थमां प्रवर्तेलो छे. प्रस्तुत 'संदेशरास' साथे लागेलो 'रास' शब्द रूढ छे.

रासकारे ग्रंथना नामनो निर्देश करतां आरंभमां लखेलुं छे के "संनेहयरासयं रइयं" – (गा० ४) अने "मासिअउ सरलभाइ संनेहरासउ"(गा० १९) एम बन्ने स्थळे तेणे 'संदेश' ने बदले 'संनेह' शब्द वापरेलो छे. टिप्पनकारे अने अवचूरिकाकारे उक्त बन्ने स्थळे 'संदेशरास' एवी व्याख्या आपेली छे. 'संदेश'नुं 'संनेह'ए विशेष विकृत उच्चारण छे एथी आपणे रासनुं नाम 'संदेशकरास'के 'संदेशरास' समझवानुं छे; 'संनेह' शब्दनुं 'संस्नेह' उच्चारण पण थाय छे परंतु प्रस्तुतमां ते अघटमान होवाथी तेने अहीं

ग्राह्य नथी समझवानुं. रासकारे 'संदेश' माटे, ऊपर प्रमाणे ग्रंथ नाम जणावतां 'संनेह' शब्द वापर्यो छे; परंतु बीजे अनेक स्थळे तो 'संदेश' माटे 'संनेह' उच्चारण न करतां 'संदेस' शब्द ज वापरेलो छे.

"कहउं किंपि संदेसउ पिय तुच्छक्खरहि" – गा० ६८
"संदेसडउ सवित्थरउ हउ कहणह असमत्थ" – गा० ८०
"संदेसडउ सवित्थरउ पर मइ कहणु न जाइ" – गा० ८१

आथी 'संनेह' ने 'संदेश' कल्पतां शंकित थवानुं नथी. एक ज ग्रंथकारनी पोतानी कृतिमां एक ज शब्दनां विविध उच्चारणो आवे ए स्वाभाविक छे. वळी, 'संस्नेहरास' करतां 'संदेशरास' नाम विशेष उचित छे माटे ते ज नाम प्रस्तुत रासनुं छे.

भाषा – संदेशक रासनी भाषा, चौदमा अने पंदरमा सैकानी बीजी बीजी कृतिओनी भाषा जेवी ज विशुद्ध अने सरळ ऊगती गुजराती (?) छे. तेमां केटलांक एवां विलक्षण उच्चारणो छे जेने लीधे ज ते, नवा वांचनारने अपरिचित जेवी लागे एवी छे. व्याकरणनी दृष्टीए पण रासनी भाषा अने चौदमा–पंदरमा सैकानी कृतिओनी भाषा–ए बे वच्चे खास अंतर जणातुं नथी, फक्त रासनी भाषा खास लौकिक अने प्रांतिक होईं तेमां व्याकरणनुं तंत्र विशेष ढीलुं जणाय छे, अने ए ढीलाश ज रासना केटलाक प्रयोगोमां प्रतिबिम्बी रही छे. रासकारे, पोतानी आ कृतिमां केटलाक शब्दो पोताना प्रांतना वापरेला छे, जेमने टिप्पनकारे तथा वृत्तिकारे 'देश्य' तरीके जणावेला छे. तेमांना कोई कोई शब्द फारसी जेवा पण जणाय छे. रासकारे वापरेला विलक्षणध्वनिवाळा अने प्रांतिक शब्दोमांना केटलाक, उदाहरणरूपे आ नीचे आपुं छुं–

'( )' आ निशानमां मूकेला शब्दो अर्थसूचक छे.

प्रचलित उच्चारणः	रासकारनुं उच्चारणः
धाम	पृ० ७७ हाम – (तेज)
पल्लंक	पृ० ७६ पल्लंव – (पलंग)
सामी	पृ० ३८ साइअ – (सांइ – स्वामी)
धूमिण	पृ० ७८ धूइण – (धूमाडा वडे)
धूविजइ	पृ० ७७ धूइज्जइ – (धूपाय छे)
पउत्त / पजुत्त	पृ० ८८ पउक्क – (प्रयुक्त)
निवेसिय	पृ० ७७ निवेहिय – (निवेशित)
वरिसणेण	पृ० ३३ वरिहणेण – (वर्षणवडे)
णिअइ	पृ० ११ णिहइ
जिम / जिंव	पृ० ६५ यव – (जेम)
बप्पीहिय	पृ० ५८ वव्वीहिय – (बपैयाओ वडे)
तामिस्स / तामीस	पृ० २० तामिच्छ – (अंधकार – काजळ)
मम्मह / वम्मह	पृ० ३२ मणमथ – (मन्मथ – कामदेव)

पचल्लिर } पृ० ५५ पहल्लिर—(हल्या करतुं—हलहल करतुं—चंचळ)

कप्पियइ } पृ० ५१ करप्पियइ—(खरपाय छे—कपाय छे—घसाय छे)

आउल } आकुल	पृ० ३६	आ रूपो 'व' श्रुतिवाळां छे	आवल—(आकुल)
केयइ } केतइ } केतगि	पृ० ७६		केवइ—(केतकि)
चाययिहि } चायइहि	पृ० ५५		चावइहि—(चातकोवडे)

नीचेना रूपोमां रासकार 'ए' नो 'अ' ने 'ऐ' नो 'अय' उच्चार करे छे.

[रासकारनां आ उच्चारणो खास ध्यान आपवा जेवां छे अने तेनां आवां उच्चारणोनुं कारण पण शोधवा जेवुं छे].

रुन्नयेण पृ० २८ रुन्नयण—(रुदितकेन—रोवावडे)

कहियये़ण पृ० ३६ कहिययण—(कथितकेन—कहेवावडे)

रहियये़ण पृ० ३६ रहिययण—(रहितकेन—रहितवडे)

सेलजा } सइलजा } पृ० १७ सयलज्ज—(शैलजा—शैलनी जाई—पुत्री—पार्वती)

नीचेना भाषा-शब्दो पण भाषाना इतिहासनी दृष्टिए समझवा जेवा छे.

पृ० ८१ पच्छुत्ताणिय—(पस्ताणी)

पृ० ८९ वट्टाउ—(वटेमार्गु)

पृ० ७८ इम—(एम)

पृ० ७१ दीवालिय—(दीवाओनी ओळ—दीवाळी)

नामधातु { पृ० ६८ तिलक्किवि—(टीलीने—टीलुं करीने) पृ० १२ सरलाइवि—(सरळ थईने-सरळ करीने) }

पृ० ५८ मावइ—(मावे छे—माय छे)

पृ० ४४ सुन्नारह—(सोनारनी-सोनीनी)

पृ० ७६ विच्छाइया—(वीछाया—बिछावेला)

पृ० ३१ बलियडइ—(बलोयां)

पृ० २९ मन्नाइ—(मनाव)

पृ० ८२ साव } पृ० ८५ सवि } पृ० ४३ सिव } —(सर्व—सब)

पृ० ९० अचिंतिउ—(ओचिंतु)

पृ० ७६ फोफल—(पूगफल—सोपारी)

पृ० ७१ कुंडवाल—(कुंडाळुं बळीने)

पृ० ६६ जलरिल्ल—(जळनो रेलो-प्रवाह)

पृ० ५८ पउदंडउ—(पगदंड—केडी)

पृ० ५७ उल्हवइ—(ओलवे छे)

पृ० ४० बोलियंतो—(बोळातो)

पृ० ७६ उयारइ—(अपवरके—ओरडे)

पृ० ३१ बाहडी—(बाहु—बांय)

पृ० १२ उत्तावलि—(उतावळ)

बुद्ध अने महावीरनुं निर्वाण

अने

तेमना समयनी मगधनी राजकीय परिस्थिति

*

[स्वर्गवासी महान् जर्मनविद्वान् डॉ. हर्मन याकोबीना एक विशिष्ट जर्मन निबंधनो गुजराती अनुवाद]

एक पक्षे, एम जणाय छे के परंपरा प्राप्त तेम ज प्रमाण प्रस्थापित तवारीख प्रमाणे गौतम बुद्ध, महावीर करतां केटलांक वर्ष अगाउ निर्वाण पाम्या हता; अन्य पक्षे, बौद्ध आगममां जे उल्लेखो मळी आवे छे ते उपरथी जणाय छे के महावीर, बुद्धथी थोडा ज समय अगाउ निर्वाण पाम्या नहि होय? आ एकदम भासी आवता विरोधमां सत्य शुं छे ते शोधवा आ लेख लखाय छे. बुद्ध अने महावीर ए बन्ने धर्मप्रवर्तकोनो समयनी दृष्टिए वास्तविक संबंध; अने ए संबंधनी, बौद्ध आगमग्रंथोमां ते समयनी राजकीय परिस्थिति विषे आपेला उल्लेखो उपर शी असर थई हती, ते अहीं दर्शाववामां आवशे.

१

१. *बुद्ध अने महावीरनी निर्वाणमितिओ*

सामान्य मनाती परंपराना मत प्रमाणे बुद्धनी निर्वाणमिति इ. स. पू. ५४३ अने महावीरनी निर्वाणमिति इ. स. पू. ५२६ छे. प्रमाणान्वित तारीखोनो मूळ आधार चन्द्रगुप्तनो राज्याभिषेक छे. जेने माटे वहेलामां वहेली शक्य देखाती साल इ. स. पू. ३२२ छे. (हुं जरा आवश्यक सुधारानी जरुर जणावी) ते स्वीकारुं छुं. दक्षिणना बौद्धो आ राज्याभिषेक बुद्धनिर्वाण पछी १६२ वर्षे थयो एम जणावे छे. ए प्रमाणे तो बुद्धनुं निर्वाण इ. स. पू. ४८४मां थयुं होवुं जोईए. आ बाबतमां एक अत्यंत उपयोगी शोध विक्रमसिंघे करी छे. इ. स. १०१५ मां जे युग (बुद्ध संवत्) प्रचलित हतो ते इ. स. पू. ४८३मां शरु थयो हतो. इ. स. पू. ५४३ मां शरु थयेला संवत्नी परंपरागत माहिती तो छेक १५मी सदीना मध्य भागमां, प्रथम वार मळी आवे छे.[१]

जैनोनी सर्वसामान्य परंपरा प्रमाणे चन्द्रगुप्तनो राज्याभिषेक महावीरना मृत्यु बाद २१५ वर्षे थयो; पण हेमचन्द्रना मत (परिशिष्ट पर्व ३३९) प्रमाणे ए राज्याभिषेक महावीरना निर्वाण पछी १५५ वर्षे थयो हतो. अने आ ज हकीकतने हेमचंद्रथी

---

१. आ विषय उपरनी सविस्तर माहिती माटे जुओ विल्हेल्म गायगर्ना "महावंश"ना भाषांतर (लंडन, १९१२)नुं पूर्व वक्तव्य, पान २८ वगेरे.

३.१.२३.

बे त्रण पेढी अगाउ थई गयेला भद्रेश्वरना कहावली नामना ग्रंथमांथी प्रमाण मळे छे.[1] तेथी महावीरनुं निर्वाण इ. स. पू. ४७७मां थयुं एम चोक्कस कही शकाय.

२. निगण्ठ नात्तपुत्त बुद्धनी अगाउ थोडा ज समय पहेलां निर्वाण पाम्या, आवी हकीकत बौद्ध आगम ग्रंथोमां त्रण जुदे जुदे स्थळे, पण एक ज रूपमां, मळी आवे छे. बुद्धना जीवननां छेल्लां वर्षोमां—जे वखते ते पोते पावाथी कुशीनारा (तेमना निर्वाणस्थान) तरफ परिभ्रमण करतां करतां मांदा पड्या हता ते वखते—देशमां जे ऐतिहासिक बनावो बनी रह्या हता तेनो उल्लेख आ त्रणे स्थळोमां करवामां आव्यो छे. अहीं ए उल्लिखित भागनो अनुवाद अने फूटनोटमां मूळ उतारुं छुं.

"ते समये निगण्ठ नाटपुत्त पावामां तरतमां ज (थोडा ज समय अगाउ) मरण पाम्या हता. एमना मरणथी निगण्ठोमां पक्षो पडी गया हता. पक्षापक्षी, कलह अने तकरार प्रवेश्यां हतां. विवादग्रस्त निगण्ठो परस्पर मोढानी बाचाबाची करवा लाग्या." आ पछी आवतां वाक्योमांनां जेने में कौंसमां आप्यां छे ए ब्रह्मजालसुत्त १८मांथी लेवामां आव्यां छे. ए वाक्योमां धार्मिक अने तात्त्विक वादविवाद विषे चर्चा छे अने ए वाक्यो मूळ आ स्थाने न होवां जोईए, कारण के एथी पूर्वापर संबंधमां खामी आवे छे. मूळ ग्रंथ हवे आगळ आ प्रमाणे चाले छेः "मने लागे छे के निगण्ठ जतिओमां एक खून (कदाच मारामारीने लीधे) थयुं, अने निगण्ठ नाटपुत्तना श्रावको, गृहस्थो, श्वेताम्बरोने आथी निगण्ठ नाटपुत्तो प्रत्ये कंटाळो, विराग अने शत्रुभाव उत्पन्न थयां. खोटीरीते समजाववामां आवेला धर्म अने विनयनी आ दशा थाय; जे खोटीरीते समजवामां आव्या होय, जे मुक्ति न अपावे, शान्ति न अपावे; जे असम्यक्संबुद्धथी समजाववामां आव्या छे अने जेनो स्तूप भागी गयो छे (अने) जे कोई पण प्रकारनो आशरो आपी शकता नथी.†"

अहीं ए संपूर्ण स्पष्टताथी जणाववामां आव्युं छे के नि. ना. पावामां बुद्ध पहेलां थोडा ज समय अगाउ निर्वाण पाम्या हता. अर्थात्—जेम केटलाक माने छे[2] तेम—

---

१. 'एवं च महावीरमुत्तिसमयाओ पंचावणवरिससये पुच्छण्णे (वांचो 'वुच्छिण्णे') नन्दवंसे चन्दगुत्तो राया जाओ'त्ति (मात्र एक ज उपलब्ध थती प्रति उपरथी).

† तेन खो पन समयेन निगण्ठो नाटपुत्तो पावायं अधुना कालकतो होति । तस्स कालकिरियाय भिन्ना निगण्ठा द्वेधिकजाता भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति । ['न त्वं इमं धम्मविनयं आजानासि, अहं इमं धम्मविनयं आजानामि, किं त्वं इमं धम्मविनयं आजानिस्ससि ? मिच्छापटिपन्नो त्वमसि, अहमस्मि सम्मापटिपन्नो; सहितं मे, असहितं ते; पुरे वचनीयं पच्छा अवच, पच्छा वचनीयं पुरे अवच । अविचिण्णं ते विपरावत्तं । आरोपितो ते वादो, निग्गहितोसि । चर वादप्पमोक्खाय निब्बेठेहि वा स चे पहोसी'ति ।] वहो येव खो मञ्ञे निगण्ठेसु नाटपुत्तियेसु वत्तति; ये पि निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना, ते पि निगण्ठेसु नाटपुत्तियेसु निब्बिण्णरूपा विरत्तरूपा पतिवाणरूपा यथा 'तं दुरक्खाते धम्मविनये दुप्पवेदिते अनिय्यानिके अनुपसमसंवत्तनिके असम्मासंबुद्धपवेदिते भिन्नथूपे अप्पटिसरणे' ।

२. ओल्डनबर्ग, ZDMG ३४, पान ७४९

महावीरना मृत्यु पछी केटलोक समय वीत्या बाद बुद्धनो देहांत थयो. आ अनुमान साचुं छे के केम ए नक्की करवा माटे जे हकीकत उपर ए अनुमाननो आधार मानवामां आवे छे ए हकीकत विषे शोध थवी जोईए.

३. जैन धर्मना संस्थापकना निर्वाण बाद एनी कहेवाती हीनस्थितिनो हेवाल कया संबंधमां आपेलो छे?. आ उल्लेखनुं उद्गमस्थान नीचे जणावेलां त्रण बौद्ध-सूत्रो छे:–

१. मज्झिमनिकाय नुं सामगाम सुत्त　　(२,२. पान २४३ वगेरे)
२. दीघनिकाय नुं पासादिक सुत्तन्त　　(३, पान ११७ वगेरे)
३. दीघनिकाय नुं संगीति सुत्तन्त　　(३, पान २०९ वगेरे)

अंक १ अने २मां प्रसंग एक ज छे. उपासक चुन्दे पावामां जैनोनी हीनस्थिति विषे सांभळ्युं हतुं. तेथी ते सामगाममां आनन्द पासे ए विषे प्रकाश पामवा जाय छे. ते बन्ने बुद्ध पासे जाय छे अने चुन्द पासेथी सांभळेली बीना आनन्द बुद्ध आगळ रजु करे छे. आ पछीनो आगळनो अहेवाल बन्ने सूत्रोमां जुदो जुदो छे.

पासादिक सुत्तमां बुद्ध चुन्दने एक लांबा प्रवचनथी समजावे छे के जैन शास्त्रमांना बुद्धनी सामे उठाववामां आवेला बधा विरोधो एमना पोताना सिद्धान्तने स्पर्शी शकता नथी. ते सौ आ बधां दृष्टिबिन्दुओमां तद्दन उलटां ज छे. सामगाम सुत्तमां बुद्ध पोतानो सिद्धान्त आनंदने उपदेशे छे अने एक विस्तृत प्रवचनमां ६ विवादमूल, ४ अधिकरण अने ६ सारणीय धम्म समजावे छे जेनुं साचुं ज्ञान ज श्रद्धान्वितो (आस्तिको)मां एकता टकावी शके.

आथी तद्दन जुदी ज जातनो हेवाल संगीति सुत्तनो छे. पावाना मल्लोए एक 'नगर-भवन, बंधाव्यो हतो अने तेमनी विनंतीथी बुद्धे तेमने धर्म अंगीकार कराव्यो. विधिनी पूर्णाहूति पछी मल्लो चाल्या जाय छे अने बुद्ध आराम लेवा माटे आडा सूई जाय छे. त्यां उपस्थित थयेला ५०० साधुओने धार्मिक प्रवचन आपवा सारिपुत्तने एमणे फरमाव्युं. तेणे जैनोनी हीनस्थितिनो उल्लेख कर्यो अने पछी समग्र धर्मनुं अवलोकन कर्युं. एवी रीते के अंगुत्तरनिकायनी रीत प्रमाणे प्रत्येक अंगनुं एकथी दश सुधी जुदा जुदा विभागमां विवरण करे छे.[1]

४. आ अहेवाल उपर चर्चा

आ त्रणे अहेवालो एक बीजाथी अत्यंत भिन्न छे, छतांय ते त्रणेनो उद्देश तो एक ज छे अने ते ए के संघने पक्षापक्षीमां पडतां चेतववा माटे धर्मना तात्त्विक रहस्य उपर बुद्धनो कोई प्रामाणिक अभिप्राय आपवो. पण आ त्रणे प्रतीकोनी भिन्नता तरत ज साबीत करे छे के ए उपर जणावेलो उपदेश बुद्धथी दर्शावेलो होई शके नहि. विशेषमां सीधी रीते पण आ साबीत थई शके एम छे. दा. त. महापरिनिब्बान सुत्तन्तमां बुद्ध (नी जीवनयात्रा)नां निर्वाणपर्यन्तनां छेल्लां वर्षोना बनावो उपरनो जुनामां

---

१. आ विवरणनुं बीजुं रूप संगीति सुत्तना पछी आवतुं दसुत्तर सुतन्तमां पण मळी आवे छे. पण त्यां आ विवरण सारिपुत्तना मुखमां मूकवामां आव्युं छे.

जुनो अहेवाल मळी आवे छे. तेना छट्ठा परिच्छेदमां आ प्रमाणे हकीकत आपी छे के "त्यार पछी भगवान (बुद्ध) आयुष्मान् आनंद प्रत्ये बोल्या: आनंद! तमे कदाच विचारो के तमारा गुरुनो धर्म हवे लुप्त थई गयो छे, कारण के तमारा आचार्य हवे जीवन्त नथी. आवुं बनी शके खरुं. पण आनंद! तमे ते प्रमाणे कदी नहि विचारता. जे धर्म अने जे विनय (शिस्त) में तमने शीखव्यां छे ते मारा निर्वाण पछी तमने तमारा आचार्यपदनी खोट पूरी पाडशे."

आ वस्तु बुद्धे पोताना निर्वाण पहेलां थोडा ज समय उपर कही हती. उपर जणाव्या प्रमाणे, पेलां त्रण सूत्रो सूचवे छे तेवा कोई खास प्रवचन विषे तो अहीं कंई ज कहेवामां आव्युं नथी. महापरिनिब्बान सुत्तन्त प्रमाणे बुद्धे आ विषय उपर आ उक्तिथी विशेष कंई कह्युं ज नथी. कारण के आ ज सूत्रमां आगळ उपर (६, ५–७) ए सम्मिलित साधुओने वारंवार अने आग्रहपूर्वक पूछे छे के कोईने कोई पण प्रसंगोपात्त शंका होय तो तेणे ते रजु करवी. पण कोई कंई पूछतुं नथी. त्यारे ते पोते अंते कहे छे के:–

"आ साधु संघमां, बुद्ध उपर, धर्म उपर, संघ उपर, साधन उपर के साची परिचर्या उपर कोईपण साधुने सहेज पण शंका नथी के भिन्नविभिन्न मत नथी. आ ५०० भिक्षुओमां जे छेल्लो छे तेने आ धर्ममां दाखल कर्यो छे जेथी एने क्लेश पीडी शके नहि,–एने तो ए पोते ज अंकुशमां राखे छे,–एने प्रकाश प्राप्ति दृष्टि समक्ष होय छे." आ पछीथी बुद्धनां प्रख्यात अंतिम वचन आवे छे अने तेमनुं निर्वाण थाय छे.

महापरिनिब्बान सुत्तन्तना उपर उतारेला उल्लेख प्रमाणे तो बुद्धे पोते तेमना निर्वाण समये साचा धर्मना तेमना मृत्यु पछीना फेलावा संबंधे पण कोई पण प्रकारनी चिंता दर्शावी नथी. वळी, तेम ज म० प० सु० मां एवुं सहेज पण सूचन नथी के महावीरना मृत्यु बाद जैनोनी हीनस्थितिना समाचारथी बुद्धने कोई खास शिस्त पळाववा माटे पगलां लेवानी जरुर जणाई होय–जेथी पोताना संघमां एवां ज परिणामो न प्रवेशे. त्यारे ए–जैनोनी अवनतिवाळी बाबत जे एक नरी किंवदंती ज छे अने जे बुद्धना मृत्यु पछी घणे लांबे समये प्रचार पामी हती, तेणे पेलां त्रण सूत्रोनी रचनाने कारण आप्युं. कारण के निर्वाणसमयथी ते सूत्रो चोक्कस स्वरूप पाम्यां, त्यां सुधीनां १५० वर्षोथी विशेष समयमां सूत्रोनी एक माळा तेमां उमेराई छे.

५. *महावीरना मृत्यु समये जैन धर्मनी स्थिति*

जैन परंपरामां तो महावीरना मृत्यु बाद, जेवी बौद्धो आपणने मनावा मागे छे तेवी कोई, हीनस्थिति संबंधी कंई पण सूचन नथी. महावीरना निर्वाणरूपी बनावे जैनोनी धार्मिक व्यवस्था अने शिस्त उपर कशी नोंधवा लायक असर करी नथी. ए व्यवस्था अने शिस्त साचववानी फरज महावीरना अगियार शिष्योनी–तेना गणधरोनी–हती. ए पोते तो 'केवलिन्' तरीके आवा कोई कार्यभारथी पर हता. जो कोई गणधर मृत्यु पामे तो तेनुं स्थान तेना गणोमांथी सौथी नजीकनो ले. महावीरना मृत्यु समये तो मात्र इन्द्रभूति (गौतम) अने सुधर्मन् जीवता रह्या हता. आमांथी पहेलाए

केवलित्व प्राप्त करतां ज एमांथी ए मुक्त थया. तेथी सुधर्मन् जैनोना आखा धार्मिक व्यवस्थातंत्रना उपरी थया. आ जग्याए एमनी पछी जम्बू आव्या. जैन सूत्रोमां महावीर पोतानी शिक्षा मुख्यत्वे गौतमने उपदेशे छे. अने पाछळना समयमां सुधर्मन् ते ज प्रवचन पोताना शिष्य जम्बूने शीखवे छे. आ उपरथी जणाई आवे छे के जैन धर्मना व्यवस्थातंत्रना आदि आचार्यो एक बीजा प्रत्ये निखालसताथी वर्तता अने तेथी एमनी वच्चे भेद पड्यानी वात संभवती नथी. त्यारे महावीरना मृत्यु समये जैनोमां पक्षापक्षी उभी थई न हती ए संपूर्ण चोकसताथी मानी शकाय. पक्षो विषे तो आपणने चोकस माहिती पूरी पाडवामां आवी छे.[1] अने पाछळथी जे खरेखरा पक्षो पड्या ते कंई जैनधर्मना मूळ सिद्धान्तोने लइने नहि पण आपणी मान्यता प्रमाणे तो नजीवी बाबतोने लीधे ज.

आथी जैनोमां पडेला पक्षो तो उपर उपरना अने प्रमाणमां बहु मोडा विकास पाम्या. अहीं अलबत्त, श्वेताम्बर अने दिगम्बर रूपी भाग उपर आपणी दृष्टि नथी. जो के, ते भागो पण कोई एक समयनी मारामारीने लीधे नहि पण धीमे धीमे उत्पन्न थया हता.[2]

बौद्धोनी बाबतमां आथी तद्दन जुदी ज हकीकत बनी छे. बुद्धना मृत्यु बाद तरत ज संघतंत्रमां धार्मिक मान्यताओना ऊंडा विरोधोवाळा अनेक पक्षो पडी गया अने ते समयना वहेण साथे वधता ज गया. ते एटले सुधी के महायानरूपमां एक एवा नवीन भेदे देखा दीधी के जेने बुद्धना मूळ सिद्धान्तो साथे बहु ज थोडुं साम्य छे. बौद्धोए मानी लीधुं के आवुं ज जैनोमां बन्युं हशे. एमने ए मालुम नहि होय – अथवा अंशतः तेमणे ए ध्यानमां नहि लीधुं होय – के महावीर कोई एक नवा ज धर्मना संस्थापक न हता पण पार्श्वे[3] स्थापेला धर्मना सुधारक मात्र हता. एमनां माबाप अने ते पोते पण पार्श्वना उपासक हतां. आ उपरथी त्यारे ए तो तद्दन स्पष्ट बाबत छे के केवलिन् तरीके सांसारिक बाबतोथी एकदम पर एवा महावीरना निर्वाण समयनी परिस्थिति जोतां तेमना मृत्युना परिणामे जैनोनी कोइ रीते हीनस्थिति थाय एवो संभव न हतो. बौद्धोए ए हीनस्थितिनुं वृत्तांत खोटां अनुमानो उपर रच्युं छे अने पाछळना समयमां धार्मिक मान्यता माटे उभी थयेली आवश्यकता अर्थे ए वृत्तांतने प्रचलितरूप आप्युं.

६. *आ भूलभरेलुं वृत्तांत शी रीते उत्पन्न थयुं ?*

उपर जणावेलां त्रण बौद्ध सूत्रो – जे जैनोनी कहेवाती हीनस्थितिना उद्गमस्थान छे – निर्वाण पछी बीजी के त्रीजी सदीमां रचाएला होवां जोईए. ए सूत्रोमां आ अति आश्चर्यजनक भूल शी रीते प्रवेशी ? आनुं साचुं कारण जार्ल शार्पेन्टीएरे क्यारनुंय

---

१. Leumann, Die alten Berichte von der Schismen der Jaina. Ind. Studen. XVII, p. 91.

२. Jacobi, Uber die Entstehung der S'vetambara und Digambara Sekten. ZDMG. Bd. 38, p. 1.

३. आचाराङ्गसूत्र २, १५, १६ SBE XXII, p. 194.

शोधी काढ्युं छे अने Indian Antiquary, 1914, P. 128 मां दर्शाव्युं छे. "जो के चालु मत प्रमाणे महावीर जे स्थाने मृत्यु पाम्या ते पापापुरी नामे पटना जिल्लाना बिहार भागमां गिरियकथी आशरे त्रण माईल दूर आवेलुं नानुं गाम छे; तो पण D. N. III, 117 वगेरे उपरथी ए तदन स्पष्ट छे के बौद्धोए तेने ज्यां बुद्ध कुशीनारा जतां चुन्दना घरमां रह्या हता ते पावानगरी साथे एक गण्युं छे."

महावीर मज्झमा पावा – हालनुं पावापुरी – मां मृत्यु पाम्या हता. फ्रान्सीस बुखानन[1] आ स्थाने सन् १८१२मां गयो हतो अने तेणे तेना नकशामां अंकित कर्युं छे – ते प्रमाणे राजगीरथी पावापुरी ९, गीरीयक ७ अने गीरीयकथी पावापुरी ५ माईल दूर छे.

महावीरना मृत्युस्थान संबंधी जैनोनी परंपरा विषे शंकाने स्थान नथी. उलट पक्षे, बौद्धो स्थानना नामनी साम्यताने लीधे भुलावामां पड्या अने महावीरनुं मृत्यु बुद्धना निर्वाण अगाउ थोडा ज समये शाक्यभूमिमां आवेला पावामां – जे एमने बुद्धनी यात्राना छेल्ला दिवसोना अहेवाल परथी सुपरिचित हतुं तेमां – थयुं एम मानी बेठा. आथी एमनो आ बाबत उपरनो अहेवाल आगम पछीना सूत्रसमयनो छे अने तेथी कोई पण रीते बुद्ध अने महावीरनी विश्वासपात्र निर्वाण तारीखो (४८४ अने ४७७ इ. स. पू.)नी सामे टकी शकतो नथी. तेथी आ तारीखो आपणी विशेष शोधनो साचो आधार छे.

२

७. आ विशेष शोधनो उद्देश अने तेनां साधन

महावीर जो बुद्धना निर्वाण पछी सात वर्ष विशेष जीव्या तो ते उपरथी एम मनाय के जैन आगममां बौद्ध आगम करतां तत्कालीन ऐतिहासिक माहिती दीर्घतर समयनी मळी शके. कारण के बौद्ध आगम तो बुद्धना निर्वाण पछीना समय विषे कंई खास हकीकत दर्शावतां नथी. आ बाबत उपर नीचे प्रकाश पाडवामां आवशे अने खास करीने ए बताववामां आवशे के बौद्ध आगमोनी माहिती तथा एनी पूर्तिरूप अने एथीय विशेष लांबा समय उपर प्रकाश पाडती जैन आगमोनी माहिती एक साथे ध्यानमां लेवाथी मगधनो तत्कालीन इतिहास केटलेक अंशे चोक्कस आलेखी शकाय तेम छे.

आ वस्तुने क्रमबद्ध गोठववा माटे नीचे आपेली विगतो ठीक काम लागशे.

बुद्ध अजातशत्रुना बत्रीश वर्षना राज्यमां आठमे वर्षे निर्वाण पाम्या. बौद्धो अजातशत्रुने राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो कहे छे. अने विशेषमां ए पण कहे छे के ए राजगृहमां रहेतो हतो. तेना पिताने तेओ राजा मागधो सेनियो बिंबिसारो कहे छे. आ ज व्यक्तिओने जैनो सेणिय बिम्बसारपुत्त अने कूणिय (अथवा कोणिय) आवां नाम आपे छे. हुं नामोनां संस्कृत रूप वापरुं छुं अने ते पण बौद्ध अहेवालनी बाबत होय त्यारे बिम्बिसार अने अजातशत्रु अने जैन अहेवालनी बाबतमां श्रेणिक अने कुनिक. आम करवाथी उल्लेखोना मूळ विषे वारंवार नोंध करवानुं मटी जशे.

---

१. जुओ तेनुं Journal kept during the survey of the districts of Patna and Gaya in 1811-1812" Edited by V. H. Jackson, Patna 1925.

८. अजातशत्रु वृजिओने दबाववानी योजना करे छे

महापरिनिब्बान सुत्तन्त मां बुद्धनी जीवनयात्रानां छेल्लां वर्षो दरमियान बनेला बनावोनी माहिती मळे छे. ते सुत्तनी शरुआतमां ज (१,१) आ प्रमाणे वर्णन आपवामां आव्युं छेः–

"कोई एक समये भगवान (बुद्ध) गृध्रकूट उपर राजगृहमां परिभ्रमण करता हता. ते समये मगधनो राजा वेदेहीपुत्र अजातशत्रु हतो. वज्जिनोने जीतवानी इच्छाथी ए बोल्यो :–

'आवा जबरा, बळवान वज्जिनोनो हुं नाश करीश; वज्जिनोने हुं कचरी नाखीश; वज्जिनोने हुं कमनशीबीमां, अवनतिमां धकेली मूकीश.' आ 'वज्जिनो' गंगानी पेली पार मगधना पाडोशीओ 'वृजिओ' छे. एमनी राजधानी एमना प्रदेशनी पूर्व सीमा उपर आवेली वैशाली–जे हिंदना आ भागमां मोटामां मोटी अने सौथी वधारे धनवान–नगरी हती; ज्यारे मगधनुं मुख्य शहेर राजगृह तो हजी पहाडपर बांधेलो एक किल्लो मात्र हतो, तेथी अजातशत्रुनी वृजिओने दबाववानी योजना बहु धृष्टता भरी हती–जे माटे अत्यंत संभाळपूर्वक तैयारी थवी जोईए. तेणे जे कंई पगलां लीधां ते विषे म० प० सु०मां उल्लेखो मळी आवे छे. पण ते बहु पाछळना वखतमां लखाया होवा जोईए; अने तेथी ते लगभग निरुपयोगी छे.

९. युद्धनी पूर्व तैयारी

ओल्डनबर्ग अने व्हाइस् डेवीड्स साथे हुं सम्मत थाउं छुं के अजातशत्रुए वृजिओ सामेनी चढाई वखते आश्रय स्थान तरीके उपयोगमां लेवा माटे पाटलिग्राम नामक स्थान स्थाप्युं. जे पाछळथी पाटलिपुत्र नामे मुख्य शहेर थयुं. पण म०प०सु०(१,२८) प्रमाणे तो पाटलिपुत्र घणा लांबा वखतथी विशाळता पामेलुं हतुं, अने तेना संग्राहक पाटलिपुत्र विषेनो पोतानो ए उल्लेख सर्वत्र दाखल करे छे अने मूळ परंपरानी संपूर्णपणे पुनर्घटना करे छे.

त्यारे बौद्ध उपासकोए पाटलिग्राममां एक आश्रय स्थान बंधाव्युं होवुं जोईए, ज्यां तेमणे बुद्धने नोतर्यां. आथी मनायुं के ते पाटलिग्राम कांई नवुं ज शहेर न होवुं जोईए! वळी आथी विशेष आश्चर्यजनक तो ए छे के १,२६मां जणाव्या प्रमाणे मगधना महामात्यो सुनीध अने वस्सकारे पाटलिग्राम पासे वृजिओना विरोध माटे एक शहेर बंधाव्युं! (सुनीधवस्सकारा मगधमहामत्ता पाटलिगामे नगरं मापेन्ति वज्जीनं पटिबाहाय). उपर जणाव्या प्रमाणे तो तेनुं नाम पाटलिग्रामम् होवुं जोईए, पण संग्राहके पाटलिग्रामे लख्युं, अने तेथी आ स्थान पासे ते शहेर बंधाववामां आव्युं तेम मान्युं. पण तत्पश्चात् आवतुं वर्णन स्पष्ट साबीत करे छे के ते मुख्य शहेर पाटलिपुत्र ज छे! संग्राहकोनी आवी असंबद्धताओने लइने एमनां कथनोनां लगभग दरेक रहस्य लुप्त थाय छे.

१०. वृजिओ विषे

उपर जणाव्या प्रमाणे गंगाना उत्तरना प्रदेशमां वसती एक जातिनुं नाम वृजि हतुं. ते प्रदेशनी पूर्व सीमा उपर आवेलुं तेमनुं मुख्य शहेर वैशाली हतुं. एमना उपरना

भागमां लिच्छविओ – एक जब्बर उच्च जातीवाळा लोको रहेता हता, जेमने बौद्धआगममां बहु ज वखाण्या छे अने लगभग त्रायस्त्रिंशत् देवताओनी समान श्रेणिए मूक्या छे (२,१७). दीघनिकायना पाटिक सुत्तन्तमांथी हुं आपणी शोधने उपयोगी एवां नीचेनां कथनो उतारुं छुं. अहिं वारंवार वज्जिगामे एवो शब्द वापरवामां आव्यो छे. पण तेनो अर्थ "वृजिओना एक गाममां" एवो नहि, पण "वृजिओना समूहमां" अथवा "वृजिओनी सामान्य समिति प्रमाणे" एवो करवानो छे. कंदरमुख (११) पाटिकपुत्त (१५) विषे आवुं कहेवामां आव्युं छेः "वृजिओनी सामान्य समिति प्रमाणे एणे लाभाग्र अने यशाग्र प्राप्त कर्यां हता" (लाभग्गप्पत्तो चेव यसग्गप्पत्तो च वज्जिगामे) बुद्ध लिच्छविपुत्त सुनक्खत्तने उद्देशीने कहे छे के – बुद्ध, धर्म अने संघनो यश (वण्णो) वज्जिगाममां अनेक रीते गावामां आवे छे.[1] त्यां पाळवामां आवतां विधिनियमो एटलां चोक्कस होय छे के तेने आदर्शरूप गणी शकाय. आ उपरथी एकरीते एम मालुम पडे छे के वृजिओना बुद्ध, धर्म अने संघ विषेना विचारो चोक्कस हता अने ते विषे सौ एकमत हता; अने बीजी रीते एम पण मालुम पडे छे के बुद्ध वृजिओना आ ऐक्यमतनो पोताना धर्मना लाभमां दाखलो आपता. बुद्ध अने वृजिओ वच्चे गाढ, दृढ मैत्री संबंध हतो ए आ परिस्थिति स्पष्ट करे छे.[2]

११. बुद्ध साथे अजातशत्रुनो विचार विनिमय

बुद्ध ज्यारे हजी राजगृहमां विहरता हता त्यारे अजातशत्रुए वृजिओ सामेनी दुश्मनावटना पोताना निर्णयो (जुओ § ८) पोताना अमात्य वस्सकार ब्राह्मण द्वारा तेमना अभिप्राय माटे जणाव्या (म० प० सु० १.२, वगेरे). एने पोते सीधो जवाब आपवाने बदले बुद्ध आनंदने उद्देशीने सूचवे छे के वृजिओए सात सारा गुणो केळव्या छे, जेने लईने तेओ बळवान अने अजेय थया छे. वस्सकार ते उपरथी अनुमान बांधे छे के वृजिओ जीताय एम नथी. अर्थात् "छेतरपिंडी सिवाय अने एकताना भंग सिवाय युद्धमां जीताय एम नथी." (१.५.)[3]

राजगृहथी बुद्ध, अटकता अटकता, पाटलिग्राम तरफ जाय छे (जुओ § ८). त्यां बन्ने अमात्यो सुनीध अने वस्सकार एमनी आगता स्वागता करे छे अने एमने भोजन लेवा निमंत्रे छे. महेमानगिरी विशेनुं वर्णन रूढ थयेली विगतो प्रमाणे ज करवामां आव्युं छे (१, २९ वगेरे). अलबत्त अमात्यो बुद्धना आशीर्वादनी खातर ज आ तकलीफ नहोता उठावता; एमने तो एमना राज्याधिकारनी रूये आ करवुं पड्युं हतुं. एमनो उद्देश कंई सूचवायो नथी; पण ते ए होवो जोईए के पोताना प्रीतिपात्र वृजिओ

---

१. इति खो ते सुनक्खत्त अनेकपरियायेन मम (संबंधतः – धम्मस्स, संघस्स) वण्णो भासितो वज्जिगामे ।

२. एम छतां निर्वाण पछी सो वर्षे वज्जिपुत्तकोए बौद्ध धर्ममां भेद पाडवाने कारण आप्युं.

३. अहीं संग्राहक ३५ गुणो विषे अने ६ गुणो विषे एक लांबी चर्चा उमेरे छे; जे द्वारा भिक्षुओने "कल्याण मेळववानुं छे; अकल्याण नहि." आ ग्रंथना वस्तु विषेना संग्राहकना मनस्वीपणानो दाखलो पूरो पाडे छे.

रासकारे वापरेलां केटलांक अव्ययो:-

पृ० ३८ किहु-(कशुं)
पृ० ३६ कि-(के)
पृ० ११ अरु-(ओर)
पृ० ५१ कइयलग्गि-(क्यां लगी)

रासकारे वापरेला केटलाक प्रांतिक शब्दो:-

पृ० २३ पिंग-(पान खाईने 'थुंकेला रस' अर्थे आ शब्द वपरायो छे. 'थुंक नाखवा'ना पात्रनुं नाम 'पिकदान' प्रतीत छे. ए 'पिकदान' नो 'पिक' अने प्रस्तुत 'पिंग' ए बन्ने सरखा जणाय छे. मारी स्मृति प्रमाणे 'थुंक' माटे वपरातो 'पिक' शब्द फारसी छे.)

पृ० २३ चंबा-(चंपल-जोडा. अमारी शेठ लालभाई दलपतभाई आर्ट्स् कॉलेजना पठाणे कहेलुं के पंजाबमां केटलेक ठेकाणे 'जोडा' अर्थ माटे 'चंबा' शब्द वपराय छे)

पृ० २५ भीड-भीड 'माणसोनी वणी भीड छे' ए भीड.

पृ० ११ लक्क-(लंक-कटी-कड-केड. स्त्रीने 'सिंहलंकी' कहेवामां आवे छे. 'सिंहलंकी' एटले सिंह जेवी पातळी केडवाळी-चारणोनी वातोमां अने रसधारोमां 'लंक' शब्द 'केड' अर्थमां वपरायेलो सांभळयो छे अने वांच्यो छे पण खरो)

पृ० २३ झसुर-(तांबूल-तंबोल-नागरवेलनुं पान. आ शब्दने देशी शब्दसंग्रहमां आचार्य हेमचंद्रे नोंधेलो छे:-"झसुरं तंबोलऽत्थेसु" गा० ६१, वर्ग ३ "झसुरम् ताम्बूलम् अर्थश्च" अर्थात् 'झसुर' एटले तंबोल अने धन")

पृ० ५५ झंखरु
पृ० ७८ झखडु } -('डुंडुयालक' अथवा 'डुंडयालक' नामनो एक खास प्रकारनो पवन छे, जे वाय छे त्यारे विरहिणी स्त्रीओने त्रास थाय छे. -अवचूरिका तथा टिप्पनक) आ 'डुंडुयालक' वा 'डुंडयालक' पवन विशे बीजी कशी माहिती नथी.

पृ० २ आरद्द-(तन्तुवाय-वणकर)

पृ० ३५ पडिल्ली-(अधिक)

पृ० ८१ उवाडयणि-(गर्दभी-गधेडी)

पृ० ७९ ढंखर-(झाखरुं-सूकुं के बळी गयेलुं झाड-ठुंठुं. देशीसंग्रहमां हेमचंद्रे 'सूका झाड' अर्थनो 'झंखर' शब्द आपेलो छे: वर्ग ३, गाथा५४)

पृ० ६८ सोरंड-(क्रीडाभाजन)

पृ० ६५ अरमणि-(करवत)

पृ० ३९ वरक्किय-(पटी-कपडुं-बूरखो? "लइवि वरक्किय ससिसउन्नुं फंसहि वयणु" गा० ९८, पृ० ३९ अर्थात्" 'वरक्किय' ने लईने-दूर करीने चंद्र जेवा संपूर्ण मुखने साफ कर" आ अर्थ जोतां 'वरक्किय' शब्दनो संबंध कदाच 'बूरखा' साथे होय. टिप्पनकारे "वरकीं

पटिं (टीं)" अने अवचूरिकाकारे 'वरकीं' ने बदले "वराकीं-पटीं" एम कहेलुं छे.)

रासकारे 'छे' अर्थनो द्योतक धातु, आ प्रमाणे वापर्यो छेः–

पृ० ६८ अच्छिहि–(छे)

पृ० १५ आहि–(छे, हे के है अथवा आहे)

पृ० ३१ अच्छउं–(छुं)

तादर्थ्य अर्थ माटे–चतुर्थीना अर्थ माटे रासकारे ("नहु रहइ बुहा कुकवित्तरेसि" –गा० २१, पृ० ९) 'रेसि' निपातने पण वापरेलो छे. जे विशे आगळ कहेवाई गयुं छे.

आ प्रमाणे रासनी भाषानो संक्षिप्त परिचय कराववा प्रस्तुत आ थोडुं निवेदन कर्युं छे.

*

(७) रासकारनो समय

समय–रासकारे पोताना समय विशे कशी माहिती आपी नथी; परंतु टिप्पनकारे पोतानो समय विक्रम संवत् १४५६ एटले पंदरमा सैकानो मध्यकाल स्पष्टपणे जणावेलो छेः ("श्रीमद्–देवेन्द्रशिष्यः शँर–रसँ–युँग–भूँ–वत्सरे वृत्तिमेताम्। लक्ष्मीचन्द्रः चकार अखिलगुणनिधयः सूरयः सो (शो) धयन्तु"–पृ० ९०) अर्थात् "देवेन्द्रना शिष्य लक्ष्मी-चन्द्रे १४५६ना विक्रम वर्षमां आ वृत्ति बनावी छे. मूळ रास बन्या पछी आ टिप्पन, पचास वर्ष पछी बन्युं होय एवी संभावना करीए तो रासकारनो समय मोडामां मोडो चौदमा शतकनो प्रांतभाग वा पन्दरमा शतकनो प्रारंभ कल्पी शकाय अथवा एम पण बनवाजोग छे के रासकार अने टिप्पनकार, ए बन्ने समसमयी पण होय.

टिप्पनकार अने रासकारना समसमयी होवा विशे पाको संवाद न गणाय एवुं छतां कांईक टेको आपे एवुं एक प्रमाण टिप्पनकारनी प्रशस्तिमां मळे छे. टिप्पनकार पोते एम लखे छे के–

"वृत्तिर्नाश्य(स्य) दृशा वि(व्य) लोकि सुरे (सुगुरोः) पार्श्वे न चाऽभाणि च

"नो कर्तुर्मुखतस्त्विदं भुवि मया चाश्रावि शास्त्रं कचित्।
किन्तु क्षत्रियगाहडस्य मुखतो या या प्रवृत्ति (ः) श्रुता
सा सा ह्यत्र मया विमूढमतिना वार्ता निबद्धा ननु" ॥ २
"यदन्यथा मया प्रोक्तं कश्चिदर्थस्तथा पदम्।
तदहं नैव जानामि तज्जानात्येव गाहडः ॥ ३

अर्थात्–"आ 'संदेशकरास'नी वृत्ति क्यांय नजरे जोवामां आवी नथी, हुं–टिप्पन-कार–कोई सारा गुरु पासे तेने भण्यो पण नथी, वळी कर्ताना मुखथी तो में आ शास्त्रने क्यांय सांभळ्युं नथी, फक्त 'गाहड' नामना क्षत्रियना मुखथी जे जे प्रवृत्ति सांभळी ते ते अहीं में विमूढमतिए नोंधेली छे अने एम छे तेथी माराथी कोई अर्थ के शब्द अन्यथा नोंधाई गयो होय तो तेनो जवाबदार हुं नथी पण ते गाहड ज जाणे." आमां टिप्पनकारे जे एम लखेलुं छे के "कर्ताना मुखथी में सांभळ्युं नथी" ए, त्यारे ज लखी शकाय ज्यारे कर्ताना मुखथी सांभळवानुं संभवित होय, टिप्पनकारने ए

वातनी खात्री होय के कर्ता हयात नथी किंतु कीर्तिशेष थयेलो छे, तो ए तेना मुखथी सांभळवानी संभावना न करी शके. एथी कदाच टिप्पनकार अने रासकार समसमयी होय एम बनवा जोग छे. अथवा टिप्पनकार पहेलां अल्प समयमां ज रासकार अक्षरशेष थयेलो होय तो पण ए संभावना थई शके; परंतु घणा वधारे वखत पहेलां दिवंगत थयेला कर्ता विशे कोई एवी संभावना न करी शके. एथी टिप्पनकार अने रासकार वच्चे विशेष अंतर न होय एम तो बराबर जणाय छे. ए ऊपरथी अहीं जे रासकारना समयनी कल्पना करवामां आवी छे ते असंगत नथी जणाती अने बीजुं कोई बाधक वा साधक प्रमाण न मळे त्यां सुधी आ कल्पनाने अबाधित मानवामां हरकत नथी.

*

टिप्पन अने अवचूरिका तथा तेना कर्ता

(८) रास ऊपरनुं साहित्य

प्रस्तुत रासनो प्रणेता तेना नाम उपरथी एक मुसलमान लागे छे त्यारे तेना ऊपर टिप्पन अने अवचूरिका करनार बन्ने जैन साधु छे. एक समय एवो हतो ज्यारे जैनश्रुत सिवाय बीजां बधां श्रुतो–शास्त्रो मिथ्या छे एम मनायेलुं एटले ए जैनेतर शास्त्रोनुं वाचन, मनन के श्रवण निषिद्ध मनायेलुं; जोके हजु पण मान्यता ए ज चाली आवे छे छतां वच्चे वच्चे केटलाक जैन बहुश्रुत गीतार्थ पुरुषोए 'सम्मदिट्ठिस्स सव्वं सम्मं सुयं, मिच्छदिट्ठिस्स सव्वं मिच्छं' (जेमनी दृष्टि विशुद्ध छे एमने माटे बधां शास्त्रो सम्यक् छे अने जेमनी दृष्टि ज मिथ्या छे एमने माटे समीचीन शास्त्रो पण मिथ्यारूप छे) ए न्याये उदारता केळवेली अने बीजी बीजी परंपरानां शास्त्रोने अवगाही तेना ऊपर वृत्ति विवेचन वगेरे लखवानुं शरू राखवानी प्रथा पाडेली. ते प्रथा पण चाली आवे छे. जैन आचार्य हरिभद्रे दिङ्नागना न्यायप्रवेश ऊपर टीका रचेली छे. ए ज प्रमाणे आचार्य मल्लवादीए धर्मकीर्तिना न्यायबिन्दु ऊपर टिप्पण लखेलुं छे. आचार्य माणिक्यचंद्रे मम्मटना काव्यप्रकाश ऊपर विवरण करेलुं छे. भासर्वज्ञना न्यायसार ऊपर श्रीजयसिंहसूरिए वृत्ति लखेली छे. दिगंबर परंपराना महान आचार्य विद्यानंदीनी अष्टसहस्री ऊपर उपाध्याय श्रीयशोविजयजीए विवरण लखेलुं छे. एम अनेक जैन आचार्योए बीजी बीजी परंपराना अनेक ग्रंथो ऊपर पोताना बुद्धिवळे अने ते ते शास्त्रोना अगाध अभ्यासने लीधे पोतानी उदार लेखिनी चलावी भारतीय साहित्यनी अभिनव सेवा करेली छे. मुनिपुंगवँ श्रीलक्ष्मीचंद्रे संदेशकरासनुं टिप्पन १४५६ ना विक्रम वर्षमां रचेलुं छे. आ बाबत कर्ताना समयनी चर्चामां आवी गयेली छे. टिप्पनकार जाते पोरवाड जैन हता, तेमना पितानुं नाम 'हालिग' अने मातानुं नाम 'तिलख्वा' लखेलुं छे 'तिलख्वा'नुं शुद्धरूप 'तिलाख्या' लईए तो तेमनी मातानुं नाम 'तिलक–तलकबाई' होई शके, तेमनुं साधु अवस्थानुं नाम लक्ष्मीचंद्र, तेमना गुरुनुं नाम देवचंद्र अने तेमनो गच्छ रुद्रपल्लीय; आ बधी हकीकत टिप्पनकारे टिप्पननी समाप्ति थतां आपेली प्रशस्तिमां आपेली छे. टिप्पन लखवामां एमने 'गाहड' नामना क्षत्रियनी घणी ज सहायता मळेली छे ए पण एमणे कृतज्ञतापूर्वक प्रशस्तिमां जणावेलुं छे. आ विशेना श्लोको कर्ताना समयनी चर्चावाला मुद्दामां आपेला छे.

मुद्रित संदेशकरासमां पृ० ९० ऊपर टिप्पनकारनी प्रशस्ति आवेली छे. टिप्पन 'हिसारदुर्ग'मां आषाढ शु० दि० आठम ने बुधवारे लखेलुं छे एम टिप्पनने अंते जणावेलुं छे. पंजाबमां 'हिसार' नामे शहेर छे ते ज आ 'हिसारदुर्ग' होवुं जोईए. आ सिवाय टिप्पनकार विशे वधु कोई माहिती उपलब्ध नथी. अवचूरिकाकारनुं तो मात्र एक नाम ज अवचूरिकाने अंते लखेलुं छे, ए सिवाय ए विशे कोई हकीकत लखी नथी. "इत्यवचूरिः श्रीसंदेशरासकं समाप्तम् । पं० नयसमुद्रेण लिखितम्"–(पृ० ९० मुद्रित रास) अर्थात् 'नयसमुद्र' नामना कोई जैन विद्वाने अवचूरि लखेली छे. 'लखेली छे' एटले 'रचेली छे' के 'नकल करेली छे' ए स्पष्ट समझातुं नथी. संभव छे के रचेली होय. एक 'नयसमुद्र' नामना जैन विद्वान साधु सत्तरमा सैकामां थयेला छे. तेमणे रूपचंदकुंवररास (१६३७ संवत् मागशर शु० दि० ५ रवि, बीजापुर), शत्रुंजयउद्धाररास (सं० १६३८ आशो शु० दि० १३ अमदावाद), प्रभावतीरास (सं० १६४० आशो शु० दि० ५ बुध, बीजापुर), सुरसुंदरीरास (सं० १६४६ जेठ शु० दि० १३), नलदमयंतीचरित्र (सं० १६६५ पोष शु० दि० ८), शीलशिक्षारास (सं० १६६९) वगेरे अनेक रासो रचेला छे. रूपचंदकुंवररासमां कविना कहेवा प्रमाणे (प्रथम – शृंगार – रस थापियो छेडो शांतरसे व्यापियो ") शृंगारने ठीक ठीक स्थान छे एथी कदाच शृंगारमय आ संदेशकरासनी अवचूरि पण तेमणे रचेली होय. तेमना गुरुनुं नाम भानुमेरु अने गच्छ वृद्धतपागच्छ (रा० मोहनलाल द० संकलित जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० २५७). टिप्पन अने अवचूरि सिवाय आ रास ऊपर कोई बीजुं साहित्य जाण्यामां नथी. आ टिप्पन के अवचूरि न होत तो संभव छे के आ रास अंधारामां ज रहेत, एटले टिप्पनकारे अने अवचूरिकाकारे एक मुसलमान साक्षरनी कृतिने चिरंजीव करवा जे पुरुषार्थ करेलो छे ते भूरि भूरि अनुमोदनीय छे अने वर्तमान जैन रूढपंडितो आवी दृष्टि केळवी पोताना पूर्वपुरुषोने पगले चालशे तो जैनशासननो प्रभाव विशेष थशे एमां शंका नथी.

*

प्रस्तुत रासमां अनेक छंदो वपराया छे ते विशे आगळ सूचन करी गयो छुं. आ नीचे रासकारे वापरेला एवा थोडा छंदोनां नाम जणावुं छुंः–

(९) रासना छंदो — विपुला गाथा. रड्डा. पद्धडी. डुमिला – डुमिल्ला – डोमिलक. आभाणक. दोधक. रासा. चंदायण – चन्द्रायतन. वस्तुक अथवा षट्पद. मालिनी. अडिल्ला – अडिल्ल. मडिल्ल. चूडिलक – चोडियालक. खडहड. गाथा. खंधय – स्कंधक. दुवइय – द्विपदी. नंदणि – नंदिनी. लंकोडय – लंकोटक – रमणीकरूप – रासकनी जाति. आमांनां केटलाकनां नाम तो मूळ रासमां ज नोंधेलां छे अने केटलाकनां नाम टिप्पन तथा अवचूरिका बन्नेमां छे. उक्त बधां छंदोनां लक्षणो टिप्पन अने अवचूरिकाकारे पूर्णपणे जणावेलां छे अने क्यांय छंदनुं संस्कृत नाम आपवा उपरांत मूळ छंदना नामनां जुदां जुदां उच्चारण पण नोंधेलां छे. अहीं नामो जणावती वखते ए जुदां जुदां उच्चारणो पण जणावेलां छे. आ ऊपरथी रासकारनुं छंदपांडित्य पण प्रगट थाय छे.

मुद्रित रासमां पाठांतरो आपवामां आवेलां छे तेमां प्रतोनां संकेतो ABC एम राखेला छे ए ऊपरथी तेमां त्रण प्रतोनो उपयोग थयो होय एम लागे छे. जे पाठांतरो शब्ददृष्टिए, अर्थदृष्टिए शुद्ध होय ते बधां लेवा योग्य छे; परंतु जे भाषाना इतिहासमां खप लागे तेवां होय, तेवां पण लेवां जरूरी छे. केटलांक पाठांतरो मूळ करतां जुदो अर्थ अने केटलीक वार विपरीत अर्थ बतावनारां होय छे तेने पण लेवां जोईए एम मारुं मानवुं छे.

(१०) रासनां पाठांतरो अने प्रतो

वळी, जे ग्रंथो टीका के विवरणवाळा होय तेवा ग्रंथोमां एक त्रीजी जातनां पण पाठांतरो मळवानो संभव छे. तेवा ग्रंथोमां टीकामां के विवरणमां मूळनो अर्थ आपेलो होय छे अथवा मूळपाठनुं प्रतीक लीधुं होय छे. पाठांतरोनुं पृथक्करण करती वेळा जे पाठांतरो टीकागत अर्थने अनुसरनारां होय तेने जुदां तारववां जोईए अने जे पाठांतरो मूळना प्रतीक अने मूळपाठना भेदमांथी नीपजेलां होय तेने पण जुदां पाडवां जोईए. आ रीते पृथक्करण कर्या पछी बाकीनां पाठांतरो वधारानां होय ते जुदां दर्शाववां जोईए. एम एकंदर पाठांतरोनां त्रण विभाग करवा जोईएः १ टीकागत अर्थानुसारी के टीकागत अर्थप्रतिकूल. २ मूळपाठप्रतीकानुसारी के मूळपाठप्रतीकप्रतिकूल. ३ वधारानां. आ रासमां आवां बधां पाठांतरो विद्यमान छे पण विभाग न होवाथी तेनी स्पष्ट खबर पडती नथी. मूळनी प्रतिओ जुदे जुदे वखते जुदा जुदा लेखकोए लखेली होय छे, केटलीक वार तो मूळ ग्रन्थने लेखक (कर्ता) पोते जाते ज लखे छे. आम तेमां पाठांतरो नीपजे छे. टीकाकार सामे जे प्रति होय तेने अनुसारे ते प्रतीक ले छे अने अर्थ पण ते प्रमाणे बतावे छे. एथी टीकागत प्रतीको अने केवळ मूळपाठनी प्रतिओना पाठ वच्चे पाठभेद उभो थाय छे. जे टीका आपणे छापिए छिए ते टीका, टीकाकारे आपणा छापेला मूळ पाठवाळी प्रतिने ज आधारे लखेली होय तो तो प्रतीकोमां अने मूळ पाठ वच्चे पाठभेद भाग्ये ज होय परंतु तेम न होय त्यारे एवो पाठभेद अवश्य रहेवानो. वळी केटलीक वार केवळ टीकानी ज प्रतो जुदी मळे छे एटले उक्त पाठभेद रहेवानो ने रहेवानो ज. आ रासमां पण जे जातनां पाठांतरोना विभाग विशे आगळ जणाव्युं छे तेवां पाठांतरो उपलब्ध छे. तेनी संक्षिप्त यादी आ प्रमाणे छेः

द्वितीयप्रक्रमनी ९० मी गाथामां मूळ पाठ आ प्रमाणे मुद्रित छे – "निवडंत बाहभर लोयणाइ धूमइण सिचंति" ९०. आ स्थळे 'धूमइण' ने बदले 'धू जइ ण' एवो पाठभेद छे. आ स्थळे अवचूरिकाकारे बतावेलो अर्थ बराबर पाठांतरने अनुसरे छे त्यारे टिप्पनकार मूळ छापेल पाठने अनुसरे छे. अर्थना सौष्ठवनो विचार करीए तो टिप्पनकार करतां अवचूरिकानो अर्थ विशेष विशद अने संगत छे.

प्रथम प्रक्रमनी १९ मी गाथामां "मणु मुणेवि किंचिय पयासिउ" एवो पाठभेद छे. आ पाठने अवचूरिकाकार नथी अनुसरतो किंतु टिप्पनकार अनुसरे छे. अवचूरिकाकार तो मुद्रित पाठ प्रमाणे अर्थ बतावे छे.

ए ज गाथामां "णिमिसिद्धु खणु" एवो पाठ मुद्रित छे त्यां टिप्पनमां अने अवचूरिकामां तेनो अर्थ "निःशब्दम्" आपेलो छे. आ अर्थ जोतां मूळमां "निसद्द" पाठ होवो जोईए. वळी, मूळमां "खणु" शब्द तो छे ज एथी "णिमिसिद्धु" (निमेषा-

र्थम्) पाठ पुनरुक्त जेवो होई अनर्थक छे. आवे स्थळे पाठो निर्णीत करवामां टीकागत अर्थने लक्ष्यमां राखवो जरूरी छे. वळी, "तुण्हिजइ णव सद्द खणु" ए पाठ टिप्पनने बराबर अनुसरे छे एटले ए ज विशेष ग्राह्य लेखावो जोईए. मूळमां जे "णिमिसिद्धु" पाठ छे ते, मने लागे छे के "खण्ड" पद ऊपरनी टिप्पनी जेवो छे. कोई वांचनारे 'खणु' पद ऊपर निमेषार्धम्–"णिमिसिद्धु" एवी समझूति प्रतिनी आजु-बाजुना कोरा भाग ऊपर टपकावी होय अने तेने पछीथी मूळपाठ रूपे घणी वार लिपिकरनारा असमजथी लई ले छे अने आ रीते पण ग्रंथमां घणां पाठांतरो जन्मे छे. गा० २२१ (तृतीय प्रक्रम) मां मूळमां 'अच्चरियं' पाठ छे. पाठांतर 'अहियरं' छे. टिप्पनकार अने अवचूरिकाकार बन्ने अहिययरं–अधिकतरम् पाठने अनुसरे छे त्यारे 'अच्चरियं' पाठ जुदो ज पडी जाय छे. संभव छे के 'अच्चरियं' ने बदले 'अच्चहियं' 'अत्यधिकम्' पाठ होय अने एम होय तो ज टिप्पन अने अवचूरीनो अर्थ संगत थई शके. आ उपरांत टिप्पन अने अवचूरिकामां घणे स्थळे अर्थभेद पण छे. द्वितीयप्रक्रममां गा० १२१ 'पय जंपइ' पद छे तेनो अर्थ टिप्पनकार 'पदानि जल्प' एवो करे छे त्यारे अवचूरिकाकार 'त्वां प्रति जल्पति' एवो करे छे. 'पय' शब्द 'पद' अर्थने तथा 'त्वाम्' अर्थने एम बन्ने अर्थने जणावे छे तथा 'प्रति' अर्थने पण सूचवे छे. अहीं अवचूरिकाकारनो अर्थ विशेष संगत छे. आ प्रमाणे घणे स्थळे टिप्पनकार अने अवचूरिकारकार वच्चे अर्थभेद थयेलो छे अने त्यां विशेष विचारीने जोतां मने अवचूरिकाकार वधारे विश्वस्त जणाया छे. केटलेक स्थळे लिपिकारे जे अशुद्ध लखेलुं छे तेवो ज पाठ मुद्रणमां जळवायो छे. द्वितीयप्रक्रम गा० ९७ मूळ 'गुणसद्द उत्तट्ठि' छे. टिप्पनमां तथा अवचूरिकामां 'गुणशब्दोऽत्रस्तया' छे. अहीं ऽ अवग्रह लिपिकारना प्रमादनुं फल छे. 'गुणशब्दोत्रस्तया' पाठ बराबर मूळानुसारी छे. ए ज प्रमाणे द्वितीयप्रक्रम गा० १०० मां मूळमां 'मुणंती' ए क्रियातिपत्तिनुं क्रियापद छे. अवचूरिकामां तेनो 'अज्ञास्यन् (म्)' एवो स्पष्ट अर्थ छे त्यारे टिप्पनमां 'अज्ञास्यम्' लखवाने बदले लिपिकारे 'सौख्यं मन्यास्यम्' एवुं भ्रांत लखेलुं छे. खरी रीते 'सौख्यम् अज्ञास्यम्' एम होवुं जोईए. अहीं लिपिकारे 'ज्ञा'ने बदले 'न्या' लखेलो छे अने मुद्रणमां पण ते ज कायम छे. आ विशे अहीं वधारे लखवानी अपेक्षा नथी परंतु पाठांतरो उक्त रीते पृथक्करण-पूर्वक लेवानी प्रथा स्वीकाराय तो ग्रंथनी स्पष्टतामां विशेष अनुकूलता थशे एवो मारो नम्र अभिप्राय छे. प्राचीन प्रतिओने प्राधान्य आपवा करतां ज्यां टीका के विवरण होय त्यां पाठांतरोना निर्णयमां टीका अने विवरणना अर्थने पण आधाररूपे लेखवो जोईए अने तेम करी बधां पाठांतरोनुं उक्तरीते वर्गीकरण करवानुं कार्य संपादकोना ध्यान बहार न रहेवुं जोईए.†

* *
*

† अमे कया धोरणे प्रस्तुत ग्रन्थना पाठो संगृहीत कर्या छे तेनी चर्चा ग्रन्थनी अमारी प्रस्तावनामां करवामां आवेली छे तेथी अहिं तेनो खुलासो आवश्यक नथी. –संपादक

स्नेह-स्मरणविषयक केटलांक प्राचीन सुभाषितो.

*

संदेशरासक नामना काव्यमां जे प्रकारना विषयनुं निरूपण करेलुं छे ते विषय साथे संबंध धरावता असंख्य प्राचीन सुभाषितो – दोहा, सोरठा, छप्पय आदि भाषा मुक्तको – जूनी हस्त-लिखित प्रतोमां मळी आवे छे. एवा हजारो सुभाषितो अमे संगृहीत करेलां छे अने ते प्रकाशननी वाट जोई रह्यां छे. आ नीचे एवां थोडांक सुभाषितो प्रकट करवामां आवे छे. लगभग ४०० वर्ष उपर लखाएल १ जूना पानामांथी आ उतारवामां आवेलां छे. – संपादक.

हंसा ते सर सेवीइं जे भरिया निकलंक ।
ऊछउं सरोवर सेवितां निश्चइं चडे कलंक ॥ १

जिहि जिहि लग्गि नयणलां तिहां हीयडा म लगेसि ।
नयणां रोई छूटसि तुं झुरंत मरेसि ॥ २

जिणि हरिणाखी मन हरउं सा हरणाखी म मेल्हि ।
सुंकण लागी देहडी जिम पाणी विण वेलि ॥ ३

वायसडु उडाडतां पियु पेखिउ झबक्क ।
अद्धां कंकण सरि गयां अद्धां गयां त्रुटक्क ॥ ४

रूपिं रूयडा मोर प्रीतिइं पारेवा भला ।
धानविनासण ढोर घर घर दीसे अतिघणा ॥ ५

चंदा तुं गयणह पुरिइं धरि प्रियु परदेस ।
बिहुं विचाले साखि भरे कुंण झुरे कुंण रेसि ॥ ६

नवघण भरियां मग्गडां सघण धडुके मेह ।
जुं वरसंति आवसि तुं जाणि साचुं नेह ॥ ७

हीयडा करि वधामणुं सहिजि सीधुं काज ।
जे सपनांतरे देखतु ते तुझ मिलीउ आज ॥ ८

हंस पराभव किम सहे अमरख जेह सरीर ।
नीमांणा बग बिट्ठडा क्षण पालि क्षण तीर ॥ ९

हीयडुं दाडिम कुंलीय जिम सभर भरिउं गुणेण ।
अवगुण एक न संभरि वीसारीजे जेण ॥ १०

सही समाणां माणसां मिले तु विहडे कांई ।
दुखें दाझें जीवडु तो पण मुयां भलाई ॥ ११

म म जाणिस मन नेहडुं त्रूटे दूर थयाह ।
बिमणुं वाधसि सज्जनह ऊछुं हुइ खलाह ॥ १२

दिन झुरंतां नीगमुं रयणि रोयंते विहाइ ।
सज्जण विण जो जीवाइं तो जीवुं स्या पाहि ॥ १३

माणस पाहि माछलां साचो नेह सुजाण ।
जो जव कीजे जुजुया तव ते छंडे प्राण ॥ १४
वाहलां तणे वियोगि जु दुख हीयडि होई ।
ते मन जाणे आपणुं अवर न जाणे कोई ॥ १५
कोइल सरिखी स्त्री नही जस मन इसिउ विबेक ।
अंब विहुणी अवरसिउं बोल न बोलइ एक ॥ १६
देह लेई अम्हे जाइसिउ जीविय तुज्झ सरीर ।
सीदातुं मम मुंकजे सीचे नयणह नीर ॥ १७
मोरुं मन तुझसिउं रमि नही अनेरइ ठाहि ।
तुझ वियोगि जीविइं तो जीवुं स्यां पाहि ॥ १८
दीहाडा जावे घणा मुझ मन एक न होइ ।
जे तुझ विण दिन नीगमुं लेखे न लागइ सोइ ॥ १९
मन जाणे मन वत्तडी कहि आगलि न कहाए ।
संभारी सवि बोलडा हीयडुं दुःख भराए ॥ २९
सज्जण तणां संदेसडा गमतां हुइं अपार ।
जिम जिम वली वली पूछिइं तिम तिम हर्ष अपार ॥ २१
कहिसिउं कीजे गोठडी कहिसिउं कीजे रंग ।
तुझ विण सहुइ वीसरे उं दुख दाझे अंग ॥ २२
ते हीयडि किम वीसरे जेहना गुण नवि पार ।
माहरि हीयडि कोइ नवि तुझ टाली संसार ॥ २३
बोलेवा सवि बोलडा फेडेवा मन भ्रांति ।
एक वेरीने वल्लहा जो मिलसे एकांति ॥ २४
ताड समाण सज्जणे काउं कीजे तेण ।
फल ऊंचा छाया नही माहरि पासठिएण ॥ २५
हीयडा आमण दुमणु सेरीइं ऊभो कांइ ।
जेह सरीखी गोठडी तेहजि चाले कांइ ॥ २६
सज्जण माणस देखि करी दुख जि वीसर जाइ ।
हीयडुं विहेसि कमल जिम मन पंजरे न माइ ॥ २७
तिणि देसडे न जाईइ जिहां आपणु नहीं कोई ।
सेरी सेरी भमंत तां सुघ नवि पुच्छइ कोई ॥ २८
संदेसो किम पाठवुं जो तुं वसि विदेस ।
हीयडा भीतरि तुं वसि संदेसो किम रेस ॥ २९

* *
*

पासे बुद्ध न जाय अने पोताना नाम द्वारा एमनी नैतिक कीर्ति न वधारे; अने ए माटे एमने मगधमां ज रोकी राखवा. पण बुद्ध रोकाया नहि. कहेवा प्रमाणे जादुथी, पण मानवा प्रमाणे युक्तिथी, ए गंगाने पेले किनारे पहोंची गया.

१२. बुद्धनी जीवनयात्रानो अंत

बुद्धना, गंगाने सामे तीरे जवा पछी, आपणे बौद्ध आगमोनां लखाणोमांथी राजकीय बनावो विषे कांई ज सांभळता नथी; बुद्धना निर्वाण अने दहन सिवायना बीजा समाचार एमांथी मळता नथी. घणे स्थळे पडाव नाखता नाखता बुद्ध वैशाली तरफ गया अने त्यां नजीकमां आवेला वेलुव नामक गाममां तेमणे अंतिम चातुर्मास गाळ्युं. आपणे तेमना वैशालीना रहेठाण तथा मार द्वारा उभा थयेला अनेक लालचप्रसंगो वगेरे बाबतो अहिं रहेवा दइए. वैशालीमां एमणे जाहेर कर्युं: "हवे तरतमां ज बुद्ध अभीप्सित निर्वाण प्राप्त करशे. आजथी त्रण मास सुधीमां तथागत अभीप्सित निर्वाणमां प्रवेश करशे" (३,४८,५१). चातुर्मास पछी प्रथम मास कार्तिक आवे छे एटले बुद्ध आ Prophesy भविष्यवाणी प्रमाणे माघ मासना प्रथम पडवाने दिवसे मृत्यु पाम्या होवा जोइए. (Kern, Der Buddhisums, 2, पान ६३). पण आ जणावेली तिथि विषे शक्यता नथी. कारण के वृद्ध अने मांदा बुद्ध वैशालीथी कुशिनगर सुधीनी लांबी मुसाफरी–जेमां अनेक स्थळे मुकामो करवा पडेला–त्रण अठवाडियामां पूरी करी शक्या न होवा जोइए. वळी सूचित परिस्थिति प्रमाणे तो ए मुसाफरीए छएक मास लीधा होवा जोइए–अर्थात् वैशाखनी शरुआतमां ए उद्दिष्ट स्थळे पहोच्या होवा जोइए अने ए ज मासना अंतिम भागमां एमणे देह छोड्यो होवो जोइए. एथी ज महावंस (३,२)मां वैशाखनी पूर्णिमाने निर्वाण तिथि तरीके जणाववामां आवी छे. मने खबर छे ते प्रमाणे कममां कम दक्षिणना बौद्धो निर्वाणोत्सव वैशाख मासमां उजवे छे. अजातशत्रुए वृजिओ सामेनी पोतानी योजना बुद्धना मरण पहेलां ज अमलमां मूकी के केम ते नक्की थई शकतुं नथी. बौद्ध आगमोमां ते विषे कंई सूचन मळतुं नथी.

१३. जैन आगममां आपेलां प्रमाणो

जैनोना पांचमा अंग भगवती (७,९,२)मां नीचेनी नहिं जेवी बीना आपी छे: "वज्जि विदेहपुत्ते जइत्था, नव मल्लइ नव लेच्छइ कासिकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो पराजइत्था।" विदेहपुत्ते (कूणिके) वृजिओने जीत्या. नव मल्लकिओ अने नव लिच्छविओ, काशी अने कोसलना अढार एकत्र थयेला गण राजाओ पराजय पाम्या.[१]

---

१ 'पराजइत्था' कर्त्तरि (Active) रूप न होई शके; कारण के जो तेम होय तो कर्मनो अभाव छे अथवा पूर्व भागमांथी वज्जी लेवुं पडे–जे अनुचित छे. कारण के १८ गण राजाओनो समूह, निरयावलि सूत्रमां स्पष्ट जणाव्या प्रमाणे, वृजिओना पक्षमां हतो अथवा 'कासिकोसलगे' एवो सुधारो करवानी जरूर छे.

३.१.२४.

तेथी कूणिके पोतानी योजना, संभवतः शियाळामां, ज्यारे गंगानां पाणी उतर्यां त्यारे सफळरीते पार उतारी. तेणे गंगाना उत्तर किनारे शत्रुभूमिमां चोक्कस पगलां मांड्यां– जेनो एक भाग तेणे निवास माटे रोक्यो. काशी अने कोसलना एकत्र थयेला १८ गणराजाओना समूह पर एणे सफळ हुमलो कर्यो अने तेमने हराव्या अने ते रीते तेणे पोतानी जीत चोक्कस करी. नव मल्लकिओ काशीना गणराजा छे. ते संभवतः शाक्यभूमिमां पावामां अने तेनी आसपास वसता मल्ल राजवंशीओना सगा छे. लिच्छविओ तो वृजिओना शासको तरीके आपणने परिचित छे. अहिं आपणने मालुम पडे छे के तेओ कोसलोनी शाखामां समान स्थान प्राप्त करे छे,–जेओ काशीना गणराजाओना पाडोशी हता. आ युद्धभूमिमां विजय प्राप्त करवा छतांय वैशाली उपर चढाई करवानी कूणिकनी हिंमत चाली नहि.

१४. वैशाली

बुद्धना वखतमां पूर्व हिंदमां, खास करीने जे भाग हाल बिहार कहेवाय छे ते भागमां, वैशाली सौथी वधुं मोटुं अने धनाढ्य शहेर हतुं. साचेज ते एक अनेक उपस्थानोथी संकलित थयेलुं विशाल शहेर हतुं. ते शहेर विषे मळी आवता बधा उल्लेखो आर. होर्न्लेए उवासगदसाओना पोताना भाषांतरमां (Bibl. Ind. 1888) नोंध ८ (पान ३ वगेरे) मां एकठा कर्यां छे. जैनोना उल्लेखो प्रमाणे वैशाली–मूळ वैशाली उपरांत वाणियगाम अने कुण्डगाम एम–त्रण स्थानोनुं बनेलुं हतुं. एमांथी कुण्डगामने कोल्लाक नामनुं परुं हतुं, ज्यां महावीरनो जन्म थयो हतो. क्षत्रियो अने ब्राह्मणो एक साथे वसता न हता; दा. त. कुण्डगामनो क्षत्रियवास शहेरना उत्तर भागमां अने ब्राह्मणवास दक्षिणभागमां हतो; बन्ने भाग उपर हकुमत तो समान हती.[1] अहिं आपणने इ. स. पू. ६ठा सैकामांना हिंदना एक पुरातन शहेरनी योजना विषेनो, कमभाग्ये मात्र अपूर्ण, ख्याल मळी शके एम छे. पाटलिपुत्रने जे माटे दाखला रूपे आपवामां आव्युं छे एवा कौटलीयना दुर्गनिवेशना वर्णन साथे आपणे आ वर्णनने सरखावीए तो मालुम पडे छे के इ. स. पू. चोथी सदीमां जो के घणुं बदलाई गयुं हतुं छतां केटलुंक तो एवुं ने एवुं रही गयुं हतुं; दा. त. चार जुदी जुदी दिशामां चारे वर्णोए जुदो जुदो वास करवो.

ज्यां अभिजात (aristocratic) स्वातंत्र्य जाम्युं हतुं अने जे बुद्ध अने महावीर साथेना संबंधने लीधे महान स्थान मनातुं हतुं ए धनाढ्य महानगर वैशाली जीतवानुं तो अजातशत्रु जेवा समर्थ साम्राज्यवर्धक राजाए माथे लीधुं खरुं, छतां तेणे पाटलिपुत्रने चढाइ करवाना एक साधन-स्थान तरीके उपयोगमां लई, अर्थात् पश्चिमदिशाएथी–हुमलो लई जवानी हिमत करी नहि. कारण के एम कर-

---

१ बुद्धघोषे एनी म. प. सु. नी टीकामां वैशालीना अधिकारीओ विषे आ करतां तद्दन जुदा ज उल्लेखो आप्या छे, जुओ Lassen, Ind. Alt. p. 80. पण ते, उपर आपेला पुरातन उल्लेखो करतां, प्रमाणमां पश्चात्कालीन होवाथी तेमने आपणे अहीं प्रमाणरूपे गणी शकीए नहि.

वाथी पाछळथी मात्र वृजिओनो ज नहि पण पेला १८ गणराजाओना एकत्र समूहनो पण भय रहे. आथी पूर्व तरफथी हुमलो लई जवामां तेने वधारे सफळ थवानी आशा जणाई.

१५. कूणिकनी युद्ध योजना

वृजिओना प्रदेशनी अने वैशालीनी पूर्व बाजुए विदेहोनी भूमि आवी हती–जेनी राजधानी मिथिला हती. कूणिकने मातृपक्षे विदेहोना राजा साथे अंगत सगाई संबंध हतो. ते पोताने विदेहपुत्र (जुओ § १३), बौद्ध आगम प्रमाणे वैदेहीपुत्र (जुओ § ७) कहेवडावतो. आ ऊंची जातना सगाईना संबंधथी एनी शाख वधी हती एम लागे छे, कारण के तेथी तो ते तेने पोताना एक उपनाम तरीके वापरतो. आथी विदेहो एना रस्तामां अडचण उभी करशे एवा भयनुं एने कारण न हतुं. कूणिक मगधनी जूनी राजधानी राजगृहमां रहीने ईप्सित युद्धने दोरी न शके एटले एणे पोतानुं रहेठाण मगधना पूर्व तरफना प्रांत अंगना मुख्य शहेर चंपामां राख्युं. अंग घणा वखतथी–जरूर अजातशत्रुना पिता सेणिय बिंबिसारना वखतथी–ते मगध साम्राज्यमां ऊमेरी लेवामां आव्युं हतुं. आम मानवानुं कारण ए छे के एक वखत बुद्धे ज्यारे चंपामां वास कर्यो हतो त्यारे एमने एक उच्च कोटिनो ब्राह्मण–सोणदण्ड–मळवा आव्यो हतो; जे बिंबिसारदत्त 'राजदाय'–'ब्रह्मदेय्य' भोगवतो हतो. जैनोना मत प्रमाणे कूणिके पोताना राज्याभिषेक पछी तरत ज पोतानुं रहेठाण चंपामां राख्युं हतुं; कारण के औपपातिक सूत्र (जैनोनुं प्रथम उपांग)मां चंपाना पूर्णभद्र चैत्यमां महावीरना एक समवसरण उपरनुं अने ते प्रसंगे कूणिकनी पोतानी समस्त सैन्यसामग्री साथनी धामधूम भरी सवारीनुं विस्तृत वर्णन आपवामां आव्युं छे. आ प्रसंगना विस्तृत वर्णनने, जैनागमोना संग्राहको, आवा अन्य बधा प्रसंगो माटे एक नमुनारूपे लेता आव्या छे. औपपातिकसूत्रमांथी अमुक भागना मात्र प्रतीक आपी आ बाबत बधे नोंधवामां आवे छे. अने वण्णओ वडे तेने निर्दिष्ट करे छे. कूणिकनुं चंपामां महावीर साथेनुं मिलन जैनो माटे केटला विशेष अर्थवाळुं हतुं ए आ उपरथी समजाय छे.[1]

१६. वैशाली माटेनुं युद्ध

आ युद्ध केवी रीते शरु करवामां आव्युं ते विषे जैनोना निरयावली सूत्रमां एकदम बुद्धिगम्य वर्णन आपवामां आव्युं छे. आ विषयमां आपणे प्रवेश करीए ते पहेलां, आपणे ए चोक्कस करीए के जैन परंपराए मुख्य व्यक्तिओने अन्यप्रकारे सगाई संबंधथी वर्णवी छे. अनेक उपनामो उपरथी मालुम पडे छे के जे वडीलो हता ते विदेह तरफनां हतां. महावीरनी माताने विदेहदिन्ना,[2] तेमने पोताने विदेहदिन्ने अने विदेहजच्चे,[3]

---

१ आ वर्णनमां अत्यंत अर्थपूर्ण एक बनावनी मात्र यादगीरी ज साचववामां नथी आवी, पण ते वार्तांना वस्तुनो साचो आधार पण बने छे. एटले अहिं पण कूणिकनुं राज्यनी शरुआतमां ज चंपामां रहेठाण बदलवानी बाबतनो स्वीकार थयो छे.

२ कल्पसूत्र, जिनचरित § १०९

३ तेज स्थळे § ११०

कूणिकने विदेहपुत्ते—प्रसंगतः अजातशत्रुने विदेहिपुत्तो[1] कहेवामां आवतां. एम जणाय छे के विदेहना राजाने खास उच्चवंशीय मानवामां आवतो हतो अने तेथी तेनी साथेना सगपणना संबंध उपर खास भार मूकवामां आवतो हतो. अन्यपक्षे, जैन आगम परंपरा महावीरना जन्मस्थान वैशाली साथेनो संबंध शोधवा मथे छे, अने नीचे आपेली वंशपरंपरा गोठवे छे.[2] हैहय कुलनो चेटक वैशालीनो राजा छे. एनी बेन महावीरनां माता थाय. एनी पुत्री चेल्लणा श्रेणिकनी पट्टराणी अने कूणिकनी माता थाय. आ वंशपरंपरानो आधार निरयावली सूत्रमां आपेल वर्णन उपर छे. त्यां एम कहेवामां आव्युं छे के श्रेणिकने चेल्लणा उपरांत बीजी अनेक राणीओ हती. दा. त. नन्दा जेनो पुत्र अभय राज्याधिकारी हतो. वळी दश वधारे: काली, सुकाली, वगेरे, जेना काल, सुकाल वगेरे पुत्रो कूणिकना ओरमान भाइओ थता हता. आ तेमनी साथे नक्की करे छे के पोताना पिता श्रेणिकने केदमां नाखवो अने पोते राज्य पचावी पाडवुं. श्रेणिकने पदभ्रष्ट करीने राज्यना अगियार भाग पाडवामां आवे छे जेमांथी दरेक एक भाग वहेंची ले छे. कूणिकने भागे चंपा आवे छे. वैशाली माटेनुं युद्ध नीचे प्रमाणे § १७–२८मां वर्णवामां आवे छे.

कूणिकना नानाभाई वेहल्ल[3] पासे गन्धहस्ती अने एक बहु मूल्यवान हार हतो, जेने लीधे ते एक सारा राजा जेवो दीपतो. तेथी कूणिके आ बे वस्तुओने तेनी पासेथी लई लेवानी इच्छा करी. पण वेहल्ले ते माटे अर्धुं राज्य माग्युं. अने ते माटे ज्यारे कूणिके ना पाडी त्यारे वेहल्ल पेली वस्तुओ साथे वैशालीना राजा चेटकने आश्रये नासी गयो. कूणिके एक दूत पाठवी चेटक पासे वेहल्ल अने पेली वस्तुओ सोंपी देवा मागणी करी. चेटके बदला तरीके वेहल्ल माटे अर्धा राज्यनी सामी मागणी करी. त्रण वखत सामसामी दूत मोकलाया पण व्यर्थ. चेटक पोतानी सामी मागणीने वळगी रह्यो अने छेवटे तेणे कूणिक सामे युद्धनुं कहेण मोकल्युं. कूणिके आ समाचार पोताना दश भाइओने जणाव्या. अने एमने पोतपोताना राज्यप्रदेशमां लश्कर एकठुं करी तेने पोताना तरफ रवाना करवा मोकली दीधा. ते एकत्रित सैन्य अंगोना प्रदेशमांथी विदेहोनी भूमिमां वैशाली शहेर आगळ आवी पहोंच्युं. आज प्रमाणे चेटके काशी अने कोसलमांथी नव मल्लई अने नव लेच्छई गणरायाणो ने मददे बोलाव्या. अने तेमणे हा पाडी एटले तेमने लश्कर एकठुं करी पोताना पक्ष तरफ रवाना थवा तेणे कहेण मोकल्युं. छेवटे ते पोते मददगार साथिओ साथे पोताना प्रदेशनी सीमा पर्यंत शत्रुनी सामे गयो. हवे युद्ध शरू थयुं. जेमां चेटके कूणिकना काल, सुकाल वगेरे दश ओरमान भाइओने अनुक्रमे पोताना बाणोथी वींधी नाख्या. एटले काल, सुकाल

---

१ जुओ उपर § १५

२ अभिधानराजेन्द्र कोषमां चेडग, चेल्लणा, सेणिअ उपर आपेली हकीकत जुओ.

३ महावीरे एने पाछळथी धर्म दीक्षा दीधी. दीक्षा पछी ६ मासे ए निर्वाण पाम्यो. अन्तकृद्दसा ३,१०

वगेरे मरीने चोथी नरके चालता थया. कूणिकना आ नास्तिक ओरमान भाइओना नरक प्रयाणनुं वर्णन करवुं ए निरयावली सूत्रनो उद्देश छे; अने तेथी तेनुं एवुं नाम आपवामां आव्युं छे. अहिं आगळ युद्धनी विगतो विषे विशेष सूचन कर्यां सिवाय ते सूत्र अटकी जाय छे.

१७. वैशालीने जीती लेवुं

उपर आपेलुं वर्णन चेटकनो पक्ष ले छे ए स्पष्ट छे. चेटके दश ओरमान भाइओने जीती लीधा एनो निर्देश ते करे छे पण चेटकनी अंतिम हार, अने वैशालीना पतन विषे ते चुप रहे छे. अर्थात् ते प्रसंग सुधी न जतां वच्चेथी अटकी जाय छे. पण आवश्यक कथानकमां वर्णवेली कुलवालयनी कथामांथी आपणने ए युद्धना अंतिम परिणामनी माहिती मळे छे.[1] एम कहेवाय छे के कूणिके वैशालीमां पडाव नाख्यो. त्यां आकाशवाणी द्वारा नीचलो श्लोक संभळायो.

शमणे जइ कूलवालए मागहिअं गणिअं रमिस्सए ।
राया य अशोगचन्दए वेशालिं नगरिं गहिस्सए ॥

"ज्यारे भिक्षु कुलवालय मगधनी गणिका साथे रंगभोग भोगवशे त्यारे वैशाली शहेरने राजा अशोकचंद्र जीती लेशे."

आ श्लोकमां प्रथमाना एक वचननुं रूप ए देखाय छे. तेथी ए बतावे छे के ते पुरातन होवो जोइए. कथाना विकास विषे ऊंडा ऊतरवानी ए श्लोकमां जरूर जोवाई नथी; पण तेनुं बीज तो ए श्लोकमां समायेलुं छे ज. भविष्यवाणी आखरे साची ठरे छे, अने अशोकचंद्र[2] (कूणिक) वैशाली जीती ले छे. तेम करीने ए पोतानो निर्णय सफळ करे छे अने वृजिओनी भूमिने पोताना साम्राज्यमां जोडी दे छे.

अहीं आपणे एवा युगने अंते आवीए छीए के जेना इतिहास विषे बौद्ध आगमोमां कोई उल्लेख नथी मळतो; पण जैन आगमोमां केटलुंक सूचन मळी आवे छे—अने ते साथे प्रमाणो पण पूरा पाडवामां आवे छे—जेथी जणाय छे के महावीर बुद्ध करतां केटलांक (संभवतः सात) वर्षो विशेष जीव्या हता. त्यार पछीना नजीकना समयनी परिस्थिति उपर एक टूंको दृष्टिपात नाखवो ए अहिं कदाच अस्थाने नहि लेखाय.

वैशालीने जीती लीधा पछी मगधनो राजा चंपामां रहे ए अर्थहीन हतुं, तेथी कूणिकना अनुगामी उदायिने पोतानुं रहेठाण फरीथी साम्राज्यना मध्यभागमां

---

१ जुओ अभिधानराजेंद्र कोष, कुलवालय.

२ आवश्यकचूर्णि अने अन्य स्थळोमां अशोकचंद्र ए कूणिकनुं बिरुद (उपनाम) हतुं एम कहेवामां आव्युं छे. आ नाम लीधा सिवाय निरयावलीसूत्र (§ १२) कूणिकने ए नामे शामाटे बोलाववामां आवतो ते विषे आम जणावे छे—चेल्लणा एने एना जन्म पछी अशोकवृन्दमां मूकी दे छे. आथी आखुं वृंद अद्भुत तेजथी झळहळी ऊठे छे अने तेथी श्रेणिक तेना तेजनी प्रेरणाथी पाछो तेने तेनी मा पासे लई जाय छे.

बदल्युं–पण ते जूनी राजधानी राजगृहमां नहि, ते माटे एणे एक नवुं शहेर पाटलिपुत्र स्थाप्युं. ए स्थान विशालतर साम्राज्यनी जरुरियातोने बरोबर बंध बेसतुं हतुं, अने तेथी ते सत्वर अत्यंत मोटुं नगर थई गयुं. एटले वैशालीनुं महत्त्व घटतुं गयुं, अने नवी राजधानीना आकर्षणथी एनी वस्ती पण धीरे धीरे घटती गई.

जो के आपणने चोक्कस माहिती नथी मळती तो पण संभव छे के उदायिने साम्राज्यने वधार्युं हशे. गमे तेम होय तो पण पाडोशी राज्यो मगधना सत्वर वधता जता साम्राज्यने बहु संभाळपूर्वक जोई रह्यां हतां. उदायिनना खून विषेनी कथा (उदायिमारककथा[1])मां अवन्तिना मगध साथेना कथळता संबंध विषे ऐतिहासिक बनावनुं बीज समायेलुं जणाय छे. उदायिने पदभ्रष्ट करेला एक राजानो पुत्र अवन्तिना राजानी नोकरीमां रह्यो, के जेने पण उदायिननी साथे वेर हतुं. पेला पुत्रे अवन्तिराजने वचन आप्युं के ते तेने उदायिनना तंत्रमांथी मुक्ति अपावशे. खून केवी रीते करवामां आव्युं ते एक धार्मिक कविनी सुंदर कविता छे, पण तेथी कंई ए विवादनो विषय नथी के अवन्तिराजने तेनी जाणकारी नीचे एक खूनीए तेने तेना धिक्कारपात्र शत्रु उदायिनना तंत्रमांथी मुक्त न कर्यो होय ? आवुं कार्य राजनीतिने कांई अयोग्य नथी लागतुं. पण कथा वर्णवे छे तेटलुं सहेलाईथी आ काम थयुं होय एम लागतुं नथी. कारण के अहिं उदायिननुं मृत्यु ए ज कंई मुख्य वस्तु नथी, पण तेना वंशनो नंदो द्वारा करवामां आवेलो उच्छेद ए खास प्रसंग छे. आने लीधे बधी परिस्थिति अस्तव्यस्त बनी गई हती. ए नन्दो, ज्यां सुधी मौर्योए तेमने सत्ताभ्रष्ट न कर्या त्यां सुधी, राज्य करता रह्या हता.

*

[स्वर्गवासी सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् प्रो. हेरमान याकोबीए सन् १९३० मां आ निबन्ध मूळ जर्मन भाषामां – BUDDHAS UND MAHĀVĪRAS NIRVĀNA UND DIE POLITISCHE ENTWICKLUNG MAGADHAS ZU JENER ZEIT ए नामे लख्यो हतो अने ते SONDERAUSGABE AUS DEN SITZUNGSBERICHTEN DER PREUSSISCHEN AKADEMIE DER WISSENSCHAFTEN, PHIL–HIST. KLASSE 1930, XXVI मां प्रकाशित थयो हतो. महावीर अने बुद्धना निर्वाण समय विशे नवा दृष्टिबिन्दु साथे ऊहापोह करनारो आ तेमनो छेल्लो निबन्ध छे. – संपादक]

*

१ परिशिष्टपर्वन् ६,१८९–२३०, आवश्यक कथा, १७,११,१९ प्रमाणे.

भाष्यकार जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणनो सुनिश्चित समय

[संपादकीय लेख]

*

विशेषावश्यक भाष्यादि महान् ग्रन्थोना प्रणेता युगप्रधानावतार आचार्यवर्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणना प्रादुर्भावना समय विषे आज सुधीमां कोई सुनिश्चित उल्लेख प्रसिद्धिमां आव्यो नथी। श्वेतांबर संप्रदायनी केटलीक पाछली पट्टावलियोमां एमना स्वर्गवास विषेनो उल्लेख मळी आवे छे जे वि. सं. ६४५ नी आसपासनुं सूचन करे छे.

लगभग वीसेक वर्ष पहेलां ए क्षमाश्रमणनी एक विशिष्ट ग्रन्थकृति नामे **'जीतकल्पसूत्र'नी**, चूर्णि आदि साथेनी एक आवृत्ति में संपादित—प्रकाशित करी हती जेनी प्रस्तावनामां एमना समय विषे केटलोक ऊहापोह कर्यो हतो अने तेना उपसंहारमां सूचव्युं हतुं के "खास कांई विरोधी प्रमाण नजरे न पडे त्यां सुधी पट्टावलियोमां जे वीर संवत् ११९५—विक्रम संवत् ६४५नी साल एमना माटे लखेली छे तेनो स्वीकार करीए तो तेमां कशी हरकत नथी." (जुओ, जीतकल्पप्रस्तावना, पृ० १६) पण हवे मने एमना समय विषेनी एक सुनिश्चित मिति मळी आवी छे अने ते अनुसार एमनो स्वर्गवास वि. सं. ६४५ मां नहीं पण ६६६ पछी क्यारेक थएलो होवो जोईए—एटले के विक्रमना ७मा सैकानी ४ थी पचीसी एमना अवसानकालमाटे निर्धारित करवी जोईए। ए सुनिश्चित मिति ते एमना ज महान् ग्रन्थ विशेषावश्यकभाष्यनी जे एक प्राचीनतम प्रति जेसलमेरना सुप्रसिद्ध ग्रन्थ भण्डारमां मारा जोवामां आवी छे तेनी अन्ते लखेली मळी आवी छे.

सन् १९४२ना दीसंबर मासमां, ज्यारे हुं जेसलमेरनो भंडार जोवा केटलाक साथियोने लईने त्यां गयो त्यारे ए भंडारमां सुरक्षित एवा अनेकानेक प्राचीन ताडपत्रीय ग्रंथोनी प्रतियोनुं अवलोकन करती वखते अकस्मात् ज मने ए प्रतिने जोवानी घटना बनी गई। अकस्मात् एटला माटे के ए भंडार जोवानो प्रारंभ कर्यो ते वखते तो में प्रथम जे अलभ्य—दुर्लभ्य ग्रंथोनी प्रतियो हती ते ज खास जोवानी धारणा राखी हती. कारण शुरुआतमां तो ए भंडारनी समस्त प्रतियो जोवानी अने तपासवानी संपूर्ण अनुकूलता अने स्थिरता मने प्राप्त न हती. तेथी

प्रारंभमां तो में जे ज्ञात के प्रसिद्ध ग्रन्थो हता तेमने जोवानो विचार ज राख्यो न हतो. ए भंडारनी जे सूचि सद्‌गत चिमनलाल दलाले तैयार करी हती अने जे गायकवाडस् ओरिएन्टल सीरीझमां प्रकट थई छे, तेने आधार राखीने ज में ए भंडारस्थित ग्रंथप्रतियो जोवानो उपक्रम चालू कर्यो हतो. विशेषावश्यकनी ए प्रतिनी कोई खास नोंध उक्त दलालनी सूचिमां करेली न हती. एमणे मात्र एटलीज नोंध करेली हती के 'वेरी ऑल्ड (Very old)' घणी जूनी. एटले में धारेलुं के प्रति बहु त्रुटित के पानाओ जीर्ण-शीर्ण थएलां हशे तेथी तेमणे ए माटे एवी नोंध करेली हशे. बीजुं ए ग्रन्थ सुप्रसिद्ध होई मुद्रित थएलो हतो तेथी एने जोवा माटे खास समय गुमाववो मने ठीक न लाग्यो. भंडारनी प्रतियोनी रोज ले-मूक थया करती ते वखते ए नंबरवाळी प्रति पण वारंवार हाथमांथी पसार थती, तेथी में प्रतियो काढनार भाइयोने एने एक बाजूए मूकी देवानी सूचना करी. परंतु बीजे दिवसे ए पोथी वळी पाछी हाथमां आवी चढी अने साथियोमांथी एकजणे एने खोलीने जोवा मांडी तो एना अक्षरो तद्दन जुदी ज जातना जणाया अने ते खोलनार भाई उकेली न शक्या; एटले ए प्रति मारा हाथमां मूकी. प्रतिनी लिपि जोतां ज मने जणायुं के ए तो कोई बहु ज जूनी प्रति होय तेम देखाय छे अने तेथी श्रीदलाले एना माटे Very old (घणी जूनी) एवी जे नोंध करी छे तेनो अर्थ मने समजाणो. स्व. दलालनी दृष्टि बहु तीक्ष्ण हती अने तेमने जूनी प्रतो वांचवानो परिचय पण सारो हतो, परंतु आ प्रतिनी लिपि सरलताथी तेओ उकेली शक्या नहि होय अने अक्षरोना आकार उपरथी समजी शक्या होय के प्रति बहु जूनी होवी जोइए, तेथी तेमणे मात्र एटली ज नोंध पोतानी ए यादीमां करी दीधी होवी जोइए. प्रतिनी लिपिनुं वळण जोतां ज मने जणायुं के पाटण के जेसलमेरना भंडारोमां ताडपत्रनी जेटली प्रतियो आज सुधीमां मारा जोवामां आवी हती ते सर्व करतां आनी लिपि वधारे जूनी हती अने तेथी वि. सं. ११०० नी पहेलां क्यारेक ए लखाएली होवी जोइए एवी मारी कल्पना थई. प्रतिना आदि अने अन्तनां पानानी स्थिति एकंदर सारी लागी. पत्रो पण साधारण रीते बीजी बीजी प्रतियोनां करतां वधारे पातळां अने वधारे श्लक्ष्ण (चीकणां) जणायां अने तेथी कोई जुदी ज जातनां अने प्रदेशनां ताडवृक्षनां ए पानां होवा जोइए एवी मारी दृष्टिने आभास थयो. प्रथम में प्रारंभनुं पानुं जोयुं तो तेमांनी पहेली पंक्तिना अक्षरोना शिरोभागनी रेखाओ घणी खरी खरी गएली जणाई छतां एटलुं जाणी

शकायुं के ग्रंथारंभे लिपिकारे मात्र ९ आवा चिह्नथी ॐकारनो निर्देश करीने ज 'कयपवयणप्पणामो' ए आदिवाक्यथी ग्रंथना लखाणनो प्रारंभ कर्यो हतो. ग्रंथनी ५–७० पंक्तिओ वांचतां जणायुं के मूळनी भाषानुं स्वरूप पण, मुद्रित थएली वाचना करतां, केटलेक ठेकाणे वधारे प्राचीनरूपवाळुं छे। प्रारंभनां बे-त्रण पानाओ फेरव्या पछी में बहु ज उत्सुकता साथे अन्तनुं पानुं जोयुं अने अन्ते लिपिकारनो नाम के समय निर्देशादि सूचवतो कोई उल्लेख छे के केम ते जोवा प्रयत्न कर्यो। ए अन्तिम पत्रनी छेल्ली पूंठी वधारे घसाई गएली होवाथी अक्षरो खूब झांखा पडी गया छे अने पानानी आजुबाजुनी कोरो पण केटलीक खरी पडेली छे। छतां अक्षरो स्पष्ट वांची शकाय तेवी स्थितिमां तो छे ज। प्रथम दर्शने मने अन्त भागमां लेखकनी समयादि निर्देशक तेवी कोई पंक्ति न जणाई। अन्तिम पंक्तिनुं छेल्लुं वाक्य आ प्रमाणे दृष्टिगोचर थयुं– **गाथाग्रं चत्तारि सहस्साणि तिण्णि सताणि** ॥ (अर्थात्–४ हजार ३०० गाथानो संग्रह) पण ए ज पंक्तिमां आ वाक्यना पहेलांना शब्दोमां मने **"वलभीणगरीए इमं"** आ वाक्य दृष्टिगोचर थयुं अने ते जोतां ज मने एक अद्भुत संवेदन थयुं। विशेषावश्यक भाष्यना अन्ते वलभी नगरीनो निर्देश ! शुं ए कोई साचा शब्दो हुं जोई रह्यो छुं के कोई दृष्टिभ्रम थई रह्यो छे। हुं वधारे स्वस्थ थईने उपरनी पंक्तिओ वांचवा लाग्यो। विशेषावश्यक भाष्यनी जे अन्तिम गाथा, मुद्रित तेम ज अन्यत्र उपलब्ध थती जूनी हस्तलिखित प्रतियोमां मळी आवे छे तेथी हुं परिचित हतो एटले मने ए गाथा पकडतां कशी वार न लागी। परंतु ए सुज्ञात गाथा पछी नीचे आपेली बे अदृष्टपूर्व अने अज्ञातपूर्व एवी जे गाथाओ वांचवामां आवी तेथी मने ते क्षणे जे अद्भुत आनन्द थयो ते तद्दन अकथ्य हतो। मने तत्क्षणे थयुं के आटलो श्रम अने खर्च वेठीने जे हुं आ जेसलमेरनो भंडार जोवा आव्यो छुं ते आजे मात्र आ बे गाथाओ मळवाथी ज संपूर्ण सफळ थई गयो छे; अने हवे जो बीजुं कशुं पण जोवा, जाणवा के उतारवा जेवुं नवुं साहित्य आ भंडारमां मने न मळे तो पण, हुं पूर्ण तुष्ट थईने अहिंथी जई सकीश। ए बे गाथाओ ते आ प्रमाणे छे–

पंच सता इगतीसा सगणिवकालस्स वट्टमाणस्स।
तो चेत्तपुण्णिमाए बुधदिण सातिमि णक्खत्ते॥
रज्जे णु पालणपरे सी [लाइ] च्चम्मि णरवरिन्दम्मि।
वलभीणगरीए इमं महवि–––मि जिणभवणे॥

३.१.२५.

आ बे गाथाओनो अर्थ ए छे, के शकनृप-कालना वर्तमान वत्सर ५३१ ना चैत्रशुक्ल पूर्णिमा बुधवार अने स्वातिनक्षत्रना दिवसे* वलभी नगरीमां, शीलादित्य राजाना राज्यसमये, [अमुक नामांकित] जिनभवनमां, आ ग्रंथनी रचना करवामां आवी छे. जिनभवननुं नाम सूचवनार शब्द, पानानो ए भाग जराक खरी गएलो होवाथी, जतो रह्यो छे. पांच के छ अक्षरनो ए शब्द लागे छे, तेमांथी प्रथमना त्रण अक्षरो **'महवि'** उपलब्ध छे. आमां जणावेलो शकनृप-काल ते प्रसिद्ध शक संवत् छे जेनो प्रारंभ वि० सं० १३५ मां, अने इ०स० ७८-७९ मां थाय छे। आ हिसाबे शक संवत् ५३१ ते वि०सं० ६६६ अने इ०स० ६०९-१० बराबर थाय छे। आमां उल्लेखेलो राजा शीलादित्य ते वलभीना मैत्रकवंशनो सुप्रसिद्ध राजा प्रथम शीलादित्य अपर नाम धर्मादित्य छे, जेनो राज्यकाल इ०स० ५९९ थी ६१४ सुधीनो सप्रमाण निर्धारवामां आव्यो छे। ए राजानां अनेक ताम्रपत्रो मळ्यां छे जेमां गुप्त-वलभी संवत् २८५ थी ते २९० सुधीना संवत्सरोनो उल्लेख थएलो छे। ए गुप्त-वलभी संवत्नो प्रारंभ विक्रम सं० ३७६ अने शक सं० २४१ मां थाय छे। आ गणनाए २८५ गुप्त-वल्लभी संवत्सर ते शक संवत् ५२६ बराबर थाय छे। एटले के शिलादित्यना मळेला ताम्रपत्रोना आधारे ज शक सं० ५२६ थी ते ५३१ सुधीमां तो ए राजानी विद्यमानता सुनिश्चितरूपे सिद्ध थई जाय छे अने तेथी प्रस्तुत गाथागत शक सं० ५३१ ना उल्लेखने संपूर्ण पुष्टि मळी रहे छे। वळी आ उल्लेखथी शीलादित्य प्रथमना समय माटे पण एक वधु सुनिश्चित आधार मळी आवे छे। कारण के ए राजानो सत्तासमय सूचवनार, एना ताम्रपत्रो सिवाय, बीजो कोई स्वतंत्र साहित्यगत उल्लेख अत्यार सुधीमां प्रकाशमां आव्यो नथी। आथी आडकरी रीते गुप्त-वलभी संवत्नी गणना माटे पण एक नवीन प्रमाणनी आपणने उपलब्धि थाय छे, के जे गणना माटे, परस्पर केटलाक विसंवादी प्रमाणोने लीधे, हजी सुधी सुनिश्चितता सिद्ध थई शकी नथी।

आ गाथाओनी उपलब्धिथी आपणने जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणना समय अने स्थान बन्ने विषेनी चोक्कस माहीती मळी आवी छे जे जैन साहित्यना इतिहासमाटे एक सीमास्तंभ सूचक वस्तु छे। ए उपरथी जणाय छे के वलभी ए जैन

* योगायोगथी आजे ज्यारे हुं आ लेख लखी रह्यो छुं, त्यारे पण चैत्रपूर्णिमानो दिवस छे. अने जो के वार शुक्र छे, पण नक्षत्र स्वाति ज छे। वर्तमान शक संवत् १८६७ छे, ए गणतरीए आजथी बराबर, १३३५ वर्ष पहेलां, जिनभद्र गणिए विशेषावश्यक भाष्यनी महान् रचना पूर्ण करी हती।

साहित्य अने जैन संप्रदायनुं घणा लांबा समय सुधी एक केन्द्रस्थान बनी रह्युं हतुं। देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणे वीरनिर्वाण सं. ९८० (—एटले के परंपरागत गणना प्रमाणे विक्रम सं० ५१० अने डॉ० याकोबीनी गणनाप्रमाणे विक्रम सं० ५७०)मां, वलभीमां विद्यमान जैन आगमोनी वाचनाने संकलित अने सुव्यवस्थित करी तेम ज तेने पुस्तकारूढ बनावी। जिनभद्र गणिना आ ग्रन्थनिर्माण समयथी पूर्वे लगभग एक सैकानी अन्दर ज जैन आगमोनुं आ महान् ऐतिहासिक संपादन कार्य पूर्ण थयुं हतुं। आगमोनी वाचना सुनिश्चित थया पछी ते उपर विशेषरूपे भाष्यो के चूर्णियो आदि रचावानो प्रारंभ थयो हतो। एवा भाष्यकारोमां संघदास गणि अने जिनभद्र गणि मुख्य जणाय छे। संघदास गणिए बृहत्कल्पभाष्य, पंचकल्पभाष्य आदिनी रचना करी छे त्यारे जिनभद्र गणिए निशीथभाष्य, जीतकल्पभाष्य, आवश्यक-विशेषभाष्य आदि ग्रन्थोनी रचना करी छे। संघदास गणिना समय अने स्थान आदि विषे अद्यापि कोईए कशो विचार कर्यो होय तेम जणातुं नथी; तेम ज एमनी कृतियो विषे पण कोई प्रकारनो ऊहापोहात्मक प्रकाश पाडवामां आव्यो नथी। एमनी कृतियोनुं जो अन्तरंग परीक्षण करवामां आवे तो तेमांथी केटलीक उपयोगी हकीकत जरूर मळी आवे तेम छे। बृहत्कल्पभाष्यना अमुक उल्लेखो उपरथी सूचित थाय छे के तेमनो समय पण लगभग जिनभद्र गणिना समयनी बहु ज नजीक होवो जोइए अने तेओ पण जिनभद्र गणिनी जेम केटलोक समय वलभीमां रहेला होय तो असंभवित नथी।

आ बन्ने महान् भाष्यकारो पछी, तरत ज सुप्रसिद्ध चूर्णिकार जिनदास गणि महत्तर थया जेमणे आवश्यकचूर्णि, निशीथचूर्णि, नन्दिचूर्णि, अनुयोगद्वारचूर्णि आदि अनेक चूर्णिग्रन्थोनी रचना करी। एमांथी नन्दिसूत्रनी चूर्णिना अन्ते, जिनभद्र गणिनी जेम, आपणा सद्भाग्ये, एमणे पण पोताना समयनो सूचक एक संक्षिप्त निर्देश करी दीवेलो छे जेना परथी आपणे एमना जीवन समयनी एक निश्चित साल मेळवी शकीए छीए। ए निर्देश आ प्रमाणे छे—"**शकराज्ञः पञ्चसु वर्षशतेषु व्यतिक्रान्तेषु अष्टनवतिषु नन्द्यध्ययनचूर्णिः समाप्ता।**" अर्थात्—'शकराजाना ५९८ वर्ष वीत्या त्यारे आ नन्दिसूत्रनी चूर्णिनी रचना समाप्त थई।'

आ उल्लेख परथी आपणने स्पष्ट ज्ञात थाय छे के जिनभद्र गणिए पोताना विशेषावश्यक भाष्यनी रचना पूरी करी ते पछी बराबर ६७ वर्ष जिनदास गणिए पोतानी नन्दिचूर्णिनी रचना समाप्त करी हती। आ रीते जोतां जिनभद्र गणि अने

जिनदास गणि तद्दन समकालीन न होय तो पण एक बीजाना बहु ज निकट-कालीन हता एमां शंका नथी। संभव तो एवो छे के जिनभद्र गणिनी उत्तरावस्था अने जिनदास गणिनी पूर्वावस्था लगभग एकसमयावच्छेदक हशे। जिनदास गणिनी कृतियोनुं निरीक्षण जो वधारे सूक्ष्मताथी करवामां आवे तो आपणने एवी अनेक बाबतो मळी आवे, जे परथी आपणे एमना स्थाननो पण केटलोक आभास मेळवी शकीए। एमना ग्रन्थोना उल्लेखो परथी जाणवाने कारण रहे छे के ए पण कदाचित् वलभीमां केटलोक समय वस्या होय। सौराष्ट्र अने आनर्तना प्रदेशनो एमने सारी पेठे परिचय हतो, तेवा तो घणा उल्लेखो एमनी कृतियोमां चोक्कसरूपे मळी आवे छे. एनो विचार अमे कोई बीजा प्रसंगे करवा धार्यो छे।

जिनदास गणि महत्तरनी उत्तरावस्थानो समय ए ज महान् टीकाकार अने शास्त्रकार हरिभद्रसूरिनी पूर्वावस्थानो समय छे, ए आपणने कुवलयमालाना अन्तिम उल्लेखथी निश्चितरूपे ज्ञात थई गयुं छे। जिनदास गणिनी नन्दिचूर्णिनी रचना समाप्तिना संवत्सर पछी पूरा १०२ वर्षे उद्योतनसूरिए पोतानी महान् कृति कुवलयमाला कथानी रचना पूरी करी। उद्योतनसूरिए हरिभद्रसूरि पासे न्यायशास्त्रोनो अभ्यास कर्यो हतो, ए वस्तुनो एमणे बहु ज स्पष्ट शब्दोमां, सादर अने साभार उल्लेख कर्यो छे, तेथी हरिभद्रसूरि, उद्योतनसूरिनी युवावस्थासमये, वृद्धावस्था व्यतीत करता हता ए सुनिश्चित छे। एथी हरिभद्रसूरिए, जिनभद्र गणि तेम ज जिनदास गणिए बन्ने महान् आचार्योनी कृतियोने बराबर जोएली होवाथी तेमनो विशिष्ट उपयोग जे एमनी कृतियोमां थएलो आपणने देखाय छे ते सर्वथा संगत थई जाय छे। जो के सर्वथा निश्चित रूपे नहि, पण सामान्य रीते, ज्यां सुधी बीजी कोई विशेष वस्तुनी उपलब्धि नहि थाय त्यां सुधी, आ च्यारे महान् ग्रंथकारोनो आनुमानिक समय आ प्रमाणे मानी शकाय।

शक संवत् ४००–४५० वच्चे देवर्द्धि गणि क्षमाक्षमण
„ ५००–५५० „ जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण
„ ५५०–६०० „ जिनदास गणि महत्तर
„ ६००–६५० „ हरिभद्रसूरि
„ ६५०–७०० „ उद्योतनसूरि

जिनभद्र गणि क्षमाश्रमणनी मळी आवेली प्रस्तुत निश्चित मितिना आधारे, आ रीते जैन इतिहासनी अनेक अव्यवस्थित अने अनिश्चित समय गणनाओ उपर सारो प्रकाश पाडी शकाय तेम छे अने जैन साहित्यना क्रमविकासनी केटलीक विशिष्ट अने प्रमाणभूत परंपरा गोठवी शकाय तेम छे।

*
* *

चालुक्य भीमदेव प्रथमनुं संवत् ११२० नुं एक अप्रसिद्ध ताम्रपत्र.

*

अहिं नीचे प्रकट करवामां आवती प्रतिलिपिवाळुं मूळ ताम्रपत्र पालणपुर राज्यमां आवेला वरणावाडा गामना एक जैन भाईना कब्जामां छे। कोई २०–२२ वर्ष पहेलां मने ए ताम्रपत्रनी भाळ लागी हती अने तेथी पालणपुर राज्यना एक आगेवान अमलदार तेम ज प्रतिष्ठित सद्गृहस्थ स्व० श्रीचंदुलाल सोभागचंद कोठारी – जेओ मारा अत्यंत निकट स्नेही अने बन्धुजन जेवा हता – द्वारा ए ताम्रपत्र मेळववानी ने जोवानी योजना करी हती। परंतु दुर्भाग्ये ते पछी थोडा ज दिवसमां अकस्मात् रीते श्रीचन्दुभाईनो स्वर्गवास थई गयो अने तेथी ते पछी ए विषे कशुं थई शक्युं नहि। हमणां, भाई श्री पं० अंबालाल प्रेमचंद शाहा मार्फत ए ताम्रपत्रनी विश्वसनीय नकल मारी पासे आवी छे जे अहिं प्रकट करवामां आवे छे।

आ शासन-पत्रनी अविकल नकल सुप्रसिद्ध जैन इतिहासविद् पं० मुनि श्रीकल्याण विजयजीए जाते ए ताम्रपट उपरथी करेली छे। पालणपुरथी ६ कोश उपर तारंगा तरफ जतां, ए वरणावाडा गाम आवे छे अने उपर जणाव्युं तेम त्यांना एक जैन गृहस्थ पासे आ असल ताम्रपत्र विद्यमान छे। एना कुल बे पत्रां छे जेमनी एकेकी बाजुए लखाण कोतरेलुं छे। बन्ने पत्रोने वच्चे एक कडी नांखीने जोडी राखेलां छे। पत्रोनी लंबाई १० आंगळ अने पहोळाई ६ आंगळनी छे। एमां बधी मळीने लखाणनी १५ पंक्तिओ छे। ताम्रशासनना लेखनो उद्देश वरणावाडा ग्रामनिवासी मोढब्राह्मण जानकने, ३ हलप्रमाण भूमि दान करवानो छे। विक्रम संवत् ११२० ना पोष शुदि पूर्णिमा, के जे दिवसे उत्तरायण पर्वनो योग थयो हतो, अने महाराजाधिराज भीमदेव पोताना राज्यप्रवास दरम्यान इला नामना (हालनुं ईडर, जूनुं नाम इलादुर्ग) स्थानमां शिबिर नाखीने रह्या हता, ते वखते महेश्वरनी पूजा करीने, पोताना तेम ज पूर्वजोना पुण्य अने यशनी अभिवृद्धि अर्थे, आ दान करवामां आव्युं हतुं। दानमां आपेली भूमिनो परिचय आ प्रमाणे आपवामां आव्यो छे – ए भूमि, वरणावाडा ग्राम के जे धाणदाहार (हालनुं धाणधार) पथकमां आवेलुं छे तेना पादरमां आवेला खेतरनी छे। एनी चतुःसीमा आ प्रमाणे छे – पूर्वमां करषसबलि नामना गामनो रस्तो आवेलो

छे। दक्षिणमां गामनुं पादर आवेलुं छे। पश्चिम बाजूमां छींद्रियालो रस्तो छे अने उत्तरमां केशव अने वालणनुं खेतर छे। कायस्थ वटेश्वरना पुत्र केक्के आ शासनपत्र लखीने तैयार कर्युं हतुं अने महासान्धिविग्रहिक भोगादित्ये एने राज्यना दफतरमां नोंध्युं हतुं। श्री भीमदेवे ए पर हस्ताक्षर कर्या हता।

ताम्रपत्रनी प्रतिलिपि

(1) ९ विक्रमसंवत् ११२० पौष शुदि १५ अद्येह काल इला-
(2) वासिते श्रीमद्विजयिकटके समस्तराजावली विराजि-
(3) तमहाराजाधिराज भीमदेवः स्वभुज्यमान धाणदा-
(4) ह्वारपथके समस्तराजपुर(रु)षान् जनपदांश्च बोधय-
(5) त्यस्तु वः संविदितं यथा अद्योत्तरायणपर्वणि महेश्व-
(6) रमभ्यर्च्य पित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये मोढब्रा-
(7) ह्मणजानकाय वरणावाडाग्रामे पाद्रसत्कक्षेत्रे
(8) घातुकसत्कक्षेत्रे च इति हलत्रयस्य हलं ३ भूमी
(9) शासनेनोदकपूर्वमस्माभिः प्रदत्ताऽस्यां स्व(च)पूर्व-
(10) स्यां करषसवलिग्राममार्गः दक्षिणस्यां ग्रामपाद्रं प-
(11) श्चिमायां छींद्रियालामार्गः उत्तरस्यां क(के?)शवबालणयोः
(12) क्षेत्रमिति। चतुराघाटोपलक्षितायाः भूमेरस्याः प-
(13) रिपंथना केनापि न कार्या। लिखितमिदं शासनं का-
(14) यत्थ(स्थ) वटेश्वरसुत केक्केन। दूतकोऽत्र महासां-
(15) धिविग्रहिक श्रीभोगादित्य इति। भीमदेवा [:] ॥

केटलीक प्रासंगिक हकीकत

भीमदेव १लाना अत्यार सुधीमां ३ ताम्रपत्रो प्रसिद्धिमां आव्यां छे, जेमां २ संवत् १०८६ नी सालनां छे अने त्रीजुं सं० १०९३ नी सालनुं छे। ८६ नी सालनुं एक दानपत्र कार्तिक सुदि पूर्णिमानुं, अने बीजुं वैशाखी पूर्णिमानुं छे। त्रीजुं दानपत्र संवत् ९३ ना चैत्र शुदि ११ नुं छे*। प्रस्तुत दानपत्र ४ थुं

* आ दानपत्रमां संवत्ना निर्देशक १०९३ एवा च्यारे आंकडाओ लखवाने बदले एकला ९३ना ज बे आंकडा लखेला होवाथी एना संपादक डॉ० फ्लीटे (इन्डियन एन्टीक्वेरी, पु० १८, पृ० १०८) ९३ नो संवत् ए सिंहसंवत् छे अने तेथी एनी साल वि० सं० १२६२–६३ नी कल्पीने आ दानपत्र बीजा भीमदेवनुं होवानुं अनुमान कर्युं छे। पण डॉ.

छे। अने ए भीमदेवना जीवनना छेल्ला दिवसोनुं ज्ञापक होई खूब अगत्यनुं छे। आ शासनपत्र पण उक्त त्रणे शासनपत्रोनी तद्दन समान शैलीए ज लखाएलुं छे। प्रथमनां त्रणे शासनोनो लेखक ज्यारे कायस्थ कांचनसुत वटेश्वर छे, त्यारे प्रस्तुत शासननो लेखक ए वटेश्वरनो पुत्र केक्कक छे। ए केक्कक (अथवा केकाक) नुं नाम, भीमदेव पुत्र कर्णदेवना संवत् ११३१ ना नवसारीवाळा ताम्रपत्रमां, तेम ज संवत् ११४८ ना सूनकवाळा ताम्रपत्रमां पण मळे छे। सं० ११३१ वाळा शासनपत्रमां ज्यारे तेनो निर्देश सामान्य लेखक तरीके (राज्यशासन लखनार) ज करवामां आवेलो छे त्यारे ११४८ वाळा शासन पत्रमां तेने 'आक्षपटलिक' नी उपाधिथी अंकित करेलो छे। एथी जणाय छे के ते वखते ए, राज्यना समस्त दफतर विभागनो सर्वोपरि अधिकारी बन्यो हतो। ए उपरथी आपणने ए पण जाणवा मळे छे के केकाकनुं खानदान ठेठ मूलराजना राज्यसमयथी ज अणहिल-वाडना राजकीय दफतरखाना साथे अव्यवहित रूपे संकळाएलुं चाल्युं आवतुं हतुं। वि० सं० १०४३ वाळुं मूलराजनुं ताम्रशासन जे कडी गाममांथी मळी आवेलुं, तेनो लेखक कायस्थ कांचण छे, जे जेज्जाकनो पुत्र हतो अने आपणा आ प्रस्तुत ताम्रपत्रना लेखक केक्ककनो प्रपिता थतो हतो। मूलराजना सं. १०५१ वाळा बीजा ताम्रशासननो लेखक पण ए ज कांचन छे। आ रीते ठेठ मूलराजथी लई

फ्लीटनी अगाउ १२ वर्ष उपर डॉ. ब्युह्लरे (इन्डि. एन्टि., पु० ६, पृ० १९३-४) उपर्युक्त सं० १०८६नुं प्रथम भीमदेवनुं जे दानपत्र प्रकट कर्युं हतुं तेमां लेखक तरीके ए ज कायस्थ कांचनपुत्र वटेश्वरनुं अने दूतक तरीके ए ज महासांधिविग्रहिक चंडशर्मानुं नाम उल्लिखित होवाथी आ ९३ नी सालवाळुं ताम्रपत्र पण असन्दिग्धरीते ए ज प्रथम भीमदेवनुं होई शके, ए वस्तु तरफ डॉ० फ्लीट जेवा महाविचक्षण विद्वान्नुं लक्ष्य केम न खेंचायुं ए आश्चर्य जेवुं गणाय। अने वधारे आश्चर्य कारक तो ए छे, के फार्बस गुजराती सभा तरफथी जे "गुजरातना ऐतिहासिक लेखो" नामना दलदार ग्रन्थो बहार पाडवामां आव्या छे, तेना बीजा भागमां नं० १५९ ना अंकनीचे ए दानपत्रनी जे प्रतिलिपि आपवामां आवी छे, त्यां पण एने, डॉ० फ्लीटना भूलभरेला लखाणना आन्धळा भाषान्तर साथे, बीजा भीमदेवना दानपत्र तरीके मुद्रित करवामां आव्युं छे। ए दानपत्र माटे डॉ० किलहॉर्ने एपि. इन्डि. ना पु० १, पृ. ३१७ मां, सूनकवाळा कर्णदेवना ताम्रपत्रनुं विवेचन करती वखते, स्पष्टरीते ज एने प्रथम भीमदेवनुं दानपत्र बताव्युं छे; तेम ज म. म. डॉ० गौ० ही० ओझाए पोतानी प्राचीन लिपिमालामां पृ० १८२ उपर ए विषे विस्तृत टिप्पणी आपीने डॉ० फ्लीटनी भूलनुं निराकरण पण कर्युं छे। छतां "गुजरातना ऐतिहासिक लेखो"ना संपादके ए माटे कशी ज विचारणा करवानी तकलीफ न लीधी अने अभ्यासियोने भ्रममां नांखवानी उलटी असेवा करी छे।

कर्णदेवना राज्यना अन्तसुधी तो ए ज कायस्थ खानदान अणहिलपुरना राजकीय दफतर खातामां अग्रणी अधिकार भोगवतुं हतुं एवुं, आपणे आ ताम्रशासनोना लखाणो उपरथी जाणी शकीए छीए ।

आ ताम्रपत्रमां दूतक तरीके जे महासान्धिविग्रहिक भोगादित्यनुं नाम मळे छे ते कर्णदेवना उक्त सं० ११३१ वाळा ताम्रपत्रमां पण अंकित छे ।

भीमदेवना राज्यकालनुं आ छेल्लुं ताम्रपत्र होय एम जणाय छे । प्रबन्धचिन्तामणिमां आपेली मिति प्रमाणे वि० सं० ११२० ना चैत्र वदि ७ ना दिवसे कर्णदेवनो राज्याभिषेक थयो हतो तेथी सामान्यरीते ए ज मितिए भीमदेवनुं मृत्यु थएलुं आपणे मानवुं जोइए । ए हीसाबे भीमदेवना अवसान काल पूर्वे सवा त्रण मास उपर ज ए दानपत्र करवामां आव्युं हतुं, एम कही शकाय ।

***

भीमदेवनो संवत् १०८७ नो एक अप्रकाशित संक्षिप्त शिलालेख.

*

जैनोना सुप्रसिद्ध तीर्थस्थान कुंभारीया (प्राचीन आरासण)मां शान्तिनाथना मन्दिरमां एक जैन मूर्ति छे जेना उपर नीचे आपेलो लेख अंकित थएलो छे ।

९ श्रीमद्विक्रमभूभृतः स्वँर-वसु-व्योमेन्दुं-संख्याख्यया
ख्यातेऽब्दे प्रवरे सुसौख्यमवति श्रीभीमभूपे भुवम् ।
नन्नाचार्यगणस्य भूषणकरे स्वारासणस्थानके
बिम्बं पूज्यमकारि सूरिभिरिदं श्रीसर्वदेवाभिधैः ॥

अंकतः १०८७ आषाढ शुदि २।

आ लेखनो सार ए छे के वि. सं. १०८७मां ज्यारे भीमदेव पृथ्वीनुं सुखरूपथी पालन करतो हतो, त्यारे नन्नाचार्यगच्छना सर्वदेवसूरिए आ जिनबिम्बनी प्रतिष्ठा करी ।

भीमदेवना प्रचण्ड दण्डनायक प्राग्वाट विमलसाहाए आबूनुं जगप्रसिद्ध ऋषभनाथनुं जैन मन्दिर प्रतिष्ठित कर्युं तेना एक वर्ष पहेलां आरासणना शान्तिनाथना मन्दिरमां ए प्रतिष्ठा कार्य थयुं हतुं एम आ लेख परथी जणाय छे ।

*

कवि आसिग कृत जीवदयारास

[प्रास्ताविक]

*

'**भारतीय विद्या**'ना बीजा भागना प्रथम अंकमां, अद्यावधि ज्ञात गुजराती भाषानी पद्यरचनामां, सौथी प्राचीनतमनुं जेने स्थान आपी शकाय तेवो संवत् १२४१ मां रचाएलो शालिभद्रसूरि कृत '**भरतेश्वर बाहुबलिरास**' में प्रसिद्ध कर्यो हतो। तेनी प्रस्तावनामां जणाव्या प्रमाणे तेनी प्रसिद्धिनी पूर्वे, जेने सौथी प्राचीन कही शकाय तेवो एक '**जंबूस्वामिरास**' प्रसिद्ध थयो हतो जेनी रचना संवत् १२६६ मां महेन्द्रसूरिना शिष्य धर्म नामना विद्वाने करी हती। आजे हुं अहिं, एवी ज एक प्राचीन तर गुजरातीनी अभिनव रासकृति प्रकाशमां मुकुं छुं, जे उक्त बन्ने कृतियोनी मध्यमां स्थान प्राप्त करे छे। एनुं नाम "**जीवदयारास**" छे अने एनो कर्ता कवि **आसिग** छे। वि० सं० १२५७ना आश्विन सुदि ७ ना दिवसे, जालोर पासे आवेला सहजिगपुरमां एनी रचना करवामां आवी छे। एटले, उक्त शालिभद्ररासनी रचना पछी १६ वर्षे, तेम ज जंबूस्वामिरासनी पहेलां ९ वर्षे, आ रास रचायो छे। बीकानेरना पुरातन जैनपुस्तक भंडारमांनी एक प्राचीन लिखित प्रतिमांथी आ रचना मळी आवी छे, जे प्रति सं०१४०० अने १४५० नी वच्चे क्यारेक लखाएली होवी संभवे छे। ए प्रति बीकानेर निवासी सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी भाई श्रीअगरचन्दजी नाहटाद्वारा प्राप्त थई हती। ए प्रतिमां आवी अनेक प्राचीन भाषा-कृतियो तेम ज संस्कृत, प्राकृत अने अपभ्रंशनी पण प्रकीर्ण रचनाओनो संग्रह लखेलो छे। एनी लिपि सुवाच्य अने सुन्दराकार छे, पण वच्चे वच्चे केटलांक पानां जाय छे तेथी ए प्रति खंडितप्रायः छे। प्रतिमां जे अनेक प्रकीर्ण रचनाओनुं आलेखन करेलुं छे ते उपरथी जणाय छे के 'विविधतीर्थकल्प' आदि अनेक ग्रन्थोना प्रणेता जिनप्रभसूरिना कोई शिष्य के प्रशिष्यनी ए 'स्वाध्याय-पुस्तिका' होय एम अनुमान थाय छे, अने तेथी ज में एनो लेखनकाल सं० १४०० थी ते १४५० नी वच्चेनो कल्प्यो छे। एटले के जीवदया रासना रचनासमय पछी लगभग दोढसो-बस्सो वर्षनी अंदर ज ए प्रति लखाएली छे। प्रतिना लिपिकार कोई सुपठित यतिजन लागे छे एटले भाषानी दृष्टिए तेमां खास पाठ-अशुद्धि थवा पामी नहि होय, छतां ज्यां सुधी बीजुं कोई प्रत्यन्तर प्राप्त थाय नहि त्यां सुधी एनी पाठशुद्धिनी कशी चोक्स कल्पना करी शकाय नहि।

३.१.२६.

अर्थदृष्टिए विचार करतां केटलीक जग्याए शब्द-भ्रान्ति देखाय छे अने तेथी स्पष्ट अर्थावबोध थतो नथी। पाटण विगेरेना भंडारोमां आनी कोई बीजी प्रति हजी सुधी जोवा-जाणवामां आवी नथी, तेथी अत्यारे तो अहिं फक्त, उक्त बीकानेरवाळी प्रतिमां जेवो ए रास लखेलो मळी आव्यो छे तेवो ज अहिं प्रकट करवामां आवे छे। अभ्यासियो प्रति निवेदन छे के आ कृतिनी जो कोई अन्य प्रति उपलब्ध थाय तो तेना आधारे आनी वधारे सारी संशोधित आवृत्ति प्रकट करवा प्रयत्न करे।

रासनो विषय जीवदयानो प्रभाव सूचवनारो छे, पण ते तो थोडीक ज पंक्तियोमां कहेवामां आव्यो छे। सामान्य रीते तो एमां धर्म अने सत्कर्म पूर्वक जीवन व्यतीत करवानो उपदेश आपवामां आव्यो छे। "संसार मिथ्या छे, जीवित अस्थिर छे, माता-पिता-भाई-पुत्र-कलत्र-स्वजन विगेरेना सर्व संबंध स्वार्थमूलक छे, इन्द्रियोना भोगो परिणामे दुखनां कारण छे, माटे मनुष्ये धर्मनुं आराधन करवुं जोइए। धर्मना आराधनथी प्राणीने परजन्ममां सुखनी प्राप्ति थाय छे। धर्मना फलरूपे मनुष्यने राज्यऋद्धि, समृद्धि, सुपरिवार, धन, कंचन, वस्त्र, आभूषण आदि सर्व वस्तुओनी प्राप्ति थाय छे। धर्मनुं उत्तम प्रकारे पालन करवाथी मनुष्य छेवटे मोक्ष पण प्राप्त करे छे। कलियुगमां धर्मनुं आचरण शिथिल थई गयुं छे अने लोकोमां व्यावहारिक मानमर्यादा पण ढीली थई गई छे। आ कलिना प्रभावथी मनुष्यो-मनुष्यो वच्चेना जीवन-धोरणमां पण मोटी विषमताओ देखाय छे। कोई तो पगे भटकी भटकीने मरी रह्या छे ने कोई सुखासनोमांथी हेठा उतरतां पण कष्ट माणे छे। केटलाक माणसो ज्यारे भूखथी टळवळ्यां करे छे त्यारे केटलाक खूब मालपाणी उडाड्यां करे छे। केटलाक माणसो सुंदर रमणियो साथे विविध भोगो भोगवता थाकता नथी त्यारे केटलाक माणसो बीजाने त्यां दासकर्म करता करता मरी जाय छे अने जीवता पण मुवा जेवा देखाय छे। पण आ बधुं पोताना कर्मनुं ज फल छे। कर्मना फलथी ज बलिराय जेवो नवनिधाननो स्वामी नरकमां गयो, हरिश्चन्द्र जेवाने चंडालना घरे पाणी भरवुं पड्युं, रामलक्ष्मणने वनमां भटकवुं पड्युं, रावण जेवा महा प्रतापीनो संहार थयो। माटे संसारमां कोइए गर्व न धारण करवुं अने दानधर्म करी जीवनने पवित्र बनाववुं। संसारमां कोई अमर रह्युं नथी। भरतचक्रवर्ती, कृष्णवासुदेव, श्रेणिकराजा आदि मोटा नृपतियो पण चाल्या गया; तेम ज गोतमस्वामि, वज्रस्वामि, स्थूलिभद्र आदि महामुनियो पण चाल्या गया। माटे जगत्‌मां जो स्थिर नाम राखवुं होय तो उज्जेणीना विक्रमादित्य, अणहिल्लपुरना जयसिंह राय अने कुमारपाल आदिनी जेम

धर्मकार्यमां धननो व्यय करवो। जेना दर्शन अने वंदनथी पवित्र थवाय एवा शत्रुंजय, गिरनार, आबू, जालोर विगेरे तीर्थस्थानोनी यात्रा करवी अने पुण्यकर्म उपार्जन करवुं।" आ जातनो सर्व सामान्य अने प्रकीर्ण उपदेश आ रासमां गुंथवामां आव्यो छे।

रासनी रचना सरल अने सीधी वाणीमां तथा तद्दन साधारण जनोने पण बोधगम्य थाय तेवी शैलीमां करवामां आवी छे। छेल्ली ३ कडियोमां कविए पोतानो टुंको परिचय पण आप्यो छे, परंतु अर्थावबोध जोइए तेवो स्पष्ट न थवाथी ए कडियोनो भाव बराबर हृदयंगम नथी थतो। पहेली (५१ मी) कडीमां कोई वाला नामना मंत्री अने तेना पुत्र वहेलनो, अने तेना कुलमां चंद्रमा जेवा आसाइतनो निर्देश छे। तेनी (मालिकीनी ?) वलहि* नामनी सुंदर पल्ली (पालडी=नवी वसावेली वसति) छे ज्यां बहुगुण संयुक्त एवो कवि आसिग रहे छे। ए कविनुं मोसाल जालोरमां छे। कार्य प्रसंगे, ज्यारे कवि पोताना गामथी जालोर आव्यो त्यारे (रस्तामां ?) सहजिगपुर नामना गामना पार्श्वनाथ मंदिरमां, संवत् १२५७ ना आसो सुदि ७ मना दिवसे, शान्तिसूरिनी पादभक्तिना प्रतापे, हाथोहाथ एटले के तुरता-तुरत (एक ज आसने बेसीने ?) आ नवीन रासनी रचना करवामां आवी छे।

रचनानां बन्ध अने वर्णन उपरथी लागे छे के कवि पोताना जालोर तरफना प्रवास दरम्यान सहजिगपुरमां आवी चढ्यो छे अने त्यां ते प्रसंगे कोई उत्सवनुं आयोजन थई रहेलुं होवाथी, ते उत्सवमां गावा माटे अने उत्सवनी स्मृतिने कविताबद्ध करवा माटे, उतावळ उतावळमां ज–कदाच एकाध दिवस जेटला थोडाक समयमां ज–शान्तिसूरिनी प्रेरणाथी तेणे आ सरल रास, सादा षट्पदी छन्दमां, शीघ्रकविनी कृतिनी जेम, जोडी काढ्यो छे।

शान्तिसूरि तेम ज कवि आसिगना विषयमां बीजी कशी विशेष माहिती अत्यारे उपस्थित करी शकाय तेम नथी। आशा छे के अभ्यासी जनो गुजराती भाषानी अद्यावधि अप्रसिद्ध एवी आ प्राचीनतर कृतिनुं योग्य अध्ययन करी, ए उपर विशेष प्रकाश पाडवा प्रयत्न करशे।

* *

---

* मारवाड–जोधपुर राज्यना गोडवाडप्रान्तमां वाली नामनुं जे गाम छे ते ज कदाच आमां सूचवेली 'वालहि पल्ली' होय।

कवि आसिग विरचित

जीवदया रास

*

गुजराती भाषानी एक प्राचीनतर पद्यकृति

[रचना संवत् १२५७ विक्रमाब्द]

उरि सरसति **आसिगु** भणइ, नवउ रासु जीवदया-सारु ।
कंनु धरिवि निसुणेहु जण, दुत्तरु जेम तरहु संसारु ॥ १ ॥
जय जय जय पणमउ सरसत्ती । जय जय जय दिवि पुत्थाहत्थी ।
कसमीरह मुखमंडणिय, तइं तुट्टी हउ रयउ कहाणउं ।
जालउरउ कवि वज्जरइ, देहा सरवरि हंसु वखाणउं ॥ २ ॥
पहिलउ अक्खउं जिणवरधम्मु । जिम सफलउ हुइ माणुसजंमु ।
जीवदया परिपालिजए, माय वप्पु गुरु आराहिजए ।
सव्वह तित्थह तरुवर ठविजइ, [जिम ?] छाही फलु पावीजइ ॥३॥
देवभत्ति गुरुभत्ति अराहहु । हियडइ अंखि धरेविणु चाहहु ।
धणु वेचहु जिणवर भवणि, खाहु पियहु नर वंधहु आसा ।
कायागढ तारुण भरि, जं न पडहिं जमदेवहं पासा ॥ ४ ॥
सारय सजल सरिसु परधंधउ । नालिउ लोउ न पेखइ अंधउ ।
डुंगरि लग्गइ दव हरणि, तिम माणुसु वहु दुक्खहं आलउ ।
डज्जइ अवगुण दोसडइ, जिम हिम वणि वणगहणु विसालउ ॥५॥
नालिउ अप्पउ अप्पइ दक्खइ । पायहं हिट्ठि बलंतु न पिक्खइ ।
गणिया लब्भहिं दिवसडइं, जं जि मरेवउ तं वीसरियउ ।
दाणु न दिंनउ तपु न किउ, जाणंतो वि जीउ छेतरियउ ॥ ६ ॥
अरि जिय यउ चिंतिवि किरि धंमु । वलि वलि दुलहु माणुसजंमु ।
नत्थि कोइ कासु वि तणउं, माय ताय सुय सज्जण भाय ।
पुत्त कलत्त कुमित्त जिम, खाइ पियइ सवु पच्छइ थाइ ॥ ७ ॥
धणि मिलियइ बहु मग्ग जण हार । किं तसु जणणिहि किं महतार ।
किं केतउ मागइ घरणि पुत्तु, होइ प्राणी णेइ लेसइ ।
विहव ण वारहं पत्तगहं, बोलाविउ को सावु न देसइ ॥ ८ ॥

जणणि भणइ मइं उयरहं धरियउ । वप्पु भणइ महु घरि अवतरियउ ।
अणखाइय महिलिय भणइ, पातग तणइं न मारगि जाउ ।
अरथु धरमु विहंचिवि लियउं वि, दिनत्थी पतुं घडसइ न्हाउं ॥९॥
यउ चिंतिवि निय मणिहिं धरिज्जइ । कुडी साखि न कासु वि दिज्जइ ।
आलिं दि नइ आलसउ जउ, अजु हूवउ कालु न होसइ ।
अनु चिंततहे अनु हुइ, धंधइ पडियउ जीउ मरेसइ ॥ १० ॥
पुडइ निपंन जेम जलबिंदु । तिम संसारु असारु समुंदु ।
इंदियालु नडपिखणउ जिम, अंबरि जलु वरिसइ मेहु ।
पंच दिवस मणि छोहलउ, तिम यहु प्रियतम सरिसउ नेहु ॥११॥
अरि जिय परतहं पालि बंधिजइ । जीविय जोवण लाहउ लीजइ ।
अलियउ कह वि न बोलिजइ, सुद्धइ भाविहि दिज्जइ दाणु ।
धम्म सरोवर विमल जलु, कुंडपाउ नियमणि यउ जाणु ॥ १२ ॥
पंच दिवस होसइ तारुन्नु । ऊडइ देह जिम मंदिर सुन्नु ।
जाणंतो विय जाणइ, दिक्खंता हइं होइ पयाणउ ।
वट्टहं संवलु नहु लयउ, आगइ जीव किसउ परिमाणु ॥ १३ ॥
दिवसे मासे पूजइ कालु । जीउ न छूटइ विरधु न बालु ।
छडउ पयाणउ जीव तुहु, साजणु सित्तु बोलावि वलेसइ ।
धम्मु परत्तह संवलओ, जंता सरिसउ तं जि वलेसइ ॥ १४ ॥
अरि जिय जइ बूकहि ता बूकु । वलि वलि सीख कु दीसइ तूकु ।
वारि मसाणिहि चिय वलइ, कुडि दाउं ती गंधि न आवइ ।
पावकूव भिंतरि पडिउ तिणि, जिणधम्मु कियउ नवि भावइ॥१५॥
जिम कुंभारिं घडियउ भंडू । तिम माणुसु कारिमउ करंडु ।
करतारह निप्पाइयउ, अट्ठुत्तरसउ वाहिसयाइं ।
जिम पसुपालह खीरहरु, पुट्ठिहिं लग्गउ हिंडइ ताइं ॥ १६ ॥
देहा सरवर मज्झिहिं कमलु । तहि वइसउ हंसा धुरि धवलो ।
कालु भमरु उपरिं भमइ, आउखए रस गंधु वि लेसइ ।
अणखूटइ नहु जिउ मरइ, खूटा उपर धरी न दीसइ ॥ १७ ॥
नयर पुब आया वणिजारा । जणणि समाणु अरिहिं परिवारा ।

धम्म कयाणउं ववहरहु, पावतणी भंडसाल निवारहु ।
जीवह लोहु समग्गलउ, कुमारगि जणु जंतउ वारहु ॥ १८ ॥

एगिंदिय रे जीव सुणिज्जइ । बेइंदिय नवि आसा किज्जइ ।
तेइंदिय नवि संभलइ, चउरिंदिय महिमंडलि वासु ।
पंचिंदिय तुहुं करहिं दय, जिणधम्मिहिं कज्जइ अहिलासु ॥ १९ ॥

धम्मिहिं गय घड तुरियहं घट्ट । मयभिंभल कंचण कसवट्ट ।
धम्मिहिं सज्जण गुणपवर, धम्मिहिं रज्ज रयण भंडार ।
धम्मफलिण सुकलत्त घरि, बे पक्खसुद्ध सीलसिंगार ॥२०॥

धम्मिहिं मुक्खसुक्ख पाविज्जइ । धम्मिहि भवसंसारु तरीजइ ।
धम्मिहि धणु कणु संपडइं, धम्मिहि कंचण आभरणाइं ।
नालिय जीउ न जाणइ य, एहि धम्महं तणा फलाइं ॥ २१ ॥

धम्मिहि संपज्जइ सिणगारो । करि कंकण एकावलि हारु ।
धम्मि पटोला पहिरिजहिं, धम्मिहि सालि दालि घिउ घोलु ।
धम्मि फलिण वितसा [रु?] लियइं, धम्मिहिं पानबीड तंबोलु ॥२२॥

अरि जिय धम्मु इक्कु परिपालहु । नरयबारि किवाडइं तालहु ।
मणु चंचलु अविचलु वरहु, कोहु लोहु मय मोहु निवारहु ।
पंचबाण कामहिं जिणहु जिम, सुह सिद्धिसग्गु तुम्हि पावहु ॥२३॥

सिद्धिनामि सिद्धि वरसारु । एकाएकिं कहउ विचारु ।
चउरासी लक्ख जोणि, जीवह जो घल्लेसइ घाउ ।
अंतकालि संमरइ अंगि, कोइ तसु होइ हु दाहु ॥ २४ ॥

अरु जीवइं अस्संखइ मारइं । मारोमारि करइ मारावइ ।
मुच्छाविय धरणिहि पडइ, जीउ विणासिवि जीतउ मानइ ।
मच्छगिलिग्गिलि पुणु वि पुणु, दुःख सहइ ऊथलियइ पंनइ ॥२५॥

पन्नउ जउ जगु छन्नउं मंनउं । कूवहं संसारिहि उप्पंनउं ।
पुत म सारिहि कलिजुगिहिं, ढीलइ जं लीजइ ववहारु ।
एकहं जीवहं कारणिण, सहसलक्ख जीवहं संहारु ॥ २६ ॥

वरिसा सउ आऊखउ लोए । असी वरिस नहु जीवइ कोइ ।
कूडी कलि आसिगु भणइ, दयाराजि नय नय अवतारु ।

धंमु चलिउ **पाडलिय** पुरे, एका कालु कलिहि संचारु ॥ २७ ॥

माय भणेविणु विणउ न कीजइ । वहिणि भणिवि पावडणु न कीजइ ।
लहुड वडाई हा...तिय मुक्की, लाज स समुद मरजाद ।
वरघरिणिहिं वीया पियइं, पिय हत्थिं धोवावइ पाय ॥ २८ ॥

सासुव वहूव न चलणे लग्गइ । इह छाहइ पाडउणइ मागइ ।
ससुरा जिठ्ठह नवि टलइ, राजि करंती लाज न भावइ ।
मेलावइ साजण तणइं, सिरि उग्घाडइ बाहिरि धावइ ॥ २९ ॥

मित्तिहि मुक्का मित्ताचारि । एकहि घरणिहिं हुइ रखवाला ।
जे साजण ते खेलत गिइं, गोती कूका गोताचारा ।
हाणि विधि वद्धावणइं, विहुरहि वार करहिं नहु सारा ॥ ३० ॥

कवि **आसिग** कलिअंतरु जोइ । एक समाण न दीसई कोइ ।
के नरि पाला परिभमहि, के गय तुरि चडंति सुखासणि ।
केई नर कठा वहहि, के नर वइसहिं रायसिंहासणि ॥ ३१ ॥

के नर सालि दालि भुंजंता । घिय घलहलु मज्झे विलहंता ।
के नर भूषा(खा) दूषि(खि)यइं, दीसहिं परघरि कंमु करंता ।
जीवता वि मुया गणिय, अच्छहिं वाहिरि भूमि रुलंता ॥ ३२ ॥

के नर तंबोलु वि संमाणहिं । विविह भोय रमणिहिं सउ माणहि ।
के वि अपुंनइं वप्पुडइं, अणु हुंतइ दोहला करंता ।
दाणु न दिंनउ अंन भवि, ते नर परघर कंमु करंता ॥ ३३ ॥

आसेवंता जीव न जाणहिं । अप्पहिं अप्पाउ नहु परियाणहि ।
चंचलु जीविउ धूय मरणु, विहि विद्धाता वस इउ सीसइ ।
मूढ धम्मु परजालियइ, अजरु अमरु कलि कोइ ना दीसइ ॥३४॥

नव निधान जसु हुंता वारि । सो वलिराय गयउ संसारि ।
बाहूबलि बलवंतु गउ, धण कण जोयण करहु म गारहु ।
डुंबह घर पाणिउ भरिउ, पुहविहि गयउ सु हरिचंदु राउ ॥ ३५ ॥

गउ दसरथु गउ लक्खणु रामु । हियडइ धरउ म कोइ संविसाउ ।
बार वरिस वणु सेवियउ, लंका राहवि किय संहारु ।
गइय स सीय महासइय, पिक्खहु इंदियालु संसारु ॥ ३६ ॥

जसु घरि जमु पाणिउ आणेई । फुल्लतरु जसु वणसइ देई ।
पवणु वुहारइ जसु उवहि, करइ तलारउ चामुंड माया ।
खूटइ सो रावणु गयउ, जिणि गह बद्धा खाटहं पाए ॥ ३७ ॥

गउ भरथेसरु चक्कधुरंधरु । जिणि अट्ठावइ ठविय जिणेसरु ।
मंधाता नलु सगरु गओ, गउ कउरव-पंडव परिवारो ।
सेत्तुजा सिहरिहिं चडेवि जिणि, जिणभवण कियउ उद्धारु ॥ ३८ ॥

जिणि रणि जरासिंधु विदारिउ । आहि दाणवु बलवंतउ मारिउ ।
कंस केसि चाणरु कहिऊ, जिणि ठवियउ नेमिकुमारु ।
वारवई नयरिय धणिउ कहहि, सु हरि गोविहि भत्तारु ॥ ३९ ॥

जिणु चउवीसमु वंदिउ वीरु । कहहि सु सेणिउ साहस धीरु ।
जिणसासण समुद्धरणु, विहलिय जण वंदिय सद्धारु ।
रायग्गिह नयरियहं, बुद्धिमंतु गउ अभयकुमारु ॥ ४० ॥

पाउ पणासइ मुणिवरनामिं । वयरसामि तह गोयमसामि ।
सालिभद्द संसारि गउ, मंगलकलस सुदरिसण सारो ।
थूलभद्दु सतवंतु गओ धिगु, धिगु यहु संसारु असारु ॥ ४१ ॥

गउ हलधरु संजमसणगारु । गयसुकुमालु वि मेहकुमारु ।
जंबुसामि गणहरु गयउ, गउ धन्नह ढंढणह कुमारु ।
जउ चिंतिवि रे जीव तुहुं, करि जिणधंमु इक्कु परिवारो ॥ ४२ ॥

जिणि संवच्छरु महि अंबाविउ । अंबरि चंदिहिं नामु लिहाविउ ।
ऊरिणि की पिरिथिमि सयल, अणु पालिउ जिणु धम्मु पवित्तु ।
उज्जेणीनयरी धणिउ कह, अजरामर **विकमादीतु** ॥ ४३ ॥

गउ **अणहिलपुरि जेसलु राउ** । जिणि उद्धरियलि पुहवि सयाउ ।
कलिजुग **कुमरनरिंदु** गउ, जिणि सव जीवहं अभउ दियाविउ ।
उवएसिहिं **हेमसूरि** गुरु, अहिणव 'कुमरविहारु' कराविउ ॥४४॥

इत्थंतरि जण निसुणहु भाविं । करहु धम्मु जिम मुच्चहु पाविं ।
इहिं संसारि समुद्दजलि, तरण तरंड सयल तित्थाइं ।
वंदहु पूयहु भविय जण, जे तियलोए जिणभवणाइं ॥ ४५ ॥

अट्ठावइ रिसहेसरु वंदहु । कोडि दिवालिय जिम चिरु नंदहु ।
सित्तुज्जहं सिहरिहिं चडिवि, अच्चउं सामिउ आदिजिणिंदु ।
आबुइ पणमउ पढमजिणु, उम्मुलइ भवतरुवरकंदु ॥ ४६ ॥

उज्जिलि वंदहु नेमिकुमारु । नव भव तिहुयणि तरहि संसारु ।
अंबाइय पणमेहु जण, अवलोयणा सिहरि पिक्खेहु ।
विसम तुंग अंबर रयणा, वंदहु संवु पजुंनइ वेउ ॥ ४७ ॥

थुणउ वीरु **सच्चउरहं** मंडणु । पावतिमिर दुहकंम विहंडणु ।
वंदउ **मोढेरा**नयरि, **चडावल्लि** पुरि वंदउ देउ ।
जे दिट्ठउ ते वंदियउ, विमलभावि दुइ करजोडि ॥ ४८ ॥

वाणारसि महुरह जिणचंदु । **थंभणि** जाइवि नमहु जिणिंदु ।
संखेसरि चारोप पुरि, **नागद्दहि फलवद्धि** दुवारि ।
वंदहु सामिउ पासजिणु, **जालउरा** गिरि 'कुमरविहारु' ॥ ४९ ॥

कासु वि देह हडइ दालिद्दु । कासु वि तोडइ पावह कंदु ।
कासु वि दे निम्मल नयण, खासु सासु खेयणु फेडेई ।
जसु तूसइ पहु पासजिणु, तासु घरि नव निधान दरिसेइ ॥ ५० ॥

वाला मंत्रि तणइ पाछोपइ । **वेहल** महिनंदन महिरोपइ ।
तसु सखहं कुलचंद फलु, तसु कुलि **आसाइतु** अच्छंतु ।
तसु **वलहिय पल्लीपवर**, कवि **आसिगु** बहुगुण संजुत्तु ॥५१॥

सा तउपरिया (?) कवि **जालउरउ** । माउसालि सुंमइ सीयलरउ ।
आसीद वदोही (?) वयण, कवि **आसिगु जालउरह** आयउ ।
सहजिगपुरि पासहं भवणि, नवउ रासु इहु तिणि निप्पाइउ ॥५२॥

संवतु **बारह सय सत्तावन्नइ** । विक्कमकालि गयइ पडिपुंनइ ।
आसोयहं सिय सत्तमिहिं, हत्थो हत्थि जिण निप्पायउ ।
संतिसूरि पयभत्तयरियं, रयउ रासु भवियहं मणमोहणु ॥ ५३ ॥

॥ इति जीवदया रास समाप्तः ॥

* *
*

३.१.२७.

प्रीतिविषयक केटलांक प्राचीन भाषा सुभाषितो

*

[लगभग च्यार सो करतां वधारे वर्ष उपर लखेलां एक प्राचीन पत्रमांथी आ दुहाओ संगृहीत करवामां आव्या छे. —संपादक]

पहिली प्रीति वलगइ करि, पछइ करइ कुरंग।
तिनस्यउ जनम न बालीइ, बहुडि न कीजइ संग ॥ १

विरह विच्छिन्ना जे मिलइ, जाणे केहा नेह।
जाण तिसाया माणसा, जांगलि वूठा मेह ॥ २
लागी प्रीति सुजाणस्युं, वरजइ लोक अयाण।
तेहस्यउ पंच न तोडीइ, जेहस्युं जीव पराण ॥ ३
नयण ति दिठइ कवण गुण, जा नवि अंग मिलंति।
गयणह जलहर ऊनयउ, जइ सरवर न भरंति ॥ ४
नयण न होही ए सही, ए अणयाली भालि।
जिहकउ मारियउ रसीयडउ, बली न सकइ बालि ॥ ५
जुव्वण समइ न जण कियु, सुगुणह सेती नेहु।
तिणि वनि केरे फलह जिउ, अहलउ गमायु देह ॥ ६
सगुणह सेती नेह करि, जुव्वण सीचइ कांइ।
इहु जुव्वण दिन दिन खिसइ, आयु घटइ तनु जाइ ॥ ७
गोरी गरव न कीजही, जुवण अथिर अयाण।
साजण जंपइ नेह करि, मननी रलीया माणि ॥ ८
बोलाव्या बोलइ नही, नयणह नह जोवंति।
तिण निरसणस्यउ पीयडी, सज्जण जन न करंति ॥ ९
म करिसि गोरी गारवउ, म करिसि यौवन आस।
केसू फूल्या दिवस दुइ, झंपर हुआ पलास ॥ १०
आसा देई मन हरइ, मन दे तोडइ आस।
मूआ न तेहकउ रोईइ, जीवत न बइसीइ पासि ॥ ११
नीठुर सरिसउ नेहडउ, म करि हीया गमार।
गादह लांबी गूण जिम, वलीय न कीधी सार ॥ १२
गोरी तेहवा मित्त करि, जेहवा सोहइ पासि।
वर बधनामी सिरि चडइ, लोक कहइ साबासि ॥ १३
साजण दुज्जण वातडी, ताणी नेह म तोडि।
कातणहारी सूत जिउ, साधी साधी जोडि ॥ १४
साम्हउ जोइ वाल्हही, नयणे मेलइ तार।
बिहुं लज्जालू माणसां, दइ मेलउ करतार ॥ १५

शृङ्गारशत

शृङ्गाररसवर्णनमय एक प्राचीन गुजराती काव्य

*

अहिं नीचे आपवामां आवेलुं **शृङ्गारशत** नामनुं गुजराती काव्य, अमदावादनिवासी पं० श्रीअंबालाल प्रे० पासेथी प्राप्त थयुं छे. ए काव्यनो कर्ता कोण छे ते कांई एमांथी जाणवा मळतुं नथी. तेम ज ए कृति कया समयनी छे ए पण जाणवानुं खास साधन प्राप्त नथी. एनी मूळ प्रति ५ पानानी छे अने ते सुन्दर जैन मरोडनी सुवाच्य देवनागरी लिपिमां लखेली छे. प्रतिना अन्ते लिपिकारनो नाम के समय निर्देश करवामां आवेलो नथी तेथी प्रतिनो समय पण चोक्स निर्धारी शकाय तेम नथी. परंतु, पानाओनी स्थिति अने लिपिनुं मरोड आदि जोतां मोडामां मोडी सतरमा सैकानी वच्चे ए लखाएली होय तेम लागे छे. एटले के वि० सं० १६०० अने १६५०नी दरम्यान एनो लिपिकाल होय एम अनुमान करी शकाय.

काव्यनो कर्ता कोई जैनेतर कवि होय एम लागे छे. कविता केवल निर्भेळ शृङ्गार रसना वर्णनवाळी छे. जो के जैन यतियोए पण आ जातनी निर्भेळ शृङ्गाररसपरिपूर्ण काव्यरचना घणी करी छे, परंतु तेमनी रचनाओमां जाण्ये-अजाण्ये पण क्यांक ने क्यांक जैन विचारसरणि अने विशिष्ट शाब्दिक परिभाषानो झोक जरूर देखाई आवे छे. आ कवितामां आवुं कशुं क्यांय देखातुं नथी तेथी हुं अनुमानुं छुं के आनो कर्ता कोई जैनेतर कवि छे.

कवितानी भाषा जूनी छे. लगभग 'वसन्तविलास'नी धाटीनी छे. भाषानुं वळण जोतां एनी रचना वि० सं० १३५०नी अने १४५०नी वच्चे थएली होय तेम लागे छे. 'वसन्तविलास'नी ज पद्धतिनुं अने वर्णनानुं अनुकरण करतुं आ काव्य आपणा प्राचीन साहित्यमांनी एक उत्तम कृतिनी उपलब्धि जेवुं जणाशे. 'वसन्तविलास'नुं वर्णन ज्यारे वधारे संस्कृतमय एटले पाण्डित्यपूर्ण अने विद्वद्भोग्य छे त्यारे आनुं वर्णन वधारे प्राकृतमय अर्थात् वास्तविक अने लोकभोग्य छे.

'वसन्तविलास'नी रचना फागबन्धना छन्दमां थएली छे त्यारे आनी रचना जुदा जुदा मात्रामेळ तेम ज अक्षरमेळना छन्दोमां करवामां आवी छे. 'वसन्तविलास'मां ज्यारे वसन्तऋतुनुं ज प्रधानपणे वर्णन करवामां आव्युं छे, त्यारे आमां छए ऋतुनुं वर्णन करेलुं छे. एना प्रारंभमां सामान्य नायिका वर्णन पण सारा प्रमाणमां करवामां आवेलुं छे, जे 'सन्देशरासक'नी अनुकृतिनो भास करावे छे.

कदाच कविनो आदर्श भर्तृहरि के अमरुकना शृङ्गारशतकनुं अनुकरण करवानो होय. संस्कृत भाषामां तो आ जातनी वर्णना अने पद्धतिवाळा भर्तृहरि अने अमरुक सिवाय बीजा पण अनेक शतककाव्यो उपलब्ध थाय छे, परंतु प्राचीन देश्यभाषामां आवी कृतियोनी उपलब्धि विरल ज देखाय छे. प्राचीन भाषाकविता मोटा भागे आपणने रासक छन्दोना बन्धवाळी मळे छे अने तेथी तेमां दोहा, वस्तु, पद्धडी, चतुष्पदी आदि रासकवर्गना छन्दोनो ज विशेष उपयोग करवामां आवेलो देखाय छे. संस्कृत काव्यवर्गना इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, त्रोटक, स्रग्धरा आदि अक्षरबद्ध वृत्तोनो उपयोग देश्यभाषा अर्थात् प्राचीन गुजराती कवितामां, क्वचित ज प्राप्त थाय छे. आ दृष्टिए पण प्रस्तुत काव्य आपणा प्राचीन साहित्यनी एक विशिष्ट कृति गणाय तेम छे.

प्रत्यन्तरना अभावे आ काव्यनी पाठशुद्धि विषे अत्यारे कशो विशेष विचार करी शकाय तेम नथी. मूळ प्रतमां जेवुं लखाण मळी आव्युं छे तेवुं ज मात्र अत्यारे तो, प्रसिद्धिमां मुकवानी दृष्टिए, अहिं मुद्रित करवामां आवे छे. शोधकोए ए दिशामां प्रयत्न करता रहेवाथी संभव छे के बीजां पण आनां प्रत्यन्तरो मळी आवे अने तेना आधारे, 'वसन्तविलास'नी जेम आ काव्यनी पण संशोधित पाठवाळी अने मूळ भाषासरणिनी दृष्टिए सुसंपादित आवृत्ति प्रकाशमां मुकी शकाय.

प्राप्त प्रतिनुं लखाण तद्दन शुद्ध नथी ए तो एमां स्थळे स्थळे मळता छन्दोना शिथिल बन्धोथी ज आपणे जाणी शकीए छीए. मात्रामेळ छन्दोमां शब्दगत-स्वरोना ह्रस्व-दीर्घीकरणना प्रयोगथी छन्दःशुद्धि जेमतेम मेळवी शकाय छे अने तेथी कविनो मूळ भाषाप्रयोग केवा रूपमां हतो ते चोक्कस रीते जाणवानुं के शोधी काढवानुं बहु सरल नथी थतुं, पण अक्षरबद्ध वृत्तोमां तो अक्षरसंख्या अने स्वरोच्चार निश्चित होवाथी, एमां जो न्यूनाधिकता दृष्टिगोचर थाय तो तेथी पाठनी शुद्धाशुद्धि तेम ज भाषाना मूळप्रयोगनी चकासणी सारी पेठे करी शकाय छे.

आ काव्यनां कुल १०५ पद्यो छे अने एथी ज एने कर्ताए के पछी लहियाए 'शृङ्गारशत' आवुं नाम आप्युं होवुं जोइए. एमां प्रारंभमां मंगलाचरण के प्रास्ताविक कथन जेवुं कशुं करवामां आव्युं नथी तेम ज अन्तमां पण कशो उपसंहारात्मक के समाप्तिवाचक उल्लेख सूचववामां आव्यो नथी. एथी कविए कोइएक विशिष्ट वर्णनना गुम्फननी दृष्टिए आ काव्यनी योजनापूर्वक संकलना करी हती के पछी समये समये मनमां स्फुरी आवता प्रकीर्ण भावोने मुक्तक पद्यो रूपे ग्रथित करी, तेमने

आ रीते शतकना रूपमां गोठवी दीधां हशे एनी कशी उचित कल्पना करवानुं सविशेष प्रमाण आमां उपलब्ध थतुं नथी. प्रारंभना ३८ पद्योमां सामान्य नायिकानुं वर्णन छे अने ते पछी षड्ऋतुनुं वर्णन प्रारंभ थाय छे. एमां सौथी प्रथम वसन्तऋतुनुं वर्णन छे जे ६१मां पद्यमां पूरुं थाय छे. ते पछी ग्रीष्मवर्णन पद्य ६९ सुधी, वर्षाकाल वर्णन पद्य ८२ सुधी, शरदूऋतु वर्णन पद्य ८८ सुधी, हेमन्तऋतु वर्णन पद्य ९३ सुधी अने अन्ते शिशिरऋतुवर्णन पद्य १०५ मां पूर्ण थाय छे.

कविनो भाषा उपर खूब सारो अधिकार जणाय छे. शब्दोनी योजना अने भावोनी व्यञ्जना सुंदर रीते करवामां आवेली छे. ए समयना कवियोनी प्रियरूढि जे प्रासानुबन्ध कविता तरफ विशेष आकर्षणवती हती तेनुं दर्शन पण आमां स्थळे स्थळे आपणने सारी रीते थाय छे. जेम के—

लडसडी कडि मोडीय माल्हती,
गजगतिइं चमकंतीय चालती.
कुरल कज्जल कोमल बांहडी,
हृदय नारि न वीसरिसिइ घडी। (पद्य ४)

*

हिव हसइ विहसइ उरि उल्हसइ,
मुखि ससइ निससइ उरि उद्गसइ.
क्षणु रोअइ न सुअइ विरहाकुली,
रमणि झायइ थायइ आकुली। (पद्य ११)

*

नीली चोली हाथि ले पानकोली,
चाली भोली चींतवी कान्तकेली.
भाविइं भेली चींतवी सा महेली,
सेरी पेली स्वामिसिउं रात्रिवेली। (पद्य ३५)

आवी जातना शब्दोना शणगार साथे भावनी भभक पण ज्यां त्यां सरस रीते हृदयंगम थाय छे. आशा छे के जूनी गुजराती कविताना अभ्यासियोने आना अध्ययनमां आकर्षक रस उत्पन्न थशे.

—जिनविजय

शृंगार शत

*

[सामान्य नायिका वर्णन]

कांचूउ करि कामिणि ढीलउ । अंगि रंगि सुरयाजलि झीलउ ।
पीण थोर थण ए अणीआला । ओल्हवइं विरहनी जिम झाला ॥ १
द्रेठि जोइ मन माणिणि वांकी । एक तुं मुखि दिवारि न वाकी ।
आवि आवि दइ सासिणि साईं । एतला परहुं सार न कांईं ॥ २
आवि देवि मझ बइसि उत्संगिइं । रंग रेलि सुह षे(खे)लि कुरंगिइं ।
बोलि कइ चतुर कोमल वाणी, माहरा सयर तूं धणीआणी ॥ ३
लडसडी कडि मोडीय माल्हती । गजगतिइं चमकंतीय चालती ।
कुरल कज्जल कोमल बांहडी । हृदय नारि न वीसरिसिइ घडी ॥ ४
रमण समय वेला, रंगनी एह वेला ।
भुजयुगलसलीलालिंगणूं देजि हेला ।
उरवरि उर चांपउ, सौख्य सर्वांगि व्यापउ ।
विरहदहतु झांपउ, स्नेहनी वेलि थापउ ॥ ५
तरल तीष(ख) सुलोयण सांधती । प्रियतणउं मनिसिउं मनु बांधती ।
हिव मिली रमणी मननी रुली । दिन घणाइ ह आस वली फली ॥ ६
विलसती हसती हीयडउं हरइ । गजगतिइं चमकंतीय संचरइ ।
मुखि मयंकु मनोहर साधरइ । मनह ते रमणी किम ऊतरइ ॥ ७
आंष(ख)डी अलसए अणीआणी(ली) । वांकुडी भमह कज्जल काली ।
पंचबाण धणुही सर सांधइ । मानवी मृग मनोहर वींधइ ॥ ८
रहि रहि मनु षां(खां)ची, हूं कहुं वात साची ।
किमइ म हुसि काची, ताहरे रंगि राची ।
रमणि रमण चालइ, आपणउं चित्तु नालइ ।
मयणु मनि सु सालइ, छइ जि को दुक्ख पालइ ॥ ९
उहुं उहुं मुहि बोलइ, ताहरी दासी तोलइ ।
कुहु कुहु मुहि मेल्हइ, अंगु आलइ निटोलइ ।
छब छब वरसि भीजइ, कांतिसिउं रंगि रीझइ ।
रमणि इम रमीजइ, पूर्वि जइ पुण्य कीजइ ॥ १०

हिव हसइ विहसइ उरि उल्हसइ । मुखि ससइ निससइ उरि उद्वसइ ।
क्षणु रोअइ न सुअइ विरहाकुली । रमणि झायइ थायइ आकुली ॥ ११
कमलने दलि सीतल साथरउ । कहवि कोमल पत्र म पाथरउ ।
म करि सूकडि मूंकडि ढूकडी । दयितु मेलि न हेलि न वापडी ॥ १२
मुझ समाधि जबादि करइ नहीं । विविध दूषण भूषण हे सही ।
हिव म वीजिसि वाउ सुसीयलु । किमइ देखिसु एकु सु कूंअलु ॥ १३

*

नं नं भणंती नव नेह लाजइ । धंधूणती बे कर चूडि वाजइ ।
परहु परहु धूरत मुंचि मुंचि । स्वामी स चुंबी कर बेउ वंचि ॥ १४
पाछइं रहीनइ प्रिय आंखि मीची । किसिउं करुं धूरत ईणि वंची ।
न छूटीइ माडीय एह आगइ । वली वली मूंइ हु अंगि लागइ ॥ १५

*

आज सेज रजनी प्रिउ आविउ । सुकिना मुझ रोस कराविउ ।
रूसणं कपटि मइं जव मांडी । तेतलइं गिउ नीसत छांडी ॥ १६
चक्रवाकु सु विमासण बइठउ । पश्चमाचलि चडिउ रवि दीठउ ।
वल्लभा विरहु तां हिव होसिइ । एकलां शयनि रात्रि न जासिइं ॥ १७

*

माथइ घडूलउ करि नीर चाली । ऊतावली तूं मुझ नेहसाली ।
पाणी चल्लू जु पुण एकु पायइ । घणा दीहाडा त्रिस तोइ जाइ ॥ १८
वछेदि छोडउ कडिसूत्र फाली । रंभा सुजंघायुगली सूंआली ।
संभोग संतापु जिस्यइं विलीजइ । स्वेच्छां समाधिइं मननी रमीजइ ॥ १९

*

आज आलस म माणिणि मोडउ । कांचूआ कसण प्राणि म त्रोडउ ।
ढोलिसिइं अमीयना कुचकूंपा । आलि हाथि सरसा नर लांपा ॥ २०
भमरडउ भमउ नवि ऊभजइ । कमलनी वरला वर सिउं भजइ ।
अम तु हिव नेह न मंडीइ । सुभग नीरसु छोडी छंडीइ ॥ २१
लहकती सिरि सामल वीणडी । झलहली अनु ऊपरि राष(ख)डी ।
किरि भुजंगम संगम साधरइ । सुरत मंदिरि दीवडलु डरइ ॥ २२
महमहिउ मलयानिलु माल्हतु । मधुर मांजरि चूत चलावतु ।
सरलु कोकिल पंचम आलवइ । विरहिणी विरहानलु जालवइ ॥ २३

रिमिझिमिइं रमतां पयनेउरी । कलकलइ करि कूंकण केउरी ।
नवनवी परि ऊपरि केलवइ । रमणनुं मन माणिणि हेलवइ ॥ २४

हिव अवसर लाधउ, चींतव्यां काज साधउ ।
सयरु सयरि सांधउ, प्रेमना पाश बांधउ ॥ २५

मयणु घण जगावइ, देहु दीठी सुहावइ ।
सुरत समय भावइ, सानसिउं शीघ्रु आवइ ॥ २६

तृणह तुलि गिणावइ, सा भलेरुं भणावइ ।
अवगुण न सुणावइ, प्रीति नारी जणावइ ॥ २७

गलि निगोद्र तोडर मालती । कुरल कुंतल कोमल पालती ।
तिहि विमासण वासण ऊपनी । झटकु लइ उरि लागीय मानिनी ॥ २८

कुच परिसरि फेरी, रोमराजी सु सेरी ।
मयणु जल भलेरी, पाणि गिउ नामिवेरी ।
जघनु जलि गलीजइ, तेतलइ देहु भीजइ ।
वसनु परिहरीजइ, कांत संयोगि रीझइ ॥ २९

सुख सारवार हिव एक गई । सुविचारि नारि मुझ संगि हूई ।
नव नेह छेहु न लहुं किमई । दय देव सेवक सदा तिमई ॥ ३०

मलीय माण तणी परि मइं घणउं ।
नहीय रोसु करुं तिहिं भामणुं ।
कनक जेम घणी परि सिउं कसी ।
सवि हु भावि सरिषी(खी)य ते तिसी ॥ ३१

लेष(ख)इ लागइ वर्ष ते मास दीहा ।
वेला वारू यामिनी ते सलीहा ।
सा सारंगी संगि शय्यां सुखावइ ।
साचइं सारूया रमूं वार भावइ ॥ ३२

पीन पर्वत पयोधर शृंगा । हार तार विमला वर गंगा ।
कांत पाणि तहिं यात्रिकु आवइ । पाप ताप तिणि तीर्थ हरावइ ॥ ३३

मदन मंडल कुंडल जाणीइं । मुषि(खि) मयंकु कपोल वषा(खा)णीइ ।
दशनि दाडिमनी किरि ए कुली । अधरि पल्लव विद्रुमनी रुली ॥ ३४

चरणि नेउर केउर बांहडी । करिहिं चूडीय रूडीय मूंद्रडी ।
हीयइ हारु निगोदरु कांठुली । कडिहिं फालीय बालीय ते मिली ॥ ३५

नीली चोली हाथि ले पानकोली ।
चाली भोली चींतवी कांतकेली ।
भाविइं भेली चींतवी सा महेली ।
सेरी मेली स्वामिसिउं रात्रि वेली ॥ ३६

मधुर वचन भासइ, सयरि संतापु नासइ ।
दशनि तिमर त्रासइ, स्वास सौरभ्यु वासइ ।
नयणि मृग निरासइ, हावभाविइं उल्हासइ ।
रिदयु हरइ हासइ, कांतु नारी विलासइ ॥ ३७

खिणिहिं उपरि आवइ, कामकेली सुखावइ ।
जघनु घनु नचावइ, कांत लीला रचावइ ।
पुरुष परि करंती, हर्षु हेजइं धरंती ।
दयितु मनु हरंती, नायका सा पनउंती ॥ ३८

अथ वसंतवर्णनम् ।

आव्यउ वसंत सवि हसंतु मास ।
वियोगीयारहइं करतु निरास ।
संयोगीयानी हिव आस पूरइ ।
सुकामिनी मानिनि मान चूरइ ॥ ३९

पवनु भूतलि शीतलु सांचरिउ । मलयचंदनि नंदनि जे फिरिउ ।
नवल आसइं वासइ कोकिला । विरहिणी धडकइं विरहानला ॥ ४०
हिव खजूरीय मुरिहिं पूरीइं । सुकरुणी तरुणीजन झूरीइं ।
कुसमनइ दिसि वासइं वासीइं । मलय मारुति सार विकासीइ ॥ ४१
विविध भार अढार वनसपती । करल कूंपल कोमल मेल्हती ।
सुमनि सावन भूमि अलंकरी । रुणझुणइं भमरा सवि संचरी ॥ ४२

मुन्दार साल सुरसाल प्रियाल साल ।
हंताल ताल कृतमाल तमाल ताल ।
पुन्नाग नाग कदली लवली लवंग ।
मंदार कुंद मुचकुंद सुरंग पूग ॥ ४३

विकच चंपक किंशुक मालती । वनवनी नव नील ति वासती ।
वकुल वेउल वालय पाडला । सुनलिनी नलिनी वन कोमला ॥ ४४

तरुण विलसइं दोला लीला विलोलइ कुंतला ।
करि सुकमला अंकिं बाला मनोहर कुंडला ।
सुरतरचना ना[ना] भंगिं अनंगिइ सांभरइ ।
अमर उपमा रामा कामी सु अंबरि ते धरइं ॥ ४५

हींडोलडे नवनवी परि एकि हींचइं ।
कामी प्रिया सिउं इकि पुष्प सीचइं ।
मनोन्य रंभागृह माहि पउढइं ।
रामा समालिंगइं अंगि गाढइ ॥ ४६

फूलतणी आंगी अंगि लागइ । के कुतिगिइं पंचम गीत गाइ ।
लीलावती सिउं विलसइं विलासइं । पूरइ पनुता मन केवि आस ॥ ४७

वसंत नीसार तिवार हूई । चिंता न जाइ मननी गिरूई ।
पंथी चलंता नितु वाट जोइ । वली वली वर्णिनि दुखि रोअइं ॥ ४८

विरह किम रहेस्यइ, साथनु वाट जोस्यइ ।
मधु समयि मरेस्यइ, दीहु आंकिउ वहेस्यइ ।
पथिकु मनि विमासइ, कोकिला वेगि वासइ ।
हरि हरि सु निरासइ, पापिणी प्राण नासइ ॥ ४९

कुबुद्धि कीधी करिवा अजोगी । वसंतवेलां हिव थिउ वियोगी ।
चिंता जिवारइं इम पांथि कीधी । त्विहीं त्विहीं कोइलि साखि कीधी ॥ ५०

*

परिमली वर मंजुरि आंबुला । वकुल पाडल फूलीय चांपुला ।
विरहि पावकि झाबकि व्याकुलउ । पथिक थिउ घर ऊपरि आकुलउ ॥ ५१

*

किवार होस्यइ प्रियमेल वेला । जा पुंश्चली चिंतइ सौख्य वेला ।
कुहू कुहू कोइलि नादु साचउ । सुणी दिहाडइ तिणि रंगि राचउ ॥ ५२
कहिउं मानि न मानिनि माहरुं । इहु सखाईय बाई[य ?] ताहरुं ।
नरु निरोपि न रोपि न बांहडी । बकुल सीतल भूतल छांहडी ॥ ५३

म करि रोसु नि दोस भणी धणी ।
सुणि न वात न वात जिणी थणी ।

छइल छेहु सनेहु न खेडिइ ।
चरणि लागीय रागीय तेडियइ ॥ ५४

करइ सुकि अनेकि वधामणां । तुझ कु लेखि देखिय रूसणां ।
नरु तुहिं कहि नासहि न्हालीइं । इसिउं जाणीइ वाणीइ पालीइ ॥ ५५
सखीय सीखह रोषह सूझवी । रमणि मेलि महेलीय बूझवी ।
रमइ निब्भर भंभर भोलीया । ललवली रमली रसि घोलीया ॥ ५६

*

मेल्हि रोसु सखि दोस न दीसइ । सुकिना मुखु वरांसइं लीजइ ।
एकवार अपराध खमीजइ । हिव वसंत रितुराज रमीजइ ॥ ५७

*

नीरंगि भंगी करती नवोढा । लाजइ घणउं बांह धरी विवोढा ।
मा मा भणंती सिरि मुड बांध्यउ । सु पुष्पधन्वां तिह बाण साध्यउ ॥ ५८

मुखि रुणझुणइ आंबइ एला लवंगिइं संचरइ ।
कमलि रमली केली मिल्ही वली लवली फिरइ ।
कुरब दमणइ चांपइ कांपइ अशोकिहि संचरइ ।
भमरु भमतउ सा वासंती वली वलि संभरइ ॥ ५९

लीलावंती कमलवदना कामिनी बांह लागी ।
रागी मागइ जन नवि गणइ आलिलिंगइ कुरंगी ।
हासउं हेली म करिसि हिवं हुं न वीनउ अपार ।
साचउं साचउं मयणु न गिणइ वार वेला विचारु ॥ ६०

नवनवीपरि रामति केलवी । मधुर पंचम गीतहिं आलवी ।
सुरतकेलीय कामिनिस्युं करी । सुजल शैवलिनी हियडइ धरी ॥ ६१

अथ ग्रीष्मवर्णनम् ।

वसंतु वीतउ हिव ग्रीष्म आवियउ । रागी विशेषइं मन तेउ भाविउ ।
तपइ घणेरउं करपूरि सूर । सुहाय घणउं शीतल सुछ चीर ॥ ६२
लही विचालउं हिव दीह वाधइं । ति रात्रि संकोडि उपाधि साधइ ।
वेला वहंती रिपु दाउ दीजइ । मांटीपणानी पुण लीह लीजइ ॥ ६३
सलिलु शीतळ भूतल पावीइ । पथिक कारणि पर्व भरावीइ ।
क्षणु रहइ सु महातरु छांहडी । सुष समाधि मनोहर ते घडी ॥ ६४

हिव तिवार जवारक वावीइ । बहुल मंडप छांह करावीइ ।
सइणि लोक अगासइ पुढणां । शयनि तेह सहइ नवि ओढणां ॥ ६५
श(शि)शिरचंदनि अंग विलेपीइ । कदलिने दलि वाउ स वीजीइ ।
पृथु नितंब सुपीन पयोहरा । चरण चंपइ नारि मनोहरा ॥ ६६

विशद विमल फाली, अंगि लागी सूयाली ।
पहिरीय वर बाली, हारु वारू मृणाली ।
वलि वलि गलि लागी, कामनुं तत्त्व जागी ।
विलसइ इम रागी, तापनी भ्रांति भागि ॥ ६७

रमइ शैवलिनी नलिनी घणउं । सलिल शीतलि झीलइ झीलणउं ।
करि सुरंगीय सीगीय छांटणउं । वलीय हासइ नासइ आंटणउं ॥ ६८

*

इसी अनेसी जलकेलि कीधी । अनंगलीला ललना सु कीधी ।
हिवं सु वर्षारितु विस्व व्यापउ । प्रजातणइ मानसि हर्षु थाप्यउ ॥ ६९

अथ वरसालावर्णनम् ।

धडहडी धडकइ धर धूंधली । झलहली झबकइ अनु वीजुली ।
गडयडइ गयणंगणि मेहडउ । तरुणि जोवणि गाजइ नेहडउ ॥ ७०

जलधर जलधारा, रात्रि घोरांधकारा ।
विरहिणि निरधारा, ते मनोभ्रूविकारा ।
खलहल जलु वाजइ, मेह आकासि गाजइ ।
वरिसीय नवि भाजइ, विस्वसाधार छाजइ ॥ ७१

दंताल वाहइ जण क्यार गाहइ । मल्हारु गाइ रमणी उछाहिइं ।
सालूर वासइ कलहंसु नासइ । कुडा विकासइ गिरिराज पासइ ॥ ७२

सरवर सवे पूर्यां पाणी भली परि उलह्स्यां ।
नइ ष(ख)लहलइ रेलइ छेलइ कूआ जल पालट्यां ।
प्रिय प्रिय सारिं बोलइ बापीहडा खग बापुडा ।
गिरिशिषरि जे किंगाइ ते महामदि मोरडा ॥ ७३

दिसि चडइं चिहुं चंचल आभलां । वन मनोरम कूंपलयां भलां ।
अवनि नीलतृणांकुरुसंकुला । सु धरिणी रमणी किरि कुंतला ॥ ७४
रुणझुणइं भमरु भ्रमि भीभलिउ । परिमलिइं वलि पाषलि संमलिउ ।
विकट कंटक संकट केवडी । सुगुण ए मिलिवा मनि भावडी ॥ ७५

अवह मारग पंकिल संकुला । पथिक चंचल चालइं आकुला ।
अहह सा मरिस्यइ मुझ वल्लही । न रहस्यइ विरहानलि सांसही ॥ ७६

झिरिमिरइ महि मेहलि मोकली । सरइं सारस अंबरि आकुली ।
यमुगली बगुली अतिऊजली । करइ पालीय हालीय नेरली ॥ ७७

गगनि जलधराली, वीजुली गुष(ख)जाली ।
खलहल परनाली, चित्रशाली विशाली ।
शयनितलि सूंयाली, कामिनी छइ छराली ।
निज भुज गलि बाली, कांतु पुढइ रसाली ॥ ७८

रयणतिमिर काली, शोक संतापु टाली ।
कुसुमह गलि माली, आंषि इंदीवराली ।
दशनि तिमिर टाली, हारु बारू मृणाली ।
मयणु [उ?]रुमराली, तीणि संधइ मराली ॥ ७९

लोअडी लहकती उरि आछी । द्रेठि चंचलि जिसी जलि माछी ।
जालफूल धरती करि पाछी । आवि मालिणि म जाइसि पाछी ॥ ८०
चमुकलइं चलती पगुलां भरइ । लहकडइं कडि मोडीय सांचरइ ।
मुरकलइ हसती हिव हेलवइ । अछइ कोइ जु मानिनि मेलवइ ॥ ८१
लिषीइ लेषु सु केतकि पाठवइं । सषीय सांनिधि सा बुद्धि आठवइ ।
भरिहिं भाद्रवडा घण मेहडउ । दयित देहु दहइ नव नेहडउ ॥ ८२

अथ शरदु रितुवर्णनम् ।

वीतउ वर्षाकालु आसो पहूतउ । हंसा राविइं भाविइ हूंतउ ।
कहंतउ वेला जाणी एउ ऊगिउ अगस्ति । वर्णावर्णि आलवी सार स्वस्ति ॥ ८३

कमलडां विहसइं सरिसां घणां । मलिनमा जलु मेल्हइ आपणा ।
रमणिरंजन षंजन चंचला । तरुण वंचन लोचननी कला ॥ ८४

कलमशालीय बालीय टोहणउं । करइ कंकणगीतिहिं मोहणउं ।
कुसुम कास विकास विशेषीइ । शरद हासउं आसिउं देषीइ ॥ ८५

रमइ ते नरनारीसिउं मिली । परिमली विमली कुसुमं कली ।
सुरत संमद सा रतु माचवइ । समयु पामीय कामीय राचवइ ॥ ८६

दिसि दसइ हिव हूई मोकली । झलहली सिसिपूनिम ऊजली ।
कुमुदु संमदु सुगंधु विस्तरइ । भमरु पाषलि आकुल तउ फिरइ ॥ ८७

वर्षइ पाणी स्वाति जीमूतु जाणी । पात्रापात्रिइं अंतरुं तु प्रमाणी ।
सीपं मोती धान्य केदार सार । व्यालिं लीला होइ हेलां असार ॥ ८८

अथ हेमंतु रितुवर्णनम् ।

शरदु रितु निरोपिउ, हेव हेमंत रोप्यउ ।
जण घण मणि ओपिउ, तु मनोजन्म कोपिउ ।
रमण रमइ रामा, हावभावाभिरामा ।
सयरि सवि सकामा, ते न लेइं विरामा ॥ ८९

गंधिइं गिरूउ महकइ मरूउ । सदा सरूउ वनभूमि हूउ ।
सोडिइं सूआलउ वरु नामु वालु । एहू जि मालउ रितु रहइं विमालउ ॥ ९०

प्रियंगु मुखा गुणि गंधि पूखा । सालून साखा फलफूलि भाखा ।
सुबंधु वाजी (जीवा ?) नवरंग दीवा । मत्तालिरावा कृतहावभावा ॥ ९१

रलीय रंगि तरंगित कापडां । प्रगट पुण्य प्रमोदइं सांपड्यां ।
सरस कूर कपूर ति जीमीइ । सुखीय भोग भली परि कामीइ ॥ ९२

सहजि सेवइं भोगपरंपरा । नवल नारीय चीर सुबंधुरा ।
इसइं लेषइ ते रितु रूयडी । भवह भाविइं आवीय आपडी ॥ ९३

अथ शिशिर रितुवर्णनम् ।

रितु शशिरु पहूतउ, हेव हेमंतु जीतु ।
मयणु घणु वदीतु, भोगि संभोगि चीतउ ।
हिम पडइ सनाढा, वाय वाजइ सुताढा ।
नर निरुप थाढा, भामिनी भोगि गाढा ॥ ९४

तेलि मर्दनु सुगंधि करावइ । यामिनी श्रमु शरीरि हरावइ ।
नागवेलि दलनउ मुखि रंग । केवि कामिय समारइ अंग ॥ ९५

दोटी मोटी ऊजली एक ताई । माथइ फाली मोजडी पाय लाई ।
तातइ पाणी हाथ पाया पषालइ । तापिउं भावइ ताढि वेलां सीआलइ ॥ ९६

षट्टा तूली पउढीइ चित्रसाली । कांता कंठिइं सीतरक्षा विचाली ।
दीवा पासिं धूपवासिं विणोदइ । वीणानादिइं रात्रि पूरइं प्रमोदिइं ॥ ९७

हिमबलिइं सलिलइं थिरु थाहरी । हडहडइं हडबां हिव पाहरी ।
रयणि वाधइ बांधइं बाकरी । जनमनोहर गोहुम मंजरी ॥ ९८

जासून राती रितुरहिं समाती । वनी वधू कुंकुम भाव भाती ।
करइ रली कुंदकली सुदंता । रमइ वली रागीय रंगि कांता ॥ ९९

सरस सालिं दालिहिं सालनां । सुरभि घीउ वडां घण घोलनां ।
जिमइं जासक मंडक षांडसिउं । रहु रहिउ रमणी भणि छांडस्युं ॥ १००

पृथु पयोधर भार नितंबिनी । रिद्‌यु नायकसिउं सुख संगिनी ।
उरि उरोज अणीअ नीसरइ । मयणभल्लि जिसी हिमु संचरइ ॥ १०१

भुज भुजिइं मुखिस्यउं मुखि संमिलइ । वयणि सिउं पय प्राणिउं संकलइ ।
उर उरिइं उदरोदरि पीडीइ । सुरतु आसनि दंपति मंडीइं ॥ १०२

हसमिसइं हीयडउं मिलिवा भणी । दिन घणाइ ह आरति तू तणी ।
करि कुरंगीय संगमु ताहरु । जिम शमइ विरहानल माहरउ ॥ १०३

दशनु वसनि रातउ, दंतिसिउं कांतु खातु ।
रइ रसि वसि मातउ, भोग संभोगि रातउ ।
रहि रहि प्रिय वाणी, कामिनीनी न जाणी ।
हइ हइ सुविजाणी, तेतलइं ते प्रमाणी ॥ १०४

*

वसंतवल्ली सवि मइं विणासी । महाहिमं चित्ति इस्यउं विमासी ।
नाठउ सीयालउ हिव ओसीयालउ । दीठउ जिवारइ रितुराज चालिउ ॥ १०५

॥ इति शृंगारशतं समाप्तः ॥

*
* *

लल्लभाटकृत सिद्धराय जेसिंघदे कवित्त

*

आ नीचे आपेलां प्राचीन भाषाकवित्त, ३०० – ४०० वर्ष जूना लखेला एक गुटकामां मळी आव्यां छे. चौलुक्य चक्रवर्ती महाराज सिद्धराज मोटो विद्याप्रेमी अने विद्वानोनो पूजक हतो. एनो दरबार, कवि चक्रवर्ती श्रीपाल आदि घणा महान् कवियोथी भूषित हतो. कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य जेवा सर्वविद्यापारंगत महान् जैनाचार्यो तथा बीजा पण तेवा अनेक समर्थ प्रतिभाशाली जैन यतियोनी विद्वत्ताथी एनी राजसभा सदैव गुंजायमान रहेती; तेम ज महापण्डित आलिग, राजपुरोहित आमिग, महामात्य गागिल जेवा ब्राह्मण, अने अन्य चारण भाटोनी प्रखर कवित्वध्वनिथी पण एनी विद्वत्परिषत् अहोनिश काव्यामृतना रसास्वादमां मस्त रहेती. प्रबन्धचिन्तामणि अने पुरातनप्रबन्धसंग्रह जेवा ग्रंथोमां सिद्धराजना केटलाक प्रसिद्ध राजकवियो अने सभापण्डितोनां नामो; तथा संस्कृत, प्राकृत अने अपभ्रंशमां तेमणे रचेलां सिद्धराजना प्रशंसात्मक स्तुतिपद्यो प्रसंगोपात्त मळी आवे छे. सिद्धराज विषेनुं आवुं स्तुतिमय साहित्य घणुं विशाल होवुं जोइए, परंतु ते समग्र उपलब्ध नथी. अहिं मुद्रित करवामां आवतां ९ पद्यो एवा ज साहित्यभंडारना खोवाएला ने वेराएला मणका जेवा छे. एना कर्ता तरीके लल्लभट्टनुं नाम आप्युं छे. जो के प्रबन्धोमां एनुं नाम क्यांय मळतुं नथी परंतु ए माटे शंकानुं कारण नथी. बीजा पण आम, गद्द, सागरचन्द्र विगेरे घणा कवियोना नामो प्रबन्धोमां मळतां नथी, छतां तेमनी कृतियोना अवशेषो रूपे केटलांक छूटां छूटां पद्यमुक्तको जूनी पोथियोमां मळी आवे छे. नीचे आपेलां कवित्तोनी भाषामां लहियाओना हाथे कालक्रमे केटलोक फेरफार थई गयो छे छतां तेना मूळनी प्राचीनता विषे सन्देह करवा जेवुं नथी लागतुं. भाटो, चारणो, कवियो कोई विशेष अवसर के विशेष वस्तुने लक्षीने राजाओनी स्तुति गावानो प्रसंग मेळवी ले छे अने तेने अनुरूप वस्तुवर्णन करी पोतानी कवित्वशक्तिनो परिचय आपवानो प्रयास करे छे. राजाओ कविनी कविताथी अने पोतानी स्तुतिथी प्रसन्न थईने कविने यथायोग्य पारितोषिक आपे छे. आ जातनां स्तुतिकवित्तो मुक्तको जेवा एकेक - बब्बेनी संख्यामां छूटां ज होय छे अने ते सुभाषितोना संग्रह जेवा प्रकीर्ण पुस्तकोमां, विविध विषयना सुभाषितो भेगां, लखेलां मळी आवे छे. आपणा प्राचीन भाषासाहित्यना अभ्यासनी दृष्टिए आ कवित्तो घणां उपयोगी अने रसदायक होय छे.

अहिं आपेलां पद्योमांथी बे पद्यो, क्रमांक १ अने ५, रत्नमन्दिरगणिनी उपदेशतरंगिणी नामे ग्रन्थकृतिमां (रचना समय सं. १५०० – १५१५ ना अरसामां) पण उद्धृत थएलां मळे छे. पण एमां पद्यांक १ नो कर्ता आमभट्ट अने ५ नो कर्ता कवि गद्द जणावेलो छे. कवि आमभट्टनुं बीजुं पण एक पद्य ए ज ग्रन्थमां आपेलुं छे जे तेणे कुमारपालनी स्तुतिरूपे कहेलुं छे. कवि गद्दना नामनां बीजां पण केटलांक विषयनां अन्यान्य पद्यो अमने सुभाषितसंग्रहोमां मळेलां छे, पण तेमनो कर्ता कोई बीजो अर्वाचीन कवि होय तेम लागे छे.

ए पहेला पद्यमां, सिद्धपुरमां सरस्वतीना तीरे सिद्धराजे बंधावेला रुद्रमहालयनुं वर्णन छे जे ऐतिहासिक दृष्टिए खास उपयोगी छे. एमां, रुद्रमहालयमां स्तंभ विगेरे केटला हता तेनी संख्या बतावेली छे. ए संख्या प्रमाणे, ए महालयमां १४४४ स्तर हता, १७०० स्तंभ हता, १८०० पुत्तलीयो हती, जे हीरा माणिकथी जडेली हती. ३०००० नानामोटा ध्वजदंड हता. (उपदेशतरंगिणीना पाठ प्रमाणे वळी १०००० सुवर्णना कलश हता) १७००० हाथी अने घोडाओना आकार कोतरेला हता (उपदेशतरंगिणीमां आ संख्या ५६ कोडी जेटली आपेली छे जे अविश्वसनीय लागे तेवी छे. अथवा तो कोडीनी संज्ञा कोई जुदी ज जातनी संख्यानी वाचक होय, जेम कच्छमां २० नी संख्याने कोडी कहेवामां आवे तेम.) आ उपरथी ए रुद्रमहालय केवो भव्य अने केटलो विशाल हशे तेनी कांइक कल्पना करी शकाय तेम छे. आखाय पश्चिम भारतमां अत्यारे जेटला जैन, शैव, वैष्णवादि जूना मन्दिरो विद्यमान छे तेमां विशालतानी दृष्टिए सौथी मोटुं मन्दिर, मारवाडराज्यमां आवेला राणकपुर गामनुं 'धरणविहार' नामनुं चतुर्मुख जैन मन्दिर छे. ए मन्दिरमां कहेवाय छे तेम, कुल १४४४ स्तंभो आवेला छे, ज्यारे रुद्रमहालयमां १७०० स्तंभो हता. ए उपरथी तेनी विशालतानी तुलना करी शकाय तेवी छे.

अथ लल्लभाटकृत जेसिंघदे कवित्त लिख्यते ।

†अमर कि धरिणी परिठवइ, अमर कि एसा हुंति ।
अमर कि नर जेसिंघ **तूं, यो मनि भंजइ भ्रंति ॥ १**

एकदा देहरइ जोइवा चाल्यो – †

---

†–† आ बे दंड वच्चे आपेली पंक्तियो, मूळ जूना लखेला कवित्तोना मथाळे, कोईए पाछळथी लखेली छे, तेम ज एनी भाषा पण वधारे अर्वाचीन छे, एटले कोई संग्राहके आ प्रारंभनो दूहो पाछळथी अहिं लखी दीधो लागे छे.

३.१.२९.

‡थर सय चवद चियाल थंभ सइ सतर निरंतर,
सइं अढार पूत्तली जडी हीरइ माणिक्क वर।
त्रीस सहस धजदंड कलस सोवन्न विहारइ।
सतर सहस गय तुरिय लल्ल गिणि रुद्र निहालइ।
इत्ताइ पिक्खि सिद्धाहिवइ, रोमंचिय सुरनर श्रवइ।
सुप्रसिद्ध कित्ति जेसिंघ तुअ, टगमग चाहइ चक्कवइ॥ १

*

आगलि सांडिउ त्राडूकार करतउ देखि भाट बोल्यउ—

दिसिगयंद गडअडइ सिंह पेखिणि गुंजारइ।
कणय कलस झलहलइ डंड उड्डंड विहारइ।
नच्चेइ रंगि तिह पूतली हेक गाए हेक वाए।
इण परि सर उच्छलिय संख सबदइ आलाए।
पेषंता सुरनर सयल परि, घमघमंति सर उच्छलिग।
तिणि कारणि सिद्धनरिंद सुणि, वृष वइल्ल थक्कउ डरिग॥ २

*

सरगि इंद्र सलहिए राउ पायालहि वासिग।
मृत्युलोकि तूं राय अवर कुण ऑपम कासिग।
हेमसेत मंझारि न को हिव अत्थि नराहिव।
अत्थि न चउत्थउ कोइ सच्च जंपुं सिद्धाहिव।
त्रिण्हि राय त्रिभुवन तवे, जेसिंघ सच्च समुच्चरुं।
जय अत्थि चउत्थउ राय कहि, तो डब्ब जलंतउ करि धरुं॥ ३

*

राउ ग्रहइ उग्रहइ राउ उत्थपि इक थप्पइ।
रायां मलइ मरट्ट राउअ समरि करि डप्पइ।
डक्क ढक्क त्रंबक्क मेघ डंबर उद्दालइ।
राउ जडइ पिंजरइ राउ अग्गलि करि चालेइ।
चालवे चक्क चिहुं दिसि तणइ, एक अंग भूवलि वरी।
मयणल्लदेवि कर्णह घरिणि, सिद्धराउ किउ उर धरिय॥ ४

‡ आ पद्य बीजां पण संग्रहोमां किंचित् पाठभेद साथे मळी आवे छे. उपदेशतरंगिणीमां आनो पाठ नीचे प्रमाणे छे.

थर सइं चऊद चुंआल थम्भ सइं सत्तर निरंतर।
सय पुत्तलीय अढार जडी मणिमाणिक्क रयंवर।
तीस सहस धजदंड कलस दससहस्स सुवन्नय।
छप्पन्न कोडि गयतुरिय लग्ग तिणि रुद्द महालय।
कवि गद सद इम ऊचरइ, सुरनर रोमंचिय सवइ।
सुपसिद्धि खित्ति जयसिंह कित्ति, टगमग चाहइं चक्कवइ॥

भाषानी दृष्टिए आ पाठ वधारे प्राचीन जणाय छे, परंतु शब्द अने अर्थनी दृष्टिए ऊपरनो पाठ वधारे ठीक लागे छे.

‡डरति इंद्र डगमगति चंद्र कलमलति दिवायर।
चलति पृथ्वी डोलंति मेरु झरझंपति सायर।
सेससीस सलवलति दढतिदढ कुंभ कडक्कति।
अनल विनल थिय इक्क पृथ्वीपट पलय ढलक्कति।
षडहडति दुग्ग भू राउ सुणि, सुरनर फणिमणि इक्क हूय।
म म गहसि म गहि म म गहि म गहि, म गहि मुच्छ जेसिंघ तुअ ॥ ५

*

जु ते देव चालक नरिंद भड भंडणि बहिया।
ति सवि ईस संगहवि गुंथि गलि मालइ गहिया।
पेषि माल सिरिधुणी अमी ससिहर विच्छुडिया।
सु जड कडत्रइ ग्रही बंभ केसरि गडिअडिया।
विड्डुरिय वृषभ जेसिंघ सुणि, सुकविरयण सच्चउ चवइ।
हडहड करंति कैलास सहु, हह करंति संकर भमइ ॥ ६

*

मूसा बिल खणि मरइ भूमि भोगवइ भुयंगम।
हलि खडि मरइ बइल्ल हरिय जव चरइ तुरंगम।
सूम संचि करि मरइ वीर विद्रवइ विवहपरि।
पंडित पढि गुणि मरइ मूढ बोलइ रायां घरि।
सुणि सिद्धराय गुज्जर धणी, करां वीनन्ती कर्णसुअ।
हम पढुं गुणु पावइ अवर, का परीष जेसिंघ तुअ ॥ ७

*

वीस त्रीस चालीस साठि सत्तरि सतहत्तरि।
भाटइ आणी सुंपि दिद्ध केकाण सबल वरि।
आठ ढालि दस ढोल वीस नेजा इक दंडह।
छत्र ढलवि गय गुडवि दिद्ध जेसिंघ नरिंदह।
मारिउ दलिद दस लाष देइ, णिउ पाय अंकुस कीयउ।
हुडहडवि भट्ट तारइ हस्यउ, सिद्धराय इत्तउ दीयउ ॥ ८

---

‡ आ पद्य माटे उपदेशतरंगिणीमां लख्युं छे के–'एकदा सभायां सिद्धराजेन स्वमूंछायां करगृहीतायां आमकविः प्राह'–(अर्थात् एक वखते सिद्धराज सभामां बेठो पोतानी मूंछ ऊपर हाथ फेरववा लाग्यो, त्यारे आम कविए ते प्रसंगे आ पद्य कह्युं). उपदेशतरंगिणीमां आनो पाठ नीचे प्रमाणे छे.

डरि गइन्द डगमगिअ चन्द करमिलिय दिवायर।
डुलिय महि हल्लिवह मेरु जल झंपिअ सायर।
सुहड कोडि थरहरिय कूर कूरंम कडक्किअ।
अनलविनल धसमसिय पुहवि सहु प्रलय पलट्टिय।
गज्जंति गयण कवि आम भणि, सुरमणि फणमणि इक्क हूअ।
मा गहिहि म गहि म म गहि म गहि, मुंच मुंछ जयसिंह तुह ॥

ऊपर आपेला पाठ करतां आ पाठनी भाषा वधारे प्राचीन छे अने अर्थ दृष्टिए पण वधारे शुद्ध छे.

* *
*

गुणाढ्य कविनी बृहत्कथानो आदि श्लोक

*

गुणाढ्य कविनी सुप्रसिद्ध बृहत्कथा जे पैशाची भाषानी एक सर्वोत्कृष्ट कृति हती तेनुं मूळ हजी सुधी क्यांए उपलब्ध नथी थयुं. तेम ज ए कथामानुं कोई एकाधुं पद्य पण एनी मूळ भाषामां कोईने दृष्टिगोचर नथी थयुं, जेथी ए कृतिना भाषा-स्वरूपनो यत्किंचित् पण आभास विद्वानो निश्चितरूपे मेळवी शके. पैशाची भाषाना स्वरूपनुं दिग्दर्शन हेमचन्द्राचार्य आदिना प्राकृत व्याकरणोमां जे कांई कराववामां आवेलुं छे ते परथी ज आपणने ए भाषाना स्वरूप विषे यत्किंचित् ज्ञान मळी शके छे. ए व्याकरणोमां आपेला नियमोना आधारे रचाएली केटलीक क्षुद्र स्तुति-स्तोत्रादिक जेवी कृतियो जोवामां आवे छे खरी, परंतु तेमनी भाषा कृत्रिम स्वरूपनी होवाथी अने समयनी अपेक्षाए ते अर्वाचीन होवाथी साहित्यनी दृष्टिए तेनी कशी मूल्यवत्ता नथी. मृच्छकटिकादि केटलांक नाटकोमां पैशाची भाषानो क्यांक क्यांक जे वाक्यप्रयोग करवामां आवेलो छे ते ज मात्र साहित्यनी दृष्टिए महत्त्वनो गणाय एवुं ए भाषानुं अल्पल्प साहित्य आपणने दृष्टिगोचर थाय छे. बृहत्कथा उपरान्त पैशाची भाषामां बीजी पण अनेक कृतियो होवी जोइए, कारण के राजशेखरादि आलंकारिकोए पैशाची अर्थात् भूतभाषाना साहित्यने पण अपभ्रंशादि भाषाना वाङ्मयनी समकक्षाए ज स्थान आपेलुं छे. परंतु दुर्भाग्ये आपणने हजी सुधी ए भाषासाहित्यनी कोई विशिष्ट रचना प्राप्त थई नथी. हेमचन्द्राचार्ये पोताना प्राकृतव्याकरणना ८ मा अध्यायमां, पैशाचीना प्रकरणना केटलांक सूत्रोमां थोडाक वाक्यांशो आपेला छे अने चूलिका-पैशाचीमां 'र' अक्षरना स्थाने 'ल' थाय छे एना उदाहरण तरीके नीचेनी बे गाथाओ आपेली छे.

पनमथ पनय-पकुप्पित-गोली-चलनग्ग-लग्ग-पति-बिम्बं ।
तससु नख-तप्पनेसुं एकातस-तनु-थलं लुद्दं ॥ १
नच्चन्तस्स य लीला-पातु-क्खेवेन कम्पिता वसुधा ।
उच्छल्लन्ति समुद्दा सइला निपतन्ति तं हलं नमथ ॥ २

हेमचन्द्राचार्यनी उदाहरणो आपवानी विशिष्ट शैली उपरथी आपणे जाणी शकीए छीए के तेमणे उद्धरेला वाक्यांशो अने खास करीने आ बे गाथाओ पैशाची भाषानी कोईक प्रसिद्ध कृतिमांथी लीधेली होवी जोइए. परंतु तेमणे ए विषेनुं कशुं सूचन कर्युं न होवाथी, कया ग्रन्थनी आ गाथाओ छे तेनो स्पष्ट

कल्पना शी रीते करी शकाय. नमिसाधुए, रुद्रटना काव्यालंकार ग्रंथ उपर पोते करेला टिप्पणमां, पैशाची भाषानां स्वरूपद्योतक जे केटलाक शब्दो उद्धरेला छे तेना अन्ते लख्युं छे के – "**इत्यादयोऽन्येऽपि बृहत्कथादिलक्ष्यदर्शनाज्ज्ञेया इति ।**" (२, १२) अर्थात् आ जातना बीजा पण अनेक शब्दो बृहत्कथा आदिमां मळी आवता स्वरूपानुसार जाणवा. आ उपरथी आपणने अनुमान करवानुं कारण मळे छे, के आचार्य हेमचन्द्रे पोताना व्याकरणमां आ भाषाना नियमोना उदाहरणरूपे जे शब्दो अने वाक्यांशो आप्या छे तेमांना केटलाक बृहत्कथामांना होवा जोइए. अने एथी ज डॉ० पिशले पोताना प्राकृत भाषाओना महान् व्याकरण ग्रन्थमां, आ जातनुं खास संभवित अनुमान करेलुं जणाय छे. खास करीने हैमव्याकरणना पैशाची भाषाना प्रकरणना सूत्र ३१०, ३१६, ३२०, ३२२ अने ३२३ मां जे वाक्यांशो आपेला छे ते बृहत्कथाना होवानो संभव छे एम तेमणे विधान कर्युं छे अने ते साथे सूत्र ३२६ मां जे गाथा उद्धृत थएली छे ते पण 'कदाचित्' ए ज ग्रंथनी होय एम तेमणे सूचव्युं छे.[१] पिशलना आ कथनने, जे. एस्. स्पेयेर नामना डच विद्वाने पोताना 'कथासरित्सागर विशेना अभ्यास' (Studis about Kathāsaritsāgara) नामना ग्रन्थमां[२] स्वीकरणीय मान्युं छे.

परंतु आ अनुमानने पुष्टि आपे एवो कोई प्राचीन उल्लेख अद्यापि प्रकाशमां आव्यो होय एवुं मारी जाणमां नथी. हुं अहिं आजे एवो एक उल्लेख प्रकाशित करूं छुं जे विद्वानोने मनोरंजक थशे अने छेवटे बृहत्कथाना एक पद्यनी निश्चित प्राप्तिथी आपणने आल्हाद थशे. ए उल्लेख भोजदेवना सरस्वतीकंठाभरणनी आजडकृत टीकामांथी प्राप्त थाय छे, जेनी अद्यावधि ज्ञात एवी मात्र एक ज, अने ते पण त्रुटित, प्रति पाटणना जैनभंडारमां ताडपत्र उपर लखेली मळी छे. प्रति खण्डित होवाथी अने अन्तिम भाग अनुपलब्ध होवाथी ए वृत्तिकार आजडना समय आदि माटे एमांथी कशो विशेष उल्लेख प्राप्त थई शकतो नथी. परंतु, प्रथम प्रकाशना अन्ते एणे पोतानो परिचायक आ प्रमाणे उल्लेख कर्यो छे –

"**इति भाण्डशालिपार्श्वचन्द्रसूनोः श्रीआजडस्य कृतौ पदप्रकाशनाम्नि सरस्वतीकण्ठाभरणालंकारटीकाविषमपदोपनिबन्धे प्रथमः परिच्छेदः ॥ ग्रं० ५२० ।**

---

१ जुओ, पिशलनुं प्राकृतव्याकरण, पृ. २८.　२ उक्त निबन्ध, पृ. २९.

ते परथी जणाय छे के ए आजड भाण्डशाली पार्श्वचन्द्रनो पुत्र हतो अने भद्रेश्वरसूरिनो उपासक हतो.[1] पोतानी टीकामां एणे हेमचन्द्राचार्यनो उल्लेख करेलो होवाथी, ए हेमचन्द्रसूरि पछी थयो छे एटलुं सिद्ध थाय छे. पण ताडपत्रनी स्थिति अने कृतिनी रचना आदिनो विचार करतां लागे छे के एनो प्रादुर्भाव हेमचन्द्राचार्य पछी तरत ज–एटले के बहु बहु तो ४०–५० वर्षनी अन्दर ज–होवो संभवे छे.

सरस्वतीकण्ठाभरण, प्रकाश २, पद्य १७ ना विवेचनमां, पैशाची भाषानो प्रयोग केवी जातना पात्र माटे करवो तेनो विचार करवामां आवेलो छे अने तेमां उदाहरणरूपे जे गाथा उद्धृत करवामां आवी छे, ते ते ज गाथा छे, जे हेमचन्द्राचार्ये प्राकृतव्याकरणमां, उद्धरेली छे अने जे अमे उपर आपेली छे. स. कं. नी पंक्ति आ प्रमाणे छे–

नात्युत्तमपात्रप्रयोज्या पैशाची शुद्धा । यथा–
पनमत पनअपकुप्पितगोलीचलनग्गलग्गपडिबिम्बम् ।
तसस्सु नहतप्पनेसु एआतसतनुधलं लुद्दम् ॥

निर्णयसागरप्रेस तरफथी प्रकट थएली स. कं. नी रामसिंहनी वृत्तिमां ए पंक्तिनी व्याख्या विगेरे आपेली छे, परंतु ए गाथा मूळ क्यांनी छे एनुं कशुं सूचन नथी करेलुं. आजडे आ गाथानी व्याख्या करतां लख्युं छे के–

"बृहत्कथायामादिनमस्कारोऽयम् । अत्र पैशाची भाषा इति ।"

अर्थात्–'आ बृहत्कथानो आदि नमस्कार छे. आनी भाषा पैशाची छे.'

आ रीते आजड स्पष्ट रीते प्रस्तुत गाथाने बृहत्कथाना आदि नमस्काररूपे लखे छे, ए परथी जणाय छे के एनी पासे ए बाबतनो कोई स्पष्ट पुरातन आधार होवो जोइए. गाथागत वस्तु उपरथी पण ए तो स्पष्ट ज समझाय छे के ए कोई प्रसिद्ध ग्रन्थ के कृतिनुं नमस्कारात्मक कथन होवुं जोइए. अने तेथी ज, पिशल जेवा समर्थ मर्मविद् भाषाशास्त्रज्ञे ए माटे उक्त अनुमान कर्युं हतुं. आजडना आ उल्लेखथी हवे आपणने ए माटेनो प्रमाणभूत आधार पण मळी आव्यो छे.

* * *

---

[1] बीजा प्रकाशना प्रारंभमां बे पद्यो आपेलां छे जेमां पहेलामां शान्तिनाथजिननी स्तुति अने बीजामां पोताना गुरु भद्रेश्वरसूरिनी स्तुति करेली छे. ए बीजुं पद्य आ प्रमाणे छे–

श्रेयांसि प्रतनोतु नः शुचियशोमुक्ताफलालंकृतः
श्रीमान् दुर्म्मदवादिकुञ्जरहरिर्भद्रेश्वराख्यो गुरुः ।
दिग्नागप्रतिमोऽपि यस्य चरणेनालंकृतं सर्वतः
प्रेक्ष्याक्रामति जैनदर्शनवनं नाद्यापि कोऽपि क्षितौ ॥

आजडे करेली 'प्राकृतभाषा'नी व्याख्या

*

'प्राकृत' ए शब्दनी व्याख्या हेमचन्द्र आदि प्रसिद्ध वैयाकरणोए जे आपेली छे ते भाषाविज्ञानना सिद्धान्त प्रमाणे संगत थती नथी, ए मत हवे सुप्रतिष्ठित थई गयो छे. ए वैयाकरणोना कथन प्रमाणे प्राकृतभाषानी मूळ प्रकृतिं एटले के उत्पत्ति-योनि संस्कृत छे. **'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्'** एवी ए वैयाकरणोनी व्याख्या छे. ए व्याख्या सुसंगत नथी. कारण के संस्कृत ए शब्द ज पोते एवुं सूचवे के संस्कारयुक्त—व्याकरणना नियमोथी संस्कार पामेली—भाषा ते संस्कृत. एनाथी उलटुं, प्राकृत शब्द पोते ज एवो अर्थ सूचवे छे के प्रकृति एटले लोकस्वभावपरिणत—स्वाभाविक रीते ज लोकोमां जे भाषानो व्यवहार प्रवृत्त थतो होय—ते प्राकृत. जूना ग्रन्थकारोमां, मात्र रुद्रटना व्याख्याता नमिसाधुए 'प्राकृत' शब्दनो आ भाव व्यक्त करतो अर्थ कर्यो छे अने ते आधुनिक भाषाशास्त्रना सिद्धान्तने वधारे मळतो आवे छे. तेणे आपेली प्राकृतनी व्याख्या, वधारे संगत रीते वस्तुस्थितिने सूचवनारी होई, भाषाविकासना इतिहासने बन्धबेसती आवे छे. मारा विद्वान् मित्र सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्रविशारद डॉ. एस्. एम्. कत्रे (एम्. ए. पीएच्. डी; डायरेक्टर, डेक्कन कॉलेज पोष्ट-ग्रेज्युएट एन्ड रीसर्च इन्स्टीट्युट, पूना), **'भारतीय विद्या स्टडीज्'**मां हमणां ज प्रकट थएला, **'प्राकृत लेंग्वेजीज्'** नामना पोताना नूतन पुस्तकमां ए संबंधमां लखतां जणावे छे के—

"It is, however, to Namisādhu, the famous commentator of Rudrata's *Kāvyālamkāra*, that we owe a surprisingly modern definition of the word *prākṛta*. According to him, the 'basis' or prakrti of these languages or dialects is the natural language of the 'people' uncontrolled by the rules of grammarians, the common medium of expression and intercourse, as opposed to Sanskrit, the refined language of the gods and the learned. It follows, therefore, that the word *prākṛta* comprises the natural unrefined dialects of the common people and their descendants, forming one family of languages." p. 2

नमिसाधुए आपेली प्राकृतनी व्याख्या आ प्रमाणे छे—

"प्राकृतेति—सकलजगज्जन्तूनां व्याकरणादेरनाहितसंस्कारः सहजो वचन-

व्यापारः प्रकृतिः । तत्र भवं सैव वा प्राकृतम् । ......बालमहिलादिसुबोधं सकलभाषानिबन्धनभूतं वचनमुच्यते । मेघनिर्मुक्तजलमिवैकस्वरूपं तदेव च देश-विशेषात् संस्कारकरणाच्च समासादितविशेषं सत् संस्कृताद्युत्तरविभेदानाप्नोति ।... पाणिन्यादिव्याकरणोदितशब्दलक्षणेन संस्करणात् संस्कृतमुच्यते ।" (काव्या-लंकार. २, १२)

सरस्वतीकण्ठाभरणना, २ जा प्रकरणना प्रारंभमां, जाति नामना शब्दालंकारनो निर्देश करवामां आव्यो छे, जेमां संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओनो पण उल्लेख आवे छे. आजडे ए प्रसंगे 'प्राकृत भाषा'नी जे व्याख्या आपी छे ते नमिसाधुनी उपर्युद्धृत व्याख्या साथे शब्दशः संपूर्ण मळती आवे छे. ए व्याख्या आ प्रमाणे छे –

"संस्कृतादिर्वाग् जातिः । जातिनामा शब्दालंकार उच्यते । इति संबन्धः । सा च पाणिन्यादि-अष्टव्याकरणोदितशब्दलक्षणेन संस्करणात् संस्कृता प्रोच्यते । आदिशब्दात् प्राकृत-शौरसेन-मागध-पिशाच-अपभ्रंशवाचां परिग्रहः । तत्र – सकल-बालगोपालाङ्गनाहृदयसंवादी निखिलजगज्जन्तूनां शब्दशास्त्राकृतविशेषसंस्कारः सहजो वचनव्यापारः समस्तेतरभाषाविशेषाणां मूलकारणत्वात् प्रकृतिरिव प्रकृतिः । तत्र भवा सैव वा प्राकृता । ...सा पुनर्मेघनिर्मुक्तजलपरंपरेवैकरूपापि तत्तद्देशादि-विशेषात् संस्कारकरणाच्च भेदान्तरानाप्नोति । अत इयमेव शूरसेनदेशवास्तव्यजन-ताकिंचिदापादितविशेषलक्षणा भाषा शौरसेनी भण्यते ।"

आजडनी व्याख्यानो भावार्थ आ छे के – पाणिनि आदि आठ व्याकरणोमां बतावेला नियमो प्रमाणे जे भाषानो संस्कार करवामां आव्यो छे ते भाषा संस्कृत कहेवाय छे. प्राकृत भाषा ते छे – जे सर्व बाल, गोपाल, स्त्री आदि माणसोना सहज वाग्व्यापार रूपे प्रवर्ते छे अने जे शब्दशास्त्रना विशेष नियमोथी बद्ध नथी होती; तेम ज जे बीजी बधी देशभाषाओनी, मूळ कारण = प्रकृति जेवी होवाथी प्रकृति-रूप गणाय छे अने तेथी ए प्राकृत कहेवाय छे. मूळमां ए प्राकृत, आकाशमांथी पडेला पाणिनी माफक, सर्वसाधारण एवी एक व्यापक प्रकारनी भाषा हती, पण देशविशेषना संस्कारभेदथी, पाछळथी ते शौरसेनी, मागधी, पैशाची आदि जुदा जुदा भेदोवाळी थाय छे. भाषाशास्त्रना अभ्यासियोने आजडनो आ उल्लेख वधारे युक्तियुक्त जणाशे एमां शंका नथी.

* * *

जेसलमेरमें प्राप्त प्राचीन पुस्तककी सचित्र काष्ठ पट्टिका-(अ) देखो चित्र परिचय
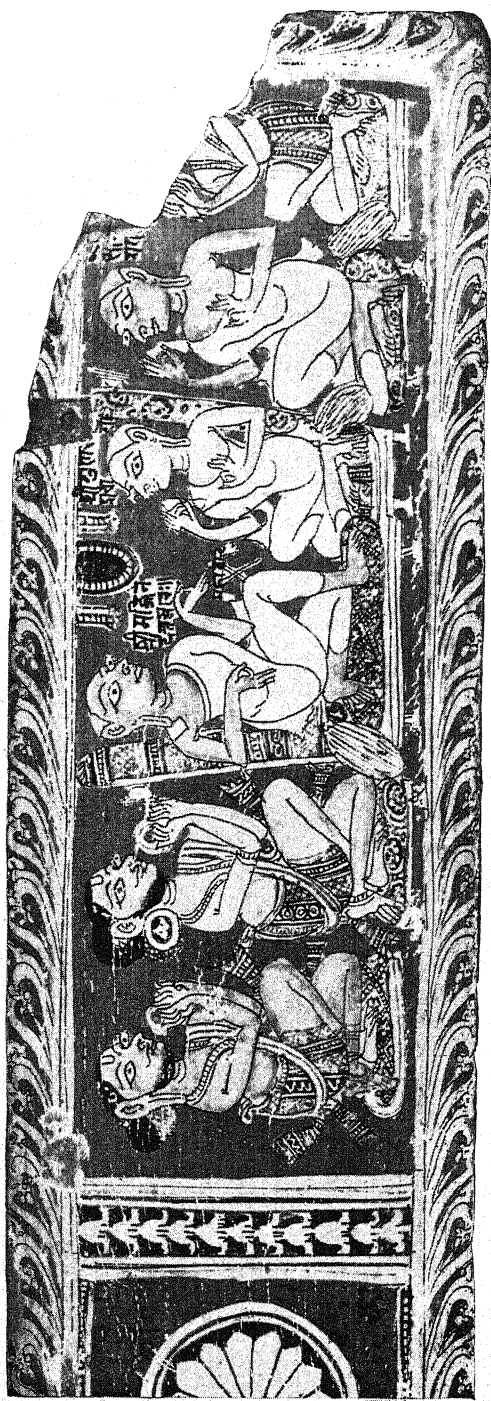
जेसलमेरमें प्राप्त प्राचीन पुस्तककी सचित्र काष्ठ पट्टिका – (आ) देखो चित्र परिचय

जेसलमेरमें उपलब्ध प्राचीन पुस्तककी सचित्र काष्ठ पट्टिका–(इ) देखो चित्र परिचय

जेसलमेरमें प्राप्त प्राचीन पुस्तककी सचित्र काष्ठ पट्टिका-(ई) देखो चित्र परिचय
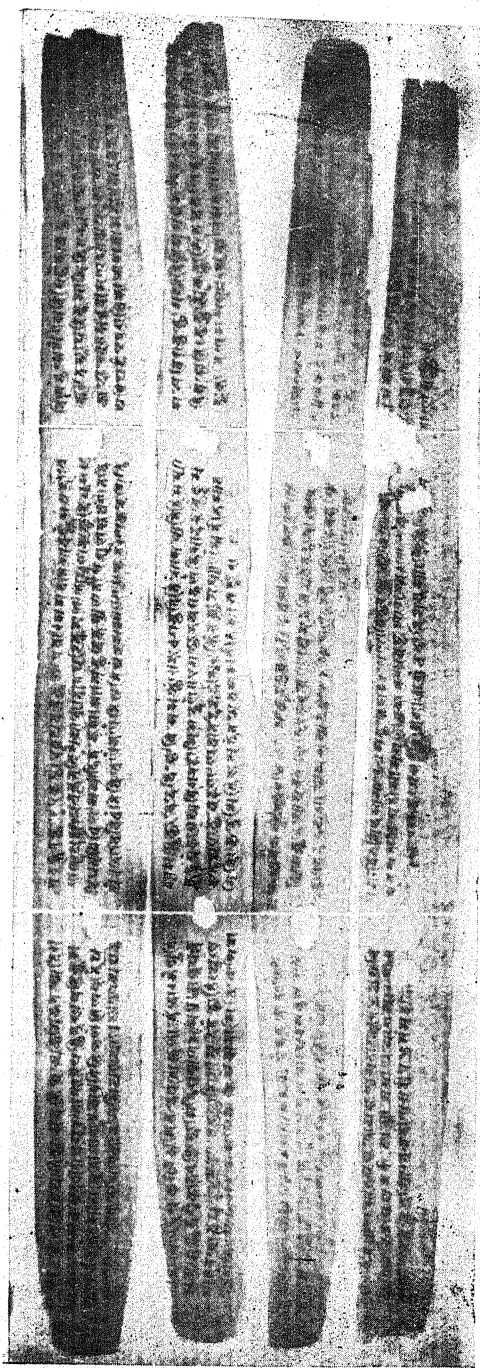
जेसलमेरमें प्राप्त प्राचीन ताडपत्रीय ग्रन्थोंके कुछ पत्र - (१) देखो चित्र परिचय

ज़ैसलमेरमें प्राप्त प्राचीन ताड़पत्रीय ग्रन्थोंके कुछ पत्र-(२) देखो चित्र परिचय
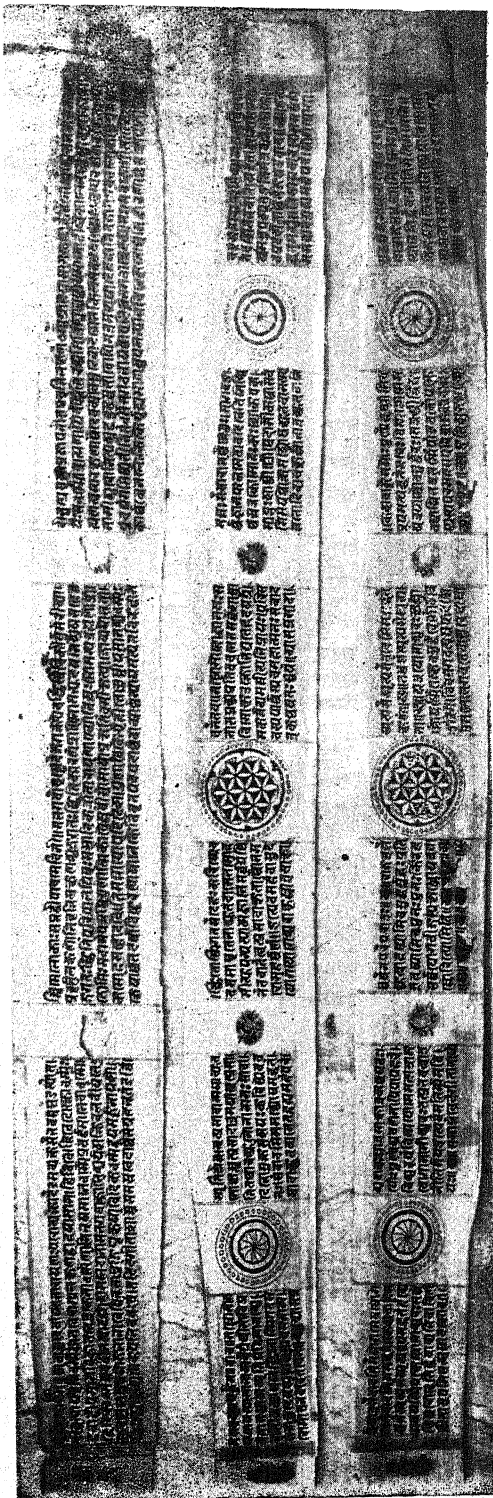
जेसलमेरमें प्राप्त प्राचीन ताडपत्रीय ग्रन्थोंके कुछ पत्र-(३) देखो चित्र परिचय
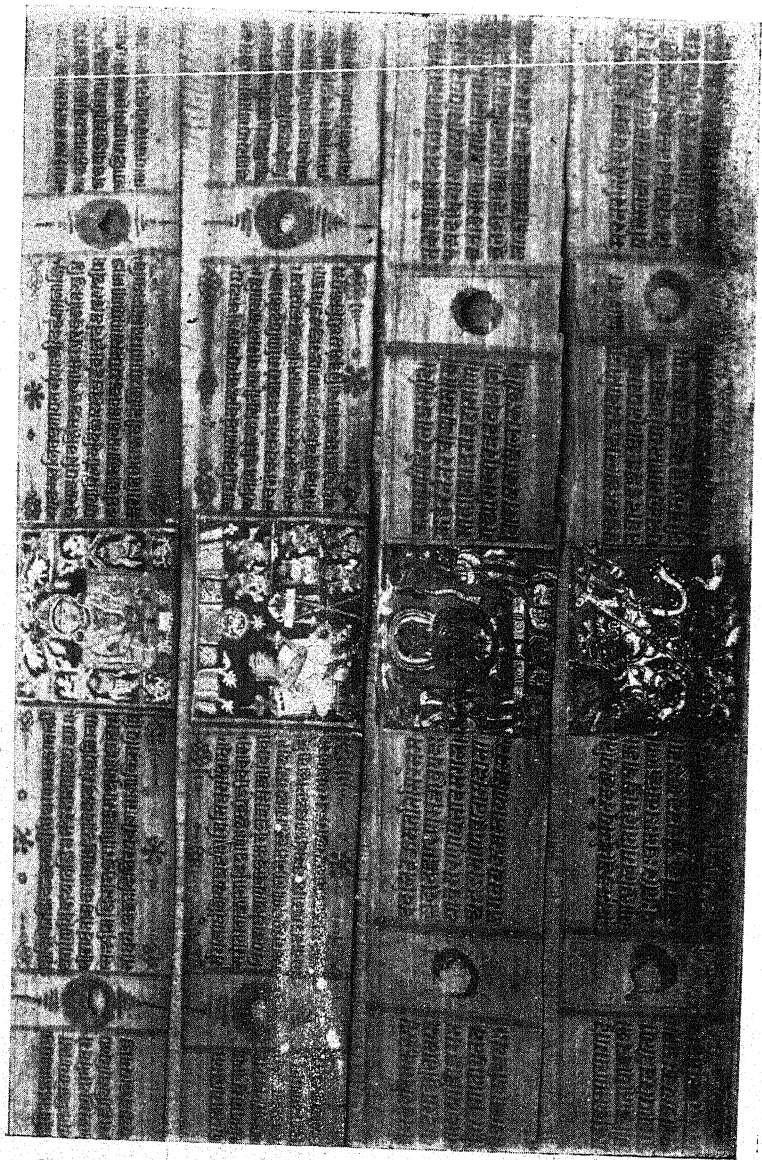
जेसलमेरमें प्राप्त प्राचीन ताडपत्रीय ग्रन्थोंके कुछ सचित्र पत्र-(४) देखो चित्र परिचय

जेसलमेरमें प्राप्त प्राचीन ताडपत्रीय ग्रन्थोंके कुछ सचित्र पत्रं-(५) देखो चित्र परिचय

जेसलमेरमें प्राप्त प्राचीन ग्रन्थोंके कुछ पत्र – (प्राचीनतम कागज) देखो चित्र परिचय

चित्र परिचय

-संपादकीय-

*

प्रस्तुत स्मृतिग्रन्थमां, सिंघीजीनां जे स्मरणो में लख्यां छे तेमां, जेसलमेरमां मने मारा साहित्यान्वेषण कार्य वखते, त्यांना बृहद्ज्ञान भण्डार आदिना साहित्य संग्रहमांथी मळी आवेला केटलाक विविध ग्रन्थोनां, चित्र आदिना दिग्द-र्शननी दृष्टिए, आद्यन्त पत्र इत्यादिनां फोटाओ विगेरे लीधेलां होवानी में नोंध लीधी छे. एमांना केटलाकना ब्लॉकस् बनावीने, नमूनारूपे जे चित्रो, आ ग्रन्थमां छपाववामां आव्यां छे, तेमनो थोडोक परिचय आ नीचे आपवामां आवे छे.

सचित्र काष्ठपट्टिकाओ

१ चित्रप्लेट (अ-आ) उपर एक सचित्र काष्ठपट्टिकानां चित्रो छे. ए काष्ठ पट्टिका २६-२७ इंच लांबी अने त्रणेक इंच जेटली पहोळी छे. एनी उपरनी बाजूए पाणीथी न धोवाय तेवा विविध प्रकारना पाका रंगोमां चित्रकाम करेलुं छे. जो के ए चित्रो, पाटलीनो बेकाळजीथी उपयोग करवाने लीधे, वच्चे क्यांक क्यांक घसाई गयेलां छे, पण ते ओळखी शकाय एवां छे. ए पट्टिकानो एक खूणानो थोडोक भाग टूटी पण गएलो छे. एमां आलेखेली चित्रावलिना मध्य-भागमां, एक जिन मन्दिरनुं दृश्य छे [चित्रप्लेट (अ)] जेना मध्यस्थाने जिनबिम्बनुं आलेखन करेलुं छे अने तेनी आसपासमां पूजा-उपासना करता श्रावको तेम ज नृत्य, गान, वादन आदि करता नर्तको विगेरे आलेखेला छे.

२ चित्रप्लेट (आ)मां, ए पट्टिकाना डावा जमणा भागमां आवेलां दृश्योना बे चित्रखण्डो छे. ए बन्ने खण्डोमां श्रीजिनदत्त सूरिनी व्याख्यान सभानुं आलेखन करवामां आव्युं छे. एना उपरवाळा चित्रखण्डमां, मध्यभागमां श्रीजिनदत्त सूरि बेठेला छे अने तेमनी सन्मुख पंडित जिनरक्षित बेठेला छे. जिनरक्षितनी पाछळ बे श्रावको, तेम ज श्रीजिनदत्त सूरिनी पाछळ एक श्रावक अने त्रे श्राविकाओ बेठेली छे. नीचेना चित्रखण्डमां, मध्यस्थाने जिनदत्त सूरि अने तेमनी सन्मुख श्रीगुण-चन्द्राचार्य तथा तेमनी पाछळ एक यति अने एक श्रावक श्रोता बेठेला छे. जिनदत्त सूरिनी पाछळ बे श्रावको बेठेला छे. ते सूरिना मुख आगळ जे स्थाप-नाचार्य मुकेला छे ते उपर 'महावीर' एवा अक्षरो लखेला छे.

आ चित्रावलि उपरथी लागे छे के ए सचित्र काष्ठपट्टिका श्रीजिनदत्त सूरिना पोताना ग्रन्थसंग्रहगत कोई ताडपत्रीय पुस्तकनी छे. कोई भावुक श्रावके तेमने

कोई मोटुं अने महत्त्वनुं पुस्तक लखावीने भेट कर्युं हतुं, जेना उपरनी, आ एक सुन्दर चित्रालंकरण करवामां आवेली पाटली छे. संभव छे के आमां आलेखेला स्त्री-पुरुषो, ए पुस्तक भेट करनार श्रावक कुटुंबनी मुख्य व्यक्तिओ ज होय. मूळ कया पुस्तकनी आ पट्टिका हती ते जाणवानुं हवे कशुं साधन नथी. नहिं तो कदाचित् ए पुस्तकनी प्रशस्तिमांथी एना दातानो परिचय विगेरे पण मळी शके. भण्डारोनां पुस्तकोमां गमे ते पुस्तकनी पट्टिका गमे ते पुस्तक साथे बांधी देवानी अव्यवस्था सेंकडों वर्षोथी चाली आवे छे, एटले एवी पट्टिकाओनो खास इतिहास आपणे हवे मेळवी शकीए तेम नथी.

आपणा देशनी प्राचीन चित्रकळाना इतिहासनी दृष्टिए आवी पट्टिकाओ घणी अगत्यनी अने मूल्यवान् छे. आ अने आ पछी एवी बीजी पट्टिकानां जे चित्रो अहिं प्रकट करवामां आव्यां छे, ते एक रीते आपणा देशना — खास करीने गुजरात-राजस्थानना — चित्रालंकरणोवाळां उपकरणोमां सौथी प्राचीन नमूनारूपे उल्लेखी शकाय तेवां छे.

चित्रखण्डोमां आलेखेला श्रीजिनदत्त सूरि जैन श्वेताम्बर संप्रदायना बहु प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य छे. एमनो जन्म गुजरातना धोलका नगरमां वि० सं० ११३२मां थयो हतो. तेओ दिगम्बर संप्रदायानुयायी वाछिग नामना वैश्यना पुत्र हता. सं० ११४१ मां तेमने श्वेतांबर जैन यतिपणानी दीक्षा आपवामां आवी हती अने सं० ११६९ मां चित्रकूट (मेवाडना सुप्रसिद्ध चित्तोड) मां आचार्य पद प्राप्त थयुं. सं० १२११ ना आषाढ वदि ११ ना दिवसे, अजमेरमां, चाहमान विश्वलदेवना राज्य समय दरम्यान, तेमनो स्वर्गवास थयो. तेमणे पोताना जीवनकाल दरम्यान गुजरात, मारवाड, मेवाड, वागड, माळवा अने सिन्धना प्रदेशमां सतत परिभ्रमण कर्युं हतुं. मरुस्थळीमां आवेला विक्रमपुरमां श्रेष्ठी देवभद्रे बन्धावेला जैन मन्दिरमां महावीरनी एक भव्य प्रतिमानी तेमणे प्रतिष्ठा करी हती. संभव छे के आ चित्रपट्टिकामां ए ज प्रतिष्ठा-प्रसंगनुं दृश्य आलेखेलुं होय. कारण के एमां आलेखेला जिनमन्दिरमां खास महावीरनी मूर्तिनुं आलेखन छे अने सूरि-सन्मुख स्थापित स्थापनाचार्य उपर पण 'महावीर'नुं नाम लखेलुं छे. कदाचित् ए ज देवधरे आ पट्टिका साथेनुं कोई पुस्तक पण लखावीने सूरिने समर्पित कर्युं होय अने तेथी ए पट्टिकामां उक्त प्रसंगना स्मारकरूपे आ चित्रांकण करवामां आव्युं होय. जैन संप्रदायमां आवा प्रसंगोनां निमित्ते पुस्तकादि लेखन अने चित्रपट्टिकादिना आलेखननी प्रवृत्ति घणा प्राचीन समयथी चाली आवे छे.

श्रीजिनदत्त सूरि, ए रीते चौलुक्य चक्रवर्ती सिद्धराज जयसिंह अने कुमारपाळना समकालीन हता अने एमना सूरिपद समय दरम्यान आ पट्टिकानुं चित्राङ्कण करवामां आवेलुं होवाथी, आपणे एने विक्रमना बारमा सैकाना अन्तभागना अथवा तेरमा सैकाना आदि भागना चित्रालेखनना प्रतीक तरीके निश्चितरूपे ओळखावी शकीए. ए समय जेटली जूनी आवी कोई अन्य सुन्दर चित्राकृतिओ अद्यापि आपणने उपलब्ध थई नथी.

चित्रपट्टिकाना रंगो आकर्षक अने रेखाओ सुन्दर, सुभग, अने सुमार्जित छे. स्त्रियो, पुरुषो अने यति गणनी आकृतियो सारी रीते उठावदार होई, तेमनो अंगविन्यास अच्छी रीते मरोडदार बतावावामां आव्यो छे. स्त्रियोनां काननां कुंडल खास ध्यान खेंचे तेवां छे, अने स्तनमंडलनो उन्नत वर्तुलाकार तो आपणने अजन्ताना चित्रांकणनी ज परंपरानो प्रत्यक्ष परिचय आपे छे. ए उपरथी आपणने एनो पण कांइक आभास मळी शके छे के अजन्तानी चित्रकला अने गुजरात-राजस्थान एटले के पश्चिम भारतनी चित्रकलानो परस्पर ऐतिहासिक संबंध रहेलो छे.

गुजरात-राजस्थाननी आ विशिष्ट चित्रकुलाना विषयमां, में मारी मुंबई युनिवर्सिटी तरफथी अपाएली ठक्कर वसनजी माधवजी व्याख्यानमालामां केटलीक विशिष्ट चर्चा करेली छे अने गुजरात-राजस्थानपासे हजी पण आ चित्रकलानो केवो मोटो खजानो भरेलो पड्यो छे तेनुं दिग्दर्शन कराव्युं छे. मारा विद्वान् मित्र श्रीयुत नानालाल चमनलाल महेता (निवृत्त आई. सी. एस्.) जेओ आ विषयना एक प्रमाणभूत निष्णात छे तेओ 'भारतीय विद्या भवन' तरफथी प्रकाशित करवा माटे ए चित्रकला उपर एक विस्तृत निबन्ध लखी रह्या छे जेमां आ विषयनी सविस्तर अने केटलीक मौलिक आलोचना करवामां आवशे.

चित्रप्लेट (इ-ई) उपर एक एवी बीजी काष्ठपट्टिकानां चित्रो छे. ए २९-३० इंच जेटली लांबी अने लगभग ३ इंच पहोळी छे. एनी बन्ने बाजूए, तेवा ज विविध पाका रंगोमां सुन्दर चित्रावलि अंकित करवामां आवेली छे. रंग, रेखा, उठाव अने आलेखननी दृष्टिए, आ पट्टिका उपर जणावेली पट्टिका करतां पण वधारे आकर्षक अने वधारे उच्च प्रतिनी छे. एनी उपरवाळी बाजूनी फरती चारेकोरनी किनारी उपर हंसोनी सुन्दर श्रेणि चीतरेली छे.

आ पट्टिकानी चित्रावलिनो विषय ऐतिहासिक छे अने ते जैन श्वेताम्बर संप्रदायमां बहु जाणीतो छे. वादी देवसूरिना नामे एक प्रख्यात आचार्य सिद्धराजना समकालीन हता. सुप्रसिद्ध हेमचन्द्राचार्य तेमना प्रगाढ मित्र थता हता. प्रमाण-

नयतत्त्वलोकालंकार नामे जैन तर्कशास्त्र विषयक प्रौढ ग्रन्थनी तेमणे रचना करी हती जेनी स्याद्वादरत्नाकर नामनी अतिविशद टीका विद्वानोमां बहु प्रसिद्ध छे.

वि० सं० ११८१ नी सालमां, पाटणमां, सिद्धराजनी राजसभामां – तेना ज प्रमुख पणा नीचे – ए आचार्यनो, दिगम्बर संप्रदायना एक एवा ज बहु प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य कुमुदचन्द्र साथे, श्वेताम्बर - दिगम्बर संप्रदाय वच्चेना मतभेदोनी अमुक मान्यता विषये, परस्पर एक निर्णायक वाद-विवाद गोठवायो हतो जेमां वादी देवसूरिनो विजय थयो हतो. 'प्रभावकचरित्र', 'प्रबन्धचिन्तामणि', 'चतुरशीति प्रबन्ध संग्रह' विगेरे जैन ऐतिहासिक प्रबन्ध ग्रन्थोमां, ए आचार्यनो सुविस्तृत इतिहास उपलब्ध थाय छे अने तेमां ए वाद-विवाद अंगेनी हकीकत पण विस्तार साथे आलेखेली मळे छे. ए उपरान्त, ए ज प्रसङ्गने अनुलक्षीने यशश्चन्द्र नामना एक समकालीन कविए 'मुद्रितकुमुदचन्द्र' नामना सुन्दर नाटक प्रकरणनी पण रचना करी छे जेमां ए हकीकतनुं बहु ज तादृश वर्णन आपवामां आवेलुं छे.

प्रायः ए ज नाटकगत वस्तु प्रस्तुत पट्टिकानी चित्रावलिमां क्रमपूर्वक चित्रित करवामां आवेली छे. मूळ ए पुस्तकनी आवी बे पट्टिकाओ होवी जोईए, परंतु मारा जोवामां त्यां एक ज पट्टिका आवेली. आ उपलब्ध पट्टिकामां, ए ऐतिहासिक प्रसङ्गनो मात्र पूर्व भाग चित्रित थएलो मळे छे. उत्तर भाग एवी बीजी पट्टिकामां होवो जोईए. आ पट्टिकाओ वादी देवसूरिनी कोई विशिष्ट ग्रन्थ रचनावाळा पुस्तकनी – के जे कदाचित् स्याद्वादरत्नाकर ज होय – होवी जोईए, अने ते पुस्तक तेमना स्वकीय ज्ञानभण्डार माटे तैयार करवामां आवेलुं होवुं जोईए. ए चित्रावलि सूचित करे छे, के ए प्रसङ्गना पछी तरत ज ५ – ७ वर्षनी अंदर ज आ चित्राङ्कण थएलुं हशे. एटले सिद्धराजना समय दरम्याननुं ज आ एक चित्रालेखन छे एम कही शकाय.

२ चित्रप्लेट (इ) उपरनुं चित्र, ए पट्टिकानी उपरनी बाजूमां चित्रित दृश्योमांनो मध्यस्थित चित्रखण्ड छे. एमां दिगम्बराचार्य कुमुदचन्द्र अने श्वेताम्बर वादी देवसूरिनी व्याख्यान सभानां दृश्यो अंकित करवामां आव्यां छे. आशापल्ली, एटले के वर्तमान अमदाबादनी जग्याए आवेलुं प्राचीन स्थान जेने पाछळथी कर्णावती पण कहेवामां आवतुं – त्यां नेमिनाथना मन्दिर पासे आवेला बे जुदां जुदां धर्मस्थानोमां ए श्वेताम्बर अने दिगम्बर बन्ने आचार्यो एक साथे आवी वस्या हता. वादविद्याकुशळ धर्माचार्योमां होय छे तेवी विद्याविषयक स्पर्द्धा, कोई प्रसङ्गवश, ते बंने

आचार्योंनी वच्चे शुरू थई अने तेओ परस्पर एक बीजाना सांप्रदायिक मन्तव्योनुं खण्डन-मण्डन पोत-पोताना शिष्यो अने भक्तो आगळ करवा मंडी पड्या. ए चित्रखण्डमां प्रथम जे दृश्य छे ते दि० कुमुदचन्द्रनी सभानुं छे. एमां एक उच्च काष्ठपीठ उपर नग्न स्वरूपमां दिगम्बराचार्य बेठेला छे. तेमनी सन्मुख तेमनो कोई मुख्य दिगम्बर यतिशिष्य बेठो छे अने तेनी पाछळ बे भक्त गृहस्थो बेठा छे. आचार्यनी पाछळ तेमनो तेवो ज कोई क्षुल्लक शिष्य उभो छे. तेनी बगलमां मयूरपिच्छी छे अने हाथमां एक वस्त्रखण्ड छे जेना वडे ते आचार्यने वातव्यंजन करी रहेलो छे. आचार्यनी मुद्रा उपदेशप्रवण छे अने तेनो भाव खूब उत्तेजक छे. श्रोताओ पण आचार्यना कथनने उत्साह अने आवेग पूर्वक झीली रह्या छे. ए चित्रखण्डमां आचार्यना मस्तक उपर 'कुमुदचंद्रः' अने श्रोताओना मस्तक उपर 'दिगंबरश्राद्धाः' आवुं परिचयात्मक लखाण पण करेलुं छे.

तेनी पछी वादी देवसूरिनी व्याख्यान परिषदनुं दृश्य छे. ए आचार्य पण एवा ज उच्च काष्ठपीठ उपर श्वेतवस्त्र परिधान करीने बेठेला छे. एमनी सामे एक कोई प्रौढ जणातो शिष्य बेठो छे, जे घणुं करीने पं० माणिक्य छे. तेमनी पासे बे श्रावको बेठा छे. आचार्यनी पाछळ कोई लघु शिष्य उभो छे जेना हाथमां पण वस्त्रखण्ड होई ते सूरिने पवन नांखी रहेलो छे. आ सूरिनी मुद्रा पण तेवी ज उपदेशप्रवण अने भावोत्तेजक छे. मात्र एनी हस्ताकृतिमां जरा वधारे मृदुता अने मुखाकृति उपर वधारे सौम्यभाव बतावेलां छे. एटलुं दृश्य तो ए बन्ने आचार्योनुं समान छे. पण देवसूरिनी सभामां एक व्यक्ति उभो छे जे कांईक उत्तेजनात्मक संभाषण करतो होय तेम देखाय छे. ए सभाना उपर '॥ श्रीदेवसूरिसमीपे दिगंबर-भट्टः पुरः पठति ॥' आवुं चित्रपरिचायक संस्कृत वाक्य लखेलुं छे, जे उपरथी जणाय छे, के जे व्यक्ति उभेली चीतरी छे ते दिगम्बराचार्यनो भट्ट छे अने ते देवसूरि आगळ कोई वाद-विवादात्मक विषयने लगतुं कांईक संभाषण करी रह्यो छे. ए भट्ट शुं बोले छे तेनुं सरस शाब्दिक चित्र 'मुद्रितकुमुदचन्द्र'ना-टकना प्रथम अंकमां आपेलुं छे. जिज्ञासुए त्यांथी जोई लेवुं. अहिं ते आपवानो अवकाश नथी.

४ चित्रप्लेट (ई)नां चित्रो, ए पट्टिकानी अन्दरनी बाजूनी चित्रावलिनां छे. आशापल्लीमां चाली रहेली, उपर सूचव्या प्रमाणेनी स्पर्द्धाना परिणामे, बन्ने आचार्यो बच्चे एवुं ठरे छे के तेमणे पाटणमां सिद्धराजनी राजसभामां शास्त्रार्थ करवो

अने पोतपोतानी विद्याशक्तिनो परिचय आपी राजा पासेथी जयापजयनां प्रमाणपत्रो मेळववां. ए निर्णय प्रमाणे बन्ने आचार्यो ज्यारे पोतपोताना परिवार साथे आशापल्लीथी पाटण जवा प्रयाण करे छे, ते वखतनां दृश्यो आ चित्रावलिमां अंकित करवामां आव्यां छे. एमां उपरना चित्रखण्डमां, देवसूरिना प्रयाणनुं दृश्य बतावेलुं छे. पाटणमां, सिद्धराजनी सभामां, कुमुदचन्द्राचार्य साथे जे वाद-विवाद थाय तेमां तेमनो विजय थाय ए माटे आशापल्लीना जैन संघे शुभ शकुनोनी गोठवण करी राखी हती. देवसूरि ज्यारे मकानमांथी बहार नीकळे छे त्यारे, तेमना मुख अगाळथी भव्य जैन रथयात्रा पसार थाय छे जेमां एक सुन्दर रथमां जिनमूर्तिने बेसाडी तेनी आगळ नृत्य, गीत, वादित्र विगेरेना आनन्दोल्लासनी उमदा गोठवण करवामां आवी छे. देवसूरि उत्साह भरेलां पगलां मांडी रह्या छे. तेमनो देह खूब कदावर अने हृष्टपुष्ट छे. आंखोमां ऊंडुं गांभीर्य अने मुखपर प्रसन्नता प्रसरेली छे. बे मोटा भक्तो विकसित वदन अने उत्तंभित हस्तमुद्राथी अभिनन्दन आपी रह्या छे. ते बधानी चरणगतिमां धसमसतो वेग अने मुखाकृतिमां थनगनतो उत्साह बहु ज स्पष्ट रीते बताववामां आव्यो छे.

सूरि अने श्रावकोनी आगळ एक नर्तक मंडळ चाली रह्युं छे, जेमां बे मृदंगिया अने बे नर्तकियो छे. एमां एक नर्तकी अत्यन्त भावभंगीवाळुं नृत्य करी रही छे अने बीजी कोईएक जातनुं वाजिंत्र वगाडी रही छे. नर्तकीनुं सुन्दर स्तनमंडळ ए ज अजन्ताशैलीनुं उन्नत स्वरूप बतावी रह्युं छे. अङ्गोपाङ्गना मरोड अत्यंत भावाभिव्यंजक अने वेगपूर्ण छे. मुखमुद्रा सुस्थ अने आंखो रसनिमग्न थएली छे. आ जातनां केटलांक अन्यान्य पुस्तकीय चित्रोमां, आंखोनी जे बेडोळ आकृतियो आलेखवानी विकृत रूढि पडी गएली जोवामां आवे छे, ते आ पट्टिकानां चित्रोमां बिल्कुल देखाती नथी.

नर्तकमंडळनी पाछळ जिनमूर्तिवाळो शिखरबद्ध सुन्दर काष्ठरथ छे जेने पुरुषो अने युवको खूब उत्साहथी खेंची रह्या छे. केटलाक युवको भूंगळ अने वांसळी वगाडी रह्या छे. आवा शुभ शकुन पूर्वक थएला प्रयाणथी देवसूरिनो समुदाय पोताना पक्षना भावी विजयनी संपूर्ण श्रद्धा सेवतो उत्साह पूर्वक पाटण तरफ प्रयाण करे छे.

मुद्रित कुमुदचन्द्रमां आ भाव व्यक्त करनारुं नीचेनुं सरस संस्कृत पद्य मळे छे जे ए चित्रनी संपूर्ण अभिव्यक्ति प्रकट करे छे.

गान्धारध्वनिगीतपीतहृदये नृत्यत्कुरङ्गेक्षणा-
वर्गाक्षिप्तजनेक्षणे परिलसद्वादित्रनादोदये ।
आरूढा हसितामरेश्वरगृहच्छायापथे सद्रथे
मूर्तिस्तीर्थकरस्य दुःखमथनी जाता सुखे सम्मुखी‡ ॥

एनी नीचेनुं बीजुं चित्र, आचार्य कुमुदचन्द्रना प्रयाणनुं दृश्य बतावे छे. दिगंबराचार्य पालखीमां बेसीने पाटण तरफ जवा नीकळ्या छे. एमनो अनुचर वर्ग ठीक ठीक मोटो छे. ३ – ४ जण पालखी उचकनारा छे, ३ – ४ छत्र धरनारा छे. आगळ बे सुभटो चाली रह्या छे जेमना हाथमां ढाल अने तलवारो छे. सौथी आगळ भूंगळ वगाडतो अनुचर चाली रह्यो छे, जेना श्रवणथी लोको समजी शके के कोई मोटा धर्माचार्यनी सवारी आवी रही छे. तेनी आगळ साबरमती नदीनो देखाव बतावेलो छे. कारण के आशापल्लीथी पाटण जतां प्रथम ज ए नदी ऊतरवी पडे छे. नदीना सामे कांठे, रस्ता उपर वडनुं मोटुं घटादार वृक्ष आवेलुं छे जेना थडमां चूनानो पाको चोंतरो बांधेलो छे. दिगंबराचार्यनी सवारी गामना दरवाजामांथी बहार नीकळीने जेवी ए स्थळ पासे पहोंचे छे के त्यां आगळ ऊंची फणा करीने बेठेलो एक मोटो काळो नाग तेमने दृष्टिगोचर थाय छे. आचार्यना अनुचरो आ अपशकुन जोई मनमां खिन्न थाय छे अने एक बीजाना मों सामुं निःशब्द भावे जोई रहे छे. आचार्य पण ए अपशकुन जोई मनमां जरा उद्विग्न जेवा थई जाय छे. चित्रकारे तेमना मुख उपर, ए उद्वेगनो आछो भाव घणी ज मार्मिकताथी आलेख्यो छे. खूब आघे जोती एमनी आंखो बतावी रही छे के, ए जाणे कांईक भावी कुशंकानी झांखी करी रह्या छे. एमना अनुचरो आचार्यने कहे छे के

स्वामिन् ! मार्गगमनभङ्गगोऽयं भुजङ्गमः ।

अर्थात् – आ भुजंग मार्गमां गमनभंगनूं सूचन करे छे. कुमुदचन्द्र जाणे एनी उपेक्षा करता अने बधाने धैर्य धारण करावता कृत्रिम हर्ष साथे कहे छे के –

अगम्यो भुजङ्गानां विनतानन्दनः कुमुदचन्द्रः । पार्श्वपरमेश्वरशिरोऽलङ्कारस्य हि भुजङ्गपुङ्गवस्य गोत्रिणां दर्शनमपि विपुलं मङ्गलम् । तदलं विलंबेन ।[1]

अर्थात् – आ विनतानो पुत्र कुमुदचन्द्र भुजंगोने अगम्य छे. तेम ज भुजंग ए तो भगवान पार्श्वनाथना मस्तकना एक आभूषण समान छे अने आपणे तो ए भगवानना उपासको छीए; एटले आपणने तो ए भुजंगनुं दर्शन उलटुं मंगल करनारुं छे. माटे विलंब वगर आगळ चालता रहो.

‡ जुओ, मुद्रितकुमुदचन्द्रप्रकरण, पृ० १८. १ जुओ, मुद्रितकुमुदचन्द्रप्रकरण, पृ० २४.

ए पछीना चित्रखण्डमां, दिगम्बराचार्य पाटणमां राजाना अन्तःपुरमां, घणुं करीने राजमाताने मळवा जवा इच्छे छे, पण द्वारपाळ तेमने रोके छे, तेनुं दृश्य छे. ते पछी राजाना अन्तःपुरनुं दृश्य छे के जेमां राजराणीओ जेवी देखाती बे भव्याकृति स्त्रियो बेठेली छे, अने परस्पर वार्तालाप करी रही छे. आ दृश्यनो भाव ए छे के— सिद्धराजनी माता मयणल्ला देवी दक्षिणनी राजकुमारी हती अने तेनो पितृपक्ष दिगम्बर संप्रदाय तरफ पक्षपात धरावतो हतो. कुमुदचन्द्राचार्य पण ए दक्षिणदेशना ज वासी हता अने तेथी तेमना तरफ राजमातानो भक्तिभाव हतो. तेथी दिगम्बराचार्य, राजमाताने खानगी रीते मळवा माटे अने पोताना पक्षनो विजय थाय तेवी कोई गोठवण करवानी सूचना आपवा माटे, पाछला दरवाजेथी अन्तःपुरमां जवा इच्छे छे; पण शस्त्रधारी ड्योढीवान् तेमने पाछा वाळे छे. द्वाररक्षकनी जवानी मनाई सूचवती मुखमुद्रा खूब उत्तेजित अने सख्ताई साथे निषेध बतावतो जमणो हाथ खूब टटार देखाय छे. पाछा वळेला नग्नाचार्य तेनी सामे आर्जव दृष्टिथी विनम्र हाथवडे कांईक कहेता अने उतावळे डगले चाली जता बतावेला छे. अन्तःपुरमां बेठेली बे स्त्रियो कदाच राजमाता अने राजराणी होय, तेम जणाय छे.

पश्चिम भारतनी चित्रकळाना इतिहासमां आ पट्टिकाओनां चित्रो आपणने एक महत्त्वना प्रकरणनी मूल्यवान् सामग्री पूरी पाडे छे.

ताडपत्रीय पुस्तकोनां केटलांक पत्रो

चित्रांक (१)थी ते (५) सुधीनां चित्रो जेसलमेरमां आवेलां ताडपत्रीय पुस्तकोनां केटलांक आद्यन्त पानाओनी प्रतिकृतिओ बतावनारां छे, जेमनो संक्षिप्त परिचय आ प्रमाणे छे.

५ चित्रांक (१) ए जिनभद्रगणि विरचित विशेषावश्यक भाष्यनी प्रतिनां छेल्लां पानाओनी प्रतिकृति छे. ए प्रतिना विषे में प्रस्तुत ग्रन्थमां ज, भाष्यकार जिनभद्रगणिना समयनी चर्चा करनारो जे खास लेख लख्यो छे तेमां विगतथी वर्णन आप्युं छे (जुओ पृ० १९२). मारा मत प्रमाणे, आपणा पुस्तक भण्डारोमां जेटलां ताडपत्रीय पुस्तको मारा अवलोकवामां आव्यां छे ते बधामां, आ प्रति सौथी जूनी होय तेम लागे छे. एनां पानां पण पातळां अने वधारे श्लक्ष्ण होई ऊंची जातनां ताडनां छे. में लेखमां जे बे गाथाओ आपेली छे ते ए चित्रना सौथी नीचेना पृष्ठमां आवेली छे.

६ चित्रांक (२) ए प्रतिकृति, वर्द्धमानसूरिकृत 'उपदेशपदटीका'नी एक सुंदर प्रतिनां आद्यन्त पानाओनी छे. ए प्रति अजमेरमां, संवत् १२१२मां

लखाएली छे, जे वखते त्यां चाहमान वंशीय विग्रहराज ऊर्फे विश्वलदेव राजाधिराज हतो. इतिहास प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहाणनो ए प्रपिता थाय. एना उपर चढाई करीने कुमारपाळे एने पोतानो आज्ञाधीन बनाव्यो हतो.

ए पुस्तकना अन्ते आ प्रमाणे पुष्पिका लेख लखेलो छे—

संवत् १२१२ चैत्रसुदि १३ गुरौ ॥ अद्येह श्री अजयमेरुदुर्गे समस्तराजावलीविराजित परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीविग्रहदेवविजयराज्ये। उपदेशपदटीकाऽलेखीति ॥ छ ॥ कल्याणमस्तु ॥ छ ॥

७ चित्रांक (३) आ प्रतिकृति 'भगवद्गीता-शांकरभाष्य'नी ताडपत्रीय पुस्तकनां आद्यन्त पानाओनी छे. प्रतिमां लख्या साल आपेली नथी तेथी ए निश्चितरूपे न कही शकाय के केटली जूनी ते हशे. परंतु अक्षरोनां वळण अने प्रतिनी स्थिति उपरथी अनुमान करी शकाय के ते वि. सं. १३००नी पहेलां लखाएली होवी जोईए. शांकरभाष्यनी ताडपत्रनी अने आटली जूनी कोई अन्य प्रति जाणवामां नथी आवी, तेथी ए एक मूल्यवान् प्रति गणी शकाय तेवी छे.

८ चित्रांक (४) केटलीक ताडपत्रीय प्रतोनां आद्यन्त पानाओमां तीर्थंकरोनां, देवीओनां, साधु अने श्रावको आदिनां चित्राङ्कणो करेलां मळी आवे छे, जे चित्रकलाना अभ्यासनी अपेक्षाए बहु उपयोगी वस्तु गणाय छे. तेथी आवां केटलांक पानाओनां, में त्यां फोटाओ लेवडावी लीधां हतां जेमांना थोडांकनां नमूनारूपे, अहिं आ चित्रो आपवामां आव्यां छे. आ पृष्ठमांना प्रथम अने त्रीजा पत्रमां तीर्थंकरनी मूर्तियो चित्रित करेली छे. बीजा पत्रमां आचार्यनी व्याख्यान सभानुं दृश्य आलेखेलुं छे. चित्राङ्कण एकंदर सुन्दर अने सुरेख छे. सौथी नीचेना पत्रमां सरस्वती देवीनुं सुन्दर आलेखन करेलुं छे. देवीनी मुखाकृति बहु ज भाववाही अने प्रसन्न-गंभीर छे. एने ४ हाथ छे जेमां बे हाथथी वीणा वगाडी रही छे अने बीजा बे हाथमां घणुं करीने करताल धारण करेली छे. बाजूमां नानकडो हंस चीतरेलो छे जे एनुं वाहन गणाय छे. फोटो बहु सारो न आववाथी चित्र बहु स्पष्ट नथी आव्युं.

९ चित्रांक (५) आ पण तेवा ज सचित्र पानाओनां चित्रोना एक नमूनारूपे छे. एमां मध्यना पत्रमां सरस्वती देवीनी उभी आकृतिनुं चित्र छे जे विरल मळे छे. सिद्धहैमव्याकरणनी एक प्रतिना अन्तना पत्रमां आ चित्र अंकित करेलुं छे. आ प्रति बहु जूनी होय तेम लागे छे—एटले के हेमचन्द्राचार्यनी हयातीमां

ज, ज्यारे सौथी पहेली ए व्याकरणनी जे प्रतो लखाई, तेमांनी ए एक होय एवुं मानवाने खास कारण छे. सरस्वतीनी आ प्रतिकृति पण बहु ज सुंदर अने उदाहरणभूत छे. ए पण चतुर्हस्ता छे, परन्तु एना उपरना बे हाथमां कमल पुष्पो छे अने नीचेना एक हाथमां करमालिका तथा बीजा हाथमां लघु पुस्तिका छे. एना काननां कुंडल, गळानो हार अने सुन्दर स्तनमंडल सुशोभित रीते आलेख्यां छे. पग पासे ऊर्ध्वग्रीव हंस पोतानी चंचूमां कमलपुष्प पकडी जाणे देवी साथे गेल करतो होय तेवो बहु ज मनोरम देखाय छे.

१० **चित्रांक (६)** उपर एक अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण पानानुं चित्र छे. ए पानुं कागळनुं छे, ताडनुं नहिं. जेसलमेरना भंडारमां रद्दीपाना भेगुं नांखी राखेलुं आ पानुं मळ्युं हतुं. एनी विशेषता ए छे के ए पानावाळुं पुस्तक, उक्त जिनदत्तसूरिना खास पट्टधर शिष्य जिनचन्द्रसूरिए पोते लखावेलुं हतुं. आनन्दवर्द्धनाचार्य-कृत 'ध्वन्यालोकलोचन' नामना पुस्तकनुं ए अन्तिम पत्र छे. पानानी नीचेनी कोरो खरी गएली होवाथी अन्तनो पुष्पिकालेख अखण्ड नथी रह्यो अने तेथी एमां लख्यानी साल विगेरेनी जे नोंध हती ते नष्ट थई गई छे. परंतु एमां जिनदत्तसूरि अने तेमना शिष्य जिनचन्द्रनुं नाम स्पष्ट वांची शकाय छे. छेल्ली पंक्तिमां 'जिनचन्द्रनाम्नाऽलेखि' ए वाक्य स्पष्ट देखाय छे. एटले ए पुस्तक तेमनुं पोतानुं लखावेलुं हतुं ए स्पष्ट थाय छे. जिनचन्द्रसूरि वि. सं. १२२३ मां, २० वर्ष जेटली अल्प उम्रमां ज स्वर्गवासी थई गया हता. तेथी तेमणे ए पुस्तक १२१३ अने १२२३नी वच्चे क्यारेक लखाव्युं हशे, एम मानी शकाय. आ पुस्तक कागळ उपर लखेलुं हतुं. कागळनुं आटलुं जूनुं लखेलुं बीजुं पुस्तक हजी मारी जाणमां नथी आव्युं तेथी हुं एने कागळना एक जूनामां जूना पुस्तकना नमूना तरीके गणवा ललचाऊं छुं.

एना अन्तनो पुष्पिका लेख आ प्रमाणे उकेली शकायो छे—

(1) ...**पूर्णं चेदं काव्यालोकलोचनं**.....................

(2) ....**लब्धप्रसिद्धेः श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तस्य ॥ छ ॥ समाप्तं चेदं लोचनग्रंथः ॥** ....

(3) .... **घ सु १ रवौ ॥ श्रीमज्जिनवल्लभसूरिशिष्यः श्रीमज्जिनदत्तसूरिः प्रवरविधिधर्म्मसर**............

(4) .... **प्रतिवादिकरटिकरटविकटरदपा** .... **चरणेंदीवरमधुकरो विज्ञातसकलशास्त्रार्थः**.......................

(5) .... **जिनचंद्रनाम्नामलेखि** ....

*

जेसलमेरना भण्डारनी दुरवस्था

जेसलमेरमां जे ग्रंथभण्डार रहेला छे तेमां आपणी प्राचीन साहित्य विषयक सामग्रीनी आवी केटलीय अमूल्य वस्तुओ छिन्न-भिन्न दशामां पडेली छे अने ते दिन-प्रतिदिन नष्ट थती जाय छे. दुःखनो विषय ए छे के जेसलमेरना मन्दिरोनी यात्रा करवा माटे सेंकडो अने हजारोनी संख्यामां जैन लोको जाय-आवे छे अने मोटा मोटा नामधारी सूरिवर्यो पण, पोताना भक्तो पासेथी हजारो रूपियाना खर्चो करावी संघो कढावे छे अने जेसलमेरनी यात्रा करवा जाय छे. परंतु ए बधाने त्यांना भण्डारमां केवो अपूर्व ग्रन्थसंग्रह थएलो हतो अने ते आजे केवी नाशकारक स्थितिमां पड्यो पड्यो सड्यां करे छे तेनी यत्किंचित् पण कल्पना थती नथी अने तेओ ए भण्डारना अवलोकन के रक्षणमाटे जरा पण विचार करी शकता नथी.

जेसलमेरनो ए महान् ग्रन्थभण्डार खरतर गच्छना आचार्य जिनभद्रसूरिए स्थापित कर्यो हतो. ए आचार्य ग्रन्थोद्धार कार्यना महान् प्रेमी हता अने तेमणे पाटण, खंभात, मण्डपाचल दुर्ग, जेसलमेर विगेरे सात स्थानोमां मोटा ज्ञान-भण्डारो स्थापन कर्या हता अने जूना ताडपत्रना जीर्ण थएला ग्रन्थो उपरथी कागळ उपर हजारो बीजा नवा ग्रन्थो लखावीने ए भण्डारोमां मुक्या हता. पाटणना वाडीपार्श्वनाथवाळा भण्डारमां तथा जेसलमेरना उक्त बडा भण्डारमां ए आचार्यनी लखावेली सेंकडो प्रतो अत्यारे विद्यमान छे. तेमणे ए ग्रन्थो बहु ज व्यवस्थित रीते अने एक ज आकार-प्रकारमां उत्तम रीते लखावेला छे.

जे काळे जिनभद्रसूरिए जेसलमेरमां ए ग्रन्थभण्डारनी भव्य स्थापना करी हती ते वखतमां जेसलमेरना जैन संघनी जाहोजलाली अने आबादी घणी मोटी हती. परन्तु आजे ए स्थिति रही नथी. त्यांना जैन मन्दिरोमां जेटली जिननी मूर्तियो आवेली छे तेनी संख्याना प्रमाणमां तेनी पूजा करनारा जैनोनी संख्या सोए-एकना प्रमाणमां पण आजे रहेली नथी. छतां जैन समाजमां मन्दिर अने मूर्तिनी पूजानी भावना कांईक ठीक ठीक जाग्रत होवाथी मन्दिरोना रक्षण विगेरे माटे यथा तथा प्रयत्नो थयां करे छे. परंतु ए ज्ञानभण्डार तरफ कोईनुं लक्ष्य न होवाथी तेना रक्षणनी कशी ज काळजी लेवामां आवती नथी. अने आथी ए ज्ञानभण्डार अत्यंत अव्यवस्थित अने अस्तव्यस्त दशानो भोग थई रह्यो छे.

ताडपत्रीय ग्रन्थोनो जे विशिष्ट संग्रह त्यां हतो ते लगभग आजे संपूर्ण त्रुटक जेवो थई गयो छे. ग्रन्थो बान्धनार अने छोडनारना हाथे, अज्ञानता अने अनावडतना परिणामे, एक ग्रन्थनां पानां बीजा ग्रन्थमां, अने बीजा ग्रन्थनां पानां त्रीजा ग्रन्थमां—एम अनेक ग्रन्थोनां अनेक पानांओ अन्यान्य ग्रन्थो भेगा मळी जवाथी, सेंकडो ग्रन्थो त्रुटक बनी गया छे. तेम ज बेदरकारी रीते पोथीयो बान्धवा छोडवाने लीधे हजारो पानाओ त्रुटी त्रुटीने ककडाना ढगला भेगा थता जाय छे. जेसलमेरना ए ग्रन्थसंग्रहमां, ताडपत्रीय ग्रन्थना जेटला जूनामां जूना नमुनाओ आपणने जोवा मळी आवे छे, तेवा हवे बीजे कोई ठेकाणे भाग्ये ज हयाती धरावता हशे.

मने त्यांना मारा निवास दरम्यान भण्डारनी ए दुर्व्यवस्था जोई एना विशे कांईक प्रयत्न करवानी इच्छा थई हती अने तेथी ते विषे में श्रीबाबू बहादुर सिंहजीने लखतां तेमणे पोतानो योग्य उत्साह पण बताव्यो हतो. परंतु युद्धकाल दरम्यान, त्यां ए अंगेनुं अपेक्षित कशुं साधन न मळी शकवाथी, ते वखते ए माटे कशुं थई शक्युं नथी. परन्तु साधननी सुलभता थए तेम ज ज्ञानप्रेमी जनोनी सहायता मळे, ए ग्रन्थसंग्रहनी सुरक्षा करवा साहित्यसेवी व्यक्तिओए अवश्य प्रयत्न करवो जोईए. एमां संग्रहीत सर्व ताडपत्रीय ग्रन्थोने सुन्दर अने सरखा मापनी लाकडानी पेटीओ बनावी तेमां मुकवा जोईए. दरेक ग्रन्थनी उपर—नीचे पानाना बराबर मापनी पातळी अने पॉलीश करेली सागनी पाटलीओ राखवी जोईए. लिपि, चित्र, प्राचीनता, शुद्धता अने अपूर्वतानी दृष्टिए जे जे ग्रन्थो संपूर्ण के त्रुटित होय ते बधानी पूरेपूरी फिलम लई लेवी जोईए. त्रुटित के पूर्ण जेटला ग्रन्थो आजे विद्यमान होय तेमनो विस्तृत वर्णनात्मक सूचिग्रन्थ तैयार करी प्रकट करवो जोईए.

आरीते ग्रन्थोनी रक्षानो प्रबन्ध करवामां आवे तो हजी पण बीजा ५०० वर्षो सुधी ए ग्रन्थो जळवाई रहे तेम छे.

* *
*